एकश्लोकीय ज्ञानकल्पवृक्ष ग्रन्थ



- डा० आचार्य प्रभाकर मिश्र

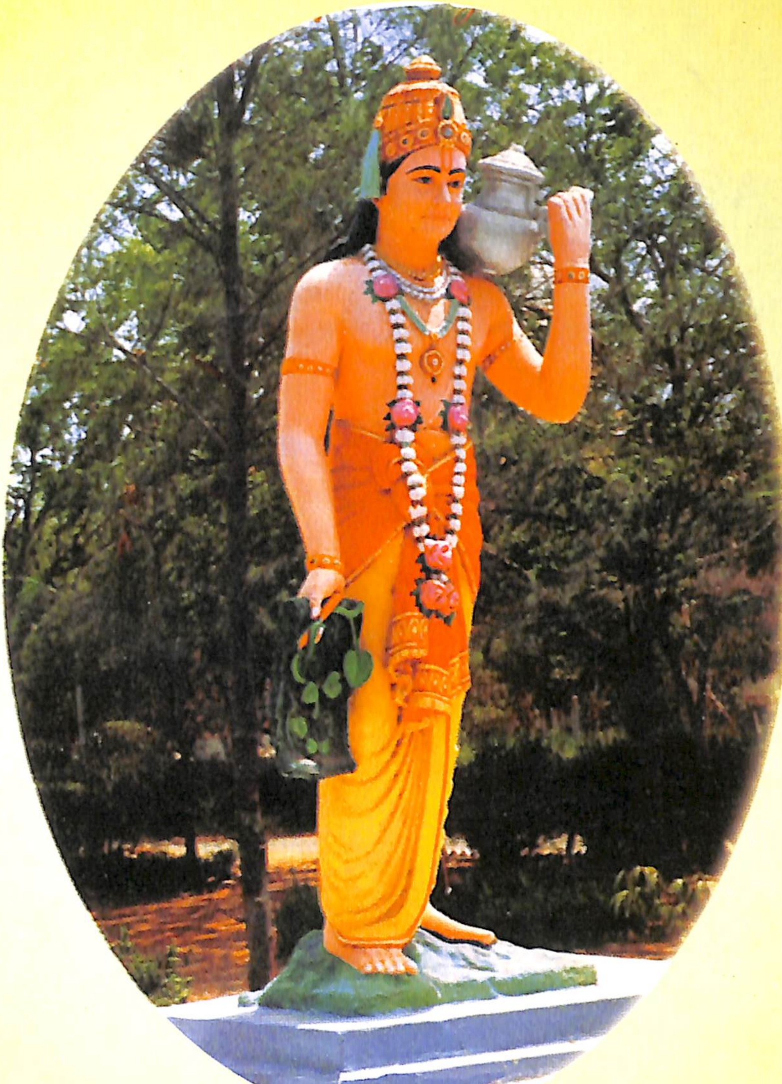
विद्याद्यादृगरूपया त्रिपथगाधाराधरो माधवः ।
योगंगान्धियमातचन्द्रमहिमालाभान्तरंगावली ।
वेदान्तान्त्रिकभावतारणमता पंचामृता राधिका ।
साभाभारत भारतीय मुदिता या मानवी संहिता ।

आचार्य प्रभाकर मिश्र द्वारा रचित अद्भुत अद्वितीय संस्कृत जगत् की अभूतपूर्व धरोहर यह एक ही श्लोक है, जिसके अन्तर्गत आयुर्वेद तथा योगविज्ञान का रहस्योद्घाटन हुआ।

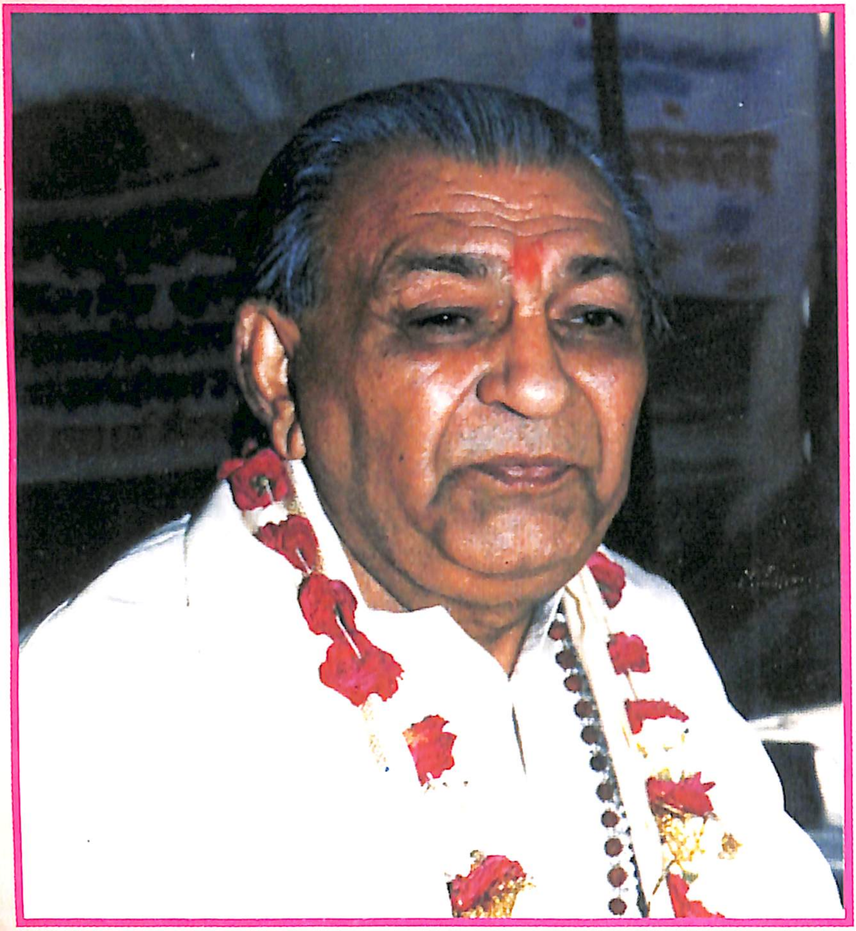
प्रथम संस्करण : .14.9.2002
प्रतियां : 1,000 प्रति
मूल्य : 200 रुपये (एक प्रति)

प्रकाशक :
आयुर्वेद विश्व परिषद्
सी-121, कीर्ति नगर,
नई दिल्ली-110015
दूरभाष : 5100929

मुद्रक :
शिवा ग्राफिक्स
1493, रानी बाग,
दिल्ली-110034
दूरभाष : 011-7018485



भगवान् श्री धन्वन्तरि



डा० आचार्य प्रभाकर मिश्र

अनुक्रमणिका

अध्याय		पृष्ठ सं.
1	प्रस्तावना	1
2.	शब्दार्थ	2-8
3.	एक श्लोक की संस्कृत व्याख्या, व्याकरण, प्रमाण	9-36
4.	त्रिपथगा (त्रिसूत्र त्रिस्कन्ध) आयुर्वेद	37-44
5.	पंचामृता आयुर्वेद पद्धति	44-48
6.	श्लोक के चारों चरणों का हिन्दी में भावार्थ	49-58
7.	वेदमूलक आयुर्वेद तथा आद्यवेदों में अष्टांग आयुर्वेद	58-81
8.	वनस्पति तंत्र	82-85
9.	त्रिपथगा आयुर्वेद गंगा	86-88
10.	पंचम वेद आयुर्वेद	89-92
11.	आद्य सूर्य चिकित्सा	93-98
12.	आयुर्वेद की अध्ययन परम्परा	99-101
13.	कायचिकित्सा योग	102-106
14.	कौमार्यभृत्य शिशुरोग	107-115
15.	वाजीकरण (शक्तिवर्धन)	116-118
16.	प्रसूति तंत्र (स्त्रीरोग)	119-130
17.	धन्वन्तरि अमृता योग	131-133
18.	मंत्रौषधिचिकित्सा	134-137
19.	मुद्राविज्ञान चिकित्सा	137-139
20.	धन्वन्तरि मंत्रावली	140-145
21.	पाकनिर्माण	147-149
22.	जनहित सुलभ प्रयोग तथा वनस्पति योग	150-171
23.	चिकित्सा सिद्धयोग	172-196
24.	नाभि चक्र (धरन)	197-198
25.	पंचकर्म	199-201
26.	अगदतंत्र(विष)चिकित्सा	201-204
27.	मालिस (मसाज ज्ञान)	205-209
28.	स्नायुनाड़ी तंत्र	210-214
29.	मिरगी रोग	215-220

	अध्याय	पृष्ठ सं॰
30.	इन्द्रिय विज्ञान	221-223
31.	स्वप्न विज्ञान	224-226
32.	तांत्रिक भावता	227-235
33.	रस-भस्मज्ञान	236-244
34.	उपयोगी जानकारी	245-260
35.	ऋषभदेव (जैन) आयुर्वेद	261-264
36.	संगीत चिकित्सा	265-267
37.	चुम्बकीय चिकित्सा	267-268
38.	एक्यूप्रेशर चिकित्सा	269-271
39.	रेकी(मंत्र शक्तिपात)	272-275
40.	नाड़ीज्ञान रहस्य	276
41.	आयुर्वेद एवं ज्योतिष	277-296
42.	अन्तरंगावली (शरीर क्रिया-रचना एवं विषाणु)	297-301
43.	विटामिन	302-304

योग शाखा प्रारम्भ

1.	योगानुसार श्लोक व्याख्या (संस्कृत एवं हिन्दी में)	305-307
2.	अष्टचक्र ज्ञान	308-314
3.	अष्टांग योग (आसन प्राणायाम)	315-326
4.	अचिन्त्य प्रभाव	327-328
5.	यौगिक मालिस	329-332
6.	योगासन (प्रभाव योग की 6 क्रियाऐं आसनों से रोग निवारण)	333-342
7.	आसन चित्रावली	343-347
8.	मुद्रा विज्ञान	348-349
9.	अन्तरंगा कुंडलिनी	349-354
10.	प्राकृतिक चिकित्सा यौगिक आहार, रोग निवारण	355-365
11.	सूर्य किरण चिकित्सा, जल चिकित्सा (एनीमा, जलनेति -कपालभाति)	365-373
12.	चक्रवर्णन	374-377
13.	कुंडलिनी जागरण तथा सूक्ष्म शरीर दर्शन	378-388
14.	पंचकोष	388-389
15.	शरीर ज्ञान चित्रावली	390-400

एकश्लोकीय ज्ञानकल्पवृक्ष प्रस्तावना

जब परमात्मा एक है, दृश्यमान सूर्य-चन्द्र एक हैं, सनातनधर्म एक है और विश्व एकता का प्रतीक है तो ज्ञानकल्प वृक्ष भी एक ही होना चाहिए। यही प्रयास इस श्लोक में किया गया है और वह ऐसा प्रयास जो एक ही श्लोक ज्ञान का कल्पवृक्ष बन जाए। जिसमें आयुर्वेद, ज्योतिष, योग, तंत्र-मंत्र-यंत्र (पराविद्या) हो जाए। यह सब ईश्वरीय कृपा से ही सम्भव हो सका है। इतिहास में एवं संस्कृत जगत् में यह अद्वितीय अभूतपूर्व कृति एवं रचना है। आज के युग में समयाभाव है, मनुष्य शास्त्रों के गम्भीर स्वाध्याय में नहीं जा सकता। केवल एक ही श्लोक के संस्मरण पुनरावृत्ति, हृदयंगम करने से इतनी विराट् ज्ञान की उपलब्धि हो जाये तो आश्चर्य तो है ही प्रतिभा की पराकाष्ठा कही ही जायेगी। यह सत्यमेव कल्पवृक्ष है। इस रचना से कृतपरिश्रम विद्वज्जन, श्रद्धालु संस्कृत रसिक-जन अवश्य लाभ उठाएँगे और कंठस्थ कर प्रयोग करेंगे। इसी श्लोक में सर्वदेवमयी प्रार्थना भी है। यह श्लोक मूर्तिमती सरस्वती है। 'विद्वानेवाभिजानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्। नहिवन्ध्याभिजानति गुर्वीप्रसववेदनाम्' । इसका पारंगत विद्वान ही आदर कर सकता है। अज्ञानी, अर्धज्ञानी सम्भवतः नही भी करें भर्तृहरि ने लिखा है– ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि तं नरं न रंजयति' अर्धोघटो घोषमुपैतिनूनम् यह भी उक्ति है। आशा है इस ज्ञान कल्पवृक्ष का प्रचार-प्रसार होगा। अगले प्रकाशनों में एक साथ व्याकरण, भारतीय संस्कृति, गीता, धर्मविज्ञान ग्रन्थ भी प्रकाशित हो रहे हैं। शार्दूलविक्रीडितछन्द सार्थक हो गया क्योंकि यह श्लोक मृगेन्द्र की भाँति एकमात्र वनराज की तरह शास्त्रराज श्लोक हैं। सार्वजनिक हित के लिए इस ग्रन्थ में जिन ग्रन्थों से लेखकों के लेखों से जो कुछ आवश्यक अंश उद्धृत किए गए हैं, उन सबके लिए मैं आभार प्रदर्शित करता हूं तथा यदि कुछ त्रुटि रह गई हो उसके लिए क्षमाप्रार्थी हूँ।

भवदीय–

सी–१२१, कीर्तिनगर,
नई दिल्ली–११० ०१५

आचार्य प्रभाकर मिश्र
(श्लोक निर्माता तथा लेखक)

ज्ञानकल्पवृक्ष का एक आयुर्वेद विज्ञान श्लोक (आयुर्वेदपक्ष)

विद्याद्यादृगरूपयात्रिपथगाधाराधरो माधवः
योगंगान्धियमातचन्द्रमहिमालाभान्तरंगावली
वेदान्तान्त्रिकभावतारणमता पञ्चामृताराधिका
साभा भारतभारतीयमुदितायामानवी संहिता ।।

इस श्लोक का नाम है– ज्ञानकल्पवृक्ष। इस श्लोक में ही शब्दकुशलता श्लेष, पदप्रत्ययसन्धिच्छेद व्याकरण के प्रभाव से समस्त ज्ञान निहित हैं। यह श्लोकमात्र नहीं अपितु ज्ञानखनिज है। इस ग्रन्थ में प्रत्येक पद की व्याख्या अन्वय लिख दिए गए हैं जिनका आनन्द, व्याख्या का बौद्धिक सुख वह ही प्राप्त कर सकेंगे जिन्हें संस्कृत व्याकरण का गम्भीर ज्ञान है। उनके प्रकरण हिन्दी में हैं जो सभी पाठकों के लिए ज्ञानवर्धक हैं।

परन्तु संक्षेप में पदव्याख्या सर्वप्रथम दी जा रही है जिसको मनन करने से सामान्यजन भी चमत्कारी श्लोक की महिमा समझ सकते हैं –

प्रथम चरण शब्दार्थ-

विद्या– "सा विद्या या विमुक्तये" विद्या वही है जिससे सर्वांग विशिष्ट मुक्ति हो क्योंकि आयुर्वेद से रोगमुक्ति होती है अतः यह विद्या है।

विद्याद्या– यह विद्याओं में आद्यविद्या है सृष्टि के साथ-साथ ही इसकी उत्पत्ति है। यदि आयुर्वेद की दृष्टि से स्वस्थ शरीर न हो तो सभी विद्याएं व्यर्थ हैं, कहा भी है– शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" सभी साधनाओं में स्वस्थ शरीर रखना आद्यसाधना है।

विद्या=आद्यात्– यह आयुर्वेद विद्या आद्य=सर्वादिम से सम्बन्धित है या उससे विकसित हुई है। आद्य से अभिप्राय है– वेद, ब्रह्मा, धन्वन्तरि, ऋषभदेव (आदिदेव) योगेश्वर कृष्ण, रसरसायन प्रवर्तक शंकर, सूर्य।

विद्या + आद्या – आयुर्वेद विद्या स्वयंमेव आद्या है, इसे पंचमवेद माना गया है। तथा यही आद्या शक्ति भवानी जगदम्बा जगन्माता सर्वजगत् पालिका है। आयुर्वेद विद्या द्वारा ही स्वस्थ मानवान्तर्गत लक्ष्मी, सरस्वती, दुर्गा शक्ति का विकास सम्भव है।

विद्या + अद्या – अद्या अर्थात् सर्वथा सर्वदा सेवनीय है (अत्तुं योग्या)

विद्या + अद्य + आदृक् = अपने रसगुणवीर्यविपाक शक्ति एवं

अरूपा= अचिन्त्य प्रभाव शक्ति से सर्वव्यापिनी है।

विद्यात् + यादृक् – जितना, जैसा, जिस प्रकार हो आयुर्वेद को जानना चाहिए। यादृक्– जैसा का तैसा (एज इट इज)

अरूपयात्रिपथगा – अरूप = आत्मा और मन तथा यात्री= इन्द्रियसहितशरीर इनके मार्ग पर चलती है यही आयुर्वेद के स्तम्भ हैं। शरीर के ८चक्र तथा मणिमंत्रौषधियाँ भी अचिन्त्य प्रभाव हैं।

त्रिपथगा – वात-पित्त-कफ आदि लगभग २६ सूत्र हैं जिनके अध्ययन मनन अनुसन्धान पथ पर चलने वाला आयुर्वेद है, आयुर्वेद और गंगा दोनों ही ब्रह्मा से उत्पन्न हैं।

पथगा-आधारा – पथग=पथ्य अनुपान चिकित्सा के आधार हैं।

पथग=पथिक-कोलभिल्ल, वनवासी जनों द्वारा परिचित। जड़ीबूटी ज्ञान पथिक वनवासियों के पास होता है

अत्रिपथगाधारा – आत्रेय आदि के चिकित्सा सिद्धान्त ही आधार हैं।

धाराधरः – परम्परागत आयुर्वेद विज्ञान है, इसकी इतिहास धारा है। अष्टांगधारा को धारण करती है।

माधवः – आयुर्वेद कृष्ण है, वसन्त है, सूर्य है। अमाधवः वह चन्द्र भी है।

उमाधवः – वह शंकर है। (आयुर्वेद का इनसे भी सम्बन्ध है)

द्वितीय चरण शब्दार्थ –

योगं गां– योगविज्ञान और गाय को। गंगान्धियम्=गंगा के समानवृद्धि को। गंगाम्=गंगा को (गंगाजल भी चिकित्सा में उपादेय है) गां=पृथ्वीमात्र को। अगं=हिमालयादि वानस्पतिक प्रदेश को, आत (क्रिया)=पहुंचा हुआ आयुर्वेद है।

यमातचन्द्रमहिमा– यमात=सूर्य। क्योंकि सूर्यसमयाधीन ही मृत्यु है, यम तक पहुंचाने वाला सूर्य ही है। यमुना=यमराज की बहन और सूर्य की पुत्री है तथा यमराज सूर्यपुत्र है। सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च इस वेदवाक्य से सूर्य ही जगत् के स्थायित्व का आत्मा है। आयुर्वेद में सूर्य और चन्द्र दोनों की महिमा है। चन्द्रमा वनस्पतियों में गुणाधान करता है।

आलाभा = आयुर्वेद औषधियों से लाभ ही लाभ है क्योंकि आयुर्वेद की औषधियाँ निरापद हैं।

अहिमालाभा – अहिमा=विष (काश्यपसंहिता) अगदतंत्र का लाभ आयुर्वेद में है।

अन्तरंगा– आयुर्विद्या अन्तरंग जीवन अथवा अन्दर प्रत्येक अंगों-प्रत्यंगों तक पहुंचने वाली, सुखस्वास्थ्य-प्रदायिनी विद्या है, अपनी निजी मित्रविद्या है। रसोई घर तक प्रभावित करने वाली विद्या है– हरिद्रा-जीरक, अजवाइन, शुंठी, आर्द्रक आदि का भोजन पर क्या प्रभाव है इसका दिशादर्शन करती है। अन्तरंग जीवन में आहार, निद्रा, ब्रह्मचर्य, दिनरात्रि ऋतुचर्या की मार्गदर्शिनी है।

तरंगावली – नाड़ी की तरंगों से रोगज्ञान कराने वाली अथवा तरंगावली=नदी की भाँति ग्राम से नगरों तक बहने वाली है। अन्य तमाम छोटी-छोटी चिकित्सा पद्धतियों की नालियां इसमें मिलती हैं। आयुर्वेदविद्या स्वास्थ्यतरंगों की धारा है। प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः– शरीर के साथ आत्मा इन्द्रियों तथा मन में आनंद की तरंगें उत्पन्न कर देती है।

अन्तरंगावली– आयुर्विद्या में शरीरस्थ अन्तः स्थित मस्तिष्क, हृदय फुफ्फुस वृक्क प्लीहा आदि यंत्र तथा कलोम-पीयूष ग्रन्थिरस सप्तधातु, त्रिदोष, सन्धि कंडरास्नायु, नाड़ीजाल, धमनी, शिरा मर्म एवं शरीर रचना, शरीर क्रिया आदि के अन्तरंग ज्ञान से ओतप्रोत है।

आन्तरंगावली– अन्तेभवः आन्तः-परिणामः– यह दोषों, रोगों का दमन नहीं अपितु शमन करती है अतः आशुफलप्रद कुछ रोगों में नहीं सिद्ध हो, परन्तु अन्त परिणाम में अपना रंग दिखाती है।

रंगावली – यह जीवन की रंगोली है। आयुर्वेद के रसायनों से स्थायी रंग– दीर्घायु, कान्ति, बल, ऊर्जा ओज की प्राप्ति होती है।

अवली – यह समस्त चिकित्सा पद्धतियों की द्वारदेहली है।

तृतीय चरण शब्दार्थ –

वेदान्ता – आयुर्वेद विद्या वेद के साथ वेदान्त भी है। वेदान्त का विषय अद्वैत है आयुर्वेद भी एक जीवनदर्शन है और अपने आप में अद्वितीय है। वेदान्त– वेद या ज्ञान का सार है, आयुर्वेद भी वेदों का सार है।

वेदान् = (आत) सभी वेदों तक आयुर्वेद की उपलब्धि है।

वेद=अन्ता – आयुर्वेद मानवजीवन विज्ञान का अन्तिम शक्ति (आखिरी

ज्ञान) है।

तान्त्रिकभावता – आयुर्वेद में तंत्रयुक्तियों की भरमार है और शल्यशालाक्य में तंत्रों (मशीन उपकरणों) की भावना=उपस्थिति है तथा तंत्र विद्या तथा आधुनिक टैक्नालोजी का भी अस्तित्व है। इसमें तांत्रिक विद्वानों की भी कला है। आयुर्वेद में कई तंत्र भी हैं– वनस्पतितंत्र अगदतंत्र, रसायनतंत्र आदि।

त्रिकभावतारणमता– त्रिदोष के स्वभावों के तारण का मत इसमें है। धातुसाम्यक्रिया से ही तारण=रोगनिवृत्ति सम्भव है।

अरणमता – रणमता=हिंसा अरणमता जिसमें हिंसा नहीं ऐसी शाकाहारिणी अहिंसक विद्या है। शल्य विद्या में रमणता भी है।

त्रिकभावतारणम् – त्रिक=ब्रह्मा (मस्तिष्क) विष्णु (हृदय) शंकर (मन) तीनों के भाव=अस्तित्व से ही भवसागर तथा उपाधि तथा आधि व्याधिसागर से तारण, अर्थात् तीनों से तार देती है। आधि=मानसिक व्याधि=शारीरिक रोग, उपाधि=अध्यास आत्मा पर शरीर लेप सबके दूर करने के उपाय आयुर्वेद में है। यह अध्यात्म तथा रोगविज्ञान से परिपूर्ण है।

अतापम्=शरीर आत्मा के पाप ताप सन्ताप अभिशाप का विनाशक है।

पंचामृता-आयुर्वेद विद्या में ५-५ अमृतों के समूह हैं, जिन की संख्या आप आगे पढ़ेंगे।

आपञ्च+अमृता पांचभौतिक जीवन से अमृत (अमर) जीवन तक का रहस्य विद्यमान है। पांच भौतिक जीवन है और मुक्ति अमरत्व है। (पंचभूतात्मके देहे आहारः पांच भौतिकः)

अमृता – औषधियों को अमृत कहा गया है। (औषध्योऽमृतकल्पाः) आयुर्वेद में अमृतकल्प औषधियों का वर्णन भी है (औषधि प्रकरण में औषधिवर्णन होगा) क्योंकि भगवान् धन्वन्तरि के हाथ में अमृत कलश और दूसरे हाथ में आयुर्वेदामृत इन दोनों की संज्ञा अमृत है। "आयुर्वेदोऽमृतानां" अमृतों में आयुर्वेद अमृत है इसलिए आयुर्वेद विद्या अमृता है।

अमृताराधिका– अमृत की (जीवित की) आराधना करने वाली आयुर्वेद विद्या है।

आराधिका – आयुर्वेद विद्या (नार्थार्थनापिकामार्थमथभूतदयां प्रति) केवल

अर्थोपार्जन के लिए नहीं भूतदया प्राणी-सेवा के लिए है। इसलिए प्राणिमात्र की आराधिका=जन सेवा की प्रतीक है)

राधिका– यह भगवती राधा भी है। जैसे श्री कृष्ण की आल्हादिनी शक्ति का नाम राधा है और वह कृष्णप्रिया हैं। उसी भाँति जनता जनार्दन की आल्हादिका शक्ति है। आयुर्वेद विद्या मानवता द्वारा आराध्य है।

अराधिका– अर=चक्र। सहस्रार चक्र से लेकर मूलाधार अधिष्ठान तक सभी चक्रों का आधिकाधिक ज्ञान योग सम्बन्ध से ग्राह्य है। (अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या (अथर्ववेद) इन्हीं चक्रों से मानव जीवन का रथ चलता है।

चतुर्थचरण शब्दार्थ –

साभा – आयुर्वेद विद्या एक जीवन का प्रकाश है। **सा आभा** आयुर्वेद आभाओं नई-नई प्रगतिशीलताओं से आभान्वित है। इसलिए हे आयुर्वेद! विद्ये! त्वं अभा: (क्रिया) जगत् भर में प्रकाशित हो जाओ। आभाभिः सहिता **साभा** – तुम चांद, सूर्य, नक्षत्र, सितारों की चमक वाली हो। क्योंकि नक्षत्र ज्ञान (ज्योतिष) से भी आयुर्वेद का सम्बन्ध है।

भारतभारती – भारत की तुम भारती-भारतीय चिकित्सा पद्धति हो। आयुर्वेद भारतीय चिकित्सा पद्धति है। अथवा जो भा=दिव्यज्ञान में रत लगे हुए भारद्वाज आदिमहर्षि (भारत हैं) उनकी वाणी आयुर्वेद है। भारती का अर्थ वाणी अथवा भरतमुनि (सतयुग) भरत रामभ्राता (त्रेता) भरत (शकुन्तला पुत्र) द्वापर इनसे स्थापित भारत की भारती=आवाज हो।

भारतभा+आरती– आयुर्वेदविद्या भारतीय ज्ञान प्रकाश की आरती है। भारतमाता की आरती (ज्योति) का नाम आयुर्वेद विद्या है।

भारतभारतीयमुत्– भारत और भारतीयों की प्रेम प्रतीक है। मुदिता=प्रसन्नता तथा अस्मिता भी आयुर्वेद विद्या से है।

भारतभारतीय+उदिता=भारत और भारतीय विज्ञान की दिशा में पूर्ण उदित विकसित विद्या है तथा मुदिता भी है।

उदितायामा– आयुर्वेद में अनेकों उदित=प्रकाशमान आयाम हैं। उन आयामों तक पहुंचना है। उदिताय=प्रगतिशील जगत के लिए यह आयुर्वेद विद्या है।

उदिता+अयामा– अब आयुर्वेद विद्या का उदय हो चुका है उसकी यामा=रात्रि पराधीनता की बीत चुकी है। (इता यामा) यह भी श्लेष है।

या मानवी – आयुर्वेद विद्या समस्त मानवता के लिए है। (आमानवी) शब्द भी है। मानव मात्र के लिए है।

अनवी = अतिप्राचीन तथा **नवी**= सर्वथा उपयोगिता की दृष्टि से नई भी है।

संहिता = सब पद्धतियों से समन्वय रखती है। अत्यन्त समीपस्थित है यथासमय उपयोग कर सकते हैं।

संहिता– यह एक वैदिक संहिता की भाँति रोगविज्ञान, जीवनविज्ञान की संहिता (शास्त्र) है, यह मानवी संहिता है। इसके अन्तर्गत चरक-सुश्रुत-वाग्भट आदि संहिताएं प्रसिद्ध हैं।

सं-हिता– इसकी औषधियां निरापद तथा सर्वथा सर्वदाहितकारिणी हैं। (यह एकश्लोकी ज्ञानकल्पवृक्ष उसी एक श्लोक की व्याख्या है)

नोट – इस श्लोक में कई क्रियाएं हैं ज्ञाताजन उनकी यथापेक्षित सम्बद्धता अन्वय सहित करें। जैसे –

प्रथम चरण में – विद्यात्=जाने, समझे, ज्ञान प्राप्त करें। अद्यात्=सेवन करे, स्वाद ले।

द्वितीय चरण में – आत=पहुंच चुका था, प्राप्त किया।

तृतीय चरण में – वेद=ज्ञान प्राप्त किया। अत=आगे बढ़ो। आत= लाभमिला, गतिमिली।

चतुर्थ चरण में – अभाः – प्रकाशित हो। आयाम्–आ गया हूँ याम=जाना चाहिए हम जाएँ। अयाम्=मैंगया था। क्रियारूप हैं।

आद्या+दृक्–स्वास्थ्य तथा चिकित्सा जगत् की आदिम दृष्टि (पहली नजर) है तथा अवली=मुख्यदेहली (द्वार) है।

उदितायामा–मुद्राविज्ञान, स्वप्नविज्ञान, रत्नविज्ञान, इन्द्रियविज्ञान, मर्म विज्ञान, योग ज्योतिष, तंत्र-मंत्र-यन्त्र, देवोपासना, सदाचार रसायन, पथ्य आहार-विहार प्रक्रिया दूत परिचारक औषधिविज्ञान, सभी प्रकार के आयाम इस में हैं। प्राचीन जलौका तथा सूचीभरण क्रिया से ही एक्यूपंचर तथा मुद्राविज्ञान के आसन विधान, दण्ड खडाऊँ धारण आदि से एक्यूपंचर आदि के उत्पत्ति स्रोत खुले हैं। रसरसायन के कारण तो अत्यन्त आयाम

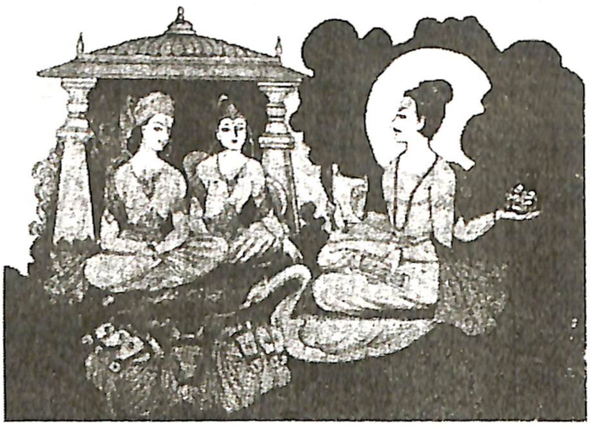
उदित हुए हैं।

अलाभा तथा आलाभा (अन्तरंगावली) रोगों की असाध्यता तथा साध्यता एंव क्रिया की सिद्धि एवं असिद्धि से सम्बन्धित है। असाध्य तथा साध्य।

ऋक्– यह आयुर्वेद अपनी स्वतंत्र ऋचाओं (पद्धति) के कारण स्वयमेव पंचम वेद है। आद्यात्+ऋक्+अरूपया इतिच्छेदः।

माधवः – आयुर्वेद माधव इसलिए भी है कि अनुपान में मधु के शहद) का सर्वाधिक प्रयोग है तथा मधु भी स्वयंमेव औषधि है। लेखन होने से नेत्ररोग रक्तरोग हृदय रोग में लाभकारी है। मधु सेवन से रक्त कोलेस्ट्रोल कम होता है। रक्तकणों में वृद्धि होती है आदि।

अयामा– यह अन्धकारमयी नहीं है, मनमानी ढंग से प्रयोग नहीं होता; निदान, दोषपरीक्षण, रसगुण वीर्यविपाक देखकर चिकित्सा की जाती है। आदृक् – चिकित्सा, योग, ज्योतिष, पराविद्या (तंत्र-मंत्र-यंत्र देवोपासना, अध्यात्म) मिलाकर इसकी आ=सर्वतोमुखी दृक्=दृष्टि है। यह दिव्यदृष्टि सम्पन्न विद्या है।



पितामह ब्रह्मा से आयुर्वेद का रहस्य जानते हुए आश्विनी कुमार

(एकश्लोकीय) - ज्ञान कल्पवृक्ष की
आयुर्वेद शाखा



महर्षि भारद्वाज द्वारा शिष्यों को आयुर्वेदोपदेश

विद्याद्याद्गरुपयात्रिपथगाधारुधरो माधवः।
योगंगान्धियमातचन्द्रमहिमालाभान्तरंगावली।

अथायुर्वेदीयपक्षे संस्कृत व्याख्या–

एषाविद्या आयुर्विद्या सा वस्तुतः विद्या– वेत्तुंयोग्या। अस्याः ज्ञानेनविना नास्ति जीवनसाफल्यं, स्वास्थ्यं, नैरोग्यम्। सा वेत्तुं-ज्ञातुं योग्या। सांगोपांगज्ञानमायुर्वेदस्यात्यावश्यकमनिवार्यञ्च। सा वेत्तुं– विचारयितुं योग्या। अस्याःशिक्षा विचारः चर्चा प्रसारोपिपरमावश्यकः। अस्याः उत्थानविषयेऽपि विचारणीयम् सा वेत्तुं-लब्धुं योग्या। आयुर्वेदज्ञानलाभाय, स्वास्थ्यलाभाय लभनीया। आयुर्वेदात् लाभः ग्रहीतव्यः। अतः प्राप्तुं योग्या। वेत्तुं-अस्तित्त्वाय सत्तायै अपि ज्ञेया। अत्र क्रमशः विद्ज्ञाने, विद्विचारणे, विद्लृलाभे, विद सत्तायां धातवः =व्याकरण क्रियाः। यथोक्तमपि–

विद्यते विद्सत्तायां विन्ते विद् विचारणे,
वेत्तिरूपं विद्ज्ञाने लाभे विन्दति विन्दते।

सा विद्या आद्यात्-सृष्ट्यादौभवात् ब्राह्मणः सकाशात् (समागता) अथवा परम्परातः प्राप्ता ब्राह्मी विद्या तदनन्तरं इन्द्राश्विनीकुमार भारद्वाजादिभिः

तच्छिष्यपरम्परया आद्यात्-आद्यकालात् एव प्रवृत्ता अनादिशास्वती विद्या। अतः इयं विद्या आद्या। विद्या+आद्या+आद्यात् इतिच्छेदः। आद्यः ब्रह्मा, सूर्य, शिव, वेदः, धन्वन्तरिश्च। आद्यात्-ऋग्वेदात् आगता। आयुर्वेदस्य ऋग्वेदस्य अथवाथर्ववेदस्य अथवाद्वयोः उपवेदत्वम्। ,आयुर्वेदः उपवेदः। अतः आद्यात्+ऋक् ऋक्स्वरूपा सा। ऋचां (ऋगथर्ववेदयोः) अरूपाः यात्रिणः मंत्र सूक्तानितयोः पंथगा मंत्राधीनाः हिदेवताः इतिवाक्यात् मंत्रभावत्वं आयुर्वेदस्य प्रदर्शितम्। आद्यः-भगवदवतारः धन्वन्तरिः तस्मादपि प्राप्ता। अमृतार्थं समुद्रमन्थने धन्वन्तरिहस्ते आयुर्वेदः परिलक्ष्यते। अपरे हस्ते अमृतकलशः। अमृतकलशः देवानां कृते, एतद् आयुर्वेदामृतम् मानवानां कृते। अतः आद्यात्-धन्वन्तरिभगवतः आयुर्वेदामृतविद्या। आयुंर्वेदोऽमृतानामिति चरके। आयुषः वेदः। आयुर्लाभाय वेदः। आयुषोऽस्तित्त्ववेदः। आयुर्ज्ञानविज्ञान वेदः। आयुर्विचारस्य वेदः आयुर्वेदः कथ्यते। इत्यस्य ज्ञापक शब्दार्थः। विद्या+आद्या। विद्याआद्या। विद्या+आद्यात्। आद्यात्+ऋक् (इति विद्याद्यादृक्) विद्याःएव दृशः एषाविद्या आदृक् (आ समन्तात् पश्यति आसमन्तात् दृशः यस्याःसा) अथवा विद्याद्या-वेदोपनिषद् दर्शन तंत्र-मंत्र-मण्यौषधि षट्शास्त्रादि समस्ताः तासुदृक्-दृष्टिःयस्याः सा। समस्त ज्ञानविज्ञानविद्याभिः सम्वद्धा विद्या। आयुर्वेदेनैव सर्वेषां सम्बन्धः यतः सर्वाःविद्या आयुः-जीवनमेव व्याख्यान्ति तस्मात्। आदृक्-सर्वव्यापिनी दृष्टिपथमायाता देवलोकात् धरातलेमानवार्थं प्राप्ता। मंत्रद्रष्दृभिर्महर्षिभिः दृष्टा आर्षविद्या। जगद्व्यापिनी आदृक् सांगोपांगा पूर्णदृष्टिर्विद्या। इतिविद्याद्यादृक्। एषा आद्यादृक् अपि। जीवन व्यवस्थार्थं, जीवन हितैषिणी आद्यादृष्टिः आयुर्विद्या एव पुरा नान्या पद्धतिरासीत्।

आदृक्+अरुपया। नास्ति रूपं एकं रूपं यस्याः सा अरूपा नाना प्रकार विद्या महर्षिज्ञानसमवायत्वात् अनेक रूपत्वं अत्र जीवात्मपरमात्म शरीरेन्द्रिय-लोकपरलोक-वनस्पतिगुणाधान-भैषज्य कल्पना रोगनिदानचिकित्सादि–अनुसन्धानंकृतं ऋषिभिः (रिसर्चकृद्भिः)। अतएवं आदृक्-विराट् विशालदृष्टिः। विद्यात् (सा) दृक्-दृष्टिः या विद्यात्। आर्षदृष्ट्यैव ज्ञाता (विद्यात्+या+दृक् इतिच्छेद) तथा अरूपया-अचिन्त्य प्रभावशक्त्या आदृक् संजाता। न केवलं पुरातनेकाले एवं आदृक् विश्वव्यापिनी उपयोगिनी दृष्टिः अतएवसा आद्या अपि अद्य आदृक्-सनातनी शास्वती विद्या।

एष इतिहासः एषाप्रतिष्ठा आयुर्विद्यायुर्वेदस्य।

केचन प्रमाण श्लोकाः

आयुरस्मिन् विद्यते अनेन वायुर्विन्दति इत्यायुर्वेदः (सुश्रुतसंहितायाम्)

तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदविदाम्मतः।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरुभयोर्हितः।

(चरकसंहितायाम्)

अंह हि धन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्।
शल्यांगकाद्यैरपरैरुपेतं प्राप्तोस्मि गां भूय इहोपदेष्दुम्।

हिताहिततः सुखासुखतः प्रमाणाप्रमाणतश्च तदायुर्वेदयतीति आयुर्वेदः) यतश्चायुष्याणि अनायुष्याणि द्रव्यगुणकर्माणि वेदयतीति ततोऽप्ययभायुर्वेदः (चरक)

सुतरामायुर्वेदः शास्वतो निर्दिश्यते आदित्वात् स्वभावसांसिद्धत्व लक्षणात्, भावस्वभावनित्यत्वाच्च।

दीर्घं जीवितमन्विच्छन् भरद्वाज उपागमत्
इन्द्रमुग्रतपाः बुद्ध्वा शरण्यममरेश्वरम्
ब्रह्मणा हियथाप्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः
जग्राह निखिलेनादौ अश्विनौ तु पुनस्ततः।।

अश्विभ्यो भगवान् शक्रः प्रतिपेदेहिकेवलम्
ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत् (चरक)
तदनन्तरं अग्निवेश भेलजतूकर्णपराशरहारीतक्षारपाणि महर्षयः।

ततोद्यावधि प्रचलति परम्परया आयुर्विद्या। कुत्रचित् अथर्ववेदोपांगं आयुर्वेदं मन्यन्ते। वस्तुतः सर्वेपिवेदाः एकेन ऋग्वेदेन सम्बद्धाः।

सुश्रुतसंहितायां दिवोदासः प्राह–'ब्रह्मा प्रोवाच ततः प्रजापतिरधिजगे तस्मादश्विभ्यामिन्द्र इन्द्रादहमि'ति। स पुनश्चाह-अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्रमध्यायसहस्रञ्च कृतवान् स्वयभ्भू'रिति (सु–११६)।

अष्टांङ्ग्संग्रहे सिंहगुप्ततनयो वृद्धवाग्भटस्त्वाह –

'आयुर्वेदामृतं सर्वं ब्रह्मा बुध्वा सनातनम्।
ददौ दक्षाय, सोऽश्विभ्यां, तौ शतक्रतवे, ततः।।
धर्मार्थकाममोक्षाणां विघ्नकारिभिरामयैः।
नरेषु पीड्यमानेषु पुरस्कृत्य पुनर्वसुम्।।
महर्षयो महात्मानस्तथाऽऽलम्बायनादयः।।

शतक्रतुमुपाजग्मुः शरण्यममरेश्वरम्।
तान् दृष्ट्वैव सहस्राक्षो निजगाद यथागमम्।।
आयुषः पालनं वेदमुपवेदमथर्वणः।
कायबालग्रहोर्ध्वाङ्गशल्यदंष्ट्राजरावृषैः।।
गतमष्टाङ्गतां पुण्यं बुबुधे यं पितामहः।
गृहीत्वा ते तमाम्नायं प्रकाश्य च परस्परम्।।
आययुर्मानुषं लोकं मुदिताः परमर्षयः।
स्थित्यर्थमायुर्वेदस्य तेऽथ तन्त्राणि चक्रिरे।।
कृत्वाऽग्निवेशहारीतभेलमाण्डव्यसुश्रुतान्।
करालादींश्च तच्छिष्यान् ग्राहयामासुरादृताः।
स्वं स्वं तन्त्रं ततस्तेऽपि चक्रुस्तानि कृतानि च।
गुरून् संश्रवयामासुः सर्षिसङ्घान् सुमेधसः।।
तैः प्रशस्तानि तान्येषां प्रतिष्ठां भुवि लेभिरे।'
(सू० १/३–१२) इति।

अष्टाङ्गहृदयेऽपि तत्रभवता संक्षेपेणोक्तम्–

'ब्रह्मा स्मृत्वाऽऽयुषो वेदं प्रजापतिमजिग्रहत्।
सोऽश्विनौ तौ सहस्राक्षं सोऽत्रिपुत्रादिकान् मुनीन्।।
तेऽग्निवेशादिकांस्ते तु पृथक् तन्त्राणि तेनिरे।।'
(सू० १/३–४) इति

भास्करसंहितादिस्मर्त्तुः सर्वव्याधिहर्त्तुस्त्रिमूर्त्तिधाम्नो विवस्वत आयुर्वेदप्रतिपत्तौ सम्प्रदायो जोषमास्ते। पौराणिकास्तु तं वैद्यागमिकमाहुः। ऋग्वेदोऽपिताननुकूलयति। तत्राम्नायते–'हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय' (१/५०/११–१३) इति। भवति च श्रुत्यनुवादिनी स्मृतिरपि–'आरोग्यं भास्करादिच्छेदि'ति। जनश्रुतिश्च वर्तते सूर्यशतककृद्-मयूर भट्टादयः सूर्योपासनेन दुश्चिकित्सेभ्यो व्याधिभ्योनैरोग्यं प्रत्यपादयन्।

विवस्वानिति भास्करस्य नामान्तरं भवति। मनुरश्विनीपुत्रौ यमश्चेत्येते विवस्वतः पुत्रा एव। वैद्यागमे मनोरौदासीन्याद् दस्रौ यमश्च पितुर्विवस्वत आयुर्वेदशिक्षां लेभिरे।

बहवो लोका भास्करं सूर्यनारायणं व्याहरन्ति। यतो विष्णुधर्मोत्तरे शिववाक्यमस्ति–

मया समर्पितं तेजः सकलं त्वयि भास्कर।
मत्तस्त्वं न हि भिन्नोऽसि न च देवाजनार्दनात्।।
अहं विष्णु र्भवान् विष्णु र्ब्रह्मा विष्णुः प्रभाकरः।
अस्माकं सकलं धाम त्त्राय तिष्ठति भास्करः।।'

(१/३०/१३–१४) इति।

भास्करसंहिता कुत्रादि नेदानीभुपलभ्यते। भास्करसिद्धान्तस्तु १६५६ खृष्टाब्दीय-कवीन्द्रसूच्यामुल्लिखितो वर्तते। नानाविधान्यौषधानि भास्करनाम्ना प्रचलन्ति यथा-भास्करलवणं भास्करचूर्णमुदर्करस इत्येवमादीनि। श्रूयते हि भास्करारुणयो ज्ञानभास्करनामको वैद्यकग्रन्थः इंग्लैंडदेशस्थे 'इण्डिया अफिस्'नामके ग्रन्थागारे सुरक्षितो वर्त्तते।

पुराणमतेन भास्करस्य षोडश शिष्या प्रसिद्धा आसन् तथा हि ब्रह्मवैवर्तपुराणीयषोडशाध्याये स्मर्यते।

'ऋग्यजुःसामाथर्वाख्यान् दृष्ट्वा वेदान् प्रजापतिः।
विचिन्त्य तेषामर्थञ्चैवायुर्वेदं चकार सः।।
कृत्वा तु पञ्चमं वेदं भास्कराय ददौ विभुः।
स्वतन्त्रसंहितां तस्माद् भास्करश्च चकार सः।।
भास्करश्चस्वशिष्येभ्य आयुर्वेदं स्वसंहिताम्।
प्रददौ पाठयामास ते चक्रुः संहितास्ततः।।
तेषां नामानि विदुषां तन्त्राणि तत्कृतानि च।
ब्याधिप्रणाशबीजानि साध्वि मत्तो निशामय।।
नकुलः सहदेवोऽर्किश्च्यवनो जनको बुधः।।
जाबालो जाजलिः पैलः कवथोऽगस्त्य एवं च।
एते वेदाङग्वेदज्ञाः षोडश ब्याधिनाशकाः।।
चिकित्सातत्त्वविज्ञानं नाम तन्त्रं मनोरमम्।
धान्वन्तरिश्च भगवांश्चकार प्रथमे सति।।
चिकित्सादर्पणं नाम दिवोदासश्चकार सः।
चिकित्सासारतन्त्रं च भ्रमघ्नं चाश्विनीसुतौ।
तन्त्रा वैद्यकसर्वस्वं नकुलश्च चकार सः।।
चकार सहदेवश्च व्याधिसिन्धुविमर्दनम्।
ज्ञानार्णवं महातन्त्रं यमराजश्चकार सः।।

च्यवनो जीवदानं च चकार भगवानृषिः।
चकार जनको योगी वैद्यसन्देहभञ्जनम्।।
सर्वसारं चन्द्रसुतो जाबालस्तन्त्रसारकम्।
वेदाङ्ग्सारं तंत्रं च चकार जाजलिः मुनिः।।
पैलो निदानं कवथस्तन्त्रं सर्वधरं परम्।
द्वैधनिर्णयतन्त्रं च चकार कुम्भसम्भवः।।
चिकित्साशास्त्रवीजानि तन्त्राण्येतानि षोडश।
व्याधिप्रणाशबीजानि बलाधानकराणि च।।
मथित्वा ज्ञानमन्थानैरायुर्वेदपयोनिधिम्।
ततस्तन्त्राङ्गयुज्जह्रु र्नवनीतानि कोविदाः।।
एतानि क्रमशो दृष्ट्वा दिव्यां भास्करसंहिताम्।
आयुर्वेदं सर्वबीजं सर्वं जानामि सुन्दरि।।
व्याधितत्त्वपरिज्ञानं वेदनायाश्च निग्रहः।
एतद् वैद्यस्य वैद्यत्वं न वैद्यः प्रभुरायुषः।।
आयुर्वेदस्य विज्ञाता चिकित्सासु यथार्थविद्।
धर्मिष्ठश्च दयालुश्च तेन वैद्यः प्रकीर्त्तितः।।'
(१६ अ०)इति।

प्रजापतिरिह पितामहो न तु चिकित्सादर्शनकृद् दक्षः प्रजापतिः। अर्किः सूर्यपुत्रो यमः। च्यवनप्रसङ्गः उपरिष्टाद् द्रष्टव्यः। बुधश्चंद्रसुतो बृहस्पतेः क्षेत्रजपुत्रश्च।

आयुर्वेदस्य अरूपत्वं-नानाविधरोगनिवारण क्रियात्वंदृष्टं ज्यौतिषेण, तंत्र मंत्रादिभिः संगीत, यज्ञ, पूजा-पाठ प्रार्थनादि दैवीविद्याभिरपि सम्बन्धः। येन केनापि प्रकारेण दीर्घायुष्यं, स्वास्थ्यं, रोगनिवारणंस्यात् इत्येषा आदृक्-विशाल दृष्टिः तस्मात् अरूपया अचिन्त्य प्रभावशक्त्यापि सर्वतोदृष्टिः।

आदृक्+अरूप-यात्रिपथगा-आदृक्-जीवात्मा अरूपा-प्रकृतिः तौएव यात्रिणौ तयोः पन्थानं-मार्गं गच्छतीति। अन्धपंगुन्यायेन सृष्टेरुद्भवः प्रकृतिपुरूषसंयोगात् इति सांरव्यदर्शनम्। आदृक्-आत्मा नेत्रसम्पन्नः ज्ञानसम्पन्नश्च। अरूपा-रूपदर्शनहीना। न रूपं-तन्मात्रास्वरूपंतेजः विद्यते यस्यां सा अरूपा-प्रकृतिः अन्धाइतियावत् दृष्टिहीनत्वात् पंगुः कथ्यते जीवात्माच। तयोः पन्थासा गच्छति प्रकृतिःपुरुषानुयायिनी विद्या। पुरुषात्

जीवात् चेतना प्रकृत्या पांचभौतिक ज्ञानम् तस्मात् शरीरस्य एवं प्रकृतीनां स्वभावानां ज्ञानम् तस्यादायुर्वेदचिकित्सा क्रिया। तत एव द्रव्यगुणकर्म त्रिदोषादि ज्ञानं सम्भवति प्रकृतिपुरूषयोः यात्रास्थलमेव जीवनम् तस्मादायुर्वेदचिकित्सा क्रिया इति आदृगरुपयात्रिपथगा भावःसिध्यति।

अत्रिपथगा– महर्षि-अत्रिपथं गच्छति एषाविद्या। पुनर्वसु आत्रेयादिभिःप्रवर्तनात्। एष एव अत्रिपथः। अत्रिः स्वयमपि आयुर्वेद विद्वान् ख्यातः। अन्य प्रमाणानि यथा प्रकृतिपुरुषसंयोगस्य– एकातु प्रकृतिरचेतना त्रिगुणावीजधर्मिणी प्रसवधर्मिणीः अमध्यस्थधर्मिणीचेति।

पुरुषास्तु बहवः चेतनावन्तः अगुणाः अबीजधर्माणः अप्रसवधर्माणः मध्यस्थधर्माणश्चेति। (सु०शा०१/६) अन्धपंगुन्यायः सांख्यदर्शने) भूतेभ्यो हि परं यस्मान्नास्ति चिन्ता चिकित्सिते। (पंचमहाभूतशरीरि समवायः पुरुषःसएवकर्मपुरुषः चिकित्साधिकृतः। पुरुषस्यात्मनः सुखदुःखेच्छाद्वेषौ प्रयत्नः प्राणपानौ उन्मेषानिमेषौ वुद्धिर्मनः संकल्पो विचारणा स्मृतिविज्ञानमध्यवसायो विष्वगुपलब्धिश्चगुणाः। अतः आयुर्वेदे तावत् पुरुषप्रकृतिविवेचनामूलाधारा। तत्पथं गच्छति आयुर्वेदः। आदृगरूपयात्रि (पुरुषप्रकृति) पथगा इति। अन्यच्च– सुश्रुतनिदानस्थानेप्रकृतिपुरुषवर्णनम्– (अत्यक्तंनाम प्रकृतिः) सर्वभूतानां कारणमकारणम् सत्वरजस्तमोलक्षणमष्टरूपमरिवलस्यजगतः सम्भवहेतुरव्यक्तं नाम तदेकं वहूनां क्षेत्रज्ञानामधिष्ठानं। तस्मादव्यक्तान्महानुत्पद्यते स त्रिविधः बैकारिकस्तैजसो भूतादिरिति तत्र वैकारिकादहंकारात् तैजससाहाय्यात् तल्लक्षणान्येवैकादशे न्द्रियाणिउत्पद्यन्ते पंचवुद्धीन्द्रियाणि पंचकर्मेन्द्रियाणि उभयात्मकं मनः। भूतादेरपि तैजस साहाय्यात् तल्लक्षणान्येव पंचतन्मात्राणि शब्दस्पर्शरूपरसगन्धारव्यानि ततः व्योमानिलानल जलोर्व्यः एवमेषा चतुर्विंशतिः व्याख्याता सोयं चातुर्विंशतिकःपुरुषः) अव्यक्तं महान् अहंकारः पंचतन्मात्राणि प्रकृतयः (१–१–५) तत्रसर्वएवएष अचेतनवर्गः पुरुषःपंचविंशतितमः कार्यकारणसंयुक्तश्चेतयिता भवति। सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। इत्यादिव्याख्याएव **आदृगरूपयात्रिपथगा**। एतौ यात्रिणौ प्रकृतिपुरुषौ (आदृगरूपयात्रिणौ) विद्यानां– समस्तज्ञानानां आद्यः परमात्मा तस्मादेव प्रकृतिपुरुषसंचालनं तस्मादेक पदं विद्याद्यादृगरूपयात्रिपथगाइति। विद्याद्यस्य–परमात्मनः जगदाधारस्य यौ आदृशौ (पुरुषः अरूपः–प्रकृति

तत्वम्) तौएव यात्रिणौ (सृष्टियात्राकारिणौ) तयोः प्रकृतिपुरुषयोः पन्थानं (प्रकृतिपुरुष पथं) मार्गं गच्छति या विद्या सा आयुर्विद्या।

उपनिषद् दृष्ट्या-आदृक्-परमात्मा(सर्वदर्शी) अरूपः-जीवात्मा (द्वाविमौ सयुजौ सखायौइतिवचनात्) परमात्मजीवात्मानावेव यात्रिणौ तयोः पथं गच्छति। जीवः अरूपः जन्मजन्मान्तरेषु स्वरूपभेदात् तथा जीवात्मा दृष्टिपथंनायाति तस्मादपि अरूपः आदृक् परमात्मासखा निर्लिप्तभावेन यात्रांकरोति चेतनाधानाय (चेतनश्चेतनानामिति) तथा जगत्परिपालनाय परमपरः जीवात्मा फलस्वादं गृह्णाति कर्मफलानि भुंक्ते। अत्र (विनु पग चले, सुनै विनु काना, बिनु कर कर्म करै विधिनाना। आननरहित सकलरसभोगी (तुलसीदासोक्तिः) अत्रिपथगा इति पुनः व्याख्यास्यामः (कोयमत्रिः) तत्प्रमाणानि विश्वसृज एवांगजोऽत्रिरासीत् तस्यैव तनुजन्मा पुनर्वसुरात्रेयः (चरके) इहात्रिजः सिद्धतमानुवाच द्वात्रिंशत् सिद्धमहर्षि पूज्यः।

ज्ञानप्रशमतपोभिः ख्यातोत्रिसुतः जगद्धितेऽभिरतः। इत्यादिना अत्रिपथः-आयुर्वेदपथएव।

इन्द्र ऋषिभ्यश्चतुर्भ्यः कश्यपवशिष्ठात्रिभृगुभ्यः ततस्ते पुत्रेभ्यः शिष्येभ्यश्च प्रददुः (काश्यपसंहितायाम्)

यथासिंहो मृगेन्द्राणां यथानन्तो भुजंगमें।

वेदानाञ्च यथा शम्भुः तथात्रेयोऽस्ति वैद्यके।। (हारीतसंहिता) अत्रिपथगाः = पुनर्वसु आत्रेयादयः आयुर्वेदज्ञाः तेषां आधारा विद्या अत्रिपथगाधारा आयुर्विद्या। अत्रिपथगा = अनसूया तस्याः आधाराः सोमदत्तदुर्वाससः। सोमः (सोमोऽस्माकं ब्राह्मणानां राजा) इतिवेदवचनम् सोपि चन्द्र भाग रुपेणायुर्वेदज्ञोवभूव, दत्त = दत्तात्रेयः सोवधूतः तंत्र मंत्रायुर्वेदविशारदः भगवदवतारः दुर्वासा ऋषिः दूर्वायाः अनुसन्धानं कृत्वा स्वयं अमृतमयीदूर्वायाः रसपानं करोति स्म सर्वे एते अपि ब्रह्मविष्णुशिवांशाः। यथोक्तम्–

अत्रेः पत्न्यनुसूया त्रीन् जज्ञे सुयशसःसुतान्। दत्तं दुर्वाससं सोममात्मेशब्रह्म सम्भवान्। (भेलसंहिता) अत्रिपथगायाः आधाराः सुताः तानपि आधरतीति अत्रिपथगा धाराधर आयुर्वेदः अथवा आधारधरा (भूमिः) आयुर्विद्या।

संगृह्य पादौ पप्रच्छ चन्द्रभागः पुनर्वसुम्

सुश्रोता नाम मेधावी चन्द्रभागमुवाच ह (भेलसंहिता)

चन्द्रमागः सोमोपि आयुर्वेद विशेषज्ञः सोमवल्लीलता अनुसन्धायकः।

स्नेहास्नेह विधिः कृत्स्न व्याप्तसिद्धिः सभेषजा।

यथाप्रश्नं भगवता व्याहृतं चन्द्रभागिना (महाभारते)

अत्रिपथगाधाराधरा। धरो वा। इति पद व्याख्या कृता। त्रिपथगाधारा = त्रिपथाः वैद्याः त्रयःपन्थानो येषान्ते त्रिपथाः वैद्याः त्रिजा कथ्यन्ते त्रिजाः त्रिपथाः पर्यायवाचिनः वैद्याः त्रिजा कथ्यन्ते त्रिपथानां वैद्यानां आधारा आयुर्विद्या। यथा प्रमाणम–

विद्यासमाप्तौमिषजः तृतीयाजातिरुच्यते। अश्नुते वैद्यशब्दंहिन वैद्यः पूर्वजन्मना। विद्या समाप्तौ ब्राह्मंवा सत्वमार्षमथापिवां।।

ध्रुवमाविशति ज्ञानं तस्मात् वैद्यः त्रिजःस्मृतः। चरके।

पथगाः पथं शुद्धाहारविहारं सदाचारपथं गच्छंति ते पथगाः पथ्यानुपानाहारविहार सदाचार रसायनादयः ते आधारा सहायकाः यस्याः सा पथगाधारा। आधाराधरा आधारौ = स्वस्थस्यस्वास्थ्यरक्षणं आतुरस्य रोगप्रशमनम् इति द्वौ तौधरतीति आधारधरा = विद्या। पथगानां पदातीनां यात्रिणां ग्रामवासिनां कृते आधारा एषाविद्या यतो गृहे जीरकयवानी हरिद्राशुण्ठ्यादयः तुलसीदूर्वाद्यौषधयः ग्रामे ग्रामे गृहे मार्गे मार्गे सौविध्येन मिलन्ति ततश्चिकित्सां कुर्वन्ति तस्मात् पथगानामपि आधरा आयुर्विद्या। यतः यज्जस्तस्यौषधं हितम् प्रमाणात् एषाविद्या नागरिकाणां ग्रामीणानां धनिनां निर्धनानां जनानामपि चिकित्साधारा पुराकालादस्ति। अपितु ग्रामीणाः पर्वत प्रदेशीया जनाः नानाविधवनस्य वनस्पतीन् परिचिन्वन्ति। एषा त्रिपथगा– गंगायथा ब्रह्मणा प्रवर्तिता तथास्या विद्यायाः अपिप्रवर्तको ब्रह्मा अतः द्वावपि भागिन्यौस्तः द्वावपि जनान् पावयतः प्रवहमाने नैरन्तर्येण तिष्ठतः त्रिपथगावत् जनपावनी आयुर्विद्या अपि। आसृष्टि आयुर्वेद प्रवाहः प्रवहति अनेकाः पद्धतयः निर्झरवत् अस्या आयुर्वेद गंगायाः निस्सृताः। आयुर्विद्या त्रिपथगा = हेतुलिंगौषधज्ञानात्मिका त्रिदोषत्रिस्कन्धात्मिका एवं आयुर्वेदः त्रिस्कन्ध उच्यते एतान् त्रिस्कन्धान् बह्मणा प्राप्तान् ज्ञात्वा वैद्यः प्राणाचार्यो मिषगाचार्यो भवति अत्र केवलमन्ते त्रिस्कन्धानां नामानिदास्यंन्ते पूर्णविवरणं शास्त्रेभ्यः ज्ञेयम्। ग्रन्थविस्तार भयात्सर्वं लेखितुमशक्यता। वस्तुतस्तु त्रिपथगा एवं आयुर्विद्या। प्रमाणरूपेण यथा – (चरके)

हेतुलिंगौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम् त्रिसूत्रं शास्वतं पुण्यंवुवुधेयं पितामहः। सोनन्तपार मायुर्वेदं ज्ञात्वा महामतिः।

यथावदाचिरात्सर्वं वुवुधे तन्मना मुनिः।। त्रिस्कन्ध आयुर्वेदः। त्रयः स्कन्धा विभिन्ना स्तम्भाः विद्यन्ते यस्य सः त्रिस्कन्धः। एते प्रायः शताधिकाः स्कन्धाः।

अथवा– आधारा= धर्मार्थकाममोक्षाः तान् आधरतिसा आधाराधरा आयुर्विद्या।

आयुः कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषुविधेयः परमादरः (अष्टांगहृदये)

तत्र बुद्धिमता मानसव्याधिपरीतेनापिसता बुध्या हिताहितमवेक्ष्या वेक्ष्य धर्मार्थकामानामहितानामनुपसेवने प्रयतितव्यम्। मानसं प्रति भैषज्यं त्रिवर्गस्यान्ववेक्षणम्।

धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यं मूलमुत्तमम्
रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्यच (चरक)

आधारौ = सामान्यविशेषौ तौ आधरति इत्यादि आधाराधरा दोषाणां ह्वासः वृद्धिश्च क्रियते चिकित्सायाः मूल सिद्धान्ताविमौ

सर्वदा सर्वभावानां सामान्यं वृद्धिकारणम्।
ह्वासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्ति रुभयस्यतु।। (चरक)

आयुर्वेदस्य केचन मौलिकाः आधारभूता सिद्धान्ता स्तान् आधरति तस्मात् आधाराधरा एषा विद्या। आयुर्वेदो न हि केवलं रोगलक्षणानिदृष्ट्वा चिकित्सा मुपदिशति अपितु सर्वथारोग निवृत्यर्थं निरापद चिकित्सार्थं धर्मार्थकाममोक्ष साधनार्थं दीर्घायुष्योंपलब्धये स्वस्थस्य, स्वास्थ्य रक्षणाय आतुरस्य रोगप्रशमनाय। केचन मौलिकाधारभूताः सिद्धान्ता। आयुर्वेदःन केवल चिकित्साशास्त्रं अपितु जीवनविज्ञानं आयुषोवेदः (साइन्स आफ लाइफ) विद्यते। वैशेषिकदर्शनेन सामान्यविशेष सिद्धान्तेन स्थूल परमाणुशोधनं कृत्वा परमाणुअणु रूपेण गवेषणा आदिसूक्ष्म रूपेण कृता।

धाराधरा आयुर्विद्या-धाराधर आयुर्वेदो व्याख्यायते–

धारा परम्परां जीवनधारां अपि आधरति। तस्मात् धाराधरा धाराः समस्ताचिकित्सापद्धतयः अधराः निम्नाः होमियो इलेक्ट्रोचुम्बक-एक्यूप्रेसर-एक्यूपंचर-रेकी प्रभृतयः यत्र सा तस्मात् अपि धराधरा समस्त पद्धतीनां जन्मदात्री अस्ति तस्मात् आयुर्वेद पद्धतिरतिप्राचीना। यदा कापि पद्धतिर्नासीत् सर्वा पद्धतय आयुर्वेद धारां

गृह्णन्ति भारतात् आयुर्वेदः ग्रीक यूनानादिदेशेषुगताः तत्र चरकस्य सरक सुश्रुतस्य सस्नदादि अनुवादा अमवन् सा अल्लापैथी (यूनानी) अभवत् ततः योरोपादिदेशेषु गतवान्तदा ऐलोपैथी संजाता। वनस्पतीनां द्रव्यगुणकर्म विश्लेषः भारतीयैः प्रथम एव कृत आसीत् पश्चात् अन्यदेशानां कृते औषधि निर्माणे सौलम्यं संजातम्। आयुर्वेदमहर्षयः हिमालयादिषुस्थानेषु गत्वा वनस्पत्याद्यन्वेषणं अनुसन्धानं कृतवन्तः ततः द्रव्यगुण विज्ञानम् प्रकाशितम्। यथोक्तं-तदाभूतेष्वनुक्रोशंपुरस्कृत्य महर्षयः। समेता पुण्यकर्माणः पार्श्वेहिमवतः शुभे। जनपदध्वंसों माऽ भूत् तस्मा दौषधीनां गुणान्वेषणं संरक्षणं कृतम्।

त्रिपथगाया आयुर्विद्याया सम्बन्धिताः ऋतवः अस्मिन् श्लोक एव प्रतिपादिताः। धारा दधाति धाराधः (वर्षर्तुः) रोमाधवः शैत्यकालः रोमकम्पी रोमाणि आधुनोति (हेमन्तशिशीरशरद्रूपः) माधवः वसन्तः इतिषट् ऋतवः तुकालदृष्टया ऋतुचर्यादिनचर्या प्रचलति दोषाणां वृद्धि प्रकोप प्रशम ज्ञानम् क्रियते। इति धाराध+रोमाधवः। माधवः बसन्तः। धाराधर इतिषट् ऋतवः। धाराधर आयुर्वेदः माधवः= बसन्त इव अस्ति यथा वसन्ते जर्जरवृक्ष पल्लवानि भवन्ति तथैव दोषरोगकारणात् क्षीणधातुषु जनेषु जीवन रमणीयतां दधाति इति आयुर्वेद वैशिष्ट्य।

अधवः धवः आधवः रोमाधवः अमाधवः उमाधवः माधव इत्यायुर्वेदस्य विशेषणानि। माधवस्यव्याख्याकृता। धवः पतिः आयुर्वेदस्य कोपि पतिर्नास्ति स्वयं परमात्मना उत्पादितः अतः सः अधवः स्वयमेव पतिः। अन्यचिकित्सा पद्धतीनां धवः = पतिः। आधुनोति इतिआधवः धूञ् कम्पनेधातुः स्पन्दनं करोति रोमाणि (रोमरोम) आधुनोति इति रोमाधवः शरीरे सर्वत्र रोमपर्यन्तं प्रविश्य स्पन्दितो भवति।

सः अमा = निशा तस्या धव रजनीशश्चन्द्रः चन्द्र इव रोगान्धकारे दीव्यति। वैद्यानां शारदीमाता इति वनस्पतिषु गुणाधानात् चन्द्रः वनस्पतिषु संजीवनीशक्तिमुत्पादयति। उमाधवः शंकर इव अस्ति। पारदादिरसायन प्रवर्तकः शिवोपि आयुर्वेदाचार्यः तथा स्वरूपात् आयुर्वेदः शंकरः। शंकर इव आयुर्वेद एव। शिवस्यशिरसि त्रिपथगागंगा ब्राह्मी। आयुर्वेदोपि ब्राह्मीविद्या। त्रिपथगासमूहं दधाति स प्रवहति आयुर्विद्या (आयुर्वेदः) सृष्ट्यादितः जगति प्रवहमानास्ति सा पावनी आयुर्विद्या (आयुर्वेदः)। सा गंगा पुण्यं ददाति स्नानात्, आयुर्विद्या सेवनात् स्वास्थ्यलाभं ददाति। नानावनस्पति संयोगात्

गंगाजलं शुद्धं सर्वदा स्थायि अस्ति। आयुर्वेदरसविद्या तद्वत् स्थायिनी अभूतपूर्व चंमत्कारिणी। सा गंगा समुद्रममिधावति, आयुर्विद्या जनसमुद्रं प्रविष्टा। शिवः गंगाधरः, आयुर्वेदोपि त्रिपथगाधरः। सः चन्द्रमौलिः चन्द्रं सुधांशुं भाले दधाति, आयुर्वेदोपि चन्द्रेण सम्बंद्धः सुधांशुं= भैषज्यामृतं दधाति। त्रिपुंड्रधारी शिवः, आयुर्वेदः त्रिधातुधारी। सः मृत्युंजयः, अयम् दीर्घायुष्य विधाता मृत्युमार्गात् पृथक्करोति हितोपदेशैः। सः डमरूधारीअयम् जीवन मेव स्वास्थ्य प्रदानेन संगीतमयं करोति वाद्यतालमिव इन्द्रियादिषु सामंजस्यं स्थापयति शिवःभस्मधारी, अयं भस्मादि निर्माता। शिवःसर्पवृश्चिकधारी, आयुर्वेदः अगदतंत्रविद्याधारी। सः उमायाः (गौर्याः सत्याः पार्वत्याः) पतिः उमाशिवा (उ+मा उमा भवति उनिश्चयेन तथा उः शिवः एकाक्षरीकोषे) मा= निदानम् (निदानवती विद्या), गौरीत्वात् सुन्दरः शिवः। सतीत्वात् सत्यः शिवः, पार्वतीत्वात् शिवः शिवस्येत्थंतस्मात् शिवः। आयुर्वेदः सत्यं शिवं सुन्दरम् दधाति। शिवस्य पुत्रः गणेशः, आयुर्वेदोपि जीवनीय वृंहणीयादि औषधिगणानामीशः। अन्यपुत्रः कार्तिकेयः, आयुर्वेदचिकित्सापि कर्तति रोगान्। तस्मात् शंकर इव आयुर्वेदः शंकरोस्ति। इति साम्यं शंकरेण। आयुर्वेदः साक्षात् माधवः कृष्णः योगेश्वरत्वात् (योगेमोक्षेतु सर्वेषां वेदनानामवर्तनम् इति वचनात्) कृष्णः योगेश्वरः। आयुर्वेदः योगग्राही सहैव योगानां = आसव अरिष्ट तैलार्क चूर्णवटीरस रसायनादीनां ईश्वरः नानाविधौषधियोगैश्चिकित्सां विदधाति। कृष्णः सुदर्शन चक्रधारी अयंअष्टचक्रग्राही सहस्रारचक्र तः मूलाधार पर्यन्तज्ञानवाही। माधवः = मधूनां भंडारः यत्र मधुमक्षिकाभिः रसपरागानानीय मधुसमूहः निर्मीयते। तथैव वनस्पतीनां चयनं कृत्वा आयुर्वेदज्ञैः भैषज्यकल्पना क्रियते। आयुर्वेदे मधु–अनुपानमप्यस्ति।

मायाः = प्रकाशस्य, दिनमानस्य, समयमानस्य धवः पतिः। सूर्यः (सूर्य आत्मा जगत स्तस्थुषश्च वेदवचनात्) जगतः स्थायित्वमपि प्रददाति प्रकाशते जगत्। आयुर्वेदोपितादृशः, माधवः सूर्य अस्तियतः– स्वास्थ्यं प्रकाशते रोगान्धकारान् अपहृत्य। मा– मानस्यापि धवः अस्ति तत्र औषधिमात्रायाः भेषजकल्पनायां द्रव्यमानं विधीयते। तथा आयुषोमानं हिताहित मानं इत्यादि मानं आयुंर्वेदे क्रियते यथोक्तं चरके –

हिताहितं सुखं दुःखं आयुस्तस्यहिताहितम्।

मानंच तच्च यत्रोक्तम् आयुर्वेदः सउच्यते।।

तस्मात् माधवः आयुर्वेदः।

विद्यायाः आद्यौ = ऋग्वेदाथर्ववेदौ तयोः आदृक् दृष्टिगोचरः आयुर्वेदः यतः आयुर्वेदः तयोरुपवेदः। वेदेषु आयुर्वेदस्य प्रकरणानि सन्ति। तत्र वनस्पतीनां वृक्षाणां प्रार्थना विविधवर्णनं दृश्यते। नात्रास्ति अवसरः वेदायुर्वेदतुलनायाः विस्तारभयात्। अद्या (अद्धातोः) अत्तुं = भोक्तुं योग्या स्वादिष्टा विद्या, अस्याः सेवनेन नक्षतिः यतस्तु निरापदाः औषधयः। विद्या + आद्या (द्यौशब्दः) द्यावं= द्याः = देवलोकान् आ=आरभ्य अस्ति– इयं मानवी संहितामानवमात्रहितकारिणी।

त्रिपथगा = सत्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः साआधारा यस्याः एषा विद्या त्रिगुणाधारेण प्रकृतिं निश्चिनोति प्रकृत्यनुसारिणी चिकित्सा तस्मात् त्रिपथगा) अदृक् = अदृश्या अनुभवमात्रज्ञेया तथा अरूपः निराकारः आत्मा यात्री, तत्पथं गच्छतीति आत्मतत्व प्रकाशिनी, आत्मचेतनया संचालित शरीरस्य चिकित्सा विधायिनी विद्या/चेतनां बिना आयुर्वेदस्य नास्ति प्रयोजनं चिकित्सिते। यथोक्तं–

सत्वमात्मा शरीरं च त्रयमेतत् त्रिदंडवत्

लोकस्तिष्ठति संयोगात् तत्र सर्व प्रतिष्ठितम् (चरके)

विद्यात् यादृक् अथवा यादृक् विद्यात्, अथवा या विद्यात् सादृक् यादृक् विद्यात्–यः कोपि स्वशक्त्या, स्वबुद्धया, यादृशं यावत् वा विद्यात्। वेत्तुः उपरि निर्भरा। परन्तु नायुर्वेदस्यपारंगतः कोपि यथोक्तं– नास्ति आयुर्वेदस्य पारं– सोनन्तपारं इत्यादि आयुर्वेदस्य अपारज्ञानत्वात्। आयुर्वेदः दर्शनमपि, विज्ञानमपि, चिकित्सापिच। शरीर जीवयोर्योगः जीवनं तदवच्छिन्न काल आयुःस्तस्यायुषो वेदः आयुर्वेदः इति शास्त्रवचनात्। शरीरजीवयोरुभयं ज्ञानं तदनन्तरं चिकित्सा ज्ञानम् अतिगम्भीरम्

अमाधवः = चन्द्रः चन्द्रप्रतिनिधिः माधव स्तथा इतिसूर्य स्तत् प्रतिनिधि रायुर्वेदः अग्नि सोमयोः वेदे वर्णनात् शीतोष्णवीर्यद्रव्याणां प्रभावः। आयुर्वेदः अरूपः= नैकरूप आयुर्वेदः अनेक शास्त्राणां स्वाध्यायावश्यकता अस्ति। अष्टांगोयमायुर्वेदः (तस्मात् वहुश्रुतः प्राज्ञः) इति आयुर्वेद शास्त्रवचनात् विद्या अपारा। या विद्यात् = यावत् जानीयात् सा एव दृक् = दृष्टिः करणीया कस्मिन्नपि विषये विशेषज्ञतायै प्रयासः कर्तव्यः।

विद्याद्यौ- ऋग्वेदाथर्ववेदौ आदृक् यस्याः सा विद्याद्यादृक् इति वेदायुर्वेदसम्बन्धः

वेदवाक्यानि - या फलिनीर्या अफला अपुष्पायाश्च पुष्पिणी वृहस्पति प्रसूतास्तास्ते मुंचत्वंहसः। त्वां गन्धर्वा अवनत्वां वृहस्पतिः त्वामोषधे सोमोराजा विद्वान् यक्ष्मादमुच्यत इत्यादि। रोगाणां वनस्पतीनां वर्णनम् वेदेषु वनस्पति विशेषज्ञः वृहस्पतिरुक्तः।

श्लोक प्रथम चरणस्य पदच्छेदाः

(यदि आयुर्वेदज्ञः वैयाकरणोपि स्यान्महान्तमानन्दं प्राप्स्यते)

विद्या। आद्या, आद्याः (आ+द्याः) विद्याद्यात् आद्यात् अद्यात् (क्रियाः) विद्या+अद्या, विद्या+अद्य+आदृक्। विद्यात् (क्रिया) दृक् अदृक्। यादृक्। विद्याद्या+विद्याद्यः। इति विद्याद्यादृक्। आदृक्+अरूप+यात्रि+पथगा। अदृक्+अरूपा। आदृक्। अरूपयात्रिपथगा । दृगरूपयात्रिपथगा। त्रिपथगा पथगा अत्रिपथगाधारा त्रिपथगाधारा (धरः) आधार+अधरा। धाराधरः। धाराधरा। (उ) माधवः उमाधवः अमाधवः। रोमाधवः। धाराधरा+रोमाधवः धाराधरोमा+ धव+ अधव+ आधव+ मा+धवः विद्याद्यश्चासौ आदृक् सचासौ अरूपयात्रिपथगा तस्या+ आधाराधरा, धाराधरा आयुर्विद्या। उमाधव+ धाराधरः एवं उमाधवः शंकर इति। समस्तैकपदम्-विद्याद्यादृगरूप यात्रिपथगाधराधरोमाधवः (आयुर्वेद) इति सन्धि समास श्लेष प्रभावात् ज्ञेयम्।

(इति आयुर्विद्यायाः आयुर्वेदस्य वा श्लोक प्रथमचरण पद व्याख्या)

अथश्लोकस्य द्वितीय चरण पदच्छेदः

यो गंगान्धियमातचन्द्रमहिमालाभान्तरंगावली

यः सूर्यइव वसन्तर्त्तुरिव, शंकर इव कृष्ण इव चन्द्रइव मधुसमूह इव धाराधरः आयुर्वेदः अगं, योगं, गंगाम् गाम् धियम् गंगां धियम् चन्द्रंः, अहिंः अहिमालाभां आलाभान् लाभान् अपि आत (प्राप जगामवा।)

अगम् = नगच्छतीति अगः स्थायी अचलः तं = सनातनं स्थायिसत्ताम् योगम् योगविद्याम्, अतियोग अयोग मिथ्यायोग वर्जित शुद्धयोगं। नानाविध चूर्णवटी रसरसायनादि निर्माण योगं। गाम् = वाणीम् पृथ्वीं धेनुम् प्रत्येकमिन्द्रियं। धियम् = प्रज्ञापराधरहितां प्रज्ञाम्। गंगांधियम् निर्मलां

बुद्धिं सात्विकीं बुद्धिम्। चन्द्रम् चन्द्रमसं आल्हादं। अहिम्=विषं अगदतंत्रंवा अहिमाः=विषाः अहिमा = श्यामलता (नीलिमा) विषमयता, सुरसा, पूतना तस्याः आलाभान्। अहिमानां = विषाणां आलाभात् अगद तंत्रस्यारम्भात् अहिमालावत् आभां = कालकूट पानात् शंकरः नीलकण्ठतां आत। शंकरः विषपान प्रमावेण तंत्र मंत्राणां प्रवचनंचकार तेएव तंत्रमंत्राणि अभवन्। अहिमा = सुरसा (सुरसानाम अहिन की माता) तस्य आलाभान् आत यदि हनुमान् तंत्रमंत्र विशेषज्ञः अणिमामहिमादिज्ञानविशारदः न स्यात्, तर्हि (जसजस सुरसा वदनबढ़ावा। तासुदुगुन कपिरूप दिखावा। पुनिलघुरूपपवन सुत भयऊ) एषा स्थितिर्न स्यात् हनुमता योगतंत्र परीक्षणं कृतं। हनुमता द्रोणाचलानयनात् संजीवनी बूटी प्रापणात् लक्ष्मणप्राणरक्षा कृता एतेलाभाः अभवन् एतान् समस्तान् लामान् आयुर्वेदः प्राप। एवं अहिमायाः =पूतनायाः सान्मुख्यात् कृतं विषविद्याज्ञानं स्वाभाविकम्। श्रीकृष्णेन कालियशिरसि नर्तनं कृतम् तत्र पार्श्वतः अहिमाला फुत्कारं कुर्वन्ती अपि आसीदिति (भागवतपुराणे) शिवकृष्ण हनुमतां अगदतंत्र विशेषज्ञता स्पष्टा। सर्वान्आलाभान् आत। शिवकृष्ण हनुमन्तः तंत्रमंत्रयोग विद्या विशारदाः तेषां योगदानं आयुर्वेद क्षेत्रे महत् इतिभावः प्रदर्शितः। आयुर्वेदेन योगस्य महत्ता स्वीक्रियते अतः पूर्वमुक्तं योगं आत इति प्रथमचरणे। विषमौषधं अप्यस्ति अहिफेन शंखियाकुचलादयो= विषाः अहिमाः तेषांलाभाः आयुर्वेदे सन्ति इत्यपरोर्थः:-

योगादपि विषंतीक्ष्णम् उत्तमं भेषजंभवेत्। भेषजं चापि दुर्युक्तं तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम्

अहिमा = प्रदूषणकालिमा तस्याः अलाभान्= हानिसमूहान् तासां अन्ते= विनाशेएव रंगावली = जनस्वास्थ्य सौन्दर्यं। तुलसी बटपिप्पलादीनां वृक्षारोपणात् पर्यावरण प्रदूषणं विषं विनश्यति तेषां आयुर्वेदे वर्णनात्।

अहिमा = सामाजिक विषमयताअधर्माधिक्यात् क्रोधादयः उत्पद्यन्ते तथा देशवायुजलानि दूषितानि भवंतितता जनपदध्वंसः इतिचरकस्य जनपदध्वंसाध्याये विशदवर्णनम्। अधर्मविनाशादेव वातावरणे पर्यावरणे रंगावली भवितुं शक्यते।

अहिमा = पाश्चात्यौषधि विषमयता प्रायः दृश्यन्ते ताः औषधयः तत्कालफल प्रदाः परिणामेऽ नेकोपद्रवानुत्पादयन्ति शरीरे च मनसि।

रंगावली = प्राकृतिक छविर्भवति तदा रोगी प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः तिष्ठति तदेव आयुर्वेद मतेन स्वास्थ्य लक्षणम्।

अहिवत् माला = अहिमाला = रोग पंक्तयः अभिनव दूषित कैंसर एड्स (विषावुर्द ओजो क्षयादयः) रोगा प्रंविष्टा तेषां अन्ते = विनाशकरणे अपिआयुर्वेदः एव क्षमः। अद्यापि पाश्चात्य रोगशालां (हास्पिटल्स) परित्यज्य निराशरोगिणः आयुर्वेदशरणमेव आगच्छन्ति। अहिमाला+भानां (सदृशानां) अन्तः।

अहिमा = रजस्तमसोराधिक्यं विषमयाहार विहारत्वं तयोः अन्ते सत्वगुणोदयात् मनसि शरीरे आत्मनिच रंगावली आनन्दावली प्रादुर्भवति। तंत्रापि आयुर्वेदे सदैव सदाचार रसायन सदवृत्त पालनोपदेशाः)

अहिमालाभः = आमविष संग्रहः तस्यापि अन्ते= समाप्तौ रंगावली आशयेषु धातुषु स्वस्थता भवति। लंधन पाचन संशमनोपायाः प्रदर्शिताः। अहिमालाभा= भूतप्रेतादयः तेषामन्तकरणाय रंगावली = मङ्ग्लावली तदायनाय अष्टांङ्गायुर्वेदे भूत प्रेत विद्याभागः (तं आत इति सर्वत्र सम्बन्धः कार्यः) उक्तमपि आमप्रदोषजानां विकाराणामपकर्षणेनैवोपरमो भवति। इति अहिमाः रोगाः शल्यसाध्याः शल्यान्तः प्रवेशदूरीकरणाय शल्यक्रिया एव समर्था तेषामन्तःकरणे रंगावली = वास्तविक स्वरूपानयने आयुर्वेद एव क्षमः यथाह सुश्रुते मनः शरीर वाधाकराणि शल्यानि तेषामाहरणो पाय यंत्राणि षट् प्रकाराणि स्वस्तिक सन्देशताल नाड़ी शलाकायन्त्राणि। यंत्रकर्माणि निर्घातन पूरण वन्धन व्यूहनवर्तनचालनविवर्तन विवरण पीडनमार्गविशोधन विकर्षणाहरणाञ्छनोन्नमन विनियमन भंजनोन्मथन चूषणैषण दारणर्जूकरण प्रक्षालन प्रधमनप्रमार्जनानि चतुर्विंशतिः। आयुर्वेद शल्यचिकित्सायाः ज्ञानं सुश्रुतात् ग्राह्यम् शस्त्रकर्माष्टविधम् छेद्यं भेद्यं लेख्यम् वैध्यम् एष्यम् आहार्यम् विस्राव्यम् सीव्यमितिवर्णनम् क्रियाश्च।

अहिमाः = कृमयः तेषा अलाभाः हानयः तेषामन्ते समाप्तौ एव रंगावली। आयुर्वेदे कृमिचिकित्सा विधानम्। अपकर्षणमेवादौ कृमीणां भेषजंमतम् इति चरकवचनात्। रंगावली = प्रसन्नता एतादृशी आयुर्वेद विद्या।

हिमालामां = हिमानां आलयः (स्थानम्) हिमालयः तद्वत् भां आभां वा आत। इयं स्थिरता उच्चताऽ युर्वेदस्य। तथा वनस्पतीनां रवनिजानां समुत्पत्या हिमालयस्य प्रभाव आयुर्वेदे यथासमयं तत्रैव महर्षीनां वनस्पति

संरक्षणाय अनुसन्धानायोपवेशनम्। अपारयशस्त्वात् हिमाभा हिमवत् श्वेता यशस्विनी विद्या।

आलाभा = आयुर्वेदे आ = समन्तात् लाभ एवलाभः आसमन्तात् लाभाः विद्यन्तेयस्यां निरापदत्वात् न काचनक्षतिसम्भावना आयुर्वेदौषधिषुतां आलाभा पद्धतिं आत।

कीदृशी आयुर्वेद विद्या **अंगावली** = षडंगशरीरज्ञान मथवा आयुर्वेदाष्टांगक्रमम्। शल्य शालाक्य कायचिकित्सा भूतविद्या कौमारभृत्य अगदतंत्र रसायनतत्र वाजीकरणनाम्नी। इह खल्वायुर्वेदनामोपांगमथर्ववेदस्य अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशत सहस्रमध्यायसहस्रम् चकृतवान् स्वयंम्भू भूयोष्टधा प्रणीतवान् (इति विद्याद्या आयुर्वेद विद्या)

सुश्रुतें **अन्तरंगावली** = अन्तकरणम् पंचकोषाः सहस्रारादिचक्राष्टकम् शरीर रचनां शरीर क्रिया तथान्तरंगविद्यमानगतिः यथा सप्तधातून त्रिदोषान प्रकृतिं दशेन्द्रियाणि इन्द्रियाधिष्ठानानि हदयप्लीहा यकृत् फुफ्फुसवृक्क मस्तिष्क क्लोम ग्रन्थीन् (हार्मोन्स) आमाशयपक्वाशय मूत्राशयादि आशयान् तेषां **अवली।** अन्यच्च अस्थीनि आयुर्वेददृष्ट्या २०६-३०० यावत स्नायवः ६०० शिराः ७०० धमन्यः २०० पेश्यः ४०० मर्माणि १०७ सन्धयः २७० कडंराः १६ कोष्ठा १५ नाडयः अन्नवहादिस्रोतांसि उक्तानां अवलिः अन्तरंगावलिः। रंगावली = एषाएवं ईश्वरनिर्मिता विचित्रा रंगावली (रंगोली) इति दर्शनीया अनुमेयाच। ईदृशी आयुर्वेद विद्या।

रंगावली एतत् शरीरं जगत् रंगमंचः प्रकृतिपुरूष रंगमंचः। अन्ततोगत्वा प्रकृतिं विज्ञाय मुक्तो भवति जीवात्मा। सा विद्या या विमुक्तये आयुर्वेद विद्या शरीरात् मनसश्च रोगान्हरति प्रकृति (माया अविद्या) ज्ञानात् आत्मनोऽपि मुक्ति सहाया विद्यते अतएव विद्या कथ्यते= अविद्यया मृत्युंतीर्त्वा विद्ययाऽमृतमश्नुते (इशोपनिषद्) आयुर्वेदोपि– रंगस्य दर्शयित्वा निवर्तते नर्तकी नृत्यात्। पुरूषस्य तथात्मानं प्रकाश्य विनिवर्तते प्रकृतिः। एषा रंगावली। अंगप्रत्यंगानां विचित्ररंगाः तेषा अवलिः = पंक्तिः। **तरंगावली** नाडीगतिः (नाडीविज्ञानं) दोषाणां प्रभावेण तरंगाः नाडीषु भवन्ति ततो नाडी द्वारा रोगाणांज्ञानम् भवति।

लाभान्तरंगावली = आयुर्वेदौषधिसेवनेन लाभान्ते विचित्र रंगावली कायाकल्प इव दृश्यते अनेक वाजीकरण रसायनतंत्रयोरपि दर्शनं कारितम्। लाभान्ते **रंगावली** अनुभूयते। रंगाः गुणाधानकराः संस्काराः अपि रगावली रसरसायनविद्या। गावली= गा= पृथ्वीवलयः समस्त भूमंडलम् विश्वें

आयुर्वेदस्य वैशिष्ट्यात्।

आयुर्वेदः गां आत (पंचगव्यादीनां ग्रहणात्) **गंगान्धियम्** =प्रज्ञापराधशून्यां धियं आत

ये भूत विषवाय्वग्नि सम्प्रहारादि सम्मवाः
नृणामागन्तवो रोगा प्रज्ञा तेस्वपराध्यति
मनोविकारास्तेप्युक्ता सर्वेप्रज्ञापराधजाः
ईर्ष्याशोकभयकोध मानद्वेषादयश्च ये
धीधृति स्मृति विभ्रष्टं यत्कर्म कुरूतेऽ शुभम्।
प्रज्ञापराधं तं विद्यात् सर्वदोष प्रकोपणम्।
मानसोज्ञान विज्ञान धैर्यस्मृति समाधिमिः।
अतःगंगावत् निर्मलयाधिया न भवति प्रज्ञापराधः मनोरोगः।
वुद्धिशुद्धया शाम्यन्ति तदुपायाः आयुर्वेदे वर्णिताः।

योगं आत– योगश्चित्तवृतिनिरोधः योगानुसरणात् योगी भवति अष्टांग आयुर्वेदः अष्टांगयोगम् आत। यमनियम आसन प्राणायाम प्रत्याहारधारणा ध्यान समाधिसंज्ञम्।

आवेशश्चेतसो ज्ञानं अर्थानां छन्दतः क्रियाः।

दृष्टिः श्रोत्रं स्मृति कान्तिः इष्टताश्चादिदर्शनम्। इत्यष्टविध मारव्यातं योगिनांवलमीश्वरम्। शुद्धसत्वसमाधानात् तत्सर्वमुपजायते। (इत्यायुर्वेदवचनात्) समाधावेवाधिव्याधीनां निवृत्तिः। योगेमोक्षे तु सर्वासां वेदनानामवर्तनम्। चरकवचनात्

यमातचंद्रमहिमालाभा यमंअतति यमातः=मरणासन्नः रोगी तस्मै चन्द्रवत् महिमा तस्य लाभः विद्यते यस्यांसा तादृशी आयुर्वेदविद्या। यथा चन्द्रः सुधांशुत्वात् क्षीणगुणेषु वनस्पतिषु गुणाधानं करोति तथा आयुर्वेदभेषजः यमातानां कृते सुधा भवंति। यतः उक्तम् चरके आयुर्वेदोऽ मृतानाम्। यद् भेषजम् तदमृतं यदमृतंतद् भेषजमिति सुश्रुतोक्तत्वात् यमातानां मरणासन्नानां कृते अपि अमृतवत् इति विद्या विशेषणम्

यमातचन्द्रमहिमा इत्यादि आयुर्वेदविशेषणम् यमातानां (मरणासन्नानां रोगिणां कृते चन्द्रवत् महिमा विद्यते यस्य सः लाभानंतरं लाभस्तु रोगापनयने भवत्येव आयुर्वेदौषधि सेवनेन शरीर सौष्ठवम् इतिलाभान्तरं आत। आन्तरं = अन्तः भवं आन्तरं (अन्तराशब्दोवा) आन्तरइति कोषे पृथक् शब्दोपि अर्थात् नतु आयुर्वेदो बाहयलक्षणानि दृष्ट्वैव चिकित्सां करोति आभ्यन्तरं प्रविश्य

रोगनिर्मूलनाययतते। चन्द्रमहिमः =शंकरः तस्य महिमा विद्यते यस्मिन्-शंकरस्य रसस्वामित्वात्। शांकरी विद्या आयुर्वेदः यमातशब्दस्य पृथक् सम्बन्धे गान्धिशब्दः पृथक् भवति तत्र गन्धानां समूहः विद्यते यत्र सः गान्धी। वायोः गन्धगुणत्वात्। गान्धियम् वातप्रभावं आत। यतः **पित्तं पगु कफः पंगुः पंगवो मलधातवः वायुना यत्रनीयन्ते तत्र गच्छन्ति मेघवत्।** गान्धी=वायुः यमौ पित्तकफौइति त्रिदोषः। गान्धियमौ तथा आतचन्द्रः (अस्तचन्द्रः सूर्यश्च) चन्द्रः एतेषां महिमा विद्यते यत्रसः गान्धियमातचन्द्रमहिमा (त्रिदोष प्रभावः) तथा आग्नेयं सौम्यत्वंच उष्णशीत वीर्यत्वंवा।) आन्धिः = अन्ध एव आन्धः अन्धता (नेत्र विकार विषयकी) स अस्ति यत्र तत आन्धि = शालाक्यान्तर्मत नेत्र विज्ञानं तदपि आत अन्धानां हिताय इदमिति सम्बन्धः। अथवा प्रथमचरणस्य क्रिया विद्यात् इत्यनेनसम्बन्धः (पदच्छेदे, अर्थपरिज्ञाने सन्धिप्रत्ययज्ञानमपेक्ष्य वर्तितव्यम् इति वौद्धिक कौशलम्)

इत्थं व्याख्यातं भवति श्लोक द्वितीयचरणम्

अथ पदच्छेदाः

या + उ/ यः अगं योगम्। गंगाम् धियम्। गंगांधियम्। गान्धियम् आंधियम्। आन्धि (नपुंसके) आत (क्रिया) यमातचन्द्रमहिमा। गान्धि+यमात+चन्द्रमहिमा। गान्धि+यम+आतचन्द्रमहिमा। यमातः। गान्धियमात+ चन्द्रमहिमा। गान्धि+यम+आतचन्द्रमहिमा। यमातः सूर्योपि। गान्धियम्+ आत + चन्द्रमहिमा। गान्धि+ यमात+ चन्द्रमहिमा (आयुर्वेद विशेषणानि) चन्द्रमहिमालाभा। गाम् धियम्। चन्द्रम् आतचन्द्रम् मातचन्द्रम् आदृक् हिमाल+ आभाम्, भाम्। आलाभाम्, अलामान् अहिमा+आलामान् लाभान्। हिम+आला+आभाम् भाम् अहिमालाभा। महिमालामा। चन्द्रमहिमालाभा। मातचन्द्रमहिमालामा यमातचन्द्रमहिमालाभा। गान्धियमात चन्द्रमहिमालाभा+लामान् लाभान्तरं। आन्तरं। लाभान्त+ रंगावली। लाभान्तरंगा (आयुर्वेद विधाविशेषणमपि)। रंगावली। गावली अंगावली अन्तरंगावली। तरंगावली अन्तरंगावली अन्तः+ अंगावली अवली देहली (गृहदेहलीवत् प्रधानां) प्रवेश द्वारंवा। सीमा (वावंडरी इत्यर्थेपि कोशे। आन्त रंगावली = अन्तिम (फाइनल) रंगावली स्वास्थ्यशोभा। अहिमाशब्दस्यवह्वर्थे प्रयोगः— अगदतंत्रम् पर्यावरण प्रदूषणं कालिमा।

नीलकण्ठता। श्यामलता। सुरसा। पूतना। अ+हिमा उष्णता। चन्द्रमहिम–अतिशीतला। अहिमा = समुद्रमन्थने कालकूटविषोत्पतिः। अहिमाः (अहिवत् मा विद्यन्तेयेषान्ते अहिमा राक्षसाः भूतप्रेतादयोवा अहिमा विषमयता दोषदुष्टता वा। अन्तरंगौ+अली (भ्रमरौ) इत्यपि। स्वास्थ्य रक्षणं, आतुरस्यरोगशमनम्।

वेदान्तात्रिक भावतारणमता पंचामृताराधिका

(अथ तृतीय चरण व्याख्या आरभ्यते)

इयं आयुर्विद्या वेदान्त दर्शन समन्विता वेदान्ते ब्रह्म विद्याज्ञानेन मुक्तिः, अस्याम् आचरणेन औषध सेवनेन रोगमुक्तिर्जायते। अतः वेदान्ता। वेदानां ऋक्साम यजुरथर्वणां अन्ता (परिणतिः) यथा वेदान्तोऽपि वेदसारस्तथा। वेदानां समस्तचिकित्साविधानां अन्ता = श्रेष्ठतमाच। अतः अन्ता अपि। अंत्रिकभावतारणमता प्रायशो रोगाः आन्त्राणां सम्बन्धात् भवन्ति इति आन्त्रिका रोगाः आन्त्रसम्बन्धिनो रोगाः तेषां भावस्य = अस्ति तारणम् पारगमनम् तत् मतंयस्या सा विद्या आयुर्विद्या। अत्र तांत्रिक भावता अस्ति। तंत्रयुक्तिज्ञा तांत्रिकाः। आयुर्वेदे काश्चन तंत्र युक्तयो वर्णिताः सुश्रुते द्वात्रिंशत् तंत्रयुक्तयः अधिकरण निदर्शन विकल्प योग हेत्वर्थादयः। ते जानंति तांत्रिकाः तेषां विदुषां भावता अनिवार्या सत्ता यथोक्तम् (**अधीयानोपि शास्त्राणि तंत्रयुक्त्या बिनाभिषक्। नाधिगच्छति शास्त्रार्थान् अर्थात् भाग्यक्षयं यथा।**) तंत्रंविद्याविस्तारं जानन्ति तांत्रिकास्तेषां भावता विद्यमानता आवश्यकी। तन्त्रमंत्रं यंत्राणां आवश्यकता। यथारसशास्त्रे दोला स्वेदनी पातना विद्याधरादि यंत्राणि तेषु धातुरत्नोपरत्नादीनां रससिद्धिः हरतालमनःशिलागन्धक स्फटिकादय उपरसास्तथान्येरसा हिंगुलाभ्रक वैक्रान्त शिलाजत्वादयः सूर्यकान्तहीरकमौक्तिक प्रबालादयः, रत्नानि। उपरत्नानि कनकजातरूपतामादयो धातवः एतेषां साधनाय यंत्राणां रसरसायनयोः आवश्यकी एषा तांत्रिकभावता। तंत्र विद्याया अपि भूत प्रेत रोग निवारणे व्यवस्था अस्ति। अनेक तंत्रशास्त्राणि प्रसिद्धानि। मणिमंत्रौषधि व्यवस्था आयुर्वेदे प्रतिपादिता एव/तंत्रमंत्र मणि विज्ञानज्ञानमपि सहायकं भवति। मनः शरीर बाधा कारणानि शल्यानि तेषामाहरणोपाय यंत्राणिं शल्यचिकित्सा यंत्राण्यपि ज्ञेयानि तस्मात् वहुश्रुतः प्राज्ञ इतिवचनात्। परीक्षणयंत्राणि एक्सरे आदितेषां भावता ग्राह्या नैवसंकोचः कर्त्तव्यः। नीलकं वज्रकं चैव पद्मरागश्च मौक्तिकं प्रवालं चेतिविज्ञेयं पंचरत्नं मनीषिभिः एतेषां रसा

वहुफलप्रदाः। यमात (मरणासन्न) रोगिणांकृते महिमावन्तः। रसनिर्माणं विविध यंत्रैः क्रियते। तांत्रिक भावतायाः उदाहरणानि। तांत्रिक भावता आयुर्वेदतंत्रज्ञ विदुषां भावता एतादृशी **एषणाश्चाप्युपस्तम्मा वलं कारणमामयाः तिस्रैषणीय मार्गाश्च मिषजो भेषजानिच। त्रित्वेनाष्टौ समुदिष्टा कृष्णात्रेयेणधीमता भावाः भावेष्वसक्तेन तत्रसर्वं प्रतिष्ठितम्** इत्यष्टौ भावास्तेषां भावः भावता। अत्र त्रिकभावता अपि त्रित्वेन सर्वेपि त्रिसंख्याकाः भावाः तस्मात् त्रिकभावता। चिकित्सायां त्रिकभावता अपेक्षिता चेतना पुरूष षट्धातुजपुरूष चातुर्विंशतिक (राशि) पुरूषइति। तांत्रिकभायाः आंत्रिकभायाः अवतारणं जीवने स्थापनं एव मतं एषान्ते तांत्रिक भावतारणमता वैद्याः मताः तेषां सा आयुर्विद्या। एषा एव रणमता आयुर्विद्या एका युद्ध प्रक्रिया दोषादीना शमने।

धातुसाम्यक्रिया चोक्ता तंत्रस्यास्य प्रयोजनम्

इतिदृष्ट्या युद्धस्तरेण चिकित्सा अभिमता इत्येव रणमता। (वेद इतिक्रिया चरण प्रारम्भे) अतापं = दक्षापमान संक्रुद्धरुद्रनिश्वास सम्भवं ज्वरं सन्तापराहित्यं दैहिक दैविक भौतिक ताप निराकरणं। ज्वर स्त्वेक एव सन्ताप लक्षणं इतिवचनात्। अष्टविधा ज्वर प्रकृतिः ताप शब्देन ज्ञातुमभीष्टा। अतापं वेद। भावतरणं वेद। मतानां आपं सर्वमतसिद्धान्तं आप सर्वौषधिजातं वा। अप्स्वन्तर ममृतमप्सु भेषजम् (अथर्ववेद) वेद। यूयम् वेदान् अवत = (रक्षत) तांत्रिकविद्या विद्यतेयेषु ते तान्त्रिक भावन्तः तृतीयैकवचने भावता =विदुषा एवं रणमता शक्या। आर इति क्रिया अपि) नमत = इतिक्रिया नमता इति शब्दोपिकोषे । रत्वात् नकारस्यणकारोभवति व्याकरणे। अतापं आर। पंचामृता पंच अमृतानियस्यां सा दुग्ध दध्यादि पंचामृतत्वमथवा पंचनिदान पंचकर्मादि स्वरूपममृतं (तस्य सूची अग्रे दर्शिता) बिना पंचामृत तत्वज्ञानं न चिकित्सा भवितुं शक्या एषा विद्या पंचामृता। राधिका पंचामृतानां आराधिका, अथवा राधिका कृष्ण प्रिया।: अमृताः अमृतकल्पा ओषधयः यथाह सुश्रुतः –ओषध्योमृतकल्पा यथोक्तं शत पथ ब्राह्मणे– भैषज्यममृतम्। तासां आराधिका। पंचामृतैः आराध्या अपि। अमृत संज्ञाः ओषध्योपि सन्तियथा वनमुद्गवाराहीकन्द आमलकी हरीतकी गुडूची मागधी तुलसी इन्द्रवारूणी ज्योतिष्मती गोरक्षदुग्धा अतिविषा रक्तत्रिवृत् दूर्वा जटामासी द्राक्षाभल्लातकी

भूम्यामलकी सतावरी विजया इत्यादयः आसु अमृतत्वं तिष्ठति। ऋताराधिका = ऋतस्य सत्यस्य आराधिका, तारा = रोगसागरं तारयतिइति तारा, अधिका = अधिविज्ञानवती। आ =समन्तात् अधिका चिकित्सा शास्त्रे सर्वोत्तमा। कृष्ण राधिका इव यथा कृष्णस्य राधिका आल्हादकरी तथैव आयुर्वेदः जनानाम्। कृते। अराः= चक्राणि मर्माणि सन्तियस्यांसा अराधिका। आर (क्रिया) आराः = शल्ययंत्राणि ते अधिकाः सन्ति यस्यां शल्यशालाक्यज्ञानवती। अमृतात् अधिका। आपंच=पंचभूतात्मजगत् तदर्थं अमृता सर्वभूतहिते रता। वेद इति क्रिया आन्तां = अन्तिमां। वेदान् तान् अवत = रक्षत नमत। भावाः आयुर्वेद विचाराः तेषांताराः =सूत्राणि आयुर्वेदसूक्तयः तेषांनमता =स्वीकरणम् (इति अर्थः कोषे) आपं जलचिकित्सितं। तारा = रोग सागर पारनेत्री नौका एषा आयुर्विद्या। अत्रक्रिया आपं इति। तांत्रिकभौ = शल्यशालाक्यौ वेद। अथवा वर्तमानयुगे अवत = रक्षत इतिसम्बन्धः। तांत्रिकभा = शल्ययंत्रादि विद्या वत (अव्ययं) अरणमता अहिंसामयी स्यात् यतः आयुर्विद्या अहिंसाप्रिया। तांत्रिकभावतारणमपि आवश्यकम्। यदि श्रद्धान स्यात् चिकित्सा असफला स्यात्। अस्मिन् चरणे आयुर्वेदे तंत्रयंत्र मंत्रशास्त्र शल्यशालाक्यमहिमा अस्ति। एषा विद्या आराधयति जनानां सेविका अस्ति नतु केवलमर्थोपार्जनाय सा नौः नौका (तारावत्) अस्ति वैद्यस्य रोगिणां कृतेपि। **प्रकाशितो धर्मपरैः इच्छद्भिः स्थानमक्षरम्। अर्थार्थं नापि कामार्थमथ भूतदयां प्रति परीभूत दयाधर्म इतिमत्वा चिकित्सिता**। इति आयुर्वेद वचनात्।

इति तृतीय चरण व्याख्या

अथ तृतीय चरण पद च्छेदाः

वेद (क्रिया) वेदान्ता, वेदान्ताम्। ताम्। अन्ताम्। तांत्रिकभौ + अवत। तांत्रिकभावता। तांत्रिकभा अवत। वत। आन्त्रिकभावता। त्रिकभावता। (अवत नमत इमे द्वेक्रिये) तांत्रिकभा + अवतारणमता। भावतार + नमता। तांत्रिकभावतारणमता। तांत्रिकभाव + तार + तांत्रिकभावता + रणमता। अरणमता। भावतारणम् + अत (क्रिया) आर (क्रिया) नमता+ आपम्। अतापं। आतापम्। आतइति क्रिया। आपंच। मतापम् (आपम् क्रिया अपि) पंचामृता। पंच अमृता। अमृताराधिका अमृता राधिका। तारा + आधिका अधिका। ऋताराधिका आराधिका अराधिका।

कतिपय प्रमाण (आयुर्वेद सम्बन्धी)

इस एकश्लोकीय आयुर्वेद में आयुर्वेद के त्रिस्कन्ध तथा पंच पंचक (पंचामृत) का वर्णन किया गया है। इनका सम्पूर्ण विस्तार चरक सुश्रुत वाग्भट अष्टांग संग्रह, रसरत्न समुच्चय आदि में वुद्धिगत करना चाहिए इसी त्रिपथगा पंचामृता पद्धति का नाम ही आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति है। सभी तत्वज्ञान शास्त्र प्रतिपादित है लेखक की ओर से अपना कुछ मिश्रण नहीं हैं। व्याकरण शास्त्र तथा आयुर्वेद शास्त्रों की प्रामाणिकता से लिखा गया है।

यद्यपि सभी प्रमाण यहाँ पर नहीं दिए जा सकते। पुनरति आवश्यक शास्त्र प्रमाण प्रदर्शित किए जा रहें हैं। विशेष ज्ञान के लिए सम्बन्धित आयुर्वेद शास्त्र, व्याकरण, शब्दकोष में प्रमाण तथा विषय वस्तु अध्ययनीयहै।

भगवन् शरीर मानसागन्तुभि र्व्याधिमिर्विविधवेदनाभिघातोपद्रुतान् सनाथानप्यनाथवत् विचेष्ट मानान् विक्रोशतश्च मानवानभिसमीक्ष्य मनसि नः पीड़ा भवति तेषां सुखैषिणां रोगोपशमनार्थ मात्मनश्च प्राण यात्रार्थं प्रजाहेतोः आयुर्वेदं श्रोतुमिच्छामः इहोपदिश्य मानम् अत्रापत्त मैहिका मुष्मिकं चश्रेयः तद् भगवन्तमुपपन्नाः स्म शिष्यत्वेन ***(सुश्रुत ४/१)***

इह खल्वायुर्वेदनामोपांगमथर्व वेदस्यानुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोक शतसहस्र मध्यायसहस्रंच कृतवान् स्वयम्भूः ततोऽल्पायुष्यमल्पमेधस्त्वंचालोक्य नराणां भूयोष्टधा प्रणीतवान् (सु०सूत्र–६)

तस्यायुषः पुण्यतमो वेदो वेदे विदांमतः वक्ष्यते मन्मनुष्याणां लोकयो रूभयोर्हितः (चरक सू० १–४)

हिताहितं सुखं दुःख मायुस्तस्य हिताहिंतम्

मानंच तंच्च यत्रोक्तं आयुर्वेदः सउच्यते। (चरक सूत्र)

अन्यच्च-दीर्घ जीवितमन्विच्छन् भरद्वाज उपागमत्। इन्द्रमुग्रतपाः बुध्वा शरण्यममरेश्वरम्। ब्रह्मणा हियथा प्रोक्तमायुर्वेदं प्रजापतिः। जग्राह निखिले नादावश्विनौ तुपुनस्ततः। अश्विम्यां भगवान् शक्रः प्रतिपेदे हि केवलम्। ऋषिप्रोक्तो भरद्वाजस्तस्माच्छक्रमुपागमत् (चरक सूत्रंस्थान १:५)

धर्मार्थ काम मोक्षाणा मारोग्यं मूलमुत्तमम्।

रोगास्तस्यापहर्तार; श्रेयसो जीवितस्यच।

तस्मै प्रोवाच भगवानायुर्वेदं शतक्रतुः।

पदैरल्पमतिं बुध्वा विपुलां परमर्षये।

हेतुलिंगौषधज्ञानं स्वस्थातुरपरायणम्। त्रिसूत्रंशास्वतं पुण्यंवुवुधेयं पितामहः।

सोऽनन्त पारं त्रिस्कन्ध मायुर्वेदं महामतिः। यथावदचिरात्सर्वं वुवुधे तन्मना मुनिः। (चरक)

उभावप्यनादी उमावप्यनन्तौ उमावप्यलिंगौ। उमावपि नित्यौ उमावप्यन परौ उमौच सर्वगतौ। एका तु प्रकृति रचेतना त्रिगुणा वीज धर्मिणी प्रसव धर्मिण्यमध्यस्थधर्मिणी चेति। वहवस्तु पुरूषाः। चेतनावन्तो ऽ गुणाः अवीज धर्माणो ऽ प्रसवधर्माणो मध्यस्थ धर्माणश्च (सु० शरीर) १–६ इत्यनेन आदृग रूपयात्रिपथगा आयुर्वेद विद्या इति प्रमाणम्।

पथगा आयुर्वेद पद्धतिः प्रमाणम् –

ब्रह्मचर्य निवातशयनोष्णोष्णगुदकस्नान निशास्वप्न व्यायामाश्चेति सामान्यतः पथ्यक्षमाः। विसर्गादान विक्षेपैः सोमसूर्यानिला यथा। धारयन्ति जगद्देहं कफपित्तानिलास्तथा। पित्तं पंगु कफः पंगुः पंगवोमलधातवः। वायुना यत्र नीयन्तेतत्रगच्छन्ति मेघवत्।

धराधरः योगं आत

सर्वदासर्व भावानां सामान्यं बृद्धि कारणम्।
हासहेतुर्विशेषश्च प्रवृत्तिरुभयस्य तु।
कालबुद्धीन्द्रियार्थानां योगो मिथ्या नचातिच
द्वयाश्रयाणां व्याधीनां त्रिविधो हेतु संग्रहः।।

पंचामृता :–

पंच पंचक प्रकरणम् (आयुर्वेदे पंच पंचक महत्वम् तस्मात् पंचामृता आयुर्विद्या " ओषध्योऽमृत कल्पास्तु (सुश्रुत)

येषां न मृत्युः सामान्यं सामान्यंन च कर्मणाम्
कर्म पंच विधं तेषां भेषजं परमुच्यते
शीलवान् मतिमान् युक्तो द्विजातिः शास्त्रपारगः
प्राणिभि गुरूवत्पूज्यः प्राणाचार्यः सहि स्मृतः (चरक)
विद्यासमाप्तौ मिषजः तृतीया जातिरुच्यते
अश्नुते वैद्य शब्दंहिन वैद्यः पूर्वजन्मना
तस्मात् वैद्यः त्रिजः स्मृतः सुश्रुत

जाठरः प्राणिनामग्निः कायइत्यभिधीयते

यस्तं चिकित्सेत् सीदन्तं सवैकायचिकित्सकः।

अष्टांगोयम् आयुर्वेदः– शल्यं शालाक्यं काय चिकित्सा भूत विद्या कौमारभृत्यं रसायनं अगदतंत्रं वाजीकरणतंत्रम् (सु०सू०६)

आवेशश्चेतसो ज्ञानं अर्थानां छन्दतः क्रिया। दृष्टिः स्मृतिः धृतिः कान्तिः

इष्टताश्चास्य दर्शनम्। इत्यष्टविधमाख्यातं योगिनां वल मैश्वरम्।

शुद्धसत्व समाधानात् तत्सर्वमुपजायते। चरक शरीरे। इति योग सम्बन्धः।

योगे मोक्षेच सर्वासां वेदेनानामवर्तनम्।

मोक्षे निवृत्ति र्निःशेषा योगो मोक्ष प्रवर्तकः (चरक)

सत्वमात्मा शरीरंच त्रयमेतत् त्रिडंडवत्। लोक स्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्वप्रतिष्ठितम्। खादय श्चेतनाषष्ठा धातवः पुरूषः स्मृतः। चेतनाधातुर प्येकः स्मृतः पुरूष संज्ञकः। पुनश्च धातुभेदेन स चातुर्विंशतिकः स्मृतः।

मानवी संहिता–

तच्चानुग्रहार्थं प्राणिनां ब्राह्मणैः। आरक्षार्थं राजन्यैः। वृत्यर्थं वैश्यैः सामान्य तोवा धर्मार्थ काम परिग्रहार्थं सर्वैरध्येतव्यः।

दोषाः पुनस्त्रयो वातपित्त श्लेष्माणों ते प्रकृतिभूताः शरीरोपकारकाः भवन्ति विकृतिमुपपन्नाः नानाविधै र्विकारैः शरीरमपुत्तापयन्ति। तत्रदोष मेकैकं त्रयस्त्रयो रसा जनयन्ति कटुतिक्तकषायाः वातंजनयन्ति मधुराम्ल लवणास्त्वेनं शमयन्ति कटुकाम्ललवणाः पित्तं जनयन्ति मधुरतिक्तकषायास्त्वेनं शमयन्ति मधुराम्ललवणाः श्लेष्माणं जनयन्ति कटुतिक्तकषाया स्त्वेनं शमयन्ति

गुणाः (चरक)

रूक्षः शीतो लघु सूक्ष्मः चलोथ विशदः खरः

विपरीत गुणैर्द्रव्यैः मारूतः सम्प्रशाम्यति

सस्नेहमुष्णं तीक्ष्णंच द्रवमम्लं संरकटु

विपरीत गुणैः पित्तं द्रव्यैराशुप्रशाम्यति

गुरूशीत मृदुस्निग्ध मधुर स्थिर पिच्छलाः

श्लेष्मणः प्रशमंयान्ति विपरीत गुणैर्गुणाः

समदोषः समाग्निश्च समधातु मलक्रियः

प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते।

अहं हिधन्वन्तरिरादिदेवो जरारुजामृत्युहरोऽमराणाम्

शल्यांगकाद्यैरपरैरुपेतं प्राप्तोस्मिगां भूय इहोपदेष्टुम्।
(इत्यत्र गां, आद्यात् इतिप्रमाणम्)
ऊर्ध्वमूलमधः शाखं त्रिस्थूलं पंचदैवतम्
क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वै वेद सवेदवित्।
तत्र वर्षा हेमन्त ग्रीष्मेषु संचितानां दोषाणां शरद्बसन्त
प्रावृट्सुच कुपितानां निर्हरणं कर्तव्यम्।
योगादपि विषंतीक्ष्णं उत्तमं भेषजंभवेत्। भेषजंचापि
दुर्युक्तं तीक्ष्णं सम्पद्यते विषम्। (अहिमालाभां)
आदृक्-निर्विकारः परस्त्वात्मा सत्वभूत गुणेन्द्रियैः
चैतन्ये कारणं नित्यं द्रष्टा पश्यति हिक्रियाः।
तांत्रिक भावता— अधीयानो पिशास्त्राणि तंत्रयुक्तिं बिना भिषक्
नाधिगच्छंति शास्त्राणि तंत्रमुक्ता भाग्यक्षये यथा।

द्वात्रिंशत् तंत्र युक्तयः (सुश्रुत) अधिकरण निदर्शन विकल्प हेत्वा दयः तंत्रयुक्तयः (चरक)

तांत्रिकभा = तांत्रिकानां विविध क्रियाः तंत्रशास्त्रेषु वर्णिता शावरादि तंत्रेषु रोगाणापमपनयन विधानं तथा मंत्राः यंत्राणि विद्यन्ते, साभा तंत्रशास्त्रेषु तस्याः भायाः उपयोगो भवति। आयुर्वेदस्यापि अमृतसंज्ञा। धन्वन्तरिहस्तादागत इतिहासः सोयं आयुर्वेदः। सोऽयममृतः।

आधिरेव आधिका – आयुर्वेदविद्या आधीनां विषये व्याख्याति आधयः (मानसिक रोगाश्च)।

यथा वेदान्तदर्शनं वेदानां सार भूतम् तथैव वेदानां समस्त स्वास्थ्य चिकित्सा विज्ञानसार आयुर्वेदः अपिवेदान्तः। तांत्रिक भावाः (शास्त्रोक्त स्वास्थ्य प्रभायाः अवतारणमेव आयुर्वेदलक्ष्यम्।

ऋतंच सत्यं चाभीद्धात्तपसोध्यजायत इति वेदवचनात् ऋतस्य आराधिका आयुर्वेद विद्या भवति तपस्विभिरेव आयुर्वेदावतरणं कारितम् तस्मात् तेषां निरन्तर मनुसधानैः अस्य ऋतस्याविर्भावः यत्रसोयमायुर्वेदः। अद्यतने युगें तांत्रिकभा = टैक्नालोजी परमावश्यकी अतः परीक्षणादौ तुलनात्मकदृष्टिः स्वीकरणीया।

अथ चतुर्थचरणं व्याख्यास्यामः श्लोकस्य

साभा भारत भारतीय मुदिता यामानवी संहिता।

आभामिः आयुर्विज्ञान ज्ञानैः सहिता साभा। सा = त्वं हे आयुर्विद्ये? अभाः (भूतकालक्रिया) अथवा सा भा अभाः। सृष्टिकालात् आयुर्वेदविद्या प्रकाशिता आसीत्। भरतस्य = मरतमुनेः, रामभ्रातुः भरतस्य शकुन्तला पुत्रस्य भरतस्य देशोयं भारतः, अतिप्राचीनभामिः त्रिभरतैः रतः भारतः तस्यइयं भारती=भारतीयचिकित्सापद्धतिः इयं उदिता सर्वथा सर्वांगीणतया विकसिता अस्ति। भारतीय मुदिता अस्मिता अस्ति। या अमा (निशा) सा इता इदानीं परतंत्र कालीना दुर्गतिर्नास्ति। इतः आयः (लाभः) यस्याः सा। यद्यपि आयः आर्थिकलाभः पाश्चात्य पद्धतिरिव नास्ति। तथापि अयामा– नास्तियामा = रात्रिः यस्या सा तिष्ठति उदिता। मुदिताः आयामाः = यस्याः सा। आयुर्वेदः विस्तृतायामः अस्ति। या मुदिता = प्रत्येक परिस्थितौ आल्हादिनी विद्या। उदितायाम् मुदितायाँ इतायां परिस्थितौ सा आभा सर्वदा तिष्ठति जनसेवोद्देश्यत्वात् वैद्यानामात्मविश्वासात्। आनवी = इयं विदेशान् प्राप्ता विद्या। अनवी अतिप्राचीना अपिनवी अत्याधुनिकी उपयोगितायाम्। अत्र कोषे आनव : = विदेश इति तस्मात् आनवी। मानवी = मनुमारम्य आनवी = विदेश यात्रिणी विद्या। मानवानामियं विद्या मानवमात्रविद्या। संहिता– सम्यक् हितकारिणी विद्या जगद्धिताय प्रवर्तिता यथोक्तम्–

हिताहितं सुखं दुःख मायु स्तस्य हिताहितम्
मानंच तच्चयत्रोक्तमायुर्वेदः स उच्यते।
ऋषयश्च भरद्वाजात् जगृहुस्तं प्रजाहितम्
दीर्घ मायुश्चिकीर्षन्तो वेदं वर्धनमायुषः।

अथभूतदयां प्रति इतिवचनानि तस्मात् सा न मानवी आनवी अपितु आमानवी– समस्तमानवताहितकारिणी सा भारत भारतीयानां मुत् = प्रेमप्रतीका अस्ति रतभारतीयमुदिताय – रतानां आयुर्वेदोपदेशेषु रतानां भारतीयानां मुदिताय, रतानां चिकित्साम्यासे लग्नानां वैद्यानां निममित चिकित्सारतानां रोगिणां वा मुदिताय स्वास्थ्य दानाय नीरोगकरणाय एषा आयुर्वेद पद्धतिरस्ति। भारतानां देवानां ऋषीणां इयं भारतीया वाणी लघुत्रयी वृहत्त्रयी स्वरूपा विद्या।

भारतवासिन एव भारता कथ्यन्ते यथा महाभारते–

अपरे पंच पूर्वेच भारता इतिविश्रुताः। भारत स्वान्ववाये हि देवकल्पा

महर्षयः।। भारतानां भारद्वाजाग्निवेशात्रेयादीनां इयंवाणी। भायां अनुसन्धान तत्वप्रकाशेरता भारताः भायांरताः वा इति

भारतानां देवानां दिव्यानां भारती = आग्नेयी भारतः अग्निवाची यज्ञविद्या यज्ञस्वरूपा इयं विद्या यज्ञैरपि पर्यावरण शुद्धिः रोगापनयन विधानं करोति यज्ञतः चिकित्सा संजायते यज्ञविद्या अपि भारत भारती। (भारतोग्निरिति उपनिषद्) इयं उदिता। सूर्यवत् पश्चिमेऽ स्तंगच्छति सूर्यास्तदिशा पश्चिमा। अतः पाश्चात्यौषधयः नउदिताः= अस्तप्रायाः भारतस्य कृते। एषा रसरसायनैः सदाचार रसायनेन यज्ञेन, ज्योतिषा, संगीतेन, स्वर विज्ञानेन, योगेन, मुद्राविज्ञानेनः लाभप्रदा। पाश्चात्यावश्यक परीक्षण यंत्रादेरपि चिकित्सासमर्थिका विद्या। एवं विविधाः आयामाः आयुर्वेदस्य न संकुचिता मनोवृतिः अपितु विशालत्वम्। विज्ञानं नकस्यचित् देशस्य भवति अपितु मानवताया जगतःउपयोगाय भवति। आयुर्वेदस्तु आमानवी मानवीया चिकित्सा पद्धति र्नात्र सन्देहलेशः। अतः तान् वेदान् = चिकित्साज्ञानानि सर्वेयूयम् वैद्याः अवत रक्षत। आयुर्वेदे तांत्रिकी भावता = प्रौद्योगिकी (टैक्नौलॉजी) आनेया। एषा विद्या रणमतां– रोगिषुयुद्धतां न वाञ्छति। स्वल्पीयसि अपि रोगेसति पाश्चात्यद्राक्तराः अनेक परीक्षण प्रक्रियासु प्रवेश्य संग्रामं कारयन्ति एतया रणपद्धत्या रोगिणः विशेषापदं मन्यन्ते कदाचित् क्षतिरपि भवति। युद्धस्तरेण चिकित्सा कार्या परं रोगिणा सह परीक्षणयुद्धः न कर्तव्यः। असाध्यरोगेषु यदि स्यान्न तदा दोषः। अत एव वानस्पतिकायुर्विद्या सहजा सरला, प्राकृतिकी, अनुकूला विद्यते। उदिताय = स्वस्थायापिमुत् = प्रीति प्रदायिनी। मुदिताः = स्वास्थ्य– आयामाः = ओतप्रोत विस्ताराः तस्यांसन्ति। अनेकविधायामसंयुता इयम् भारत भायाः = भारतमातुः आरती आर्तिक्यसदृशी अस्ति भारत-भारः – उत्तरदायित्वं (स्वस्थरक्षणस्य आतुरस्य रोग प्रशमनस्य) तनोति इतिभारतः = आयुर्वेदः, तस्य हे भारति, पद्धते यथा पुरा अभाः तथा (अग्रे वर्द्धस्व त्वम् प्रगतिशीला भव) मुदिताय उदिताय समर्था असि सा आभा अस्ति। संहिता अतिसमीपस्था अस्मदीयास्तिन कुतश्चित् आयातिता (परः सन्निकर्षः, संहिताइति व्याकरण वचनात्) संहिता समीपस्था नानौषधमिदं किंचित् तथा तज्जं तस्यौषधं हितम् अतः हितकारिणी अस्ति। संहिता = एकताभावः अस्ति। इयं आयुर्वेद (विद्या) मानवी संहिता = मानवमात्र शास्त्रम् तथा विश्व चिकित्सापद्धतिः।

चतुर्थचरण पदच्छेदाः

सा भा, आभा, साभा अभाः (क्रिया) भारत भारतीय भारतभारति (हे भारत हे भारति सम्बोधनमपि) इयम् उदिता, उदिताय उदिताया उदितायाम्। भारतभारतीयमुदिता। मुत्। मुदिता, मुदिताय मुदितायाः मुदितायाम्। मुदितायामा, उदितायामा। या + अमा इता। इता यामा। या। आमानवी, आनवी, अनवी, नवी संहिता। सं + हिता। भारतभा+ आरती। आरती + इयम्+ उदिता+ आयामा। या+ अमा, मा। इता =गता, (प्राप्तापिच) रतभारतीयमुदिताय अय (क्रिया) मुदिता + अय।

सा+ भा+ आभा (आभामिः आभयावासहिता) सा + आभाभा। सा+ भाभा। (सात्वं) अभाः (क्रिया) आर (प्राप) क्रिया। साभा+ आभा। आभार + त। आभारत, भा+रत। साभाभा। रतभा। भार+त। भारतभा। रतीयम् भारतीयम्। भारतीय। अमानवी = दैवी अपि मानवी। आनवी अनवी। नवी उदिता + आप। आय (क्रिये) इता आया। अभाः (क्रिया) मुदिता अयाः (क्रिया)।

इति चतुश्चरणानां पदच्छेदाः एवं वैयाकरणी व्याख्या समाप्ता

श्लोक में कथित त्रिस्कन्ध आयुर्वेद का रहस्य

सोऽनन्तपारं त्रिस्कन्ध मायुर्वेदं महामतिः
एतावदचिरात् सर्वं वुवुधे तन्मना मुनि : (चरक)

समस्त आयुर्वेद विज्ञान इन्ही तीन कन्धों (त्रिस्कन्ध) पर खड़ा है। प्रत्येक छात्र व्याख्याता एवं चिकित्सक को इन त्रिस्कन्धों का ज्ञान होना आवश्यक है। यही आयुर्वेद का सामान्य विज्ञान है तथा मौलिक सिद्धान्त का स्वरूप है। त्रिस्कन्धों के आसपास ही आयुर्वेद का चक्र घूमता है। इनका विस्तार से अध्ययन वा स्मरण कर लेना चाहिए। यहाँ सामान्य विज्ञान की संक्षिप्त जानकारी दी जा रहीं है। इतना कंठस्थ होने से आयुर्वेद का ज्ञान स्वतः सम्पन्न हो जावेगा तथा इसी त्रिस्कन्ध के ज्ञान, विस्तार से विश्व में आयुर्वेद दर्शन का विकास किया जा सकता है यही आयुर्वेद विज्ञान की भूमिका है– यही आयुर्वेद का संविधान है। आगे त्रिपथगा का वर्णन पढ़िये–

१. त्रिगुण – सत्व, रज, तम अधिष्ठाता देवता क्रमशः विष्णु ब्रह्मा,

शंकर इन्ही त्रिगुणों के समूह का नाम ही प्रकृति है। गुणों से ही स्वभाव का नाम भी प्रकृति है। गुणों से ही स्वभाव प्रकृति, आहार बिहार का ज्ञान हो जाता है। सभी कुछ त्रिगुणात्मक पांचभौतिक है। मनवुद्धि अहंकार भी सात्विक राजस तामस हैं, जब त्रिगुण ठीक उचित मात्रा में रहते है तो प्रकृति बनती है विषम होने पर विकृति। वातपित्त कफ के भी यही उत्पादक हैं।

२. त्रिदोष या त्रिधातु :– वात, पित्त, कफ

३. त्रिसूत्र :– हेतु, लिंग, औषधि का ज्ञान

४. त्रिविध दोष गति :– चय, प्रकोप प्रशम

५. त्रिविधचर्या :– ऋतुचर्या, दिनचर्या, रात्रिचर्या

६. त्रिविध शरीर भाव :– दोष, धातु, मल

७. त्रिविध शरीर :– उत्तम, मध्यम, अधम

८. त्रिविध दोष स्थान :– आमाशय, पक्वाशय, उदर

९. त्रिविध दोष प्रवाह :– ऊर्ध्व, अधः तिर्यक्

१०. त्रिविध हेतु संग्रह :– अतियोग, अयोग, मिथायोग

११. त्रिविध तापः– दैहिक, दैविक, भौतिक

१२. त्रिविध दुःख :– आधि, व्याधि, उपाधि

१३. त्रिविध रोग :– शरीर, मानस, आगन्तुक

१४. त्रिविध रोग परम्परा :– वंशानुगत, दोषज, प्रज्ञापराध

१५. त्रिविध रोगस्थिति :– साध्य, कृच्छ्रसाध्य, असाध्य

१६. त्रिविध व्याधि विकल्प :– आग्नेय, सौम्य, वायव्य

१७. त्रिविध रोग मार्ग :– कोष्ठ, शाखा, मर्मास्थिसन्धि

१८. त्रिविध प्रकृति :– वातज, पित्तज, कफज

१९. त्रिविध रोग कारण :– असात्म्येन्द्रियार्थसंयोग, प्रज्ञापराध परिणाम

२०. त्रिविध हितानुबन्ध :– पथ्य, अपथ्य, अनुपान

२१. त्रिविध बल :– सहज, कालज, युक्तिकृत

२२. त्रिविध औषधिक्रम :– अन्तः परिमार्जन, वहिः परिमार्जन, शस्त्रप्रणिधान

२३. त्रिविध उपाय :– मणि, मंत्र, औषधि

२४. त्रिविध अग्नि :– सम, मन्द, तीक्ष्ण

२५. त्रिविध व्याधि :– एकदोषज, द्विदोषज, सान्निपातिक

२६. त्रिविध औषधि परिज्ञान :– नाम, रूप, गुण

२७. त्रिविध कर्म :– उत्क्षेपण, अपक्षेपण, आकुंचन (इन्ही का स्वरूप पंचकर्म है)

२८. त्रिविध आम चिकित्सा :– लंधन, पाचन, संशमन

२९. त्रिविध औषधि :– दैव व्यपाश्रय, युक्तिव्यपाश्रय, सत्वावजय

३०. त्रिविध रोग परीक्षा :– दर्शन, स्पर्शन, प्रश्न

३१. त्रिविध अपतर्पण :– लंघन, लंघनपाचन, दोषावसेचन

३२. त्रिविध पदार्थ ज्ञान :– द्रव्य, गुण, कर्म

३३. त्रिविध शल्य साधन :– यंत्रविधि, शास्त्रावचरण, अनुशस्त्र प्रयोग

३४. त्रिविधऋतुकाल :– हेमन्त, ग्रीष्म, वर्षा

३५. त्रिविध मान :– हीन, सम, अधिक

३६. त्रिविध रोग विशेष विज्ञान :– आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमान

३७. त्रिविध दोषज रस समूह :– १.मधुराम्ल लवण २.मधुर तिक्तकषाय ३.कटुतिक्तकषाय

३८. त्रिविध क्षारकर्म :– छेदन, भेदन, लेखन

३९. त्रिविध काल :– पूर्वान्ह, मध्यान्ह, अपरान्ह

४०. त्रिविध मिषक्कर्म :– परीक्षण, औषधि, चिकित्साक्रम

४१. त्रिविध अंगविभाजन :– ऊर्ध्वजत्रुगत, मध्यगत, शाखागत

४२. त्रिविध भिषक् :–छद्मचर, सिद्धसाधित, वैद्यगुणसम्पन्न

४३. आयुर्वेद विज्ञान :– हिताहित, सुख-दुःख, आयुर्मान

४४. त्रिविध रसायन :– कुटीप्रवेशि, वातातपिक, आचार रसायन

४५. त्रिविध देश :– आनूप, जांगल, साधारण

४६. त्रिविध सृष्टि :– वहिरन्तश्चेतन, अन्तश्चेतन, अचेतन

४७. त्रिविध अन्तः करण :– अव्यक्त, महान, अहंकार

४८. त्रिविध वेगधारण :– मन, वाक्, कर्म

४९. त्रिविध हितसेवन :– आहार, आचार, चेष्टा

५०. त्रिविधाहारगति :– आम, विपच्यभान, पक्व

५१. त्रिविध दोष शामक पदार्थ :– तैल (वात) सर्पि (पित्त) मधु (कफ)

५२. त्रिविध तप :– शारीर, मानस, बाङ्न्मय

५३. आहार त्रिविधः– मात्रावत्व, अमात्रावत्व, अतिमात्र
५४. त्रिविध कुक्षीय :– स्थूल, द्रव, दोष
५५. स्वास्थ्य के तीन स्तम्भ :– आहार, निद्रा, बह्मचर्य
५६. परमायु के कारण :– प्राकृतिकगुण, आत्मसम्पत्, सात्म्योप सेवन
५७. आयुर्वेदिक दर्शन :– योग, सांख्य, वैशेषिक
५८. चिकित्सा स्तम्भ :– संत्व (मन) आत्मा, शरीर
५९. त्रिविध ज्ञान :– अध्ययन, अध्यापन, तद्विद्य सम्भाषा
६०. त्रिविध इन्द्रिय :– ज्ञान, कर्म, उमयात्भक
६१. त्रिविध धमनी गति :– ऊर्ध्व, अधः, तिर्यक्
६२. शल्यकर्म :– पूर्वकर्म, प्रधान कर्म, पश्चात्कर्म
६३. त्रिविधभर्म :– वस्ति, हृदय, मूर्धा
६४. बृहत् त्रयी :– चरक सुश्रुत बाग्भट
६५. लधुत्रयी :– माधवनिदान, भावप्रकाश, शारंगधर
६६. त्रिविध औषधि निर्माण :– अर्क आसव, काष्ठादि, रस रसायन
६७. त्रिविध भेषज साफल्य :– देश, काल, मात्रा
६८. त्रिविध एषणा :– प्राणैषणा, वित्तैषणा, परलोकैषणा
६९. त्रिविध अन्तश्चेतन :– वनस्पति, वानस्पत्य, औषधि
७०. चिकित्सा सूत्र :– सामान्य, विशेष, धातुसाम्यक्रिया
७१. त्रिविध आहार :– सात्विक, राजस, तामस
७२. इतिहास :– ब्राहम (ब्रह्मा) दैव (इन्द्र अश्विनी) आर्ष (महर्षि)
७३. त्रिविध नाड़ी :– इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना
७४. त्रिविध शरीर :– स्थूल, सूक्ष्म, कारण
७५. त्रिविध द्रव्य :–जांगम औद्भिद पार्थिव
७६. त्रीणि द्रव्याणि नात्युपयुंजीत :– पिप्पली, क्षांर, लवणम्
७७. त्रिविध अभाव :– प्रागभाव, प्रध्वंसाभाव, अत्यन्ताभाव
७८. त्रिविध जगत् धारण :– विसर्ग आदान विक्षेप (सोम, सूर्य, अनिल)
७९. त्रिविध प्रकार द्रव्य :– दोषशमन, त्रिधातु प्रदूषण, स्वस्थहित
८०. त्रिविध अंजन :– कालाञ्जन, रसांजन, पुष्पाज्जन
८१. त्रिफला :– आमला हरीतकी, विभीतकी
८२. त्र्यूषण (त्रिकुट) सोंठ मिर्च, पीपर

८३. त्रिविध आयुष्य :– पूर्ण, अल्प, दीर्घ

८४. त्रिविध आमदोष :– विषूचिका, अलसक, पाण्डु

८५. त्रिविधदृश्य :– प्रकृति, विकृति, आकृति

८६. त्रिविध आमचिकित्सा :– लंधन, पाचन, संशमन

८७. त्रिरोग विज्ञानीय (चरक) (अर्थानां कर्मणः कालस्य अयोगातियोगमिथ्यायोगाः इहखलुत्रय उपस्तम्माः त्रिविधं बलम् त्रीण्यातनानि त्रयोरोगमार्गाः त्रिविधाः भिषजः त्रिविधमौषधम् इति त्रिरोग विज्ञानीयम्)

८८. त्रिविध पुरुष :– चेतनाधातु, षट्धातुज, चातुर्विंशतिक (राशि पुरुष)

८९. त्रिविध स्वभाव :– हीन, मध्यम, उत्तम

९०. त्रिविध कर्म :– संचित, प्रारब्ध, क्रियमाण

९१. त्रिविध अनुभाव :– पूर्ववत्, शेषवत् सामान्यतोदृष्टं

९२. त्रिविध स्पर्श :– उष्ण, शीत, समशीतोष्ण

९३. त्रिविध लेप :– प्रलेप, प्रदेह, आलेप

९४. त्रिविध भैषज :– तैजस, तरल, काष्ठादि (चूर्ण बटी आदि)

९५. आयुर्वेद शास्वत भाव :– १.अनादित्व २.स्वभावसिद्ध लक्षण ३. भावाभावनित्यता

९६. त्रिविधायुर्वेद सेवा :– १.नात्मार्थम् २.नापिकामार्थम् ३.अथभूतदयां प्रति

९७. दोषावस्था :– १.क्षीण २.वृद्ध ३.सम

९८. त्रिविध धातु गुण :– स्मृतिनिर्देशकारित्व अभीरुत्व रोगज्ञापकत्व

९९. रोगनिवारण विधि :– १.संशोधन २.संशमन ३.निदान परिवर्जन

१००. त्रिविध आयुर्वेद ज्ञान :– १.गुरू परम्परा २.शास्त्र परम्परा ३.अभ्यासानुभव

१०१. त्रिविध विष :– १.स्थावर २.जंगम ३.गर

१०२. आयुर्वेद संज्ञा :– १.हिताहित २.सुखा सुख ३.प्रमाणा प्रमाण

१०३. त्रिविध वन्ध :– १.गाढ़ २.सम ३.शिथिल

१०४. पंचकर्म पूर्व विधान :– १.स्नेहन २.स्वेदन ३.कर्मविधान

१०५. त्रिविध कृमि चिकित्सा :– १.अपकर्षण २.प्रकृति विधात ३.भावानुपसेवन

१०६. दोषनिर्हरण काल :– १.ग्रीष्म २.हेमन्त ३.शरद (सुश्रुत)
१. श्रावण २. आग्रहायण ३. वैशाख (चरक)

१०७. त्रिविधाहंकार :– १.वैकारिक २.तैजस ३.भूतादि

१०८. त्रिविध आनन्द :– १.सत् २.चित ३.आनन्द

१०६. त्रिविध जीवगति :– १.गर्भस्थ २.जन्म ३.पुनर्जन्म

११०. त्रिविध शरीर स्थिति :– १.स्वस्थ २.आतुर ३.मरणासन्न

१११. त्रिविध शरीर स्वास्थ्य :– १.व्याधि २.जरा ३.मृत्यु (काल अकाल)

११२. त्रिविध शरीर भाव :– १.बाल २.तरुण ३.वृद्ध

११३. शरीर सौष्ठव :– १.यम २.नियम ३.संयम

११४. त्रिविध ज्ञान :– १.महा विद्या २.अपराविद्या ३.पराविद्या

११५. त्रिविध विशेषयोग :– १.धारणा २.ध्यान ३.समाधि

११६. त्रिविध सामान्य योग :– १.आसन २.प्राणायाम ३.प्रत्याहार

११७. त्रिविध पूर्ण योग :– १.ज्ञान योग २.कर्मयोग ३.भक्ति योग

११८. त्रिविध वर्ग :– १.धर्म २.अर्थ ३.काम

११६. त्रिविध काल गति :– १.भूत २.वर्तमान ३.भविष्य (पूर्वान्ह, अपरान्ह, रात्रि)

१२०. त्रिविध कारक :– १.कर्त्ता २.कर्म ३.फल

१२१. त्रिविध सन्ध्या :– १.प्रातः २.मध्यान्ह ३.सायम्

१२२. त्रिविध कर्म :– १.स्वार्थ २.धर्मार्थ ३.परमार्थ

१२३. त्रिविधेन्द्रिय :– १ ज्ञानेन्द्रिय २ कर्मेन्द्रिय ३ उभयात्मक मन

१२४. सर्वत्रिविध :– १ सात्विक २ राजस ३ तामस (त्रिगुणातीत परमात्मा को छोड़कर)

१२५. त्रिविधज्ञेय १ ऐहिक२ लौकिक ३ पारलौकिक

१२६. त्रिविध चिकित्सा :– आसुरी २ मानवी ३ दैवी क्रमशः शास्त्र, औषधि, रसरसायन (भैषज्य रत्नावली)

१२७. त्रिविध रूप :– सामान्य, विशेष, साम्य

१२८. त्रिविध ज्वरः– तरूण, मध्य, जीर्ण

१२६. त्रिमद :– बिडंग मोथा, चित्रक

१३०. त्रिक्षार :– सज्जीरवार, यवक्षार, टंकणक्षार

१३१. त्रिजात :– दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपत्र

१३२. त्रिशक्ति :– इच्छाशक्ति, ज्ञानशक्ति, क्रियाशक्ति

१३३. मुख्यसंस्थान– पाचन संस्थान, श्वास संस्थान रक्त संस्थान

आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति सिद्धान्तानुसार जहां त्रिपथगा है। वहां क्रियात्मक रूप से पञ्चामृता भी है इसमें ५–५ अमृत तत्व ज्ञान भरा हुआ है। इनके स्वाध्याय करने से आयुर्वेद की अन्तरंगावली स्पष्ट हो जाती है। इनका विवरण भी आपको यथास्थान वृहत्त्रयी (चरक सुश्रुत वाग्भट) में मिल जावेगा। यहां केवल पंचामृता की नामावली मात्र दी जा रही है इनके अर्थ हृदयंगमकर चिकित्सा में प्रवेश सरल हो जाता है।

श्लोककथित पाँच अमृततत्त्व (पंचामृता आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति)

आयुर्वेद पंचामृत :-

१. पंचतन्मात्राः– १.शब्द २.स्पर्श ३.रूप ४.रस ५.गन्ध

२. पंच महाभूत :– १.आकाश २.वायु ३.तेज ४.जल ५.पृथ्वी

३. पंच ज्ञानेन्द्रियः– १.नेत्र २.कर्ण ३.जिह्वा (रसना) ४. घ्राण (नासिका) ५. पृथ्वी

४. पंचकर्मेन्द्रियः– १. हस्त २.पाद ३. मूत्रेन्द्रिंय ४.मलेन्द्रिय (गुदा) ५.मुख

५. मन के पंचकर्मः– चिन्त्य, विचार्य, अहम्, ध्येय, संकल्प

६. पंचकोषः– १.अन्नमय कोष २.मनोमय ३.प्राणमय ४.विज्ञानमय ५.आनन्दमय

७. पंचवातः– प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान

८. पंचपित्तः– भ्राजक, साधक, पाचक, रंजक, लोचक

९. पंचकफः– क्लेदक, श्लेषक, भेदक, तर्पक, रोचक

१०. पंचनिदानः– १.निदान २.पूर्वरूप ३.लिंग ४.उपशय ५. सम्प्राप्ति

११. पंचकर्म :– वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, शिरोविरेचन

१२. पंचमर्म :– मांस, शिरा, स्नायु, अस्थि, सन्धि

१३. पंचस्रोत :– १.प्राणवह २.उदक ३.अन्न ४.रस ५.रक्त

१४. पचांग :– १.मूल २.पुष्प ३.फल ४.पत्र ५.बीज

१५. पंच कामबाण :– अरविन्द, अशोक, आम्र, नवमलिका, नीलोत्पल

१६. पंच क्वाथ :– कल्क, श्रृत, शीत, फान्ट, कषाय

१७. पंचतिक्त :– निम्ब, अमृता, विष, पटोल, दीधिका

१८. पंचकषाय :– जम्बू, शाल्मली, वाटयाल, वबूल, बदर

१९. पंच प्रभाव :– रस, गुण, वीर्य, विपाक, प्रभाव

२०. पंच सदापथ्य :– १.ब्रह्मचर्य २.निवातशयन ३.उष्णोदकपान ४.निद्रा ५. व्यायाम
२१. पंच क्लेश :– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष, अभिनिवेश
२२. पंच कर्मेन्द्रिय विषय :– वचन, आदान, आनन्द, विसर्ग, विहरण
२३. पंचसम्प्राप्ति :– संख्या, प्राधान्य, विधि, विकल्प, बलकाल
२४. पंचामृतौषधि :– विजया, दूर्वा, विल्व, निर्गुण्डी, तुलसी
२५. अन्यत्र :– गुड़वेल शताब्दी, मूसली, गोक्षुरू, शुंण्ठी
२५. पंच सिद्धौषधि :– तैलकन्द, सुधाकन्द, क्रोडकन्द रूदन्तिका, सर्पाक्षी
२६. पंचगव्य :– दूध, दही, घी, गोमूत्र, गोमय
२७. पंचामृत :– १.दुग्ध २.दधि ३.घृत ४.मधु ५.शर्करा
२८. पंचसूरण :– सूरन, अत्यम्लपर्णी, काण्डीर, मालाकन्द, जमीकंद
२६. पंच ज्ञाने न्द्रिय विषय :– श्रवण, दर्शन, गन्ध, आस्वाद, स्पर्श
३०. पंच सुगन्धि :– कपूर, कल्लोल, लवंग, गुवाग, जातीफल
३१. पंचबीज :– कर्कटी, त्रपुष, दाडिम, पदमबीज, वानरीबीज
३२. पंचदीर्धक :– वाहु, नेत्र, कुक्षि, नासा, स्तनान्तर
३३. शरीर पंचक :– ऊर्ध्वमूल, अधःशारव, त्रिस्थूल, पंचदैवत, क्षेत्रज्ञाधिष्ठित
३४. पंचपल्लवः– पनस, आम्र, पिप्पल, बट, बकुल
३५. पंचबटी :– अश्वत्थ, विल्व, धात्री, बट, अशोक
३६. पंचमूल :– लघुपंचमूल, वृहत्पंचमूल, तृणपंच मूल, जीवकादि पंच मूल, पुनर्नवादि पंचमूल
३७. पंचभंगा :– देवदाली, शमी, भांगरा, निर्गुण्डी, तमाल पत्र
३८. पंचवल्कल :– न्यग्रोध, उदुम्बर, अश्वत्थ, प्लक्ष, वेतस
३६. पंचधान्य :– धान्य, मुद्ग, तिल, यव, माष
४०. पंचपंचक :– पंचेन्द्रियाणि, पंचेन्द्रियद्रव्याणि, पंचाधिष्ठानानि, पंचेन्द्रियार्थाः पंचेन्द्रिय वुद्धयोभवन्ति पंचपंचक मेतत्।
४२. पंचयम :– सत्य, अस्तेय, शौच, अहिंसा, अपरिग्रह
४३. पंचावयवः– प्रतिज्ञा हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन
४४. पंचरत्न :– नीलम, वज्रक, पदमराग, मौक्तिक, प्रवाल
४५. पंचांगुलि (मुद्रा) अंगुष्ठ, कनिष्ठिका, अनामिका, मध्यमा, दीर्घा
४६. पंचाग्नेय शरीरी :– १.तेज, २.अग्नि, ३.क्रोध, ४.ऊष्मा, ५.चक्षु

४७. पंचबल :— १.आत्म बल २.बुद्धि बल ३.मनोबल ४.शरीर बल ५.धनबल

४८. पंचमहा व्रत (पूर्णनैरोग्य साधन) :— सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय, शौच

४९. पंचसुख :— १.आत्मा सुख २.चित्तसुख ३.शरीर सुख ४.परिवार सुख ५.सत्ता सुख

५०. पंचमोक्ष :— १. व्याधिमोक्ष, २. अज्ञानमोक्ष, ३. दारिद्रय मोक्ष, ४. दुर्व्यसन मोक्ष, ५. आत्म मोक्ष (मुक्ति)

५१. पंचविद्या :— १. आयुर्वेद २. योग ३. ज्योतिष ४. पराविद्या ५. अपराविद्या

५२. पंच चिकित्सा :— १. काय २. मन ३. बुद्धि ४. प्राकृतिक ५. दैवी

५३. पंचचिकित्सा साधन :— १. वैद्य २. औषधि ३. उपचारक ४. पथ्य ५. निरन्तरता

५४. पंचात्मक रोग ज्ञान :— १. निदान २. औषधि ३. रोग ४. मात्रा ५. नाड़ी

५५. पंच परिचय :— १. वनस्पति २. औषधि ३. रोग ४. रोगेतिहास ५. प्रकृति

५६. पंच प्रदूषण :— १. मन प्रदूषण २. जल वायु प्रदूषण ३. कृमि ४. वातावरण ५. संक्रमण (वाह्य प्रदूषण)

५७. पंच परीक्षण :— १. नाड़ी २. मलमूत्र ३. रक्त ४. जिव्हा ५. संस्थान (हृदयादि)

५८. पंचौषधि प्रयोग :— १.आसव अरिष्ट २.क्वाथ, रस प्रास ३.जड़ी बूटी चूर्ण वटी सत्व क्षार मस्म आदि ४.तैल ५.रसरसायन

५९. पंचदेव :— १. गणेश २. भवानी ३. ब्रह्मा ४. विष्णु ५. महेश

६०. पंचतैजस :— सूर्य, चन्द्र, अग्नि, विद्युत, अहंकार (पित्त क्रोध) (ऊष्णोत्पादक)

६१. पंचविधरोगोत्पादन :— १. वात २. पित्त ३. कफ ४. सन्निपात ५.अनुचित विषाक्त आहार

६२. पंचधारा :— १. रस २. जल ३. तेलघृत ४. विद्युत ५. वस्ति

६३. आरोग्य पंचसकार :— १. समता (धातुसाम्य) २. सदाचार ३.सत्संग ४. सन्मार्ग ५. सत् आहार

६४. मनोरोग निवृति :– १. ज्ञान २. विज्ञान ३. धैर्य ४. स्मृति ५.समाधि

६५. पंचनियंत्रण :– १. हृदयगति २. मस्तिष्क ३. श्वास ४. उपद्रव (मूर्च्छा मलावरोध, अतिसार आदि) ५. उदरगत (प्लीहा वृक्क आदि)

६६. पंचयात्रा :– १. अन्तर्यात्रा २. वहिर्यात्रा ३. मनोयात्रा ४ जगत् यात्रा ५ महायात्रा

६७. जनपदध्वंसकारण :– १. दूषित देश २. जल ३. वायु ४. आकाश ५. अधर्म

६८. पंचरोगोत्पादक कारण :– १. वाहय प्रदूषण २. दोषधातु वैषम्य अन्तः प्रदूषण ३. कृमि जीवाणु ४. संक्रमण ५. आगन्तुक (दुर्घटनादि ग्रहदोष)

६९. पंचकृपा :– १. परमात्मा कृपा २. आत्म कृपा ३. चिकित्सक कृपा ४. परिचारक कृपा. ५. साधन कृपा

७०. पंचधारस (पारद) पूजा :– भक्षण, स्पर्शन, दान, ध्यान, अर्चना

७१. पंच बला :– बला, नागबला, महाबला, अतिबला, राजबला

७२. पंच कोल :– पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, नागर (शुंठी)

७३. पंच शरीर भाव :– १. शरीर पुष्टिकर भाव २. कालयोग ३ स्वभावसंसिद्धि ४. आहार सौष्ठव ५. अविघात

७४. पंचान्यकर्म :– लंघन, वृंहण, रूक्षण, स्नेहन, स्वेदन

७५. पंच व्यायाम :– १. शारीरिक २ मानसिक ३. बौद्धिक ४ यौगिक ५. सहजभ्रमण

७६. पंचत्व :– (पंचभूतावशेष) पृथ्वी जल तेज वायु आकाश को अपने में मिलाना (जीवन समाप्ति)

७७. शारीरिकतप :– देवद्विज पूजन, शौच, आर्जव, ब्रह्मचर्य, अहिंसा

७८. वचनतप :– अनुद्वेगकर, सत्यप्रियहित, स्वाध्याय, अभ्यास

७९. मानसिक तप :– प्रसाद, सौम्यत्व, मौन, आत्मनिग्रह, भावशुद्धि

८०. परमात्मा के गुण :– सृष्टि, स्थिति, संहार, तिरोभाव, अनुग्रह

८१. पंच प्रमाण :– प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, आप्तोपदेश, युक्ति

८२. पांच पदार्थ :– रस, गुण, वीर्य, विपाक, शक्ति (भावमिश्र)

८३. पंचाम्ल :– बेर, अनार, इमली, अम्लवेतस, मातुलुंग

८४. बृहत् पंचमूल :– १. विल्वादिपंच मूल २. वलामूल ३. रास्ना ४. कुल्थी

५. पोहकर मूल (वातनाशक)

८५. पंचलवण :– सैधव, सौवर्चल, बिड उदि्भ, सामुद्र

८६. पंचतृण :– कुश, काश, दर्भ, शर, इक्षु

८७. पंच :– (क्षीरीवृक्ष) बट, गूलर पीपल, वेतस, प्लक्ष

८८. द्राक्षा पंच क्वाथ :– द्राक्षा, बड़ी हरड़, पित्त पापड़ा, मोथा, कुटकी (पित्तज्वर)

८९. पंचतिक्त क्वाथ :– छोटी कटेरी, गिलोय, सौंठ, पुष्कर मूल, चिरायता (ज्वर नाशक)

९०. पंचज्वर :– वात, पित्त, कफ, सन्निपात, आम

९१. मुस्तादि पंच क्वाथ :– मोथा, पित्त पापड़ा, दुरालभा, गिलोय, सोंठ (वात ज्वर अरूचि)

९२. पंचमूली क्वाथ :– विल्व, अरणी, श्योनाक (सोना पाठा) गम्भारी पाटल (वातज्वर)

९३. आरोग्य पंचक :– बड़ी हरड़, अमलतास का गूदा, कुटकी, निशोथ, आमला (जीर्णज्वर नाशक, पाचक)

९४. गुडूच्यादि पंचक्वाथ :– गिलोय, अनन्तमूल मुनक्का सौंफ, पुनर्नवा (मलमूत्र अवरोध में)

९५. मधुमेहहर पंचक :– गुड़मार, विल्वपत्र, जामुनगुठली, आमगुठली, निम्वपत्र (डाइविटीज)

९६. पंचजीवनीयगण :– अष्टवर्ग, माषपर्णी, मुद्गपर्णी, जीवन्ती, मधुयष्टि (समभाग) शक्तिप्रद

९७. पंचामृत रस :– १. दूर्वा २. तुलसी ३. विल्वपत्र ४. आर्द्रक ५. पुदीना (सर्वरोग)

९८. पंचामृत धारा :– १. पिपरमेन्ट २. कपूर ३. अजवाइन सत्व ४. लौग, ५ पुदीना (मन्दाग्नि, हैजा, वमन)

९९. विल्व पंचक क्वाथ :– शालपर्णी, पृश्निवर्णी, बला, बेलगिरी, अनार छिलका (अतिसार में)

१००. पंचमूलीतक्र :– लघु पंच मूल, बलामूल, सौंठ, धनियां, कमल (आमातीसार)

अमृता औषधियाँ :– रुदन्ती, लक्ष्मणा सोमवल्ली, हरीतकी, आमला,

तुलसी इन्द्रवारूणी, वनमुद्ग, वराहीकन्द, गुडूची, तुलसी मागधी, ज्योतिष्मती, गोरक्ष दुग्धा, अतिविषा, रक्तत्रिवृत, बच, दूर्वा जटामांसी, द्राक्षा, भल्लातकी, अर्जुनत्वक् सतावरी, सर्पगन्धा, मंजिष्ठा, हरिद्रा, विधारा, क्षीरकाकोली, चित्रक, अश्वगन्धा, पुनर्नवा, घृतकुमारी ओषध्यामृतकल्पा, (एताः अमृतसंज्ञका आयुर्वेदे)

संक्षेप में हिन्दी भावार्थ

संस्कृत व्याख्या में जितना विस्तार से विशद वर्णन किया गया है, इतना हिन्दी में करना असम्भव है परन्तु फिर भी संक्षेप में भावार्थ लिखने का प्रयास किया जा रहा है –

श्लोक के *प्रथम चरण का भावार्थ :-*

आयुर्वेद विद्या है क्योंकि विद्या के समस्त अर्थ आयुर्वेद में ही घटित होते हैं। संस्कृत में विद्धातु सत्ता, ज्ञान, लाभ, विचार चार अर्थो में है आयुर्वेद की अपनी सत्ता है, ज्ञान है, लाभ है तथा आयु के विषय में सम्पूर्ण विचार भी किया गया है। विद्या की वास्तविकता यह भी है कि ''सा विद्या या विमुक्तये'' जो विशेष अर्थात रोग, दुर्व्यसन, मोह, दोष दरिद्रता से मुक्ति दिला सके जिसमें सर्वांगीण विकास की शक्ति हो वही विद्या कहने योग्य है। सब विद्याओं में कोई न कोई विमुक्ति का साधन होता ही है, परन्तु आयुर्वेद में सर्वतोमुखी विमुक्ति है। यहाँ तक कि '' शरीर माद्यं खलु धर्मसाधनम्'' धर्म की साधना में शरीर और शारीरिक स्वास्थ्य मूल है। साधारणतया आयुर्वेद का अर्थ है '' आयुषो वेदः'' समस्त 'जीवन का विज्ञान' (साइन्स आफ लाइफ) साथ-साथ शरीर जीव का संयोग जीवन है और जब तक यह संयोग बना रहता है उस कालावधिका नाम आयु है। आयुर्वेद शरीर के साथ जीव के रहस्य का भी प्रकाशन करता है इसलिए वह दर्शन भी (फिलॉसफी आफ लाइफ) है इस का आद्य केवल वेद है और यह आयुर्विद्या ऋग्वेद तथा अथर्ववेद का उपवेद माना गया है। आयुर्वेद का सम्बन्ध सांख्य योग वैशेषिक वेदान्त मीमांसा दर्शनों से तथा वेद वेदांग षट्शास्त्रों से तंत्र-मंत्र-यंत्र विज्ञान से भी है। इस की उत्पत्ति आद्य = परमात्मा ब्रह्मा तथा वेदों से है। आयुर्वेद में कहा गया है कि ब्रह्मा जी ने प्रजा की उत्पत्ति करने के पहले आयुर्वेद ज्ञान को उत्पन्न किया ताकि उनके द्वारा उत्पाद्यमान सृष्टि जीवन के

रहस्य को जान सके।

ब्रह्मा जी ने यह आयुर्विज्ञान आश्विनीकुमारों (देववैद्यों) को दिया तथा अश्विनी कुमार से इन्द्र, इन्द्र से भारद्वाज और भारद्वाज ने पुनर्वसु आदि को दिया। इस तरह देव लोक से गंगा (त्रिपथगा) की भाँति यह आयुर्विद्या का अवतरण धरातल, मानवलोक में हुआ। इसके बाद भेल जतूकर्ण क्षारपाणि हारीत काश्यप, पराशर आदि आयुर्वेद के विद्वानों ने इसे मानवहित में विकसित किया और यह जगपावनी गंगा की भाँति जनपावनी आयुर्वेद गंगा प्रवाहित होती आ रही है और अष्टांग आयुर्वेद के रूप में अभिज्ञात है। यही इसका पावन आदिम इतिहास है। इसीलिए यह आद्या विद्या है जब कोई चिकित्सा नहीं थी, आज से ३००० वर्ष पूर्व तक विश्व में इसी का साम्राज्य था फिर देशकाल जलवायु के आधार पर सभी देशों में आयुर्वेद के सिद्धान्तों वनस्पति ज्ञानों को लेकर चिकित्सा पद्धतियों को अपनी-अपनी रीति से विकसित कर लिया।

आयुर्वेद विद्या– प्रकृति पुरूष आत्मा परमात्मा की सृष्टि एक यात्रा है जिसके यही २ यात्री हैं। उनकी यात्रा सफल हो तथा इनके विश्रामस्थल आवास शरीर स्वस्थ होकर धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष का अर्जन कर मुक्त हो सके, यही आयुर्वेद का सहयोग है। आयुर्वेद अत्रिपथ पर चलने वाले आत्रेय आदि ऋषियों का ऋणी है। पथ्याहारविहार इसका मार्ग है तथा स्वस्थ का स्वास्थ्य रक्षण हो और आतुर का रोगशमन हो, सामान्य विशेष ज्ञान द्वारा धातुसाम्य हो विशेष द्वारा दोषप्रशमन हो यही दोनों आधार स्तम्भ हैं। यह रसगुण वीर्य विपाक प्रभाव के मौलिक सिद्धान्तों पर आधारित है तथा आदिधारा को युग धारा से जोड़ती है इसकी एक परम्परा है परम्परागत शास्त्रीय विद्या है। यह इतनी सुगम-सुलभ है कि पथग यात्री, वनेचर आदिवासी सभी लाभ उठा सकते हैं। वनयात्री भेड़, बकरी चराने वालो को भी अद्‌भुत वनस्पति जड़ी बूटियों का ज्ञान होता है। अध्यात्म विद्या से भी सम्बन्ध है इसलिए सदाचार रसायन का भी पक्षधर है। यह विद्या त्रिपथगा है द्रव्यगुण कर्म एवं त्रिदोष तथा हेतु लिंग औषधिज्ञान आदि के पथ पर चलती है। त्रिपथगा त्रिस्कन्ध आयुर्वेद तीन-तीन स्कन्धों सूत्रों में विभाजित है इसलिए यह त्रिपथगा विद्या है। इस सूची को दे दिया गया है आयुर्वेद शास्त्रों से त्रिस्कन्धो का ज्ञान

विस्तार से अध्ययन मनन निदिध्यासन साक्षात्कार करना चाहिए त्रिपथगा की कुंजी से समस्त आयुर्वेद का ज्ञान खुल जाता हैं। जैसा गीता में लिखा है यत् ज्ञात्वा नैवचान्यत् ज्ञातव्यमवशिष्यते जिसके जानने के बाद कुछ और जानना शेष नहीं रह जाता है। त्रिपथगा ज्ञान से आयुर्वेद में अन्य ज्ञातव्य शेष नहीं रह जाता।

आयुर्वेद उत्पत्ति के समय ब्राह्मी विद्या थी, धीरे-धीरे वही शांकरी भी बन गई। विषविद्या, रसविद्या तंत्र-मंत्र विद्या के योगीश्वर शंकर है ही परन्तु यदि शंकर को प्रत्यक्ष स्वरूप से आयुर्वेद की तुलना कीजिए तो एक जैसा स्वरूप दृष्टिगोचर होता है इसीलिए कहा है कि आयुर्वेद उमाधव = शंकर है। शंकर कल्याणकारी तथा संहारकारी देव हैं आयुर्वेद भी कल्याणकारी तथा रोगसंहारी है। वह योगी हैं, आयुर्वेद भी योग समर्थक तथा अतियोग अयोग मिथ्या योग से हटाकर योगस्थ रहने का उपदेश देता है। शंकर गंगाधर हैं आयुर्वेद सृष्टि से लेकर आज तक प्रवाहमान है। गंगा ब्रह्मा के कमण्डल से शंकर की जटा पर आई। आयुर्वेद गंगा के भी प्रदाता जटाजूटधारी महर्षियो तक पहुँचा ने वाले ब्रह्मदेव ही हैं और शंकर भी आयुर्वेद गंगा के रसधर हैं। योग के ज्ञाता है आयुर्वेद भी अष्टांग है। शंकर अष्टांग योगी है। शंकर पारद रस के जन्म दाता हैं आयुर्वेद भी पारद रस सहित अनेक रसरसायन का भंडार है। शंकर के मस्तक में गंगा है, आयुर्वेद समस्त मानवता के शिर के सर्वोच्चशिखर में है। शंकर का आवास भ्रमणस्थल हिमालय है, जहाँ उमा पार्वती से सम्बन्ध हुआ। "पार्श्वे हिमवतः शुभे" आयुर्वेद मतानुसार आयुर्वेद वनस्पतियों, रत्नों, धातुओं का ज्ञान अनुसन्धान संरक्षण हिमालय की उपत्यकाओ में ही किया गया, वहीं से उमास्वरूपिणी पर्वतीय पार्वती वनस्पतियाँ प्राप्त हुई। शंकर सर्प, वृश्चिक धारी तथा विषपान के कारण नीलकण्ठ हैं, आयुर्वेद भी विषविद्या काश्यपसंहिता अगदतंत्र को धारण करता है। शिवमूर्धा से निकलकर त्रिपथगा गंगा वनस्पतियों के प्रभाव से निर्विकार अमृत जल लेकर मरूभूमि को उर्वरा बनाती हुई सागर में प्रवेश करती है। आयुर्वेद त्रिपथगा गंगा भी ग्रामों से लेकर नगर जनपदों को नीरोग स्वस्थ बनाती हुई युगयुगों से प्रवहमान जनसागर में प्रवेश कर गई है और क्षीण-हीन-रुग्ण शरीरों को पावन बनाया हैं। गंगा का जल अमृत है तो आयुर्वेद के रस रसायन अमृत के रूप में

मानवलोक के लिए आयुर्वेदामृत है, चरक ने कहा कि आयुर्वेदोऽमृतानाम्। शंकर मस्मधारी हैं आयुर्वेद अनेक भस्मों की भैषज्य कल्पना करता है। शंकर त्रिशूलधारी त्रिपुंड्रधारी त्रिनेत्र हैं। आयुर्वेद त्रिदोष त्रिधातु त्रिस्कन्धधारी है। शंकर के पास जटाजूट है, आयुर्वेद के पास जड़ी बूटी हैं। शंकर चन्द्रमौलि हैं चन्द्रमा धारण करते हैं, आयुर्वेद भी चन्द्रमा को मौलि=शीर्षस्थ मानता हैं क्योकि चन्द्रमा ही वनस्पतियों में गुणशक्तिपात या गुणाधान करता है। कहा भी है (वैद्यानांशारदी माता) चन्द्रमा सुधांशु है, आयुर्वेद भी सुधांशु है। शंकर के पास नन्दी वाहन है आयुर्वेद स्वयं आनन्द भवन है। शंकर के पुत्र गणेश गणों के ईश है, आयुर्वेद भी गणेश है क्योंकि जीवनीय वृंहणीय रेचनीय अनेक वनस्पति गणों के स्वामित्व को प्राप्त है। दूसरे पुत्र स्वामिकार्तिकेय हैं। कृतिका के पुत्र हैं। आयुर्वेद चिकित्सा का स्वामी तथा रोगों का कार्तिकेय, काटने वाला है। सब तरह से यह विद्या शांकरी विद्या है आयुर्वेद शंकर स्वरूप है। विकास की दृष्टि से आयुर्विद्या ब्राह्मी धान्वन्तरी शांकरी होने से आर्षविद्या है। शंकर की तरह महामृत्युंजय भी है। आयुर्वेद माधव = वसन्त भी है जैसे क्षीण जर्जर वृक्षों में कोपल फूट पड़ती हैं एक हरियाली आ जाती है, इसी प्रकार रोग क्षीण धातुक्षीण जनों के लिए आयुर्वेद वसन्त ॠतु के समान है। जरा क्षीणता के दूर करने दीर्घायु प्रदान करने की क्षमता आयुर्वेद के रसायन तंत्र वाजीकरणतत्रों में विद्यमान है। यदि भाग्यवश, किसी को आयुर्वेद द्वारा स्वास्थ्य में हरीतिमा या नव कोपल नहीं फूटते तो जन्म जन्मान्तार कर्मों का फल या रोगी की असाध्यता है जैसा लिखा है **(पत्रंनास्ति यदा करील विटपे दोषो वसन्तस्य किम्)** यदि वसन्त ॠतु में भी करील वृक्ष में पत्ते नहीं उगते तो इसमें वसन्त का क्या दोष करील का अपना भाग्य दोष है। वसन्तरूप आयुर्वेद भी अक्षम हो जाता है। आयुर्वेद माधव = कृष्ण के सदृश भी उपमेय है। कृष्ण कालिय के विष को निरस्तकर यमुना और वृंदावन का पर्यावरण शुद्ध करते हैं विष और प्रदूषण दूर करते हैं। वह योग विद्या के योगेश्वर हैं। वह महाभारत में पाँच पाण्डवों को विजय श्री दिलाते हैं तथा गीता में ज्ञानयोग, कर्मयोग व भक्तियोग का उपदेश करते हैं। धर्मराज्य स्थापितकर द्वारिका में वास करते हैं। मथुरा में जन्म व गोकुल-वृंदावन में लीला का प्रदर्शन करते हैं। आयुर्वेद भी कृष्णवत् आचरण करता है– आयुर्वेद कृष्ण की तरह

आकर्षक है, कृष्ण गोप-गोपियों के मध्य रहते हैं, आयुर्वेद गो=इन्द्रियों के पालक, गोप=मन, गोपी=चितवृत्तियों के मध्य विचरता है तथा मन एवं इन्द्रियों के रोगों, मानसिक रोगों का शमन करता है, आयुर्वेद की यही गोपगोपियां हैं। कृष्ण रासलीला यानी रास=रस समूह परमात्मा का ज्ञान देनी वाली विद्या रासलीला है, आयुर्वेद में उसी प्रकार रससमूह रसरसायन विद्या की लीला है तथा कृष्ण की भाँति विषविद्या द्वारा (कालिय रोगों) का विषहरण करता है। आयुर्वेद की वनस्पतियां पर्यावरण शुद्ध करती हैं पर्यावरण भी कालियविष ही है। आयुर्वेद भी गीता की तरह अयोग अतियोग मिथ्यायोग का निरस्त कर योगस्थ रहने का उपदेश देता है तथा कौरव स्वरूपी दुर्योधन, दुश्शासन आदि रोगों से पांच पांडव सदृश पंच ज्ञानेन्द्रियों की रक्षा करता है तथा प्रज्ञापराधजन्य दोषों से वचाता है। आयुर्वेद भी धर्म (सदाचार) राज्य स्थापित कर जनपद ध्वंस से रक्षा करता है और द्वारिकापुरी (मस्तिष्क) में आवास कर व्यक्ति को स्थित प्रज्ञ और उर्वर नीरोग उन्माद अपस्मार मस्तिष्कभ्रंश (ब्रेन हैमरेज) आदि से बचाता है। ब्राह्मी शंखपुष्पी आदि वनस्पति योग से सृष्टि के समुद्र में स्थित द्वारिका (दशमद्वार) को संरक्षण देता है। कृष्ण संगीत नृत्य में दक्ष हैं आयुर्वेद भी स्वास्थ्य व्यायाम के लिए संगीतनृत्य को स्फूर्तिदायक मन का आल्हादकारक मानता है। आयुर्वेद की मथुरा क़ंसराजधानी शरीर को मन्थन करने वाली तामसी राजसी प्रकृति है तथा गोकुल शरीर है। (इन्द्रियाणां समूहः शरीरम्) गौका अर्थ ५ कर्मेन्द्रिय, ५ ज्ञानेन्द्रिय तथा सत्वगुण है। वृन्दावन तुलसी वन है जो आयुर्वेद द्वारा सदा प्रशंसनीय है। आयुर्वेद का सम्बन्ध भी मथुरा गोकुल वृदावन द्वारिका से सिद्ध है। यही कृष्णात्रेय कथित कृष्णायुर्वेद अथवा कृष्णवत् आयुर्वेद है। यह त्रिपथगा के साथ धाराधरः धाराधारा भी है अनेक धाराओं को धारण करती है। धाराधरः मेध की तरह है। बादल समुद्र से जल लेकर धरातल तक पहुँचाता है। आयुर्वेद भी नाड़ी धारा द्वारा ज्ञान समुद्र मस्तिष्क से नाड़ी ज्ञान पहुँचाता है यह शिराधमनी के माध्यम से भी धाराधर है, हृदय से रक्त के आदान प्रदान की महत्ता समझाता है। शरीर क्रिया और नाड़ी विज्ञान के कारण आयुर्वेद धाराधर माना गया है। धारा का अर्थ = वर्षा, नाड़ी शिरा धमनी तथा परम्परा और पद्धति है। श्लोक में अदृक्-अरूप यात्रि= का अभिप्राय आत्मा परमात्मा तथा प्रकृति पुरूष से है।

उसी यात्रिपथग का अर्थ जीवन है। आद्य का अथर्व-वेद, ब्रह्मा, धन्वन्तरि, शंकर आर्षजगत्, अनादि है। इसी श्लोक में ६ ऋतुओं का भी वर्णन है क्योंकि आयुर्वेद में ऋतुचर्या तदन्तर्गत दिनचर्या रात्रिचर्या का महत्व है तथा ऋतु और आधार पर दोषों का क्षय प्रकोप प्रशम होता है।

धाराध = वर्षा, रोमाधवः रोम को कपानेवाला शीतकाल (हेमन्तशिखिर शरद) रोमकम्पी ग्रीष्म की व्याख्या की गई है। आयुर्वेद ऋतुओ के आधार पर चर्याओ का वर्णन करता है। ऋतुज्ञान, कालज्ञान भी चिकित्सा में सहायक होता है। धाराधरोमाधव इस शब्द के अन्दर ६ ऋतु मे प्रदर्शित की गई हैं। (रोमाधवः-माधवः यहाँ श्लेष है।) आधुनोति आधवः यह अलग भी है जिसका अर्थ काल और स्पन्दन एवं रोमांच भी है। बड़ी रोमांचक व्याख्या है। अन्तिम शब्द रोमाधवः से रोमाधवः तथा अमाधवः=चन्द्रमा। आधवः= स्वयम्भू धवः= पति इतने शब्द श्लेष हैं। उमाधवः का अर्थ शंकर, माधवः का अर्थ वसन्त और शंकर अधवं का अर्थ जिसका स्वामी उत्पादक मानव नहीं हो ईश्वर हो या वह स्वयं उत्पन्न हो जो अनादि पंचमवेदस्वरूप हो। वही है आयुर्वेद।

श्लोक के द्वितीय चरण का अर्थ -

उस आयुर्विद्या या आयुर्वेद ने योग = योगविज्ञान, ज्योतिष विज्ञान, अग =पर्वतीय प्रदेश सनातनभाव, को धारण किया है। पंच गव्य एवं पंचामृत वस्तुओं के आयुर्वेद में आवश्यकता के कारण गौ को भी महत्व देता है। प्रज्ञापराध शून्य निर्मल स्थित प्रज्ञ तथा बुद्धि का पक्षधर है ताकि मानस एवं बौद्धिक रोग नहीं हो। निर्मल बुद्धि से व्यक्ति तमोगुण, रजोगुण दूषित अपथ्य आहार-विहार से बचता रहता है। आयुर्वेद में पथ्य आहार-विहार की परमावश्यकता है। मानसिक रोगों के शमन के लिए शरीर सौष्ठव एवं रक्तचाप मधुमेह जैसे रोगों के निराकरण में गठिया (सन्धिवात) आदि में योग और योगासनों का महत्व है, अतः योग को महत्व देता है। यह विद्या शास्वत सनातन है। पर्वत की तरह अचल एवं स्थिर है। आयुर्वेद की चिकित्सा स्थिर चिकित्सा है समयानुकूल देर में फलप्रद है परन्तु वह रोगों को, रोग कारणों को निर्मूल करती है। गुणाधान के कारण चन्द्रमा से भी आयुर्वेद का सम्बन्ध है। हिमालय प्राचीनकाल में ऋषियों का वनस्पति एवं

खनिज का अनुसंधान स्थल रहा है, इसलिए हिमालय से सम्बन्ध है। यह विद्या अगदतंत्र द्वारा विषनाशक है पर्यावरणशोधक, हनुमान की तरह संजीवनी ज्ञापक अणिमामहिमादि शक्ति सम्पन्न मानी गई है। अहिमा = भूत प्रेत विद्या भी वर्णित है शांकरी होने के कारण। यह आलाभा लाभ ही लाभ देने वाली है क्योंकि आयुर्वेद की औषधियां निरापद हैं। इसकी **अंगावली है अष्टांग** काय, शल्य, शालाक्य, अगदतंत्र भूत प्रेतविद्या, रसायनतंत्र वाजीकरण तंत्र, कौमारभृत्य। यह आयुर्वेद की अंगावली है। शरीर के प्रत्येक अंग-प्रत्यंग आयुर्वेद चिकित्सा के क्षेत्र हैं। अपनी विशेषताओं के कारण समस्त भूमंडल में प्रतिष्ठा प्राप्त है। लाभ के अन्त में शरीर स्वस्थता के रंगो से खिल उठता है। शरीर की प्रत्येक धातु अंग प्रत्यंग अपने-अपने रंग में झूम जाता है, इसे रंगावली कहते हैं। रंगावली जिसे रंगोली कहते हैं, वह अद्भुत है। आयुर्वेद में अन्तरंगावली का विशेष वर्णन है जैसे सप्तधातु षडंग शरीर, दशेन्द्रिय, त्रयोदशअन्तः करण, पंचकोष्ठ, आठचक्र पंचमहाभूत, त्रिदोष, शरीर रचना, शरीर क्रिया, नाड़ी मंडल शिराधमनी मंडल, मर्म कण्डरा, स्नायु पेशी, आशय, हृदयादि संस्थान अस्थि सन्धि नवद्वार, पांचपित्त उनके रोग ५ कफ ५ वात उनकी गतिविधियाँ, क्लोमादि ग्रान्थियाँ, रोमकूप, यहीं **अन्तरंगावली** है और अन्दर की विचित्र रंगावली (रंगोली) है। रोगों का आधिव्याधि उपाधि का निवारण तथा मानव को उपायों, चिकित्सा द्वारा तथा नीरोग स्वस्थ कर पुनः रंगावली भरना आयुर्वेद का कार्य है।

तंरगावली = तरंगों के आधार पर नाड़ी ज्ञान इसका प्रमुख विषय है। तरंगावली से आयुर्वेद द्वारा आनन्द स्वास्थ्य सौन्दर्य का प्रदान ज्ञात होता है। आयुर्वेद यहाँ तक पहुंचा है। (आत=क्रिया=बहुत पहले ही पहुंच चुका था)।

अन्तिम शब्द – अन्तरंगावली, तरंगावली, रंगावली, अंगावली गावली (पृथ्वीमंडल) में व्याप्त आवली = (देहली दरवाजे की) सभी चिकित्साओं का प्रवेश द्वार)।। गावली जीवनसंगीतमयी विद्या।

ऐसी है आयुर्वेद की रंगोली, शानदार परम्परा, अद्भुत ज्ञान

श्लोक के तीसरे चरण का अर्थ -

वेदान्त तो वेदों का अन्तिम सार है, आयुर्वेद भी वेदान्त है, वेदों के

अन्तिम सारभूत उपदेश के रूप में वेदान्त है। वेदान्त की तरह इस में भी जीव ब्रह्म विद्या, अविद्या प्रकृति का ज्ञान निहित है इस विषय में आयुर्वेद वेदान्त से सम्बन्ध रखता है। त्रिकभावता = वृहत्त्रयी (चरक सुश्रुत वाग्भट्ट) लघुत्रयी (भाव प्रकाश, शांरगधर, माधवनिदान) की उपस्थिति है। विशद वर्णन है। इसमें तंत्र-मंत्र-यन्त्रों, सयंत्रो शल्य यंत्रो का वर्णन तथा उनकी उपादेयता है। आधुनिक तांत्रिक भावता परीक्षणक्रिया में आधुनिक चिकित्सा टैक्नोलॉजी (प्रौद्योगिकी) का स्थान है। त्रिक (नाड़ी ज्ञान) से ही सब कुछ अन्तरंग वहिरंग का ज्ञान कर लिया जाता है। इस में मणिमंत्रौषधि की व्यवस्था है। यह रोगियों के साथ परीक्षायुद्ध का पक्षपाती नहीं, जैसा की आधुनिक पद्धति में किया जाता है। रोग निदान की अपनी सरल पद्धति है। यह समस्त चिकित्सा मतों का सार है। स्वास्थ्य की छवि को वास्तविकता में अवतरण का साधन है। शरीरं व्याधिमन्दिरम् की दृष्टि से रोग सागर संसार से पार लगाने वाली नाव के समान है। शरीर मानस आगन्तुक त्रिविधतापों से मुक्ति दिलाने वाली विद्या है। यह पंचामृता है, इसमें ५ अमृत हैं, उन पांच अमृतों की सूची प्रथमतः संलग्न है इसका भी त्रिपथगा (त्रिस्कन्ध) के रूप में मनन निदिध्यासन साक्षात्कार करने की आवश्यकता है। पूरे आयुर्वेद का रहस्य इसमें भरा है उसका समस्त वर्णन करना हो तो एक पृथक ग्रन्थ बनाना पड़ेगा। अतः आयुर्वेद शास्त्रों से अनुसंधानपूर्वक स्वाध्याय करें। उसकी सूची मात्र दी गई है। यह धन्वन्तरि की कृपा से अमृतमयी है। यह विद्या केवल अर्थोपार्जन मात्र के लिए नहीं अपितु आराधिका है जनसेवा का लक्ष्य लिए हुए है। यह कृष्ण की राधिका के समान तपस्विनी आल्हादिनी शक्ति है। इसमें तंत्र युक्तियां हैं शल्यशालाक्य तंत्र हैं। रोगों के शमन को प्राथमिकता देती है। शरीर के हृदयादि तंत्रो की चिकित्सा विद्या है। समस्त अमृता वनस्पतियों का ज्ञान भरा हुआ है। अष्टाचक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या। तस्यां हिरण्मयः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः अराधिका इसमें अर=चक्र प्रधान है, उनका ज्ञान भी आयुर्वेद में है, योग का ज्ञान भी है यह सब आगे दिया जावेगा। मर्म ज्ञान, इन्द्रिय ज्ञान आयुर्वेद शास्त्र के महत्वपूर्ण अंग है। आयुर्वेद प्रकाशमय स्वास्थ्य का अवतार है। इसमें शब्द स्पर्श रूप रसगन्ध इनसे पृथ्वी जलतेजवायु आकाश, प्रकृतितंत्र कीरचना, त्रिगुण पंचमहाभूत से त्रिदोष की उत्पत्ति यह सृष्टिक्रम आयुर्वेद

द्वारा ही ज्ञातव्य है। शरीर ज्ञान रोग ज्ञान चिकित्सा के लिए आवश्यक है।

श्लोक के चतुर्थ चरण का अर्थ -

ऐसी आभा सम्पन्न यह आयुर्वेद विद्या आभावान् ऋषियों की धरोहर है। यह भारत की चिकित्सा पद्धति है जो इसमें भक्ति आस्था से लगे रहते है उनको सर्वांगीण आभा और प्रसन्नता प्राप्त होती है। भा = प्रकाश में रत तथा सत्युग के भरतमुनि, त्रेता में रामभ्राता भरत द्वापर के शकुन्तलापुत्र भरत की साधनाएं निहित हैं जिनके नाम पर भारत बना उसी भारत की यह भारती है। यह उदित प्रगतिशील विद्या है। इसके आयाम बड़े ही विस्तार के हैं। यह अन्धकार मयी नहीं अपितु प्रकाशमयी है। यह मानवता मात्र की संहिता है अति प्राचीन होते हुए भी विश्वव्यापिनी तथा नितनवीन है। यह सबके लिए हितकारिणी भारत के घर-घर की चिकित्सा है। इसमें शल्य शालाक्य सभी प्रकार के रसयंत्र अनुशस्त्र के विधान है। आयुर्वेद से ही मानवीय आभा कायम रह सकती है और इसकी आभा से भारत की आभा विश्व भर में फैल सकती है। विश्व में नीरोग समाज की स्थापना का रहस्य इसमें भरा है इसमें त्रिक– ब्रह्मा, विष्णु, महेश की तरह निर्माण, रक्षण तथा रोगध्वंसकर स्वास्थ्य कल्याण की अपार शक्ति भरी है। यह त्रिक वृहत्त्रयी तथा लघुत्रयी ग्रन्थो में वर्णित है। यह विद्या जनमानस की आरती है। आरती की तरह स्वीकार्य तथा पूजनीय है। यह भारत की भारती है साक्षात् सरस्वती है तथा स्वस्थवाणी की महादेवी है। यह त्रिक ब्रह्मा शंकर धन्वन्तरि की प्रतीक है। उसमें भावतारण भा=स्वास्थ्य छवि के अवतरण कराने की शक्ति है। मन में कामक्रोधादि रहित अच्छे भावों के अभ्युदय कराने की शक्ति है। आयुर्वेद विद्या का अवतरण रोगों के संग्राम में विजयश्री प्रदान करने की दिशा में प्रशस्त वरदान है। इसकी अरण=शरण अतापं त्रिताप को दूर करता है। दैहिक दैविक भौतिक शरीर मानस आमन्तुक, आधि व्याधि उपाधि को दूर कर अलौकिक दिव्यात्मा बनाता है। सा अभाः हे आयुर्वेद तुम आज नहीं युग-युग में चमकते थे। आपंच अतापं आर (जगाम) ऐसा पद सम्बन्ध है। सभी पांच ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय ५ कोष ताप रहित हो जाते हैं आयुर्वेद की यही विशेषता है। आयुर्वेद में त्रिकभावना लक्ष्मी सरस्वती दुर्गा की भावना है। तीन देवियों की भी विद्यमानता है। स्वस्थ

समाज की लक्ष्मी = धनार्जन स्वस्थ समाज ही कर सकता है, सरस्वती = बुद्धि सम्पन्नता स्वस्थ समाज ही प्राप्त कर सकता है दुर्गा = प्रशासन क्षमता प्राप्त कर सकता है। शारीरिक स्वास्थ्य बढ़ता है। इसमें त्रिक= यंत्र-मंत्र-तंत्र। स्वरविज्ञान, मुद्राविज्ञान, इन्द्रिय विज्ञान। प्राकृतिक चिकित्सा, यौगिक चिकित्सा, उपासना चिकित्सा जैसे त्रिक की जन्मदात्री विद्या है। इसलिए अरणता = रोग संग्राम में इसकी सफलता है कोई रण में जीत नहीं सकता यह सबका मत है। आइए इस मानवी संहिता द्वारा नीरोग विश्व की स्थापना करें। भारतभा=आरती भारत की प्रतिष्ठा की आरती करें।

वैदिक यज्ञों में आयुर्वेद - यह विद्याद्यात् आद्यात् विद्या, आयुर्वेद विद्या का स्रोत वेद और वेदोक्त यज्ञ भी है

संसार में जीवन सबसे अधिक मूल्यवान् है। अतः सार्वजनीन जीवरक्षा का श्रेय होने के कारण यज्ञ का आरोग्यसम्बन्धी विषय प्रथम और प्रधान है। क्योंकि आरोग्यता नष्ट होने पर शरीर रोगी हो जाता है और रोग से मृत्यु का भय रहता है। मृत्यु कोई पसन्द नहीं करता। एक व्यक्ति का जीवन चाहे सबके लिए मूल्यवान् न हो, पर सबका जीवन तो सबके ही लिए मूल्यवान् है। इसलिए जिसमें सार्वजनीन आरोग्यता का विधान हो, वही यज्ञ सब यज्ञों में अधिक उपयोगी, आवश्यक और वर्णन करने योग्य है। अतएव हम यहाँ आयुर्वेद से सम्बन्ध रखनेवाले भैषज्य यज्ञ का वर्णन करते हैं।

यज्ञों में आयुर्वेद-

भैषज्य यज्ञ आयुर्वेद से सम्बन्ध रखते हैं। इनमें देशकाल और पदार्थों के गुणों का ज्ञान होना आवश्यक होता है। 'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है कि भैषज्ययज्ञा वा एते। **ऋतुसन्धिषु व्याधिर्जायते तस्मादृतुसन्धिषु प्रयुज्यन्ते'** अर्थात ये भैषज्य यज्ञ कहलाते हैं। ऋतुओं की सन्धि में व्याधियाँ पैदा होती हैं, इसलिए इनका प्रयोग ऋतुसन्धियों में होता है। छान्दोग्य ४/१७/८ में भी लिखा है, कि 'भेषजकृतो ह वा एष यज्ञो यत्रैवंविद् ब्रह्मा भवति।' अर्थात् जिनमें वैद्यकशास्त्रज्ञ ब्रह्मा होता है, वे भैषज्य यज्ञ हैं। इन दोनो प्रमाणों में ऋतुसन्धि और भैषज्य का स्पष्ट वर्णन है। इसलिए वनस्पतियों के गुण और समय का ज्ञान होना आवश्यक है। औषधियों के

लिए स्पष्ट लिखा है, कि 'यस्य देशस्य यो जन्तुः तज्जंत तस्यौषधे हितं' अर्थात् जो प्राणी जिस देश का होता है, उसके लिए वहाँ की ही उत्पन्न औषधियाँ हितकर होती हैं। इसके अतिरिक्त औषधिओं पर ऋतुओं का प्रभाव देशभेद से अलग अलग होता है। इसलिए देश का भी ज्ञान बहुत आवश्यक होता है। देश,काल और पदार्थो के गुणों का ज्ञान आयुर्वेद से ही संबंध रखता है। इसमें शारीरिक ज्ञान और निदान मिला देने से ही पूरा आयुर्वेद बन जाता है। शारीरिक निदान, त्रिदोष, नाड़ीज्ञान और अन्य ऐसी ही अनेक बातें हैं, जो व्यक्ति-व्यक्ति से सम्बन्ध रखती हैं और वेदों में विस्तार से वर्णित हैं। किन्तु हम यहाँ सार्वजनीन व्याधियों के सार्वजनीन उपचार का ही वर्णन कर रहे हैं। इसलिए उन विषयों का वर्णन करना उचित नहीं समझते। सफाई, रोशनी, सड़क और अस्पताल आदि म्युनिसिपालिटी के काम जिस प्रकार सार्वजनिक हैं, उसी तरह यह यज्ञ भी है। होली ऐसा ही सार्वजनिक भैषज्य यज्ञ है, जो संवत्सर के अन्त में किया जाता है। यह नवसस्येष्टि भी कहलाती है। 'नवसस्य' का नाम होला है। हरे चनों को भूनकर लोग होला खाते है। इसीलिए होली में भुने हुए हरे चने ही होला कहलाते हैं। यह होली एक प्रकार का भैषज्य यज्ञ ही है।

संसार में सर्दी और गर्मी दो ही हैं। सर्दी की दवा गर्मी और गर्मी की दवा सर्दी है। यजुर्वेद २३/१० में स्पष्ट कहा है कि 'अग्निर्हिमस्य भेषजम्' अर्थात् अग्नि शीत की दवा है। अर्थापत्ति से समझ लेना चाहिए कि सर्दी भी गर्मी की दवा है। 'शतपथ ब्राह्मण' में लिखा है कि –

द्वयं वा इदं न तृतीयमस्ति। आर्द्रं चैव शुष्कं च।
यच्छुष्कं तदाग्नेयं यदार्द्रं तत्सौम्यं।
अग्नीषोमयोर्ह वै तावती विभूतिः प्रजातिः।
सूर्य एवाग्नेयः चन्द्रमा सौम्यः। (शतपथ०)

अर्थात् सूखा और गीला दो ही हैं, तीसरा नहीं अग्नि ही सूखा है और सौम्य ही गीला है। इस प्रकार अग्नि और सौम्य की उत्पादक शक्ति विविध प्रकार की है। सूर्य ही अग्नि है और चन्द्रमा ही सौम्य है। अग्नि और जल से ही पित्त और कफ की उत्पत्ति हुई है। तीसरी चीज वायु है, जो न शीत है न उष्ण। वायु धूप के संयोग से उष्ण और जल के संयोग से ठण्ड़ी हो जाती है और दोनों के प्रभाव को प्रबल कर देती है। यही

सिद्धान्त आयुर्वेद में भी वर्णित है। वेदों में अग्निषोमौ का विस्तारपूर्वक वर्णन है, जो अग्नि और जल के अतिरिक्त और कुछ नहीं है अर्थात् संसार में सर्दी और गर्मी दो ही असर हैं। यही दो असर संसार के समस्त पदार्थों में हैं। किसी पदार्थ में गर्मी अधिक है और किसी में सर्दी। इसीलिए कोई पित्तकर है और कोई कफकर। परन्तु बादी करनेवाले पदार्थों का कोई लक्षण नहीं किया जा सकता। गर्म पदार्थ भी बादी करते हैं और सर्द भी अर्थात् जिन पदार्थों में गर्मी सर्दी अधिक होती है, वे भी बादी होते हैं और जिनमें सर्दी से अधिक गर्मी होती है, वे भी बादी होते हैं। जिन पदार्थों में गर्मी सर्दी बराबर होती है, वे बादी नहीं होते। उन्हीं का नाम मातदिल और त्रिदोषघ्न है। इस सबका कारण स्पष्ट है कि वायु निज में कुछ भी असर करनेवाली नहीं है। वह प्रबल गुण के साथ मैत्री करके उसके बल को बेहद बलवान् कर देती है। संसार के सर्द और गर्म पदार्थ वायु के सहचार से अधिक बलवान् हो जाते हैं। इसीलिए कहा है कि कफ और पित्त पंगु हैं। वायु जहाँ उनको ले जाता है, वहाँ वे उसी तरह जाते हैं, जैसे हवा पाकर मेघ भागते हैं।

यत्रौषधीः समग्मत राजानः समिताविव।

विप्रः स उच्यते भिषग्रक्षोहामीवचातनः। (ऋग्वेद १०/९७/६)

अर्थात् जिसके पास नाना प्रकार की अनेक औषधियाँ राजा की सभा की भाँति खूब सजी हुई, सिलसिले के इक्ट्ठी रखी हों, वह रक्षोह अर्थात् रोग का नाशक और अमीवचातन अर्थात् रोगबीजों का दूर करनेवाला भिषक् है। अथर्व० ५/२९/१ में लिखा है कि 'त्वं भिषग् भेषजस्यासि कर्ता' अर्थात् औषधियों का बनानेवाला तू वैद्य है। बात स्पष्ट हो गई कि भैषज्य यज्ञों के लिए ऐसे वैद्य की आवश्यकता है, जो देश, काल और पदार्थों के गुण जानता हो, तथा हवनीय औषधियाँ अपने पास रखता हो। भैषज्य यज्ञोंमें जिन औषधियों की आवश्यकता होती है, वे बहुत हैं। उनकी एक सूची स्वामी दयानन्द ने रोगनाशक, पुष्टिकारक, बलवर्द्धक और मिष्ट तथा सुगान्धित पदार्थो के नाम से दी है। वेदों में बहुत सी ओषधियों का वर्णन है, जो अमुक अमुक यज्ञों में काम आती हैं। पर यहाँ हम कुछ ऐसी औषधियों का वर्णन करते हैं, जिनका अब पता नहीं लगता। यजुर्वेद में हवनीय औषधियों को अम्ब कहा गया है। वहाँ लिखा है कि –

शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रूहः।
अधा शक्रत्वो यूयमिमं में अगदं कृत ।।

(यजु० १२/७६)

'हे अम्ब! तुम्हारे सैकड़ों स्थान हैं और तुम हजारों प्रकार से उगती हो! तुम मेरे यज्ञ में आओ और सबको आरोग्य करो।' दूसरे स्थान में कहा गया है कि 'एष ते रूद्र भागः सह स्वस्रांबिकया तं जुषस्व'। अर्थात् यह तेरा रूद्र भाग है, उसको अम्बिका की बहनों के साथ होम कर। यहाँ अम्बा की तरह अम्बिका का भी वर्णन आया है और तीनों बहनों की जिक्र भी है। अन्य मन्त्र में है कि –

प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा।
अम्बे अम्बिकेऽ म्बालिके न मा नयति कश्चन।।

(यजु० २२/१८) {?}

अर्थात् हे अम्बे, अम्बिके, अम्बालिके! तुम्हारा प्राण, अपान, व्यान के लिए हवन करते हैं। इनके लिए निम्नलिखित प्रसिद्ध मन्त्र में कहा गया है कि–

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्।
उर्वारूकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् ।।

(यजु० ३/६०)

वेदों में प्राप्त दीर्घायुष्य-सूक्त

सर्वप्रथम हम प्रार्थनासूत्र को ही लेते हैं, जिसमें मृत्यु रूप भगवान को नमन किया हैं और प्रार्थना की है कि वह हमें दीर्घायु करें :–

अन्तकाय मृत्यवे नमः प्राणा अपना इहते रमन्ताम्।
इहायमस्तु पुरुषः सहासुना सूर्यस्य भागे अमृतस्य लोके।।

(अथर्ववेद–८/१/१)

भावार्थ :– सम्पूर्ण जगत का नाश करने वाले हम उस ईश्वर को प्रणाम करते हैं। मनुष्य के प्राण अपने इस शरीर में दीर्घकाल तक रहें। मनुष्य के प्राण अपान इस शरीर में दीर्घकाल तक रहें। मनुष्यं दीर्घ जीवन के साथ अमृतमय सूर्य प्रकाश में यथेच्छ विचरता रहे।

इस शरीर को वेदों में रथ की संज्ञा दी गई है। संसार में अनेक प्रकार

के रथ हैं– अश्व रथ, जल रथ (नौका), अग्नि रथ (रेलगाड़ी), वायु रथ (विमान) आदि। इन रथों से दूरगामी स्थानों तक पहुंचा जा सकता है। किंतु इस शरीर रूपी रथ से तो ब्रह्मलोक तक जाया जा सकता है और भी इस रथ की विशेषता है जिस कारण से इस रथपर आरोहणहेतु निम्नलिखित मन्त्र में कहा है– 'इमं अमृतं सुखं रथं आरोह (मंत्र ६) 'अर्थात् इस नष्ट न होने वाले रथ पर आरोहण करें।' इसमें सु+ख शब्द हैं जिसका अर्थ है 'सु' अर्थात् उत्तम अवस्था में, 'ख' इन्द्रियां हैं जिसकी। ऐसा आरोग्य पूर्ण सुदृढ़ शरीर। 'सुखरथ' का अर्थ है जिसकी इन्द्रियां उत्तम हैं, ऐसा यह शरीर रूपी रथ मनुष्य प्राप्त करें। इसका दूसरा गुण 'अ+मृ+त'। मरे हुए मुर्दे जैसे दुर्बल शरीर को 'मृत' कहते हैं और जो सतेज, तेजस्वी, बलिष्ठ, सुदृढ़, निरोग, कार्य क्षम शरीर होता हैं उसको 'अमृत' कहते हैं। जिस शरीर को देखने से जीवन के प्रत्यक्ष दर्शन हाते हैं। उसी को अमृत शरीर कहते हैं। बहुत से लोगों को (जो आलस और प्रमाद से ग्रस्त कहते हैं, श्रम नहीं करते) मृत और दुःखी शरीर प्राप्त हुए होते हैं। वैसे शरीर से मनुष्य जीवन की सफलता ही नहीं मिलती। जो योग-ज्ञान-विज्ञान प्राप्त कर योग्य मार्ग से चलते, संयम से रहते वे अमृत शरीर प्राप्त कर चौमुखी उन्नति करते व सुखी रहते हैं। निम्नलिखित सूक्त मंत्रों द्वारा भी यही भाव दर्शाया गया है :–

(हे) पुरुष अतः उत्काम/मा अवपत्याः (मंत्र ४)

(हे पुरुष) ते युत यानं /न अवयानम्। (मंत्र ६)

'हे मनुष्य ! तू यहां से ऊपर चढ़, नीचे न गिर !'

'हे मनुष्य ! तेरी गति उच्च हो, नीचे की ओर न हो।' यही भाव अन्य शब्दों में नीचे प्रदर्शित हैं।

ज्योति की प्राप्ति – आइहि ! तमःज्योतिः आरोह! ते हस्तौर भाम है। (मंत्र ८)

अर्थ – "हे मनुष्य ! इस मार्ग से आ, अन्धकार के मार्ग को छोड़ और प्रकाश के मार्ग से ऊपर चढ़ ! यदि तुझे सहारा चाहिए जो हम (महापुरुष, साधु, सन्त, महात्मा, योगी, ऋषि) तेरे हाथ पकड़ कर हम तुझे सहारा देने को तैयार हैं। उपरोक्त महापुरुष सदा ही ज्ञानविज्ञान की बातें लोगों को

सदा ही बताने को उद्यत रहते वे स्वयं भी ज्ञानी बनकर दूसरों को ज्ञान मार्ग पर चलाते हैं। वे स्वयं भी सुखी बनते और दीर्घ जीवन प्राप्त करते हैं।

'अत्र पराङ् मनाः मातिष्ठ (मंत्र ६) अर्थात् यहां अशुभ विचार मन में धारण करके मत रह। 'परांगमना'– परअंग+मनाः' का अर्थ – (पर) शत्रु की (अंग) अनुकूलता में (मनाः) हो गया है अर्थात् जो मन से शत्रु का हित चाहता है अथवा जो शत्रु के अनुकूल होकर अपना व्यक्तिगत लाभ चाहता हैं, स्वार्थ की पूर्ति करना चाहता है, अपनी जाति (अपने राष्ट्र) का अहित चाहता हैं तो वह शत्रु से भी अधिक घातक है। अतः विरोधियों के अधीन मन को रखकर न रह। स्वकीयों के अनुकूल होकर ही रह। जो हीन वृत्ति वाले लोग होते हैं, जो अपनी स्वार्थपूर्ति के लिए अपने समाज, अपने राष्ट्र का भी घात करके पाप करते हैं वे दीर्घजीवी नहीं होते। इसलिए कोई मनुष्य ऐसी स्वार्थवृत्ति धारण न करे। मनुष्य सदा वीर वृत्ति वाला हो। यदि ऐसे मनुष्य ने अपने देशहित में रणभूमि में जाकर लड़कर प्राण त्याग दिये हों तो भी वह अमर कहलायेगा। दीर्घजीवी ही माना जायेगा।

सूर्य प्रकाशसे दीर्घ आयुः- 'सूर्यते तन्वे शंतपाति।'

(मंत्र ५)

अस्माल्लोकात् अग्नेः सूर्यस्य इह अमृतस्य लोके
सूर्यस्य भागे अस्तु। (मंत्र १)

अर्थ – सूर्य तेरे शरीर को सुख देने के लिए ही तपता हैं, अतः सूर्य के प्रकाश से अपना सम्बन्ध न तोड़। यहां अमृत पूर्ण स्थान में अर्थात् सूर्य के प्रकाश भाग में तू रह। इसी से तेरी दीर्घ आयु होगी। सूर्य ही जीवन का समुद्र है। सूर्य के समान अन्य देव भी मनुष्य का जीवन दीर्घ करते हैं। पृथ्वी स्थान पर होने वाले देवता – पृथ्वी, जल (आब) अग्नि, वायु, वसु (सोम राज्ञीः औषधयः) सोम आदि औषधियां, (प्रजापतिः) प्रजापालक राजा, वैश्वानर, जात वेद आदि हैं। अन्तरिक्ष में रहने वाले– अन्तरिक्ष (आपः) मेघ, स्थानीय जल, मातरिश्वा वातः (मरूत) वायु, चन्द्रमा, विद्युत आदि देवता हैं और द्यु लोक में रहने वाले – द्यौः, सूर्य, आदित्य, भग,

प्रजापति (परमात्मा) इनमें से प्रत्येक देवता का सम्बन्ध प्राणी की दीर्घआयु के साथ हैं। प्राणी तृषित होने पर जल से प्राण धारण करता है, भूख लगने पर औषधियां, वनस्पतियां, फल-फूलों से और कन्दों से प्राणी जीवन प्राप्त करते हैं। सूर्य प्रकाश तो सभी पदार्थों में जीवन देता है। इसी प्रकार अन्यान्य देवता से जीवन लेकर मनुष्य आदि प्राणी प्राण धारण करते हैं। ये सब देव (वयोधसः) आयु को धारण करने वाले (देने वाले) हैं। अतः प्रार्थना है कि ये सब देव (संधमन्तु) मनुष्य को दीर्घ जीवन प्रदान करें।

इन देवों के लिए हम यज्ञ करें ताकि वे प्रसन्न होकर हमें मृत्यु से बचायें और हमें दीर्घायु बनायें। गीता में भी कहा है–

देवान्भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः।
परस्परं भावयन्तः श्रेयः परमवाप्स्यथ।

(गीता–३/११)

अर्थ– यज्ञ से देवों को सन्तुष्ट करो और देव तुम सबको (दीर्घ आयु प्रदान कर) सन्तुष्ट करेंगे, इस प्रकार परस्पर एक दूसरे को प्रसन्न करते हुए तुम सब परम श्रेय को प्राप्त करोगे।

इस अपने शरीर का ज्योतिर्मय बने रहना ही जीवन है और तम से आवृत्त हो जाना ही मृत्यु है। यह एक रहस्य है जिसका उद्घाटन (स्पष्टीकरण) इसी सूक्त के निम्नलिखित मंत्र से होता है–

अथ तम और ज्योति।।

त्वत् तमः व्यवात, अप अक्रमीत। ते ज्योतिः अभूत्। (मंत्र २१)

अर्थात् तुम से अन्धकार दूर हो चुका है और तुम्हें प्रकाश प्राप्त हुआ है। इस मंत्र में जीवन के एक महान सिद्धान्त को स्पष्ट किया है। मनुष्य का जीवन सचमुच प्रकाश का जीवन है पर बहुत थोड़े ही लोग इस बात का अनुभव करते हैं। प्रत्येक मनुष्य के चारो ओर एक प्रकाश का वर्तुल रहता है। जो जितना सामर्थ्यवान होता है उसका वर्तुल उतना ही बड़ा और प्रभावशाली होता है। जिसका आत्मिक बल कम है उसका प्रकाश वर्तुल भी छोटा होता है। यह प्रकाश वर्तुल भले ही छोटा हो, कमजोर हो तो भी आकाश तक, नक्षत्रों तक फैला हुआ विस्तृत होता है। मनुष्य जब

मरने लगता है तो यह प्रकाश वर्तुल छोटा और छोटा होता चला जाता है। मरणासन्न व्यक्ति इसका अनुभव करता है और उसकी शक्ति उस अन्त समय में बोलने की रही तो वह इस अनुभव को बता भी सकता है। क्षण-क्षण में जो उसका प्रकाश वर्तुल छोटा होता जाता है वह वैसा कह भी सकता है। मनुष्य की आत्मा पर (तमः) अन्धकार या अविद्या का आवरण पड़ना ही मृत्यु है। अन्त समय में जब यह वर्तुल केवल अंगुष्ठ मात्र रह जाता है तब उसकी मृत्यु हो जाती है। यह अनुभव इस मंत्र द्वारा व्यक्त किया गया है– 'हे मनुष्य ! तेरे ऊपर अन्धेरे का आवरण आ रहा था वह अब दूर हो गया है और पूर्ववत् तेरी ज्योति जगत में फैल गई है। यह २१वें मंत्र भाग का आशय है। जब मनुष्य बेहोश होने लगता है तो वह कहने लगता है कि मेरे आंखों के सामने अंधेरा छाता जा रहा है और ऐसा कहते-कहते बेहोश हो जाता है। उसके कहने का तात्पर्य हुआ कि उसका जो यह प्रकाश वर्तुल फैला था वह संकुचित हो गया उसकी जीवनशक्ति कम हो गई और वह मूर्छित हो गया।

'मृत्युरीशे द्विपदां मृत्युरीशे चतुष्पदाम्' (मंत्र २३)

अर्थात् मृत्यु सभी द्विपाद, चतुष्पाद प्राणियों पर अपना अधिकार चलाता है। द्विपाद प्राणी दो पैर वाले होते हैं, जैसे मनुष्य, पक्षी आदि। चतुष्पाद प्राणी चारपांव वाले पशु आदि होते हैं। अतः मृत्यु से दया की याचना करते हैं–**'मृत्यो ! इमंदयस्व।'** 'हे मृत्यु ! इस पर दया कर।' किंतु यह याचना तो कायर ही किया करते हैं। वे ही झाड़ी को भूत और रस्सी को सांप समझकर बचाओ-बचाओ, हम अब मरे तब मरे। इस भूत ने अब पकड़ा, अब मारा। इस सांप ने अब डसा और अभी हमारी मृत्यु हुई। इसी तरह कभी किसी से, कभी किसी बीमारी से डर कर रोगी कभी किसी रोग से डरकर बार-बार मरते रहते हैं। किन्तु वीर लोग वो केवल एक बार मृत्यु के दिन ही मरते हैं।

अस्मै अधिबूहि (मंत्र ८) अस्मै ब्रह्म वर्म कृण्मसि (मंत्र १० सर्वो वै तत्र जीवति गौरश्वः पुरुषः पशुः। यत्रेदं ब्रह्म क्रियते परिचिरजीवनायकम।।

अर्थ– मनुष्यों को इस जीवनी विद्या का उपदेश कर ! मनुष्यों को दीर्घ आयु बनने का उपदेश दे जिसमें जीवन की अवधितक सुखपूर्वक

जीने का और दीर्घ जीवन के नियमों का ज्ञान उपदेश सबको दिया जाता है वहां मनुष्य तो क्या उस देश के गाय, घोड़े आदि पशु भी दीर्घजीवी हो जाते हैं।

उपरोक्त ज्ञान देने हेतु उपदेशक ग्राम-ग्राम में जावें, दीर्घ जीवन जीने हेतु योग्य उपदेश्र दें। जीवनी विद्या के उपदेशक, उपदेश देने में निम्नलिखित मंत्र भाग जैसे मंत्रों का प्रयोग कर सकते हैं।

''**रजस्तमःभा उपगाः।** मा प्रमेष्ठाः।।'' (मंत्र १) रज अर्थात् भोग जीवन और तम अर्थात् ज्ञानहीन जीवन, इन दो हीन ज़ीवनों को न प्राप्त हो। रजोगुणी और तमो गुणी जीवन का लक्षण और फल गीता में (अध्याय १४ व १७ के श्लोकों में) विस्तार से बताया है। उनका पाठ करें। निहित उपदेशों को ग्रहण करें व तद्नुसार अपनी कार्य शैली बनावें। रजोगुण तमो गुण से अवनति होती है। इसलिए इस सूक्त मंत्र में कहा है कि – 'रजःतमःभा उपगाः' रजोगुण, तमोगुण के पास न जा। इसी सूत्र (उपदेश) को दुहराते हुए कहा है –

न वै तत्र म्रियन्ते मो यन्त्यचर्मतमः।

सोऽरिषृन मरिष्यसिं न मरिष्यसि, मा विभेः।

(मंत्र २४)

अर्थ– 'जो हीन तमोगुण को नहीं अपनाते वे मरते नहीं, वो हिंसित नहीं होते, निश्चय ही नहीं मरता, नहीं मरता, अतः तू मत डर।' कितने बल से कहा है जो तमो गुण के पास नहीं जाता वह मरता नहीं। अन्धकार का प्रकाश वर्तुल को घेरना, प्रकाश वर्तुल का छोटे होना। छोटा होते-होते अंगुष्ठमात्र रह जाना ही मृत्यु हैं। यह हम पूर्व में ही लिख आये हैं। मरने का अर्थ यही है कि तम रूप अंधकार से घेरे जाना। जो तमोगुण को अपने अन्दर न बढ़ने देगा वह अंधकार से कैसे घेरा जाएगा? पाप रहित होने से भी, मन, वाणी और अन्तःकरण में पवित्रता धारण करने से भी, मनुष्य दीर्घआयु बनता है। देखें ये मन्त्र–

''**अपसिध्यदुरितं चन्तमायुः।**' पाप को दूर करके दीर्घ आयु को धारण करो।' पाप से आयु क्षीण होती है।

''**जीवतां ज्योतिः अर्वाङ् अभ्येहित्वा शत शारदाय आ हरामि।**'' (मंत्र २)

अर्थ – "जीवित मनुष्यों में जो एक विलक्षण तेज रहता है उसे प्राप्त कर। तुझे सौ वर्ष की आयु धारण कराता हूं।' यह विलक्षण तेज से तात्पर्य उस प्रकाश वर्तुल से ही है जिसका वर्णन हम पहले कर चुके हैं। यह सौ वर्ष की आयु का निश्चय उनके लिए है जो पाप रहित हैं और पवित्र हैं। दीर्घ आयु प्राप्त करने के लिए, वायु, प्राण, सूर्यादि की तो महत्वपूर्ण भूमिका हैं– इस हेतु निम्नलिखित मंत्र दृष्टव्य है –

वातात्ते प्राणमविदं सूर्याञ्चक्षुरहं तव। यत्ते मनस्त्वयि तदृभस्यामि, संवित्स्वांगेर्वद जिह्वयालपत।। (मंत्र ३)

भावार्थ– वायु से प्राण सूर्य से नेत्र तुझे देता हूं। तेरे अन्दर मन स्थिर रहे। तेरे सब अवयवों की पुष्टी (पुष्टि) होवे और तेरी जिव्हा से उत्तम वक्तृत्व होवे। यहां जीवन का साधन बताया है। वायु से प्राण प्राप्त होता है। जो व्यक्ति आलस नहीं करते प्रातःकाल, सूर्य उदय के पहले, ब्रह्म मुहूर्त में, जल्दी सोने से उठकर वायु सेवन हेतु, खुले मैदान में, वन उपवन में निकल जाते हैं, वहां टहलते, व्यायाम प्राणायाम, योगासन, सूर्य नमस्कार करते उन्हें प्राण वायु प्रचुर मात्रा में प्राप्त होती हैं और वे स्वस्थ प्रसन्न एवं दीर्घजीवी बनते हैं। जो व्यक्ति सूर्योदय और सूर्यास्त के समय, प्रातः सायं, सूर्यदर्शन करते हैं नियमित, उसके सभी के नेत्र दोष दूर हो जाते हैं और दृष्टि तीव्र बनी रहती है। इसी प्रकार जिनको प्राण स्थान के क्षय, राज यक्षमा आदि जैसे तथा रक्त स्थान के पाण्डु. रोग आदि रोग होते हैं। उनको शुद्ध वायु के सेवन से और योग्य प्राणायाम आदि से, यौगिक उपायों से पुनः आरोग्य प्राप्त होता है। इसी प्रकार मृत्तिका, जल, अग्नि, सूर्य प्रकाश, वनस्पति, औषधि, चन्द्र प्रकाश, विद्युत आदि के योग्य सेवन से और उत्तम प्रयोग से पुनः उत्तम जीवन की और दीर्घ आयु की प्राप्ति होती हैं।

औषध – रोग दूर कर दीर्घायु प्रदान करती हैं, कैसे? यह मंत्र–

अग्नेः शरीरमसि पारयिष्णु रक्षोहसि सपत्नहा।

अथो अमीवचातनः पुतुद्रुर्नाम भेषजम् ।। (मंत्र २८)

अर्थ– अग्नि का शरीर, रोगों से पार करने वाला है, यह अग्नि का शरीर, राक्षसों (रोग कीटकों) का नाश करता है तथा अन्यान्य शत्रुओं को

दूर करने वाला है। इसी प्रकार यह आमाशय के सब दोषों को हटाता है। यह 'पुतुद्रु' नामक औषधि है।'

यहां मंत्र में अग्नि को 'पुतुद्रु' नाम औषधि बताया है। अर्थात् अग्नि और पुतुद्रु ये दोनों शब्द औषधि के ही पर्यायवाची शब्द हैं। पुतुद्रु = पु+तु+द्रु का अर्थ– पु का अर्थ– (पवने) पवित्र करना, मल दूर करना, तु का अर्थ– (वृद्धि) करना, संवर्धन करना। 'द्रु' का अर्थ– (गति) प्रगति आदि हैं। इस शब्द द्वारा वैद्य जी को निर्देश है कि वह रोगी के शरीर से रोग को दूर करने के लिए तीन बातें करे– (१) पु= रोगी का शरीर पवित्र, शुद्ध और दोषरहित करे, (२) तु= शरीर की वृद्धि करें अर्थात् पुष्ट करें, (३) 'द्रु'= शरीर की निरोग अवस्था से प्रगति करें।

अरिष्टः सर्वांग सुश्रुज्जरसा शतहायन

आत्मना भुजमश्नुताम् (मंत्र ८)

अर्थ– ''इस रीति से सब अंगों और अवयवों से पूर्ण, अक्षीण अवयव वाला, उत्तम ज्ञानी, वृद्धावस्था सौ वर्ष तक जीवित रहने वाला होकर अपनी शक्ति से सब भोग प्राप्त करने वाला बने।' केवल अतिवृद्ध होना ही वेद को अभीष्ट नहीं। प्रत्येक अवयव सुदृढ़ बने, सब अवयव और इन्द्रियां ठीक अवस्था में रहें, बल स्थिर रहे और यह सब होते हुए मनुष्य वृद्ध बने यह वेद का आदर्श और उपरोक्त सूक्त मंत्रों एवं मंत्र का रहस्य है। इति शुभम्।

टिप्पणी–उस श्लोक की ओर ध्यान देते रहिए उसमें विधा+आद्यात्। आद्य अर्थात वेद उससे यह विद्या प्रारम्भ हुई है। इसीलिए उसी पद की व्याख्या में हम यहां आयुर्वेद विद्या की मौलिकता सिद्ध कर रहे हैं। वेदों में विशेषकर ऋग्वेद, और अथर्व वेद में आयुर्वेद का विशेष वर्णन है। आयुर्वेद का आदिस्रोत वेद ही है।

आयुर्वेद की वेदमूलकता

भारतीय परम्परा के अनुसार वेद ज्ञान-विज्ञान के भण्डार हैं और सम्भवतः विश्व में उनसे प्राचीन कोई साहित्य नहीं है। यह आयुर्वेद विज्ञान जो कि सृष्टि के आदि से चला आ रहा है उसी का उपवेद या उपांग है। जहां तक आयुर्वेद शब्द की प्राचीनता का प्रश्न है वहां यह साधिकार कहा जा सकता है कि वैदिक वाङ्मय के संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषत् साहित्य में कहीं भी आयुर्वेद शब्द नामतः निर्दिष्ट नहीं है यद्यपि इनमें इसकी भूयसी सामग्री उपलब्ध है। वेदाङ्गसाहित्य के अन्तर्गत पाणिनि (७००ई० पू०) की 'अष्टाध्यायी' के दो सूत्रों के गणपाठों में सम्भवतः सर्वप्रथम इसका उल्लेख दृष्टिगत होता है। महाभारत में भी आयुर्वेद शब्द नामतः प्राप्त है। जैन ग्रन्थों में आयुर्वेद के लिए 'आयुर्वेद' शब्द प्रयुक्त हुआ है किन्तु बौद्धवाङ्मय के सुत्तपिटक के दीर्धनिकाय (१. २.२७) में आयुर्वेद के लिए 'तिकिच्छा' (चिकित्सा) पद अभिहित है।

चरक एवं सुश्रुत की संहितायें आयुर्वेद के आकरग्रन्थ के रूप में समावृत हैं। इन दोनों संहिताओं के सम्मान्य एवं यशस्वी टीकाकार चक्रपाणि (११ वीं शताब्दी) एवं डल्हण (१२ वीं शताब्दी) आयुर्वेद के उपजीव्यभूत ऋग्वेद अथवा अथर्ववेद के स्रोत को दिग्दर्शित करने में सर्वथा अक्षम रहे हैं। उन दोनों ने वेदेतर सन्दर्भित उद्धरणों के व्याख्यान में अवश्य अपनी वैदुष्य एवं प्रतिभा का परिचय दिया है किन्तु वे उस विचारधारा के मूलस्रोत के निदर्शन में सर्वथा मौन हैं।

मूलस्रोत अवगाहन से पूर्व यह आवश्यक है कि हम वैदिक संहिताओं का सामान्य परिचय पा लें। वैदिक वाङ्मय के अन्तर्गत संहिता, ब्राह्मण, आरण्यक, उपनिषद् एवं वेदांग साहित्य की गणना होती है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद एवं अथर्ववेद की चार संहिताओं में गणना है। ये संहितायें अनेक शाखाओं से युक्त होने के कारण विपुल थी पर आज के युग में वे सभी उपलब्ध नहीं है। महाभाष्यकार् पतंजलि के अनुसार ऋग्वेद की २१, यजुर्वेद की १००, सामवेद की १००० एवं अथर्ववेद की ६ शाखायें थी। अर्थपरिशिष्ट के चरणव्यूह के अनुसार ऋग्वेद की शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन एवं माण्डूकायन– ये पांच प्रमुख शाखायें

हैं जिनमें सम्प्रति एकमात्र शाकल शाखा ही उपलब्ध एवं प्रचलित है। सम्प्रदाय भेद से यजुर्वेद शुक्ल एवं कृष्ण इन दो में विभक्त है। शुक्ल यजुर्वेद की प्रधान शाखायें माध्यन्दिन उत्तर भारत में अधिक प्रचलित है। माध्यन्दिन शाखा वाली संहिता ही 'वाजसेनीय संहिता' कहलाती है। चरणव्यूह के अनुसार कृष्णयजुर्वेद की ८५ शाखायें थी जिनमें केवल आज तैत्तिरीय, मैत्रायणीय, कठ एवं कपिष्ठल-कठ ये चार ही शाखाये उपलब्ध हैं और उसी के अनुसार चरक शाखा के ही अन्तर्गत कठ (प्राच्य) एवं कपिष्ठल कठ का समावेश है।

यजुर्वेद की यह वही चरकशाखा है जिस शाखा ने ऋग्वेद के पंचम मण्डल के द्रष्टा अत्रि के पुत्र पुनर्वसु आत्रेय के द्वारा उपदिष्ट तथा उनके शिष्य अग्निवेश द्वारा संकलित अग्निवेशतन्त्र को संकलित कर के चरक नाम दिया। पतंजलि ने प्रत्यज्ञाह्निक में 'नवधाऽऽथर्वणो वेदः' लिखकर अथर्ववेद की नौ शाखाओं का उल्लेख किया है। प्रपंचहृदय, चरणव्यूह तथा सायणभाष्य के उपोद्घात में शाखाओं की संख्या में अभिन्नता होने पर भी इनके नामों में महती भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इनकी तुलना करने पर ये नौ नाम पिप्पलाद, तौद, मौद, शौनकीय, जाजल, जलद, ब्रह्मवद, देवदर्श तथा चारणवैद्य भेद से उचित प्रतीत होते हैं। सम्प्रति शौनक शाखा का ही प्रचार है। अथर्ववेद की अन्तिम शाखा चारणवैद्य आयुर्वेद से सम्बद्ध है किन्तु इसके विषय में कौशिकसूत्र की व्याख्या तथा अथर्वपरिशिष्ट (२२/२) द्वारा कुछ ज्ञात होता है। वायुपुराण के अनुसार इस शाखा में छः सहस्र एवं छब्बीस मन्त्र थे पर यह अभी तक उपलब्ध नहीं है। अथर्ववेद की इस शौनक शाखा में २० काण्ड, ७३१ सूक्त तथा ५६६७ मन्त्र लिये गए हैं। यदि चारण शाखा उपलब्ध होती तो आयुर्वेद के अनेक मूलस्रोतों का सरलता से ज्ञान हो जाता। यद्यपि इस शाखा के प्रत्येक काण्ड में आयुर्वेद की भूयसी सामग्री निहित है।

अथर्ववेद और उसके विविध नाम उसमें आयुर्वेद :-

अथर्वन् शब्द की व्याख्या और निर्वचन निरुक्त में मिलता है। निरुक्त के अनुसार थर्व् धातु गत्यर्थक है। थर्वन् का अर्थ है गतिशील और अथर्वन् का अर्थ है गतिहीन, निश्चल, स्थिर। गोपथ ब्राह्मण के अनुसार

'अथर्वाक्' (अथ+अर्वाक) से अथर्वा शब्द बना है अथर्वा प्रजापति या नाम है। पूर्वोक्त व्युत्पत्ति के अनुसार गतिहीन या निश्चल भाव रखने वाले व्यक्ति को अथर्वा कहते हैं।

विभिन्न ग्रन्थों में अथर्ववेद के ६ नाम उपलब्ध होते हैं। उनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(१) अथर्ववेद - अथर्वन् ऋषि के नाम पर इस वेद का नाम अथर्ववेद पड़ा। अथर्ववेद में १६१२ मन्त्रों के द्रष्टा अथर्वन् ऋषि हैं। गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि अधिकांश मन्त्रों के द्रष्टा अथर्वन् ऋषि और उसके वंशज हैं, अतः इस वेद का नाम अथर्ववेद पड़ा।

(२) आंगिरस वेद - गोपथ ब्राह्मण का कथन है कि अंगिरस् ऋषि और उनके वंशजों ने इन मन्त्रों का दर्शन किया, अतः इसका नाम आंगिरस वेद पड़ा।

(३) अथर्वांगिरस वेद - अथर्ववेद का प्राचीन नाम अथर्वांगिरस वेद है। अथर्वन् और अंगिरस् ऋषियों के द्वारा दृष्ट मन्त्रों के संग्रह के कारण इसका यह नाम पड़ा है। अथर्ववेद में भी इसका यह नाम प्राप्त होता है। गोपथ ब्राह्मण में भी इस वेद का यह नाम मिला है।

(४) ब्रह्मवेद - अथर्ववेद का एक प्राचीन नाम ब्रह्मवेद भी है अथर्ववेद में इस वेद का नाम ब्रह्मवेद दिया गया है। गोपथ ब्राह्मण में भी इसको ब्रह्मवेद कहा गया है।

(५) भृग्वंगिरोवेद - गोपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद का नाम भृग्वंगिरोवेद भी दिया है। भृग्वंगिरा : ४५५ मंत्रों के द्रष्टा हैं। अथर्ववेद को भृग्वंगिरोवेद कहने का अभिप्राय यह है कि भृगु और अंगिरस्-वंशी जिन ऋषियों का नाम है, उनमें से अधिकांश अथर्ववेद के मन्त्रों के द्रष्टा हैं। भृगु-वंशियों में भृगु, दध्यङ् और शौनक ये स्पष्टतः आथर्वण हैं।

(६) छन्दोवेद - अथर्ववेद का एक प्राचीन नाम छन्दोवेद भी है। अथर्ववेद इसको छन्दस् नाम दिया गया है।

(७) महीवेद - अथर्ववेद का एक नाम महीवेद भी अथर्ववेद में प्राप्त होता है। इसमें मही अर्थात् महती ब्रह्म-विद्या का वर्णन है।

(८) क्षत्रवेद - शतपथ ब्राह्मण में अथर्ववेद को क्षत्रवेद कहा गया है। इसको क्षात्रवेद कहने का अभिप्राय यह है कि इसमें

क्षात्रधर्म, राष्ट्ररक्षा, राज्यसम्वर्धन, युद्धादिक का वर्णन है।

(६) **भैषज्यवेद** - अथर्ववेद में इसको भैषज्यवेद भी कहा गया है। इसको भैषज्यवेद या भिषग्वेद कहने का अभिप्राय यह है कि इसमें अनेक प्रकार की चिकित्साओं, औषधियों आदि का वर्णन है।

अथर्ववेद में काण्ड आदि एवं उनका विभाजन - अथर्ववेद में २० काण्ड, ७३० सूक्त और ५९८७ (पांच हजार नौ सौ सत्तासी) मन्त्र हैं।

अथर्ववेद का विषय-विवेचन– अथर्ववेद के २० काण्डों के विषय का संक्षिप्त विवेचन इस प्रकार है। **काण्ड १ :** इस काण्ड में ३५ सूक्त और १५३ मन्त्र हैं। इसमें विविध रोगों की निवृत्ति, पाशमोचन, रक्षोनाशन, गर्भप्राप्ति और दीर्घायुःप्राप्ति आदि के मन्त्र हैं। **काण्ड २ :** इस काण्ड में ३६ सूक्त और २०७ मन्त्र हैं। इसमें विविध रोगनाशन, शत्रुनाशन, क्रिमिनाशन, दीर्घायुष्य आदि के मन्त्र हैं। **काण्ड ३ :** इस काण्ड में ३१ सूक्त और २०३ मन्त्र हैं। इसमें शत्रु सेनासंमोहन, राजा का निर्वाचन, शाला निर्माण, कृषि, पशुपालन, रोगनाशन आदि का वर्णन है। **काण्ड ४ :** इस काण्ड में ४० सूक्त और ३२४ मन्त्र हैं। इसमें ब्रह्मविद्या, विषनाशन, राज्याभिषेक, वृष्टि, पापमोचन, ब्रह्मोदन आदि का वर्णन है। **काण्ड ५ :** इस काण्ड में ३१ सूक्त और ३७६ मन्त्र हैं। इसमें ब्रह्मविद्या, लाक्षा, शत्रुनाशन, विषनाशन, रोगनाशन, ब्रह्मगवी, कृत्या-परिहार आदि का वर्णन है। **काण्ड ६ :** इस काण्ड में १४२ सूक्त और ४५४ मन्त्र हैं। इसमें शत्रुनाशन, रोग-नाशन, दुःष्वप्न-नाशन, बल प्राप्ति, अन्न-समृद्धि आदि का वर्णन है। **काण्ड ७ :** इस काण्ड में ११८ सूक्त और २८६ मन्त्र हैं। इसमें आत्मा, अंजन, पूर्णिमा, अमावस्या, शत्रुनाशन, पापनाशन आदि का वर्णन है। **काण्ड ८ :** इस काण्ड में १० सूक्त और २६३ मन्त्र हैं। इसमें दीर्घायु प्राप्ति शत्रुनाशन, प्रतिसर मणि और विराट् आदि का वर्णन है। **काण्ड ९ :** इस काण्ड में १० सूक्त और ३१३ मन्त्र हैं। इसमें मधुविद्या, काम, शाला, पंचोदन अज, अतिथि-सत्कार गाय, यक्ष-नाशन, आत्मा आदि का वर्णन है। **काण्ड १० :** इस काण्ड में १० सूक्त और ३५० मन्त्र हैं। इसमें कृत्यानिवारण, ब्रह्मविद्या, वरण मणि, सर्पविष-नाशन, विजय-प्राप्ति, मणिबन्धन, ज्येष्ठब्रह्म, आय आदि का वर्णन है। **काण्ड ११** में १० सूक्त हैं और ३१३ मन्त्र हैं। इसमें ब्रह्मोदन, रुद्र, प्राण, ब्रह्मचर्य पाप मोचन, ब्रह्म और शत्रुनाशन आदि का वर्णन है। **काण्ड १२ :** इस काण्ड

में ५ सूक्त और ३०४ मन्त्र हैं। इसमें भूमिसूक्त, ब्रह्मगवी, स्वर्गोदन, वशा गौः आदि का वर्णन है। **काण्ड १३ :** इस काण्ड में ६ सूक्त और १३६ मन्त्र हैं। इसमें विवाह संस्कार का वर्णन है। **काण्ड १५ :** इस काण्ड में १८ सूक्त और २३० मन्त्र हैं। इसमें व्रात्य, ब्रह्म का वर्णन है। **काण्ड १६ :** इसमें ६ सूक्त १०३ मन्त्र हैं। इसमें दुःखमोचन का वर्णन है। **काण्ड १७ :** इस काण्ड में १ सूक्त २० मन्त्र हैं। इसमें अभ्युदयार्थ प्रार्थना है। **काण्ड १८ :** इस काण्ड में ४ सूक्त और २८३ मन्त्र हैं। इसमें पितृमेध का वर्णन है। **काण्ड १६ :** इस काण्ड में ७२ सूक्त और ४५३ मन्त्र हैं। इसमें यज्ञ, पुरुष सूक्त, विविध मणियां छन्द, अथर्ववेद का विभाजन, काम काल आदि का वर्णन है। **काण्ड २० :** इस काण्ड में खिल सूक्तों को लेते हुए १४३ सूक्त और ६५८ मन्त्र हैं। इसमें सोमयाग का वर्णन है और अधिकांश सूक्त इन्द्र-विषयक हैं। इस काण्ड में १२७ सूक्त में राजा परीक्षित के राज्यशासन का वर्णन है।)

आयुर्वेद के अष्टाङ्ग विभागानुसार अथर्ववेदीय सामग्री का विवेचनात्मक पर्यालोचन

चरक आदि संहिता ग्रन्थों में आयुर्वेद के अष्टाड्ग विभागानुसार वर्णन देखने को मिलते हैं। परन्तु इसके बहुत पूर्व वैदिक युग में तीन प्रकार के कष्टों या दुःखों के उपचार के लिए तीन ही प्रकार के प्रतीकार या उपाय किये जाते थे। इन तीन प्रकार के कष्टों (आध्यात्मिक, आधिभौतिक एवं आधिदैविक) के अतिरिक्त किसी भी व्याधि को नष्ट करने हेतु आयुर्वेद के त्रिसूत्र या त्रिस्कन्ध सिद्धान्त का उल्लेख संहिता ग्रन्थों में मिलता है। महाभारत के पूर्व आयुर्वेद का अष्टाड्ग विभाग हो चुका था। सुश्रुत संहिता के अनुसार दिवोदास धन्वन्तरि आयुर्वेद के महान विद्वान थे, उन्होंने अपनी संहिता में कदाचित् सर्वप्रथम आयुर्वेद के अष्टाड्ग विभाग का श्रेणीबद्ध किया हो। चरक संहिता में भी अष्टाड्ग आयुर्वेद का उल्लेख मिलता है। परन्तु यह संहिता तो चार ऋषियों या आयुर्वेद महारथियों के प्रवचन का संकलन है अष्टाङ्गायुर्वेद का सर्वप्रथम नामकरण किसने किया यह कहना दुष्कर है। प्राक् काल या संहिता काल में अष्टाड्ग आयुर्वेद के पृथक्-पृथक् अंग के विशेषज्ञों का बाहुल्य था। यथा काश्यप-कौमारभृत्य और अगदतन्त्र के, भासुकि-शल्यतन्त्र के, भारद्वाज-कायचिकित्सा के गार्ग्य, गालब, जनक,

निमि आदि– शालाक्य तन्त्र के ज्ञाता थे। ऋक् यजुस और सामवेद के अतिरिक्त अथर्ववेद में अष्टाङ्ग आयुर्वेद की सामग्री प्रचुर रूप में पायी जाती है। अथर्ववेद के अभिचार मन्त्रों में सामग्री का विशद वर्णन छान्दोग्य उपनिषद् (७.१.२) के अनुसार भूतविद्या प्रसंग में मिलता है। अथर्ववेद में किसी प्रसङ्गवश अष्टाङ्ग के विषय यत्र-तत्र बिखरे हुए दृष्टिगोचर होते हैं। सुश्रुत संहिता के अनुसार निम्न पंक्तियों में आयुर्वेद के अष्ट अंगो का स्पष्टीकरण किया गया है।

प्रथम अंग शल्य - विभिन्न प्रकार के तृण, प्रस्तर, अस्थि आदि, दूषित व्रण अन्तः शल्य,, गर्भशल्य आदि के निष्कासन हेतु यन्त्र-शस्त्र क्षार और अग्नि के प्रयोग एवं व्रण विनिश्चय के लिये जो कर्म किये जाते हैं वे ही शल्य कर्म हैं।

द्वितीय अंग शालाक्य - उर्ध्वजत्रु रोग, शिर, नेत्र नासा, कर्ण आदि में होने वाले रोगों की शान्ति के लिए तथा नेत्र रोग में शलाका कर्म को शालाक्य कहते हैं।

तृतीय अंग काय चिकित्या - ज्वर, अपस्मार, कुष्ठ आदि रोगों की शान्ति के लिए किए गए उपाय को काय चिकित्सा के नाम से पुकारते हैं।

चतुर्थ अंग भूत विद्या - देव गन्धर्व आदि के आवेश को दूर करने के लिए बलिदान तथा शान्ति कर्म किये जाने को भूत विद्या कहते हैं।

पंचम अंग कौमार भृत्य - बालकों के भरण पोषण, धात्री परीक्षादि का विधान जिस में हो वह कौमार भृत्य है।

षष्ठ अंग अगद तन्त्र - सर्प कीट आदि के दंश से उत्पन्न विष तथा नानाविध स्थावर विषों की शान्ति के जो उपाय हैं वे अगद तन्त्र हैं।

सप्तम अंग रसायन - वयः स्थापना तथा आयुष्य बल और ओज की वृद्धि के लिए तथा व्याधिसमुदाय को दूर करने हेतु जो उपाय हैं वे रसायन हैं।

अष्टम अंग वाजीकरण - क्षीण वीर्य के लिए, शुक्रसंशोधन के लिए वृद्धावस्था तथा स्त्री प्रसंग में अश्वसदृश शक्ति उत्पन्न करने हेतु तथा व्यवाय में अतिहर्ष के लिये जो उपाय किये जाते है वे ही वाजीकरण हैं।

धाराधर अष्टांग आयुर्वेद का विवेचनात्मक पर्यालोचन

१. अथर्ववेद एवं अथर्वसाहित्य में शल्यतन्त्र - आधुनिक युग एवं

वैदिक युग से तुलनात्मक अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि प्राचीन शल्यविशारदों की तुलना में अर्वाचीन शल्य शास्त्री बहुत कुछ पिछड़े हैं। साधारण व्रण की चिकित्सा तथा अति दुष्कर शल्य कर्म में प्राचीन आथर्वण्य वैद्य या शल्य शास्त्री आश्चर्यकारक कर्म करते थे। अथर्ववेद के चौथे काण्ड सूक्त १२ के ७ वें मन्त्र में शरीर से पृथक् हुई अस्थियों को रथ के विभिन्न अंगों के सदृश जोड़ कर रथ की नाई मनुष्य को स्वस्थ बना देने वाला आदेश दिया गया है। मूत्राघात रोग में शर तथा शलाका आदि द्वारा मूत्र को निकालने या भेदन करने का आदेश दिया गया है। काण्ड प्रथम सूक्त ११ में दुःख प्रसव तथा विकृत के लिए योनि भेदन करने का वर्णन मिलता है। कष्टसाध्य लोहिनी और कृष्णा नामक अपची को किसी विशेष शर से भेदन करने के लिए काण्ड ७, सूक्त ७४ में उल्लेख किया गया है। अपची को पकाने के लिए लवण का उपचार आदि शल्य प्रक्रियाओं का काण्ड ७ सूक्त ७६ में वर्णन किया गया है। ऋग्वेद में अश्विनी कुमारों द्वारा नाना चमत्कार रूप भैषज्य विषय भी देखे जाते हैं। यथा– दासों द्वारा अग्नि और जल में फेंकने पर भी जीवित दीर्घतमस् ऋषि को पुनः सिर एवं वक्षःस्थल के टुकड़े-टुकड़े करने पर अश्विनीकुमारों ने स्वस्थ कर दिया। (१.५८.४–६) कौशिक सूत्र में अथर्ववेदीय मन्त्रों के विनियोग के प्रदर्शन में अथर्ववेद के विभिन्न मन्त्रो की महिमा को दर्शाते हुए चौथे अध्याय में 'अथ भेषजानि' से प्रारम्भ करके रोगों के प्रतीकार के लिए विभिन्न मन्त्रों द्वारा अभिमन्त्रित करके जल, औषधि आदि पिलाना तथा मार्जन, हवन आदि अनेकों उपाय दिये हैं। कौशिक सूत्रानुसार इसकी पच्चीसवीं कण्डिका में मूत्रावरोध के लिए एक निम्न आचार वर्णित है। यथा– अथर्ववेद काण्ड १, सूक्त ३ के प्रथम मन्त्र का जप करते हुए हरीतकी आदि भेदनीय द्रव्य को बांधना तथा आखु, किरि, पूतिक, मथित् जरत् प्रमन्द आदि औषधियों को जल में घोलकर पिलाना, घोड़े पर चढ़ना, बाण छोड़ना, गोदोहनी में २१ दाने यव डाल तथा ताम्र शलाका डालना, यव, गेहूं, बल्ली, पद्ममूल और पाविका इनको क्वाथ करके उपर्युक्त मन्त्र जपते हुए अभिमन्त्रित कर पिलाना चाहिये।

२ - शालाक्य तन्त्र

इस तन्त्र में ऊर्ध्व जत्रु की व्याधियां, जैसे शिर, नेत्र नासिका गले

आदि के रोगों का वर्णन आता है। अथर्ववेद के ६ वें काण्ड के ८ वें सूक्त में सम्पूर्ण शिर के रोगों तथा कर्ण रोगों को दूर करने का आदेश मिलता है। इन मन्त्रों में शीर्षक्ति, शीर्षामय और शीर्षण्य ये तीन शिर के रोगों का नामकरण मिलता हैं जो पृथक-पृथक व्याधियां मालूम होती हैं। आधुनिक शिर के रोगों से भिन्नता का आभास होता है। काण्ड ५ के सूक्त ४ में कुष्ठ औषधि को शीर्षामय तथा नेत्ररोगनाशक कहा गया है। नेत्र रोगों के सम्बन्ध में अथर्व वेद में विभिन्न स्थानों पर चिकित्सा का वर्णन है, कहीं जलचिकित्सा, कहीं अंजनमणि तो कहीं पर जड़्गिमणि के प्रयोग से तथा कहीं कुष्ठ औषधि तो कहीं पर दिव्य सुवर्ण उपचार मिलते हैं। यथा – अथर्ववेद के इस मन्त्र (६.१६.१) का जप करते हुए सर्षप तैल से सिक्त उसके डन्ठल का एक टुकड़ा लेकर रोगी के भुजा पर बांधना चाहिये। इस वनस्पति के डन्ठल के रस को रोगी के पलकों पर मलना चाहिये तथा अवशेष रस को चटा देना चाहिये।

३- काय चिकित्सा - आयुर्वेद के अष्टाड्ग विभागानुसार यही एक एकाकी अड्ग जो अथर्ववेद में प्रचुर रूपेण देखने को मिलता है तथा इसके विनियोग कौशिक सूत्र में स्थान-स्थान पर औषधि के रूप में तथा उपचार रूप में देखे जाते हैं। अथर्वसाहित्य के अन्य ग्रन्थों में काय चिकित्सात्मक विषय अत्यन्त हैं। वैदिक काल से लेकर अद्यावधि काल तक भिन्न-भिन्न देशों की विभिन्न पैथियों में तथा आयुर्वेद में जो चिकित्सा का सिलसिला दृष्टिगोचर होता है उसका श्रेय अथर्ववेद को ही है। अथर्ववेद मे लगभग ज्ञात और अज्ञात तथा छोटे बड़े सौ व्याधियों का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के नवम काण्ड के ८ वीं सूक्त में व्याधियों के नामकरण की एक सूची मिलती है जिसके प्रथम चार मन्त्रों में शिर के रोगों का वर्णन है। पांच से लेकर ६ तक के मन्त्रों में प्रचलित व्याधियों का वर्णन किया गया है। हृदय और उदर की व्याधियों का वर्णन दस से लेकर १४ मन्त्रों में स्पष्ट वर्णित है। १५ से लेकर १७ तक के मन्त्रों में पार्श्वास्थि तथा गुदास्थि का वर्णन है। १८ से २१ तक के मन्त्रों में विशल्यक, विद्रधि आदि रोगों के नाम के साथ पाद, जानु एवं श्रोणि का वर्णन मिलता है। अथर्ववेद में किसी-किसी स्थल पर मृत्यु शब्द रोग के पर्यायवाचक शब्द के लिए प्रयुक्त हुआ है। जैसे एक स्थल पर 'शतं

मृत्युम्' शब्द का प्रयोग हुआ है। अर्थात् वैदिक काल में एक सौ रोग थे ऐसी सम्भावना की जाती है। वाजसेनीय संहिता में भी स्वकालानुसार एक सौ रोगों की संख्या कही गई है परन्तु चरक में तो असंख्य व्याधियां मानी गई हैं तथा सुश्रुत ने अपने ग्रन्थ में ११२० व्याधियां कही हैं। अथर्ववेद में व्याधि के लिए 'यक्ष्म' शब्द के प्रयोगों का बाहुल्य है, परन्तु कहीं-कहीं रोग शब्द का प्रयोग भी हुआ है। यक्ष्म शब्द के पूर्व 'अजात' एवं 'पाप' शब्द उपसर्ग के रूप में दो तीन स्थल पर अथर्ववेद में मिलता है। अथर्ववेद में कुछ ऐसे रोगों का वर्णन और चिकित्सा मिलती है। जो निरोग होने में कालापेक्षी हैं तथा कुछ ऐसी व्याधियों का उल्लेख मिलता है जो अल्पकालापेक्षी तथा अस्पष्ट हैं।

विशिष्ट एवं कालापेक्षी व्याधियों के नाम

तक्मन्, आस्राव, मूत्रावरोध, नाड़ीव्रण, जलोदर, शीर्षक्ति, काल, किलास, क्षेत्रियरोग, जायान्य (क्षय) अपचित, श्लेष्म, बलास, हरीमा, हृदयामय।

क्षुद्र एवं अल्पकालिक व्याधियां -

पलित, पापयक्ष्मा, अज्ञातयक्ष्मा, अक्षत, विसर, पृष्ठ्यामय, आश्रीक, विश्रोक, विसल्पक, विद्रथ, क्षिप्त, हृद्योत, जलजि, शूल, पामा, पक्षाघात, अरिष्ठ, तृष्णा, अस्थिभंग, जम्भ संहनु अङ्गभेद, अङ्गज्वर, अज्ञातारू, लोहित, शमोलुनकेश, रूधिरास्राव, काहाबाह, कर्णशूल, विषूचिका, अप्वा इत्यादि।

अथर्ववेद में विष्कन्ध और ग्राही ये दो व्याधियों का नाम आता है। टीकाकारों ने क्रम से राक्षस और पिशाची अर्थ किया है। मेरे मत से ये दो व्याधियों के नाम हैं, जो अधुना ये व्याधियां लुप्त हैं या कि इसके नामकरण कुछ और ही हैं जो इन दोनों पदों से कुछ सम्बन्ध नहीं रखते हैं।

कौशिक सूत्र तथा अथर्वपरिशिष्ट (गणमाला–३२) इन दोनों अथर्वसाहित्य में अथर्ववेदीय व्याधियों का बहुत ही सुन्दर वर्गीकरण मिलता है,

अथर्ववेद में या वैदिक काल के अथर्ववेदीय साहित्य में व्याधियों का वर्गीकरण या कायचिकित्सात्मक निदानादि दृष्टिकोण से विभाग नहीं देखे जाते हैं, जैसा कि चरक सुश्रुतादि संहिताओ में वर्गीकरण देखे जाते हैं। निज और आगन्तुक व्याधियों को पृथक्करण सूत्ररूपेण अथर्ववेद में

स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है, परन्तु अथर्ववेद के स्त्रीकर्माणि तथा कौशिक सूत्र का कण्डिका ३२ के २८ से २६ सूत्र में मानस रोगों का दिग्दर्शन अत्यन्त स्पष्ट है।

४- भूत विद्या

अष्टांग आयुर्वेद का एक अङ्ग भूतविद्या भी है जिसमें गन्धर्व, यक्ष राक्षस, ग्रह आदि के आवेश से दूषित शरीर एवं मन की शान्ति के लिये जो कर्म जैसे बलिदान, पूजा आदि किये जाते हैं, यह भूत विद्या है। जिसका आदि स्रोत अथर्ववेद है। भारतीय वाङ्मय मे अथर्ववेद का साहित्य ही अकेला ऐसा साहित्य है जिसके अनेकों सूक्त भूत, विशाल, राक्षस तथा कण्व आदि जीवाणुओं के दूरीकरणार्थ या रक्षणार्थ आदेशों से भरे पड़े हैं तथा कृत्यादि नरसंहारक कृत्यों के मन्त्रों का बाहुल्य हैं अथर्ववेद के अनुसार पिशाच और राक्षस व्याधियों के कारण हैं तथा कोई विशिष्ट कीटाणु कोई विशिष्ट व्याधि का कारण माना जाता है। चरक, सुश्रुत काश्यपादि संहिता ग्रन्थों में ग्रह पूतना या स्कन्द आदि ग्रहों को बालरोग का कारण माना गया है। आयुर्वेद ने उन्माद, अपस्मार आदि मानसिक एवं शारीरिक व्याधियों के कारणों में भूत, पिशाच तथा गन्धर्व को भी एक कारण माना है। प्रेत, पिशाच गन्धर्वादि की पकड़ में आया हुआ रोगी कोई उत्तम वैद्य ही स्वस्थ कर सकता है, इस तरह के वर्णन ऋग्वेद के मन्त्रों में मिलते हैं।

जीवाणु कारण वाली अनेकों व्याधियों का वर्णन अथर्ववेद में पाया जाता है। निम्न पंक्तियों में कीटाणुओं के नाम वर्णित हैं, जो अथर्ववेद से उद्धृत हैं। यथा-यातुधान, किमोदिन, पिशाच, पिशाची, अमीवा, घायादिन, राक्षस, भगुन्दी, अलिशा, वत्सप पलल, अनुपलल, शर्क्रू, कोक, मलीम्लुच, पलजीक, वव्रीबासस, अस्वेश, रक्षग्रीव, ग्रमि, दुर्णाम, सुनाम, कुक्शोला, ककुभ सृम, अशय, करूम, जलज, शक्थमज, उरूण, मतृमतृ, कुम्भमुषक सयक, भग्नक, सड्गत्व ये दोनों भी कीटाणु कहे गये हैं। तक्मन् (ज्वर) को पूजने तथा दूर चले जाने को कहा गया है। पिशाच श्रेणी के निशाचरों को चार भागों में गिनाया गया है– (१) पिशाच, (२) राक्षस, (३) अत्रिन् (४) कण्व। पिशाच जब आक्रमण करता है तब उसके मांस का भंक्षण करता है। अत्रिन् का भी वही कर्म है। कण्व भ्रूण को नष्ट करता

है। राक्षस मस्तिष्क को विकृत करता तथा अङ्ग के जोड़ों को पकड़ता या वायु प्रकोप करता है। गन्धर्व कुत्तों के सदृश होते हैं। अपसरायें मस्तिष्क को दूषित कर देती हैं तथा उन्मादकारी है। राक्षसों द्वारा लायी गई आस्राव व्याधि ऐसा प्रतीत होने पर इन्द्र ने उन राक्षसों को विनष्ट कर दिया। आरायत् केवल रक्तपायी है।

उपर्युक्त दूषित कीटाणु भोजन द्वारा शरीर में प्रवेश करते हैं, जिसके लिये कौशिक सूत्र के २६ वीं कण्डिका में बचने के उपाय बताये गये हैं कि रोगी के लिये खाद्यान्न को गर्म पत्थर के टुकड़ो के मध्य रखना चाहिये। इसी सूत्र में व्याधि के कारण राक्षस आदि से बचने के लिए अनेको उपाय या होम आदि विधियों को तथा रक्षायन्त्र धारण करने को कहा गया है। शरीर में कुछ ऐसे हितकारक जीवाणु हैं जो अनिष्टकर कीटाणुओं से युद्ध करते हैं जैसे पिङ्ग नामक जीवाणु जन्मकाल के ऋचों को स्वस्थ रखते तथा गन्धर्वो को दूर तक भगा देते हैं। ग्राही तथा अप्वा ये दोनों व्याधिकारक पिशाचिनियां हैं।

५-कौमारमृत्य

आयुर्वेद के अष्टांग विभागों में कौमारभृत्य भी एक अङ्ग है। गर्भाधान और गर्भ की पुष्टि के लिए अथर्ववेद में अनेकों मन्त्र देखे जाते हैं। गर्भ की रक्षा के लिए भी कुछ मन्त्र परिलक्षित होते हैं। सुखप्रसव एवं जन्मकाल के अमाङ्गलिक क्षणों में हानिकर प्रभाव को दूर करने के लिए तथा ऋचों को पुष्ट करने के उपाय दिये गये हैं। अथर्ववेद में कुछ ऐसे भी मन्त्र मिलते हैं जिनमें औषधि, मन्त्र एवं रक्षायन्त्र (ताबीज, कवच) के माध्यम से पुरुष ऋचे पैदा किये जा सकते हैं तथा गर्भपात के विरुद्ध सुरक्षा और सुखप्रसव के लिए भी मन्त्रों का बाहुल्य देखा जाता है।

कौशिक सूत्र के३५ वीं कण्डिका में पुंसवन संस्कार के लिये उपाय बताए गये हैं। चौथे दिन स्त्री के स्नानोपरान्त अथर्ववेद के इस मन्त्र (५. १५.१) का जप करते हुए उसे हवन करना चाहिये तथा किसी पात्र में तिलमिश्रित भात खाना चाहिये।

६- अगद तन्त्र

अथर्वसाहित्य तथा विशेषरूपेण अथर्ववेद में अगद तन्त्र सम्बन्धित विषय जैसे स्थावर और जङ्गम विष, सर्प वृश्चिक, विषाक्त कीटाणु,

विषाक्त बाण इत्यादि के अनेकों मन्त्र मिलते हैं। ऋग्वेद में भी सर्पविष, वृश्चिक विष तथा विषाक्त कीटों से सम्बन्धित मन्त्र पाये जाते हैं। अथर्ववेद के एक मन्त्र के अनुसार सूर्य, अग्नि, पृथ्वी, वनस्पति, तथा कन्द में विष है उसे नष्ट करने या दूर करने का आदेश दिया गया है। अथर्ववेद में आगत कुछ सर्पो के नाम निम्न पंक्तियों में हैं। ये सर्प अत्यन्त विषाक्त हैं। यथा– कसर्निल, तक असित रथर्वो, पृदाकू, अत्याश्व, सवश, अत्यायन्त, तिरश्चिराजो, दर्दी करिक्रत, तरूणक अश्व, दशोनसि इत्यादि। विष को नष्ट करने के लिए कुछ वनस्पतियों से सम्बन्धित मन्त्र भी मिलते हैं। विषाक्त सर्पो की जातियों के नामकरण भी अथर्ववेद में पाये जाते हैं। यथा केरात, पृष्ण, उपास्तृण्य बभ्र, तैमात, बलिगी, विलिगी, उरुगूला आदि। अथर्ववेद में आगत विषाक्त वृश्चिक के नाम कंकपर्वन, शरकोट, वृश्चिक और वभ्रु है। कुछ क्षुद्र कीटों का भी वर्णन पाया जाता है, यथा जहरीले मशक। अथर्ववेद उपजीका नामक श्वेत चीटियों का वर्णन करता है जो चीटियां जल छोड़ती हैं, वह जल अत्यन्त विषप्न है। कुछ बिना नाम के विषहर वनस्पतियों का वर्णन है तथा कुछ का नामतः वर्णन है। यथा-तौदी, धृताची। अथर्ववेद के चौथे काण्ड में विषाक्त बाण के विष को नष्ट करने के लिए स्पष्ट वर्णन मिलता है। अथर्ववेद के षष्ठ काण्ड में सर्पविष की चिकित्सा के लिए जल को महत्वपूर्ण बताया है। चरक में भी चिकित्सा स्थान (२३.३५) में जल में परिषेचन और अवगाहन बताया गया है। दशम काण्ड में पैत्व (श्वेत आक), तौदी और धृताची वनस्पति का सर्पविषहर के लिए उल्लेख है।

कौशिक सूत्र में सब प्रकार के विषस्तम्भ के लिए उपाय दिये गये हैं। यथा अथर्ववेद के पंचम काण्ड के अमुक मन्त्र का जप करते हुए रोगों की परिक्रमा करनी चाहिये। इतना कार्य होने के पश्चात् विष अन्यत्र नहीं फैलता तथा उसका स्तम्भन होता है।

इसी सूत्र में वृश्चिक विष को नष्ट करने का उल्लेख भी है। यथा-अथर्ववेद के ७ वां काण्ड के ५६ वां सूक्त (१–८) का जप करते हुए ज्येष्टीमधु को पीस कर तथा उपर्युक्त मन्त्र से अभिमन्त्रित कर रोगी को पान कराना चाहिये तथा क्षेत्र की बल्मीक मिट्टी को जीवित पशु के चर्म में बांध कर कवच की तरह धारण करना चाहिये।

७ - रसायन तन्त्र

जो औषधि रसादि धातुओं में क्षीणता न आने दे तथा व्याधियों को विनष्ट कर स्वस्थ रखे वही रसायन है। परन्तु वैदिक ग्रन्थों में रस शब्द का व्यवहार जल के लिये ही प्रयुक्त है। अथर्ववेद में ऐसे अनेकों सूक्त हैं, जिसमें जल तथा इसके गुणों की प्रशंसा की गई है तथा वृद्धावस्था और व्याधि को दूर करने एवं अनश्वरता को पैदा करने वाला द्रव्य बताया गया है। कुछ मन्त्रों में बताया गया है कि जल विभिन्न प्रकार के रोगों की औषधि है तथा शारीरिक दोषों को दूर कर शरीर एवं त्वचा को सुस्थिर तथा स्वस्थ बनाता है। वैदिक युग में लोग जल को रसायन सदृश समझते थे। अतः अथर्ववेद जल को रस मानता है तथा जल से अक्षय बल ओर प्राण की याचना करता है।

८ - वाजीकरण

अथर्ववेद में पुरुषत्व के विकास या वृद्धि के लिए अनेक ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है। कुछ मन्त्रों में अश्व, हस्ति, गर्दभ और वृषभ सदृश पुरुषत्व शक्ति के अर्जन के लिए प्रार्थना की गई है। एक मन्त्र में अश्व, हस्ति और गर्दभ सदृश परिमाणवाले तथा वेगवान् शिश्न होने के लिये प्रार्थना की गई है। कुछ मन्त्रो में वृषा (कपिवृच्छु) अर्क ये दो शब्द आये हैं, जो दुग्ध के साथ प्रयोग करने से अत्यन्त कामोद्दीपक माना गया है। कुछ मन्त्रो में लिङ्गेन्द्रिय को पुष्ट होने तथा धनुष की तनी प्रत्यंचा सदृश होने की कामना की गई है।

संहिता काल के आयुर्वेदीय ग्रन्थों में वाजींकरण सम्बन्धी अध्याय देखे जाते हैं। कामशास्त्र में भी वाजीकरण सम्बन्धी उपाय या औषध देखने को मिलते हैं, परन्तु वेदों में न इसके अध्याय हैं न एकत्रित एक स्थल पर ही देखा जाता है। अस्तु यह विषय छिटपुट है, परन्तु स्पष्ट और सूत्ररूप में बहुत कुछ है जिसका विकास एवं प्रसार अधुना आयुर्वेद में तथा कोक शास्त्र में भी देखा जाता है। मानवों को नपुंसक या वीर्यहीन बनाने के लिए भी काण्ड ६ के १३८ वें सूक्त में कुछ मन्त्रो का उल्लेख मिलता है। वाजीकरण में वीर्यकारक लिंगोत्थापन एवं स्थूलकरण के लिये कौशिक सूत्र में कुछ उपाय या टोटकों का उल्लेख मिलता है। यथा –

''वृषणस्ते खनितारो वृषा त्वमस्योषधे।

वृषासि वृषायावति वृषणे त्वा शनामसि''। कौ०सू० ४०.१३

यह मन्त्र न किसी वेद में है, न किसी संहिता ग्रन्थ में है, अतः इस मन्त्र का जप करते हुए लोहनिर्मित खुर्पी से उच्छुष्मा (केंवाच) या परिव्याध (शतावरी) को जड़ घोटनी चाहिये तथा इन जड़ो का क्वाथ बनाकर दुग्ध के साथ गोद में धनुष रख कर और एक कील पर बैठ कर पीना चाहिये।

उपसंहार

प्रारम्भिक वैदिक युग में आयुर्वेद का विकास न होने के कारण तथा वेदों में विशेषकर अथर्ववेद में आयुर्वेद के विषय यत्र-तत्र बिखरे पड़े रहने के कारण अष्टाङ्ग आयुर्वेद का विभागरूपेण वर्गीकरण का अभाव परिलक्षित होता है। पश्चात् उपनिषद् काल के अर्थात् संहिता (चरकादि संहिता) काल में तथा इसके पश्चात् भी जितने ग्रन्थ रचे गये उन सबों में अष्टाङ्गायुर्वेद का विभाग स्पष्ट देखा जाता है। इस में यह स्पष्ट किया गया है कि अथर्ववेद या इसके प्रमुख साहित्य में अष्टाङ्ग आयुर्वेद किस-किस स्थल पर किन-किन रूपों में है तथा यह भी दर्शाया गया है कि कौशिक सूत्र कायचिकित्सादि अष्टाङ्ग आयुर्वेद के अथर्ववेदीय मन्त्रों का विनियोग किस रूप में अपने सूत्रों में उस काल के लोकाचार के अनुसार किया है। कौशिक सूत्र की यह अपनी विशेषता रही है कि अपने प्रत्येक उपचार या टोटके में अथर्ववेदीय मन्त्रों का विनियोग किस रूप में अपने सूत्रों में उस काल के लोकाचार के अनुसार किया है। अर्थात् स्थल विशेष के मन्त्रो का जप करते हुए अपने टोटके का व्यवहार या नियम सम्पन्न किया है।

श्लोक में अमृताराधिका का अर्थ है कि जैसा आयुर्वेद में कहा गया है कि '' ओषध्योऽमृतकल्पाः'' औषधियाँ वनस्पतियां अमृता हैं मानवजीवन में अमृत का कार्य करती हैं। आयुर्वेद के देवता जब समुद्रमन्थन में धन्वन्तरि के रूप में अवतरित हुए तो एक हाथ में देवलोक के लिए अमृतकलश दूसरे हाथ में मानवों के लिए वानस्पतिक आयुर्वेद था। इसीलिए श्लोक में आयुर्वेद को मानवी संहिता के रूप में सम्बोधित किया गया। यह पद्धति अरूपया– अचिन्त्य प्रभाव के कारण तांत्रिक

भावना (भावता) से सम्बन्धित है यह पद्धति वेदान्ता वेदान्तदर्शन की भाँति अद्वैत है अद्वितीय है। आयुर्वेद के योग सिद्ध तथा तन्त्रवत् चमत्कारी भी है। इसी के प्रदर्शन के रूप में वनस्पति तंत्रविज्ञान तथा कुछ औषधि प्रयोग का वर्णन कौमार तंत्र प्रसूति तंत्र अगदतंत्र का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। जो अष्टांग आयुर्वेद की **अंगावली** है।

तंत्र सिद्ध उपाय वनस्पति तंत्र, आदि प्रयोग :-(तांत्रिक भावता)

१. फिटकरी का एक टुकड़ा बच्चे के सिरहाने रखने से बालक बुरे स्वप्न नहीं देखेगा, चौकना, डरना बन्द हो जायेगा।

२. रविवार या मंगलवार को नीलकंठ पक्षी का पंख लाकर चारपाई में बांध दे तो बालक का रोना बंद हो जाता है।

३. प्रसव के समय चुम्बक पत्थर प्रसूता के हाथ में रखने से सुखपूर्वक प्रसव होता है।

४. लाल कपड़े में नमक की पोटली, बांस की जड़ धतूरा की जड़ बाएं हाथ में बांधने से सुख पूर्वक प्रसव होता है।

५. सफेद गुंजा (घूघची) की जड़ को घिसकर सूंघे या कान में बांध दे तो आधशीशी शिरदर्द दूर हो जाता है।

६. सेहुंड की जड़ दांत तले रखने से या श्वेत गुंजा मूल कान में बांधने से दांत का दर्द दूर होता है।

७. श्वेत गुंजामूल मस्तक के नीचे रखने से नींद अच्छी आती है।

८. उत्तर दिशा में स्थित आक की जड़ रविवार को लाकर लालडोरे में बांधकर बांधने से फील पांव (हाथी पांव) दूर होने लगता है।

९. काले धतूरे की जड़ ६ माशा कपड़े में रख कमर में बांधने से बवासीर रोग दूर होता है।

१०. रेशम के धागे में २१ जायफल माला बनाकर कंठ में धारण करें। १० ग्राम हीग असली कपड़े में बांधकर गले में बांधे तो मृगी अपस्मार, उन्माद रोग में लाभ होता है।

११. नाक के जिस छेद से खून बहता हो उस पैर की छोटी अंगुली में कसकर डोरी बांधे तो नक्सीर ठीक हो जाता है।

१२. सत्यानाशी की जड़ पान से खाने से, हुलहुल की जड़ सुंघाने, अपामार्ग की जड़ बांधने से बिच्छु का दर्द उतर जाता है।

१३. पान की जड़ पीस कर खाने से पथरी टूटकर निकल जाती है।

१४. सहदेवी की जड़ बांधने से ज्वर विशेषकर तिजारी ज्वर दूर होता है।

१५. करंजवीज को आधा घिसकर रोज ६० दिन तक पीने से मधुमेह (डाइविटिज) दूर होती है।

१६. कार्तिक शुक्ल पक्ष चतुर्दशी को शंखाहुली (शंखपुष्पी) निमंत्रित कर के आए तथा हस्तनक्षत्र में पंचांग (जड़ पत्ते तना फूल सर्वांग) चुनकर ले आए या वृक्ष उखाडकर घर में लाकर चूर्ण कर गोली बना ले (गुलाब जल या गुड में) श्रावण मास भर खाए तो बुद्धि का चमत्कारी विकास होता है।

१७. आमला, अपामार्ग, कमला बीज, तुलसी जड पीसकर गोली बना लें। प्रातः १ गोली खाएं, और उसके बाद गाय का दूध पीएं तो भूख-प्यास नहीं लगती, यह प्रयोग विश्वामित्र जी का है, यह उन्होने राम जी को वनवास में खिलाया था (ताते लागिन क्षुधा पियासा) बकरी के दूध में तालमखाने के बीज, भांगरे के बीज पान की जड़ खीर बनाकर प्रातः काल खाए तो कई दिन तक भूख नहीं लगे।

१८. बहेड़े के वृक्ष को शनिवार को सायं निमंत्रण दें, हाथ जोड़ कर कहे कि मैं, आपके पास आपके पत्ते लेने आऊंगा और रविवार को पत्ते लाकर पांव के नीचे दबाकर खाना खाएं, खूब भोजन कर सकते हैं। यह भोजन भट्ट योग है। दाहिने हाथ में भी पत्ते बांध सकते हैं।

१६. आर्द्रा नक्षत्र में बांस की जड़ कान में बांधे तो शत्रुभय नाश होता है।

२०. केतकी का मूल (जड़) यदि मस्तिष्क में धारण करें तो चोरों का डर नहीं रहता है।

२१. निर्गुंडी की जड़ बांधने से या मोरपंख घर में २-४ जगह लगा देने से सर्प का भय नहीं रहता।

२२. शुभ नक्षत्र में आमला (घात्री मूल) हाथ में बांधने से आदमी निर्भीक होता है।

२४ इष्टदेव या गुरुमंत्र जपकर काले धतूरा की जड़ हाथ में बांधे तो भूत-प्रेत बाधा दूर हो जाती है।

२५. नीबूं, हरी मिर्च दुकान पर लटकाने से नज़र दोष नहीं लगता। पुष्यनक्षत्र में निर्गुडी और सफेद सरसों घर या दुकान के द्वार बांधे तो व्यापार में लाभ होता है।

२६. यदि बालक को नज़र लगी हो तो राई, लाल मिर्च बालक के ऊपर से घुमाकर आग में डालें, नज़र दोष दूर होगा।

२७. गेहूं को नित्यप्रति लाकर उसके पत्ते (पूरे का) शर्बत पिए तो एड रोग दूर होता है।

२८. मंजीठ हल्दी दोनों को बाँधने से रक्तविकार दूर होता है।

२९. प्याज हांथ में बांधने से लू लगने का डर नहीं रहता।

३०. गोभी और मोरपंख बांधकर शिर या मस्तक में बांधने से मुकदमें में विजय होती है।

३१. पुष्प नक्षत्र में पुनर्नवा (पत्थर चट्टा) की जड़ लाकर दाहिनी भुजा में बांधे तो वशीकरण होगा। या भरणी नक्षत्र में सुदर्शन जड़ बांधे।

३२. सफेद आक की जड़ और सिन्दूर को केले के रस में पीसकर तिलक करने से अथवा सिन्दूर कुंकुम गोरोचन आवलें के रस में पीस कर तिलक करने से सम्मोहन होता है।

३३. शमशान का जलता अंगारा दो ईटों में रखकर जंगल में गाड़ दे तो वर्षा बाढ रुक जाती है।

३४. कटेरी की जड़ महुवा पीसकर सूंघने से निद्रा नहीं आती है।

३५. पुष्प नक्षत्र में पूर्णमासी के दिन बड़ की जड़ लाकर तिलक करे जहां जाए कार्य सिद्ध हो।

३६. शनिवार के दिन भैरव जी को मदिरा चढ़ाने तथा शनिवार के दिन पीपल की परिक्रमा दीप जलाने से शनि ग्रहदोष निवारण होता है।

३७. लक्ष्मणा बूटी को गाय के दूध में स्त्री पिए तो पुत्र लाभ होता है।

३८. सन्तान गोपाल मंत्र विधि से जपने, तुलसी में दीपदान तथा गौ को भोजन कराने से संतान लाभ होता है। बन्ध्याभाव दूर होता है।

३९. बालक के नाल काटने के समय मुक्ताभस्म उसी स्थान में डालने से मोतीझरा (टाइफाइड) जीवर भर नहीं होता है।

४०. नीम के पत्ते के पहले का भाग ११ तथा ५ मिर्च गोली बनाकर नियमित खाने से जीवन भर ज्वर, रक्तविकार नहीं होता।

४१. मीठी बच को, शहद में उसी में सोना घिस कर खाने से

हकलाना, तोतलापन दूर होता है।

४२. मस्सों पर लाल नमक घिसने से मुंह शरीर के मस्से समाप्त हो जाते है

४३. प्रत्येक हृदय रोगी को रात्रि में सोने से, पहले शहद, नीम्बू गर्म अवश्य पीना चाहिए।

४४. ज्वरनाशक मंत्र (भैषज्यरत्नावली) ओम् नमो भगवते छिन्धिछिन्धि ज्वरस्य शिरः प्रज्वलित परशुपाणये पुरूषाय फट् स्वाहा

४५.मकोय की जड़ कान में बांधने से रात्रिज्वर नष्ट होता है।

४६. ओम् विष्णुदानन ह्लीं फट् स्वाहा पान के पत्ते में लिखकर चबाएं, पारीवाला ज्वर दूर होता है।



देवराज इन्द्र से आयुर्वद ज्ञान प्राप्त करते हुए महर्षि भारद्वाज

आयुर्वेदगंगा (त्रिपथगा)

आयुर्वेद त्रिपथगा गंगा की भांति पावन है। जैसे गंगा का प्रादुर्भाव ब्रह्मा से माना जाता है। आयुर्वेद का प्रादुर्भाव ब्रह्मा से ही हुआ है। गंगा पतित पावनी है वह न जाने कितनों को पावन बना चुकी है वैसे आयुर्वेद ज्ञान गंगा भी असंख्य व्यक्तियों को युग युगों से रोग निवृत्त कर स्वस्थ बनाती आ रही हैं। गंगा भी त्रिपथगा है। वैसे आयुर्वेद विद्या भी त्रिपथगा है। तीन मार्गो से धाराओं से चलती है :–

१. सत्व, रज, तम; त्रिगुण जो प्रकृति के मूल तत्व हैं, इनके द्वारा लोगों की सात्विकी, राजसी, तामसी प्रकृति का ज्ञान किया जाता है। सत्वगुणाधिकता से कफ, रजोगुणाधिकता से वात, तमगुणाधिकता से पित्त का प्रादुर्भाव माना गया है।

२. वात, पित, कफ त्रिदोष यही रोगों के प्रमुख कारण है। इनकी विषमता से अनेक रोग पैदा होते हैं, इन्ही त्रिदोषों के आधार पर रोगों की चिकित्सा की जाती है।

३. चयं, प्रकोप, प्रशम (दोषों की तीन गतियां चय (संचय) प्रकोप (विकृति) (प्रशम) शांति बढ़े हुए दोषों को विपरीत औषधियों से नियंत्रण में लाया जाता है। स्वाभाविक तथा ग्रीष्म ऋतु में वात का संचय वर्षा में प्रकोप शरद में शमन पित्त का वर्षा में चय शरद में प्रकोप बसन्त में प्रशम/कफ का शरद में संचय बसंत में प्रकोप ग्रीष्म में शमन होता है। ऋतु प्रभाव से आहार विहार से दोषों का चय प्रकोप प्रशमं होता रहता है।

४. तीन रोग-दोषज, आगन्तुक, दैविक; कुछ रोग दोषों के विकृत विषम होने से पैदा होते है, कुछ आगन्तुक होते है जैसे– संक्रामक सहसा प्राकृतिक प्रदूषण से, जैसे– एड्स, कैंसर एवं महामारी आतंकवाद, आदि कुछ दैवी रोग बाढ़, भूकम्प आदि से तथा मानसिक रोग।

५. स्वस्थता के तीन स्तम्भ है– आहार निद्रा, ब्रह्मचर्य।

६. आयुर्वेद के तीन क्षेत्र– मन,आत्मा,शरीर।

७. आयुर्वेद के तीन त्रिस्कन्ध– हेतु, लिंग, औषधि।

८. मणि मंत्र औषधि (त्रिविधा चिकित्सा)।

९. त्रिविधा एषणा १. प्राणैषणा २. धनैषणा ३ परलोकैषणा।

१०. त्रिविध रोग परीक्षा-दर्शन स्पर्शन प्रश्न।

११. त्रिविध रोग विशेष विज्ञान-आप्तोपदेश, प्रत्यक्ष, अनुमान।

विशेष सूची त्रिसूत्र (त्रिपथगा) की पहले दी गई है।

पंचामृता आयुर्वेद पद्धति

१. पंच निदान – निदान, पूर्वरुप, लिंग उपशय, सम्प्राप्ति।

२. पंच स्रोत-प्राण, उदक, अन्न, रस, रक्त।

३. द्रव्यज्ञान– रस, गुण, वीर्य विपाक प्रभाव।

४. पंचमहाभूत–पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश।

५. पंचवात–प्राण, अपान, समान, उदान, व्यान।
(हृदय), (गुदा), (नाभि), (कंठ), (त्वचा) (क्रमशः वायुस्थान)

६. पंच कफ–श्लेषक, तर्पक, बोधक, छेदक, भेदक।

७. पंचपित्त–साधक, पाचक, रंजक, भ्राजक, आलोचक
(हृदय में), (आमाशय में), (यकृत), (त्वचा), (आंखो में क्रमशः निवास)।

८. पंचतन्मात्रा– शब्द, स्पर्श, रुप, रस, गंध।

९. पंचकर्म– वमन, विरेचन, आस्थापन, अनुवासन, वस्ति।

१०. चूर्ण अवलेह कल्क (आसव) अर्क कषाय ५ प्रकार औषधि निर्माण– विस्तृत ज्ञान से आयुर्वेद के दार्शनिक तथा चिकित्सात्मक सिद्धान्तों का ज्ञान हो जाता है।

टिप्पणी - जब आयुर्वेद जड़ी बूटियों या औषाधि द्रव्यों से किसी रोग की चिकित्सा के लिए दवाईयां (फार्मूले) तैयार किये जाते हैं तब उनमें सर्वप्रथम गुण देखे जाते हैं, यह गुण २० हैं।

१. गुरु २. शीत ३. मृदु ४. स्निग्ध ५. मधुर ६. स्थिर ७. पिच्छल ८. लघु ९. उष्ण १०. कठिन ११. रुक्ष १२. कटु १३. सर १४. खर १५. तीक्ष्ण १६. विशद १७. सूक्ष्म १८. चल १९. कटु २०. अम्ल।

इन गुणों के आधार पर रस,वीर्य, विपाक, प्रभाव का ज्ञान होता है, मधुर, अम्ल, लवण, रस वात को शांत करते हैं। कषाय, मधुर, तिक्त रस पित्त को कषाय, कटु, तिक्त कफ को शांत करते है इत्यादि। सब मिला कर अन्त में निष्कर्ष निकाला जाता है कि यह दवा उष्णवीर्य है अथवा शीतवीर्य तदनन्तर औषधि का प्रभाव जाना जाता है, यही है औषधिज्ञान

की परम्परा। चिकित्सा प्रकरण में असाध्य रोग भी ठीक ढंग से पंचकर्म क्रिया से अवश्य ठीक होते है। मानसिक रोगों के लिए चिकित्सा के अतिरिक्त आयुर्वेद शास्त्र में पंच उपाय बताए गए है :– ज्ञान, विज्ञान, धैर्य, स्मृति, समाधि। इस प्रकार आयुर्वेद विद्या पंचामृता है। यह विद्या आदृक्=सर्वतोमुखी व्यापक दृष्टिवाली है। योग, आध्यात्म, मणिधारण मंत्र तंत्र, आदि का आश्रय लेकर स्वस्थ को स्वस्थ रखने का विधान तथा उत्पन्न रोगों को दोषशमन द्वारा स्थायी आराम देनी वाली चिकित्सा है।

आयुर्वेद विज्ञान (विद्या-आद्यात्)

एकश्लोकी ज्ञानकल्प वृक्ष में आश्रित विषय का संक्षिप्त विवरण

आयुर्वेद के सभी प्राचीन आचार्यो के मत में आयुर्वेद का आदि स्रोत वेद ही है। सुश्रुत संहिता में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग बताया गया है यों तो चारों वेद-संहिताओं में आयुर्वेद का विषय यंत्र-मंत्र प्रार्थना अच्छे रुप में उपलब्ध होता है। परन्तु अथर्व संहिता में यह अधिक विस्तार से मिलता है। आयुर्वेद के आठो अंगो का उसमें स्पर्श किया गया है। इसीलिए चरक संहिता में भी आत्रेय पुनर्वसु कहते हैं कि "यदि वैद्य से कोई पूछे कि ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद और अथर्व में से किस वेद से तुम्हारा विशेष संबंध है, तो वैद्य को अपनी भक्ति अथर्ववेद में बतानी चाहिए। कश्यप संहिता में प्रश्न किया गया है कि आयुर्वेद की उत्पत्ति कैसे हुई "उत्तर दिया गया है अथर्व वेदोपनिषत में सबसे पूर्व उत्पत्ति हुई। कौन सा वेद इसका आश्रय है? अथर्ववेद इसका आश्रय है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि चरक संहिता मूल अग्निवेशतंत्र, सुश्रुत और काश्यप संहिता के अनुसार आयुर्वेद का उद्भव वेदों से ही हुआ है। आयुर्वेद का विषय सर्वाधिक अथर्ववेद में मिला है इसीलिए आयुर्वेद उसका ही विज्ञान तथा आश्रय और उसका ही उपांग है।

विद्याद्या=स्वयं वेद है आयुर्वेद (पंचमवेद)

प्रस्तुत प्रसंग में निम्न कतिपय प्रमाण दृष्टव्य हैं –

१. 'इह खल्वायुर्वेदमष्टांगमुपांगमथर्ववेदस्य'

– सुश्रुत संहिता, सूत्रस्थान अ १६

२. 'कं च वेदं श्रयति, अथर्ववेदमित्याह, तत्र हि रक्षाबलिहोमशान्ति ... प्रतिकर्मविधानमुद्दिष्टं विशेषेण, तद्वदायुर्वेदः तस्मादथर्ववेदं श्रयति।'

—काश्यप संहिता, विमान स्थान अ॰ १.

३. 'आयुषः पालनं वेदमुपवेदमथर्वणः' — अष्टांग संग्रह

४. 'तत्र भिषजा पृष्टेनैवं चतुर्णामृक्सामयजुरथर्व– वेदानामात्मनो अथर्ववेदे भक्तिरादेश्या।'

—चरक संहिता

इसके अतिरिक्त चरणव्यूह एवं शंकरकृत आयुर्वेद नामक ग्रंथों में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपवेद न मानकर इसे ऋग्वेद का उपवेद स्वीकार किया गया है यथा–

'सर्वेषामेव वेदानामुपवेदा भवन्ति, ऋग्वेदस्यायुर्वेद उपवेदः, यजुर्वेदस्य धनुर्वेद उपवेदः साम वेदस्य गन्धर्ववेदः अथर्ववेदस्य शस्त्रास्त्राणि।'

इस प्रकार विभिन्न ग्रंथों के वचनों से स्पष्ट है कि आयुर्वेद का वेदों के साथ निकटतम सम्बन्ध रहा है और उसे उपवेद के रूप में स्वीकार किया गया है। अतः आयुर्वेद को वेदस्वरूप मानने अथवा उसका वेदत्व स्वीकार करने में किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है। काश्यप संहिता में तो कारण पूर्वक आयुर्वेद का वेदत्व स्वीकार किया गया है और उसे पृथक् से पांचवां वेद माना गया है। सहेतु उक्त तथ्य का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है —

'एवमेवायमृग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदेभ्यः पंचमो भवत्यायुर्वेद इति। किं कारणम् यथा हि वेदेषु सततं ब्रह्मज्ञैस्त्रिवर्गसंयुक्तं पुरुषनिश्रेयसं चिन्त्यते एवमेवास्मिन्नपि वेदे निदानोत्पत्ति लिंगारिष्ट– चिकित्सितैः सततमेव हितसुखकरं त्रिवर्गसारभूतं पुरुषनिश्रेयसं चिन्त्यते तद्यथा च विविध विज्ञानज्ञानोपपन्ना भाष्यवचनविदोऽष्टांगया बुद्ध्योपपन्ना लंघनप्लवन– स्थानासनगमनागमन– समर्था अपि च नाम मनुष्या अदेशज्ञानवन्तो नित्यमेव देशज्ञं दैशिकमन्वयुरेवमेव खलु वेदनासु शिक्षा– कल्पसूत्रनिरुक्तवृत्त– छन्दोयज्ञसंस्तरज्ञान समुच्चयविशेषज्ञा आयुर्वेदमेवानुधावन्ति, तस्माद्ब्रूमः ऋग्वेदयजुर्वेदसामवेदाथर्ववेदेभ्यः पंचमोऽयमायुर्वेदः।

— काश्यप संहिता, विमान स्थान, अध्याय

अर्थात् यह आयुर्वेद भी ऋक, यजु, साम तथा अथर्ववेदों से भिन्न पांचवा वेद कहलाता है। इसका कारण यह है जिस प्रकार वेदों में ब्रह्मज्ञ ऋषियों द्वारा त्रिवर्ग धर्म-अर्थ-काम युक्त पुरुष निश्रेयस् मोक्ष का विचार किया गया

है उसी प्रकार इस वेद आयुर्वेद को भी निदान, रोगोत्पत्ति, लक्षण, अरिष्ट तथा चिकित्सा द्वारा हितकारी, सुखकारक तथा त्रिवर्ग के सारभूत पुरुष निश्रेयस का ही विचार किया गया है और जिस प्रकार विविध ज्ञान विज्ञान से युक्त, भाष्य वाचन आदि के पाण्डित्य, अष्टांग बुद्धि से युक्त, लंघन (लांघना) प्लवन (तैरना), स्थान, आसन, गमन तथा आगमन आदि क्रियाओं में समर्थ होते हुए भी मनुष्य देश (स्थान) का ज्ञान न होने पर .सदा उस स्थान के जानने वाले तथा वहां के निवासी के ही पास पहुंचते हैं उसी प्रकार शिक्षा, कल्प, सूत्र, निरूक्त, वृत्त, छन्द, यज्ञ, संस्तर तथा ज्ञानराशि के विशेषज्ञ भी वेदना (कष्टरोग) होने पर आयुर्वेद की ही शरण में आते हैं। इसलिए कहते हैं कि ऋग्, यजु, साम तथा अथर्व वेद से भिन्न यह आयुर्वेद पंचमवेद कहलाता है।

उपर्युक्त उद्धरण आयुर्वेद का वेदत्व प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है तथापि अनेक ऐसे स्थल द्रष्टव्य हैं जहां आयुर्वेद के लिए केवल वेद शब्द का प्रयोग किया गया है :—

१. 'प्राणाचार्य बुधस्तस्माद्धीमन्तं वेद पारगम्' —चरक संहिता

२. प्राणाचार्यं वेदपारं प्रयातम् —अष्टांगसंग्रह

३. 'स पुमांश्चेतनं तच्च तस्याधिकरणं मतम्।
वेदस्यास्य तदर्थं हि वेदोऽयं संप्रकाशितः ।।'

—चरक संहिता, सूत्रस्थान अ०

इस प्रकार वेद शब्द का प्रयोग वेदों के अतिरिक्त मात्र आयुर्वेद के लिए ही किया गया है। अन्य किसी शास्त्र के लिए नहीं। अतः आयुर्वेद का वेदत्व निर्विवाद रूप से स्वीकार किया जा सकता है।

आयुर्वेद का अनादित्व

आयुर्वेद अनादि काल से संसार में त्रस्त, विभिन्न व्याधियों और तज्जनित कष्टों से पीड़ित प्राणियों को रोगमुक्त करता आ रहा है। आयुर्वेद की उत्पत्ति कब हुई इस विषय में कुछ भी कहना संभव नहीं है। संसार, जीवन, मरण, आत्मा आदि की भांति आयुर्वेद भी अनादि है। यह समुद्र के समान गंभीर, प्रकृति और पुरुष की भांति अनाद्यनन्त और तद्वत् शाश्वत है। अतः जो विज्ञान अनादि, अनन्त और शाश्वत होता है उसकी नवीन उत्पत्ति नहीं हो सकती। शास्त्रों में जहां कहीं भी आयुर्वेदोत्पत्ति शब्द से उत्पन्न होना

अर्थ ग्रहण न कर अभिव्यक्ति मात्र समझना चाहिए। अतः आयुर्वेदोत्पत्ति के प्रसंग में सर्वत्र उत्प्रेरित शब्द का रूढ़ अर्थ न लेकर अभिप्रेतार्थ ही ग्रहण करना चाहिये। क्योंकि अनादि, शाश्वत और नित्यशास्त्र की नवीन उत्पत्ति नहीं हो सकती। प्रसंगानुसार उसकी अभिव्यक्ति ही की जाती है। आयुर्वेद का शाश्वतत्व, अनादित्व एवं नित्यत्व महर्षि चरक के निम्न वचनों से स्पष्ट है कि आद्या विद्या है।

'सोऽयमायुर्वेदः शाश्वतो निर्दिश्यते अनादित्वात् स्वभावसंसिद्धलक्षणत्वात् भावस्वभावनित्यत्वाच्च। न ह्यायुर्वेदस्यभूत्वोपपत्तिरूपलभ्यत, अन्यत्रावबोधो–पदेशाभ्याम्। एतद्वै द्वयम धिकृत्योत्पत्ति मुपदिशन्त्येके।'

— चरक-संहिता, सूत्रस्थान, अध्याय-३०

अर्थात् यह आयुर्वेद अनादि होने से अपने लक्षणों के स्वभावःसिद्ध होने से और भावों के स्वभाव के नित्य होने से शाश्वत (नित्य) है। सृष्टि के पहले आयुर्वेद शास्त्र की उत्पत्ति नहीं है और बाद में उसकी उत्पत्ति है– ऐसी बात नहीं है। ज्ञान और उपदेश इन दोनों को लेकर कुछ आचार्य इसकी उत्पत्ति स्वीकार करते हैं।

अतः ऐसे अनादि और शाश्वत आयुर्वेद की अभिव्यक्ति ब्रह्माजी सृष्टि के प्रारम्भ में किया करते हैं। महर्षि सुश्रुत के निम्न वचन से स्पष्ट है कि वर्तमान सृष्टि के प्रारम्भ में मनुष्यों की उत्पत्ति के पूर्व ही आयुर्वेद की अभिव्यक्ति ब्रह्माजी ने की थी। आयुर्वेदाभिव्यक्ति का यह सबल प्रमाण है –

'अनुत्पाद्यैव प्रजाः श्लोकशतसहस्त्रमध्यायसहस्त्रं च कृतवान् स्वयम्भुः।' सू॰सू॰ १/६

अर्थात् ब्रह्मा जी ने प्राणियों की सृष्टि के पूर्व ही एक लाख श्लोकों एवं एक हजार अध्यायों में आयुर्वेद को निर्मित किया।

इसी आशय का एक वचन काश्पप संहिता में भी उपलब्ध होता है। यथा–

अथर्ववेदोपनिषत्सु, प्रागुत्पन्नः स्वयम्भूब्रह्मा प्रजाः सिसृक्षुः प्रजानां परिपालनार्थमायुर्वेदमेवाग्रेऽसृजत् सर्ववित्।

-- काश्यप संहिता, विमानस्थान, अध्याय–१

अर्थात् अथर्ववेद एवं उपनिषदों में पूर्व ही समुत्पन्न सृष्टि की उत्पत्ति की इच्छा रखने वाले सर्वज्ञ ब्रह्मा ने प्रजा के परिपालन के लिए आयुर्वेद

को ही पहले रचा।

उपर्युक्त कथन से एक यह तथ्य भी सामने आता है कि मनुष्योत्पति होने के पूर्व ही आयुर्वेदाभिव्यक्ति होने के कारण वह आयुर्वेद वेदों के समान अपौरूषेय एवं नित्य है। आयुर्वेद का यह अपौरूषेय उसे रचना की दृष्टि से वेदों की श्रेणी में रख देता है, जिनमें आयुर्वेदाध्येता को न केवल इहलौकिक अपितु पारलौकिक सुख की उपलब्धि होती है। इसके लिए महर्षि चरक ने स्वयं लिखा है –

तस्यायुषो पुण्यतमो वेदो वेदविदां मतम् ।
वक्ष्यते यन्मनुष्याणां लोकयोरूभयोर्हितः ।।

उपर्युक्त वचन से स्पष्ट है कि पुण्यतम आयुर्वेद इस लोक में हितकारी एवं यश प्रदान करने वाला तो है ही, परलोक के लिए भी श्रेयस्कारी मार्ग प्रशस्त करता है। सुश्रुत– संहिता के प्रसिद्ध टीकाकार आचार्य डल्हण के शब्दों में तो यह मोक्ष प्रदाता है। उन्होंने शाश्वत शब्द की व्याख्या में लिखा है – 'शाश्वतशब्देन मोक्षोऽभिधीयते। तत्सम्पादनात् शाश्वतम् ।'

अतः इसमें अब कोई सन्देह ही नहीं है कि आयुर्वेद अपने अपने अष्टांग स्वरूप में अनादि, अनन्त एवं शाश्वत है तथा शाश्वत होने से पारलौकिक सुख प्रदान करने वाला अर्थात् मोक्ष–प्रदाता है।

२. चरणव्यूह (३६, प्रस्थानभेद ४) एवं महाभारत (सभापर्व ११/३३ पर व्याख्याकार नीलकण्ठ के अनुसार) आयुर्वेद को ऋग्वेद का उपवेद मानते हैं। अथर्व– परिशिष्ट (चरणव्यूह ४६) में 'ब्रह्मवेदस्यायुर्वेदोपवेदः' इस प्रकार अथर्ववेद के उपवेद के रूप में आयुर्वेद की गणना है। चरक (तत्र भिषजा पृष्टेनैव चतुर्णामृग्यजुसामाथर्ववेदानामात्मनोऽथर्ववेदे भक्तिरुपदेश्या। चरक सूत्र १/६ एवं उतरकालीन आयुर्वेद के ग्रन्थों (यथा अष्टांगहृदय सूत्र ८/६) में आयुर्वेद को अथर्ववेद का उपांग माना गया है। काश्यप संहिता (विमान् १, ताडपत्र पुस्तकान्तर्गत ७६वां पत्र) एवं ब्रह्मवैवर्तपुराण (१/१६/६-१०) में तो आयुर्वेद को एक पंचम वेद ही मान लिया गया है।

आरोग्यं भास्करादिच्छेत्

आयुर्वेद में सूर्य चिकित्सा

(माधवः सूर्यः सूर्यइव आयुर्वेदः) मायाः प्रकाशस्यधवः - पतिः = सूर्यः

ब्रह्माण्ड में नक्षत्रों में सूर्य का स्थान राजा है। ज्योतिष के अनुसार अपनी सप्तरंग वाली किरणों के कारण वह चिकित्सक भी हैं। इसके चिकित्सक रूप की वैज्ञानिकों ने जो अन्वेषण किया है। आज का लेख उन्हीं वैज्ञानिकों की अन्वेषणा का सार भाग है –

सूर्य सब प्राणियों तथा वनस्पतियों को जीवन का अवसर – आरोग्य उष्मा तथा ऊर्जा देता है। जीवन का उद्‌गम तथा विकास – सूर्य के द्वारा ही प्राप्त होता है। आधुनिक विज्ञानवेत्ताओं ने सूर्य को चिकित्सक भी माना है। ज्योतिषशास्त्र ने भी सूर्य को चिकित्सक के रूप की मान्यता दी है। क्योंकि सूर्य अपनी किरणों अथवा किरणों के रंगों द्वारा रोग और रोगाणुओं को नष्ट करता है। कहावत भी है– जहां सूर्य की किरणों का प्रवेश नहीं होता, वहां कविराज वैद्य का प्रवेश आसानी से हो जाता है। इसीलिए वैद्य को कविराज भी कहते हैं।

अरुणोदय से ही सृष्टि में स्वास्थ्य तथा नवजीवन का आरम्भ हो जाता है। वनस्पतियों के हरे भाग क्लोरोफिल या क्लोरोप्लास्ट पर धूप पड़ने से प्रकाश–संश्लेषण के परिणामस्वरूप पादपों में भोजन तथा प्राणियों के रक्तकोषों का जीर्णोद्धार ऑक्सीजन प्राणवायु द्वारा प्राप्त होता है। जल के प्राणियों के लिए – फ्राइटोप्राक्टन करता है। अर्थात् जीवन में जागृति लाता है। प्राणियों के शरीर में स्थित 'जैविक घड़ी' 'सरकेडियन क्लॉक' इसी से संचालित होती है– भूख-नींद-कार्यक्षमता तथा जीवन के अन्य आवश्यक कार्य इन्हीं किरणों द्वारा ही नियमित होते हैं।

सूर्योदय के साथ ही जीवन में उत्साह और उमंग भरने और भिन्न कार्यों के हेतु प्रेरित करने वाले हार्मोन का रिसाव बढ़ जाता है। यही कारण है कि सूर्योदय के साथ ही सब प्राणी मानव पशु-पक्षी आदि निद्रा त्याग कर अपने-अपने कार्यों में लग जाते हैं।

आंखों में भ्रूमध्यार्चित पेनियल ग्रन्थि है जिससे प्राणियों के व्यवहार में असामान्य परिवर्तन आ जाता है– इस प्रकार एक पूर्व अध्ययन बतलाता

है कि सूर्यग्रहण अथवा घने बादलों के समय जैविक घड़ी में गड़बड़ होने लगती है– जिससे प्राणियों के परस्पर व्यवहार में असामान्य परिवर्तन होने लगता है। सूर्योदय के साथ– जठराग्नि तथा पाचक ग्रन्थियां सक्रिय होकर सूर्यास्त के समय मन्द पड़ जाती है। अतः फ्रांस में लोग मध्यान्ह को भोजन डट कर और सायं का भोजन हल्का करते हैं। पर अमेरिका के लोग ठीक इसके विपरीत करते हैं। अतः फ्रांस के लोगों की औसतन आयु तथा आरोग्यता का प्रतिशत अमेरिका के लोगों से उत्तम है।

सूर्यास्त के पूर्व भोजन करने से हृदय रोग– श्वास– वायुविकार– अजीर्ण तथा अनिद्रा आदि रोग नहीं होते– रात्रि के समय भोजन करने से अनेक रोग हो जाते हैं। यदि प्राणी पहले ही रोगी है और रात का भोजन देर से करता है तो रोग की उग्रता बढ़ जाती है। अतः रोगियों के लिए रात्रि भोजन त्याज्य है।

सूर्य किरणों के सम्पर्क में आते ही त्वचा की सतह पर स्थित डि-हाइड्रोक्लोस्ट्रोल उरगोस्टराल की उपस्थिति में कैल्शियम तथा फास्फोरस के साथ जैव रसायनिक प्रक्रिया द्वारा प्रोटीन–विटामिन डी केल्सीफिरोल का निर्माण होता है – जो बाद में विटामिन डी– में रूपान्तर हो जाता है।

धूप में बढ़ा हुआ कालेस्ट्रोल कम हो जाता है। कैल्शियम– फास्फोरस तथा लोहे की अवचूषण क्रिया – सात्म्य क्रिया – बढ़ जाती है। सूर्य किरणें रक्त द्वारा अवचूर्णित होकर रोगाणुओं तथा संचित दूषित– विजातीय पदार्थों को विध्वंस कर रोग प्रतिरोधक शक्ति को बढ़ा देती है।

धूप में रक्त संचार गति बढ़ जाती है। यकृत– वृक्क-फुफ्फुस- हृदय- त्वचा- पाचक अंग- अन्तःस्रावी ग्रन्थियां– तथा स्नायु संस्थान को भरपूर पोषण प्राप्त होता है। धूप से इन समस्त अवयवों को नवजीवन प्राप्त होता है।

डाक्टर आइफ्रेनच ने विभिन्न जन्तुओं में डिफ्थीरिया तथा यक्ष्मा के कीटाणुओं को इंजक्शन द्वारा प्रविष्ट कर – कुछ को अन्धेरे स्थान में रखा और कुछ प्रकाश वाले स्थान जहां धूप भी आती थी – अन्धेरे स्थान में रखे सब जीव रोग संक्रमण के बढ जाने से मृत्यु को प्राप्त हुए, इसके विपरीत प्रकाश और धूप वाले स्थान में रखे सब जीव जन्तु जीवाणुओं के विष को

नष्ट कर सब स्वस्थ रहे। इससे स्पष्ट हुआ कि सूर्य की अल्ट्रावाइलट किरणों में जीवाणुओं को नष्ट करने की क्षमता है। सूर्य की किरणें जहां तक पहुंचती है वहां तक– दुर्गन्ध- सीलन तथा कीटाणुओं को नष्ट कर, वहां के वातावरण को पावन और आरोग्यप्रद बनाती हैं।

जिस घर में प्रातः व सायं रोशनी पर्याप्त मात्रा में पहुंचती है वहां रोग और रोगाणुओं का विष नहीं पहुंच सकता है।

सूर्य चिकित्सा की विभिन्न विधियां -

सूर्य प्रकाश एक विकरण ऊर्जा है। विद्युत– चुम्बकीय - तरंगों के रूप में चलकर कोशिकाओं द्वारा अवशोषित हो जाती है।

धूप स्नान – जितना प्रीतिकर लगे उतनी देर तक, केवल कोपीन धारण कर सीधे पेट के बल, बाएं तथा दाएं लेटकर सब अंगों पर धूप पड़ने दें।

धूप में मालिश करने से धूप को सहने की क्षमता बढ़ती है। धूप की हानिकारक किरणों से शरीर की रक्षा होती है। विटामिन डी की क्रिया तेज होती है। अस्थियां दृढ़– मांसपेशियां सशक्त– रक्त प्रवाह तथा चयापचय क्रिया उन्नत तथा शरीर शक्तिशाली होता है। धूप स्नान में आंखों और शिर की रक्षा के लिए सिर पर गीला तौलिया रखें – पुनः ग्रीवा और चेहरे को ठंडे पानी से धोएं। जल पिएं, स्वेद आने पर अथवा शरीर के गर्म हो जाने पर ठंडे पानी से नहाएं, रोएंदार तौलिए से शरीर को घर्षण करें। प्राचीनकाल से ही सूर्योपासना भारतीय पद्धति रही है यथा – सूर्योज्योतिः सूर्याय स्वाहा।

सूर्य की स्वास्थ्यकारी किरणों की महिमा को प्रकाशित करने के लिए यू. पी., बंगाल, बिहार, उड़ीसा आदि प्रान्तों में कार्तिक शुक्ल पक्ष की षष्ठी को बड़े धूमधाम तथा हर्षोल्लास से सूर्य पर्व मनाया जाता है – आजकल इतवार अर्थात् रविवार को एक पवित्र दिन मानकर शासन द्वारा अवकाश का दिन मनाया जाता है। सूर्य को जल चढ़ाने की प्रथा शताब्दियों से एक स्वास्थ्यकारी प्रयोग चला आ रहा है।

जल चढ़ाते समय जल की धारा के निरन्तर गिरने से जल सीकर पुंज का निर्माण होता है, जिससे सूर्य की तीक्ष्ण तथा हानिकारक किरणों का शोषण होकर स्वास्थ्यदायनी पैराबैंगनी किरणें शरीर पर पड़ती हैं– इससे चर्म रोग – कुष्ठ रोग – कण्डु रोग – हृदय रोग तथा वात-पित्त और

कफजन्य रोगों में लाभ मिलता है।

सूर्य प्रकाश को लेते समय सारे शरीर को तौलिया अथवा हथेलियों से खूब घर्षण करें त्वचा को लाल कर लें – तत्पश्चात् – स्पंज - ब्रुश अंगुलियों को पानी से भिगोकर सारे शरीर की मालिश या घर्षण करें। ब्रिटेन की एक पुरातन विधि से तीव्र धूप में सारे शरीर को केले या नीम के पत्ते से ढक दिया जाता है, जिससे पत्तों द्वारा सूर्य की हानिकारण किरणों का शोषण होकर शरीर में सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणें स्वास्थ्य प्रदान करती हैं।

सारे शरीर पर मिट्टी का लेप कर सूर्य स्नान करने से अथवा मिट्टी के सूखने पर ठंडे जल से स्नान करें। हिलियो- हारियो - मोरिको थैरेपि के अन्तर्गत समुद्र के तट पर नंगे बदन धूपस्नान से लेकर समुद्र स्नान की प्रक्रिया को क्रम से बार-बार दोहराने से - वायु - सूर्य तथा समुद्र स्नान की चिकित्सा का लाभ एक साथ पाया जाता है। आंखों में तेज तथा कान्ति जोकि सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होती है।

विख्यात नेत्ररोग विशेषज्ञों ने दृष्टिदोष से ग्रस्त लोगों के लिए आंखों को बन्द करके सूर्य की ओर देखते हुए ७ मिनट तक बाएं और दाएं घुमाने की सिफारिश की है। ऊषाकाल की लालिमा तथा अरुणोदय की ओर लगातार १० मिनट तक देखने की आंखों की दिव्यता एवं प्रकाश लौटने लगता है तथा अधिक रक्त संचार होता है। सुवर्ण- ऊर्जा - ज्ञान - ज्योति - सत्य - अमृत - प्रज्ञा एवं प्रकाश के प्रतीक सूर्य की वन्दना वेद तथा उपनिषदों ने खूब गाई है। इससे संबंधित विद्या को 'चक्षुष्मती विद्या' कहा जाता है। धूप स्नान करने का श्रेष्ठतम समय शीतकाल में सूर्योदय से लेकर सूर्यास्त तक है। परन्तु ग्रीष्मकाल में प्राप्त ६ बजे से ६ बजे तक तथा सायं ५ बजे से ७ बजे तक है। धूपस्नान १० मिनट से ४६ मिनट तक कर सकते हैं। सप्ताहान्त ११ बजे से २ बजे मध्य् धूप में घातक पैराबैंगनी किरणे यू०वी०सी० की मात्रा में तीव्रता बढ़ जाती है।

सूर्य किरणों के सात रंग हरा-पीला-लाल-बैंगनी-नीला-नारंगी आदि के अतिरिक्त इन्फ्रासिस–तथा अल्ट्रावायलट किरणें होती हैं। इन्फ्रारिड त्वचा के अन्दर ४ सेन्टीमीटर तथा अल्ट्रावायलेट रेंज एक मिलीमीटर गहराई तक प्रभाव डालती हैं। सूर्य किरणों का बेलेन्स 0.0 से ०.५ क्यू के मध्य होता है।

अल्ट्रावायलट के मुख्य तीन घटक यू.वी.सी., यू.वी.बी. तथा यू.वी.ए. होते हैं। शीत ऋतु तथा बादलों से आच्छादित समय में यू.वी.बी. कुछ कम हो जाता है। यू.वी.बी. से ऋतु परिवर्तन, थलचर तथा जलचर समुद्री जीवों पर घातक प्रभाव तथा त्वचा का कैंसर होता है। यू.वी.ए. के द्वारा कैंसर तो नहीं होता पर डर्मिस को भेद कर त्वचा का लावण्य और स्वाभाविक टोन को प्रभावित करने वाली कोलाजैन तथा इलास्टिक को नष्ट कर झुर्रियां उत्पन्न करती हैं। यू.वी.ए. से लोहा लेने में सक्षम होते हैं। यही कारण है कि गोरे लोगों में काले लोगों की अपेक्षा कैंसर अधिक होता है।

सूर्य की अल्ट्रावायलेट किरणें जीवन तथा स्वास्थ्यदायिनी है। पर मनुष्य की भोग लिप्सा ने उसे रोग और मृत्यु का साक्षात् सन्देशवाहक बना दिया है। प्रकृति ने समस्त प्राणियों और पादपों की सुरक्षा के लिए पृथ्वी से २० या २५ किलोमीटर की ऊंचाई पर ओजोन का सुरक्षा कवच फैला रखा है। ब्रह्माण्ड से अनेक घातक कास्मिक तथा अल्ट्रावायलेट किरणों को ओजोन की सुरक्षा कवच सोख लेती है तथा हमारी सुरक्षा और स्वास्थ्य के लिए जीवनदायिनी किरणें भेजती हैं। सुविधाभोगी मानव के विलासितापूर्ण जीवन के चलते ओजोन के सुरक्षा कवच में छेद हो गया है। वायु प्रदूषण – जेट विमानों – एयरोसोल – रबड़ प्लास्टिक – रेफ्रीजरेटर – कीटनाशक औषधियां – आणविक उत्पादों में क्लोरोगार्बन का उपयोग किया जाता है। इस रसायन में क्लोरीन के अणु होते हैं। जो ओजोन की परत फाड़ देती है। दक्षिणीय ध्रुव तथा एंटार्कटिका के ऊपर लाखों किलोमीटर के ओजोन का कवच फट चुका है – इस क्षेत्र के आसपास के देश दक्षिणी- उत्तरी एंटार्कटिका का तथा न्यूजीलैण्ड के प्राणियों और वनस्पतियों में आनुवांशिकी गड़बड़ी तथा कैंसर होने का खतरा बढ़ गया है। भारत के ओजोन कवच में अभी छिद्र तो नहीं हुआ, परन्तु वायु प्रदूषण से कमजोर अवश्य हो गया है। भूमध्य रेखा के समीप होने के कारण गर्मी के दिनों में दक्षिण भारत में अल्ट्रावायलट किरणों का विकरण काफी बढ़ जाता है। एंटार्कटिका में भारतीय वैज्ञानिकों द्वारा दी गई अन्वेषणा में उक्त निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है।

अन्य देशों की अपेक्षा भारत में ओजोन का स्तर २४० से ३५० डाकमिन यूनिट के बीच बदलता रहता है, वायु प्रदूषण को यदि नहीं रोका गया तो

स्थिति भारत में भी भयावह हो सकती है, जनसामान्य तथा भारत के विद्वानों के ध्यान में हो – नदी, तालाब, झीलें तथा समुद्र के किनारे तथा वर्षा ऋतु में बादलों के गरजने और बिजली के कड़कने से तथा भौतिक रसायन से ओजोन तथा ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है– यह हानिकारक पैराबैंगनी किरणों को सोख लेती हैं – अतः ऐसे वातावरण में सूर्य स्नान लेने और टहलने से पर्याप्त लाभ होता है। जल से परावर्तित पैराबैंगनी किरणें स्वास्थ्यप्रदायनी होती है। मध्यान्ह की तीव्र अल्ट्रावायलेट किरणें त्वचा में जाकर झुर्रियां – लू आघात– त्वचा का कैंसर - त्वचा में कालापन - एवं धब्बे तथा एलर्जिक प्रतिक्रिया उत्पन्न करती हैं।

सूर्य किरणों के अभाव से सूखा रोग - स्त्रियों की अस्थियों में मुरमरापन - ओस्टोपलाईटस क्लोरोस्पेरल वृद्धि - दुर्बलता - कटिशूल - तथा वात रोगों की उत्पत्ति होती है।

धूप स्नान लेने से फुफ्फुस- आँतो समस्त सन्धियों तथा अन्य अंगों की झिल्ली में संचित दूषित रस - नष्ट हो जाता है - वेदनाओं का शमन होता है सभी प्रकार का आमवात - सन्धिशोथ - शूल-घाव- एग्जीमा - सुराइसिस - यक्ष्मा - जीवाणु जन्य रोग - लकवा - श्वास - कुष्ठ - अस्थि सम्बंधित रोगों में सूर्यस्नान चमत्कारिक लाभ करता है। सूर्यस्नान से हर्निया- हार्मोन का स्राव बढ़ने से रक्त वाहिनी तथा स्नायुओं का अवरोध दूर हो जाता है।

प्रकृति के सब उपहार मानव के विकास और स्वास्थ्य के लिए हैं। इससे छेड़खानी कर के विनाश को आमन्त्रित करना उचित नहीं। इन उपहारों से जीवन को स्वस्थ और सुखी रखा जा सकता है।

सूर्य आत्माजगतस्तस्थुषश्च-सूर्य को जगत् का आत्मा बताया गया है। सूर्य माधव (प्रकाशपति) है साथ विद्या का आद्य भी है। हनुमान जी ने सूर्य से विद्या ग्रहण की थी। गीता में कृष्ण ने योग के आदिज्ञाता विवस्वान् (सूर्य) को बताया-विवस्वान् मनवेप्राह। इसलिए श्लोक में विद्या + आद्यात् शब्द सार्थक है। अर्थात् आयुर्वेद विद्या के विकास का आदिजनक सूर्य भी है।

आयुर्वेद की अध्ययन-परम्परा (धाराधरा)

आयुर्वेद के प्रचार का क्रम जो इन वैदिक संहिताओं में उपलब्ध होता है, उसके अनुसार प्रारम्भ में ब्रह्मा ने वेदों से आयुर्वेद को ग्रहण करके देवों के राज्य में आन्तरिक सुरक्षा के अधिकारी प्रजापति को उसका अध्यापन किया। प्रजापति से लेकर अश्विनी कुमारों ने इन्द्र को आयुर्वेद पढ़ाया उसके अनन्तर इन्द्र से ही दिवोदास धन्वन्तरि ने इस विज्ञान को ग्रहण किया और महर्षि भारद्वाज ने भी इन्द्र से ही आयुर्वेद पढ़ा। ४. दिवोदास धन्वन्तरि ने औपधैनव वैतरण, औरभ्र, पौषकलावत, करवीर्य, गोपुर रक्षित और सुश्रुत आदि शिष्यों को आयुर्वेद की शिक्षा दी। आयुर्वेद को शल्य, शालावय, काय चिकित्सा, भूत विद्या कौमार भृत्य अगद तंत्र रसायन तंत्र और वाजीकरण तंत्र इन आठ अंगों में विभक्त किया गया। इनमें से दो अंग प्रमुख है– शल्य चिकित्सा और काय चिकित्सा। इनके आधार से शेष छः अंग भी कार्यकारी बने हैं। दिवोदास धन्वन्तरि नें अपने शिष्यों को, शल्य, चिकित्सा, को प्रधान रखकर शेष अंगो की भी शिक्षा प्रदान की। उनके एक शिष्य सुश्रुत ने जिस संहिता की रचना की वह आज सुश्रुत संहिता के नाम से विख्यात है। जैसा कि कहा जा चुका है कि इन्द्र से ही महर्षि भारद्वाज ने ज्ञान प्राप्त कर आयुर्वेद पढाया, इनमें से आत्रेय पुनर्वसु नामक शिष्य ने अग्निवेश, भेल, जतूकर्ण, पराशर, हारीत तथा क्षारपाणि नामक छः शिष्यों को शिक्षित किया। इन सभी शिष्यों ने पृथक-पृथक संहिताओं की रचना की। अग्निवेश ने जो संहिता लिखी उस को अग्निवेश तंत्र कहा जाता है। उसकी विशिष्टताओं के कारण उसका सर्वाधिकार प्रचार हुआ। अधिक काल बीत जाने पर इसका पुनः प्रति संस्कार किया गया संहिता का यह प्रति संस्कार चरक नामक मुनि ने किया। संहिता का यह प्रति संस्कृत रूप लोक में इतना प्रिय हुआ कि लोग अग्निवेशतंत्र नाम छोडकर इसे चरक संहिता ही कहने लगे। यह काय चिकित्सा प्रधान ग्रंथ है। इस प्रकार आयुर्वेद के प्रचार, प्रसार, अध्ययन एंव अध्यापन की जो ऐतिहासिक परम्परा सामने आती है। वह प्रामाणिक है, क्योंकि सभी संहिताओं में इसका विवरण एक ही रूप में दिया गया है। ऐसे अंतः साक्ष्य की अवहेलना करके उसे असत्य अथवा अविश्वसनीय नहीं कहा जा सकता है इसके अतिरिक्त

जहाँ पर आकर यह परम्परा समाप्त होती है उन व्यक्तियों के द्वारा लिखित संहिताएं आज भी उपलब्ध है।

विश्व के संचालन के साथ ही मानव को रोग-मुक्त रखने हेतु ब्रह्मा जी ने आयुर्वेद का उपदेश अश्विनी कुमारों को दिया। समुद्र-मंथन के समय दानव देवताओं से शेषनाग द्वारा किये गये मंथन में सोलह रत्न उत्पन्न हुए जिनमें भगवान धन्वन्तरि अमृत का घड़ा एवं आयुर्वेद-साहित्य लेकर प्रकट हुए इस प्रकार सृष्टि की रचना के साथ ही साथ आयुर्वेद का अस्तित्व प्रारम्भ हुआ। इसलिए ही यह विद्याद्या=विद्याओं में आद्या है। आयुर्वेद किसी विशेष चिकित्सा पद्धति का नाम नहीं है, अपितु भारतवर्ष की प्राचीनतम चिकित्सा पद्धति को आयुर्वेद की संज्ञा दी गई है। जबकि आयुर्वेद की परिभाषा निम्न प्रकार से है :—

" हिताहिंतं सुंखं दुखम् आयुस्तस्य हिताहितम्।
मानंञ्च तच्च यत्रोक्तं आयुर्वेदः सः उच्यते।। (चरक)

एवं

"आयुर्हिताहितं व्याधेर्निदानं शमनं तथा।
विद्यते यत्र विद्वद्भिः स आयुर्वेद उच्यते ।। (भै० रत्नावली)

अर्थात् जिस शास्त्र में आयु के लिए हित कारक एवं अहितकारक पदार्थों का उल्लेख हो और रोगों के निदान या रोग उत्पन्न होने के कारण और उनकी शांति के उपाय एवं चिकित्सा का वर्णन किया गया हो ऐसे शास्त्र को विद्वान लोग आयुर्वेद के नाम से पुकारते हैं।

(अरूपया त्रिपथगा) लाभान्तरंगा

काय चिकित्सा

आयुर्वेद—शास्त्र में चिकित्सा-पद्धति को आठ अंगों में विभाजित किया गया है। जिसके अनुसार चिकित्सा करने का निर्देश दिया गया है, वह इस प्रकार से है :— १. शल्य तंत्र २. शालाक्य तंत्र ३. कौमारभृत्य (बाल रोग) ४. अगद तंत्र (विष विज्ञान) ५. काय चिकित्सा ६. भूतविद्या ७. रसायन ८. बाजीकरण

आयुर्वेद-शास्त्र में शरीर को स्वस्थ रखने के उपायों का मुख्य रूप से उल्लेख किया गया है। दैनिक चर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, ब्रह्मचर्य,

विवाह योग्य आयु पुरुष के लक्षण दैनिक आहार-विहार आदि जिसमें शारीरिक व मानसिक कार्य सामान्य रहें, इन सभी बातों पर मुख्य रुप से ध्यान दिया गया है। अपितु चिकित्सा को गौण माना गया है। रसायन के द्वारा किसी को दीर्घायु प्रदान करना एवं शारीरिक रोग क्षमता प्रदान करना, भूत विद्या द्वारा पिशाच भूत द्वारा पीड़ित व्यक्ति को स्वास्थ्य प्रदान करना। अभी तक इसे आधुनिक चिकित्सा-वैज्ञानिक नहीं प्राप्त कर पाये है न यह पता चल पाया है कि इसमें कौन सा वैज्ञानिक विश्लेषण है। उसी प्रकार बिच्छु व सर्प दंश चिकित्सा व वातव्याधि चिकित्सा को तंत्र-मंत्रों द्वारा जितना शीघ्र स्वास्थ्य लाभ किया जाता है उतना काम अभी आधुनिक चिकित्सा द्वारा नहीं हो पाया है।

आयुर्वेद-शास्त्र में शरीरोत्पादक मल, विष, जन्तु या विजातीय द्रव्यों को निकालकर वातादि दोषों को शमन करके जीवनीय शक्ति की वृद्धि होती है जिससे संक्रामक रोग नहीं हो पाते हैं। शारीरिक शक्ति जितनी स्वस्थ व सक्षम होगी जो कि रसायन द्रव्यों के सेवन से प्राप्त होती है, व्यक्ति उतना ही अनेक प्रकार के संक्रामक रोगों से मुक्त रहेगा। आयुर्वेद-शास्त्र में विश्व में जितनी वनौषधियां, धातुयें व अन्य पृथ्वीगत तत्व उपलब्ध हैं इन सभी के गुण-धर्मो के उल्लेख हैं।

आयुर्वेद का शब्दार्थ (लाइन्स आफ लाइफ) :–

शरीर और आत्मा का सम्बन्ध जब तक रहता है उस कालावधि का नाम आयु है उसका वेद-विज्ञान आयुर्वेद है।

संस्कृत में विद धातु (क्रिया) है। इसके ४ अर्थ हैं– विद् ज्ञाने (ज्ञान अर्थ), (विद्लृ), (लाभे), लाभ अर्थ में। आयुर्वेद में आयु का ज्ञान, आयु का लाभ, विद्-सत्तायां आयु को अस्तित्व में रखना, विद् (विचारणे)- आयु के बारे में मनन चिंतन अनुसंधान यह सब आयुर्वेद में निहित है। आयुर्वेद के क्रिया पक्ष दो है–

(आधाराधरः – निम्नलिखित दो आधार हैं) आधारौ आधरति

१. स्वस्थस्य स्वास्थ्य रक्षणम् २. आतुरस्य रोग प्रशमनम :–

१. पहला सिद्धान्त है कि स्वस्थ को स्वस्थ रखने का प्रयास यह आयुर्वेद की विशेषता है इसीलिए आयुर्वेद में सदाचार रसायन का भी

वर्णन है। योग विज्ञान, प्राकृतिक चिकित्सा, आध्यात्मज्ञान सभी का उपदेश आयुर्वेद करता हैं तथा धातुसाम्यक्रिया, आहार, निद्रा ब्रह्मचर्य का निर्देशन करता है। एक एक वनस्पति के प्रयोग का उपदेश स्वस्थता के लिए आयुर्वेद का निर्देशन है–

१. आमलकी खाने वाले को एडस कैन्सर जैसे ओजक्षय कर्कटार्वुद रोग नहीं होते है।

२. तुलसी कासेवन करने से कभी ज्वर नहीं होता।

३. सुहागा अथवा अर्जुनत्वक् चूर्ण खाने वाले को कभी हृदय रोग नहीं होता। सर्पगन्धाचूर्ण भी इसी प्रकार लाभदायक है।

४. चित्रक का सेवन करने से कभी अजीर्ण या उदर विकार नहीं होता, गैस समस्या नहीं आती।

५. पिपरामूल और गुड मिलाकर खाने से अनिद्रा रोग नहीं होता तथा बलकारक है।

६. त्रिफला का निरन्तर उपयोग करने से कभी रक्तचाप (ब्लड प्रेसर) नहीं होता, कब्ज नहीं होता, निद्रा भी ठीक से आती है।

७. ताम्र पात्र में रखा जल पीते रहने से संक्रामक रोगो का भय नहीं होता।

८. जटामासी का धूप (हवन) करने से निद्रा आती है इसके चूर्ण का मुख द्वारा सेवन भी लाभप्रद है।

९. अश्वगन्धा चूर्ण खाते रहने से एन्टी सेप्टिक होता है तथा ओजक्षय बलहीनता नहीं होती।

१०. दूर्वारस पीने से कोई उदर रोग नहीं होता।

११. करंज को घिसकर खाते रहने से कभी मधुमेह (डाइबिटीज) नहीं होती। इत्यादि अनेको सरल स्वास्थ्य रक्षण विधान है, इसी प्रकार आयुर्वेद ने स्वस्थ को स्वस्थ रखने के लिए दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या का विधान बतलाया है। अगर आहार निद्रा ब्रह्मचर्य का सदुपयोग तथा हितकारी सेवन हो तो दीर्घायु होती है तथा मनुष्य स्वस्थ रहता है। इसके विशेष जानकारी के लिए "चरक" शास्त्र का अध्ययन करना

आवश्यक है।

२. आतुरस्य रोग प्रशमनम् :–

यह आयुर्वेद का दूसरा पक्ष (आधार) है। रोगोंका शमन क्योंकि आयुर्वेद के मनीषी जानते थे कि यदि रोगों को दबाया गया तो किसी और रुप में वह विशाल रोग के रुप में प्रगट होगा। अतः दोषों का शमन करना ही श्रेयस्कर है। अतः प्रत्येक रोग के मूलकारण वात, पित्त, कफ दोषो का शमन करने में ही हित है। नियम पूर्वक यदि संतुलित आहार-विहार किया जाये तथा किस ऋतु में क्या भोजन किया जाए? आयुर्वेदानुसार ज्ञान हो जाए तो कभी रोग ही नहीं हो सकते। शारीरिक, मानसिक प्रज्ञापराध जन्म त्रिविध रोग तभी होते हैं जब मनुष्य काम, क्रोध, लोभ, मोह मद मत्सर के जाल में फंसकर तनाव, चिंता पैदा कर लेता है अथवा दूषित आहार-विहार चर्याओं से त्रिदोष विकृत करता है। हम कुछ आयुर्वेद के सिद्ध योग भी लिख रहे है, जो आतुर रोगी के रोग प्रशामक हैं।

''योगंआत,, काय चिकित्सा योगों का वर्णन प्रारम्भ

कैन्सर (कर्कटार्वुद)

आर्रोग्यवर्द्धिनी, १ रत्ती रसमाणिक्य, २ रत्ती प्रवाल पंचामृत, २ रत्ती शहद से प्रातः एक बार खाएं। रात्रि में पंचतिक्तघृत गुग्गुलु गर्म दूध से सेवन करें। दिन में भोजन के पश्चात्– भल्लातक रसायन अथवा तिन्दुकवटी तुलसी रस के साथ सेवन करें–

अथवा

२. मंजिष्ठादिक्वाथ एक तोला खदिरादिक्वाथ। तोला पकाकर पिएं प्रातः एक बार तथा हीराभस्म १ रत्ती ताम्रभस्म दोनों मिलाकर सहंजने के रस से खावें। रात्रि में कांचनार गुग्गुलु गर्म दूध से सेवन करें।

३. सिद्ध रसायन योग हीराभस्म ५ रत्ती पन्ना पिष्टि १० रत्ती भस्म माणिक्य १० रत्ती प्रवाल पिष्टि १० रत्ती मिलाकर रख लें मात्रा २ रत्ती शहद से १ आमलकीरसायन रात्रि में खाएँ एक चम्मच दूध के साथ।

हीरा के शोधन का विधान इस प्रकार है –

१. एक बार नीला थोथा के पानी में २. दूसरी बार कुलथी के क्वाथ

से ३. तीसरी बार अगस्त के कवाथ से ४. गंधकाम्ल (सल्फयूरिक एसिड) से बाद में २१ भावनाएं आक के दूध से २१ बार गजपुट कर भस्म बनावे। कैन्सर के लिए हीराभस्म तथा स्वर्णभस्म अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुए हैं।

भल्लातक रसायन २१ बार गोमूत्र से गोदुग्ध से शोधन कर भल्लातक (भिलावे) का शोधन किया जाता है। यह रसायन भी कैन्सर के लिए लाभदायी है।

ओजक्षय (एड्स) आमला गिलोय गोखरू का चूर्ण बनाकर खावे, इन्हीं से भावित जल पिए तथा शतावरी और शिलाजीत रसायन का सेवन करे। बोकर उगाए हुए गेहूं के पत्तों का स्वरस पिए। शुक्रसंजीवन रस १ रत्ती कामदुधा रस। रत्ती वसन्त कुसुमाकर १ रत्ती यह मिलाकर २ मात्रा बनती है। शहद के साथ दिन में २ बार खाए १ शुद्ध च्यवनप्रास का सेवन भी करे एड्स को आयुर्वेद में ओजक्षय कहते है। सब धातुओं का सारतत्व ओज है। यह शरीर के मर्मस्थानों मस्तिष्क, हृदय, नाभि आदि में रहता है। इस रोग में बलवर्द्धक रसायन औषधियों का सेवन आवश्यक है।

अन्य प्रयोग–रक्तपित्त (कहीं से नासिका आदि से खून बहता हो) कूष्मांण्डावलेह तथा उशीरासव का सेवन करे। निद्राकर योग– चन्द्रहास अर्क से निद्रा आती है। निद्रा कर चूर्ण इस प्रकार है– अश्वगन्धाचूर्ण १५० ग्रा., शंख पुष्पी २५ ग्राम, जटामांसी २५ ग्राम, सर्पगंधा २५ ग्राम, ब्राहमी २५ ग्राम, सतावरी २५ ग्रा. पीस चूर्ण कर एक चाय के चम्मच की मात्रा दूध या जल से खाए, गुलकन्द से ले सकते हैं। यह योग उच्चरक्त चाप जन्य अनिद्रा में भी लाभप्रदायक है।

(निद्रा के लिए यह भी ध्यान रखना चाहिए– अपने घर में पूर्व दिशा में, या पश्चिम दिशा में मस्तिष्क रखकर सोना चाहिए। पूर्व या दक्षिणा भिमुख सिर रखकर सोने से श्री आयु की वृद्धि होती है। दक्षिण दिशा की ओर पैर, उत्तर दिशा में सिर रखकर कभी नहीं सोना चाहिए। रात्रि में हलका भोजन फल और दूध लेना चाहिए।

मुहांसे (रक्तविकार) रसमाणिक्य ६ ग्राम, तालकेश्वर रस २ ग्राम, शुद्ध गंधक ८ ग्रा., सोनागेरु ८ ग्रा. मिलाकर चूर्ण बना लें, छान लेवे तथा

आधा ग्राम की मात्रा में ३ बार दिन में शहद के साथ खायें, रक्त शुद्ध होगा चर्मरोग सभी ठीक हो जाते है।

रक्तस्राव –

१. ग्रा. शुद्ध फिटकरी का महीन चूर्ण बकरी के दूध के साथ पीने से रक्त आना बन्द हो जाता है।

२. लाल चन्दन, विल्वगिरि, अतीस, बबूल का गोद, कुटजछाल बराबर-बराबर लेकर २०० ग्राम बकरी के दूध में डालकर पकावे। एक किलों पानी भी डालें, जब दूध मात्र शेष रहे दिन में २-३ बार पिलवाये। गुदा योनि लिंग से आने वाला रक्त बंद हो जाता है।

३. कचनार के पत्तों का रस ५ ग्रा. पीने से मुंह से रक्त आना बंद हो जाता है।

४. ढाक (पलाश) फूलों का अष्टमांश क्वाथ मधु मिलाकर पिलाने से नासिका या योनि का रक्तस्राव बंद हो जाता है।

५. दाख (मुनक्का) लोघ्र पुष्प, प्रियंगु (मालकांगनी) समभाग चूर्ण बनाकर इसे ६ ग्राम की एक मात्रा अडूसा (वासा) स्वरस और मधु के साथ खिलाने से रक्तस्राव बन्द हो जाता है।

बवासीर (अंर्श) रक्तार्श –

इमली (छिलका रहित) तवा पर भुन लें फिर चूर्ण पीस लें तीन ग्राम चूर्ण को १२५ ग्रा. दही में मिलाकर खिलावें।

२. १० ग्राम काले तिलों को खूब कूटकर २० ग्राम मक्खन के साथ खिलावें सांय प्रातः, रक्तार्श ठीक होता है।

३. राल ३० ग्रा. बारीक पीस कर कपड़ा से छान कर ६-६ ग्राम की मात्रा बना लें, प्रातः १ मात्रा १०० ग्राम दही के साथ खावें, ३ दिन में आराम। १ वादी बवासीर- रीठे के छिलके तथा सफेद कत्था दोनों बराबर तवे पर भून लें उनका तेल नहीं जलने पाए आपस में चिपकने लगे ऐसा भूनें फिर चूर्ण बनावें ४ से ८ ग्राम मक्खन के साथ खिलावे।

बवासीर के मस्सों पर –

इन्द्रायण का एक फल लेकर एक लोटे पानी में खूब घोलें, पीछे उसी पानी से मस्सों को खूब धोयें। इस प्रकार कुछ दिन करने से मस्सों

का पता न रहेगा यह शतशोऽनुभूत है।

जहां तक हो सके औषधियों के सेवन से बवासीर को नष्ट किया जाना चाहिए। आयुर्वेद में क्षारसूत्र पद्धति से भी इसका निर्मूलन किया जाता है। दवाओं से लाभ न होने पर शल्य-क्रिया का सहारा लेना आवश्यक है। निम्नलिखित प्रयोग बवासीर के निवारण हेतु लाभप्रद है—

१. दो-दो ग्राम हरड़ का चूर्ण तथा गुड सुबह-शाम खाने से बवासीर में लाभ होता है।

२. सुबह खाली पेट ५ निम्बोली बीज खाने से यह रोग मिटता है।

३. सूखा आंवला व मिश्री समान भाग लेकर चूर्ण बनावें, इसे दिन में दो बार १-१ चम्मच खाने से फायदा होता है।

४. कुछ समय पानी में भिगो कर दोनों समय ५-७ अंजीर खाने से लाभ होता है।

५. नागकेशर १ भाग तथा तेजपत्ता २ भाग का तीन ग्राम चूर्ण दोनों समय सेवन करने से बवासीर दूर होता है।

६. नित्य प्रातः २० ग्राम काले तिल चबाकर ऊपर से गर्म पानी पीने से २ सप्ताह में अर्श में लाभ होता है।

७. रात को एलुवा २ रत्ती दूध से तीन दिन लेने पर वातार्श में चमत्कारिक लाभ होता है।

८. जीरा १ भाग, काली मिर्च १/४ भाग, सेंधा नमक १/२ भाग का चूर्ण बनाकर दो-दो ग्राम दिन में तीन बार लेने पर अर्श में लाभ होता है।

९. भुनी हींग, सज्जीक्षार, लहसुन, निम्बोली सब समान भाग तथा चौगुना पुराना गुड़ मिलाकर प्रातः-काल सांय ३-५ ग्राम सेवन करने से बवासीर में फायदा होता है।

१०. चित्रक मूल छाल का आधा-आधा ग्राम चूर्ण सुबह-शाम एक माह तक दही के साथ सेवन करना लाभप्रद है।

११. भृंगराज २ ग्राम व कपूर १/२ ग्राम मिलाकर प्रातः-सायं सेवन करने से अर्श रोग कुछ दिनों में ठीक होता है।

बाह्य प्रयोग –

१. कासीसादि तेल का लेप करने से अर्श में लाभ होता है।

२. हल्दी, तुम्बा (थूहर का दूध) सैंधव नमक तथा गोमूत्र को मिलाकर इनका इनका लेप करने से अर्श सूख कर नष्ट हो जाते है।

३. अजमोद की पोटली बनाकर सेंकने से बवासीर की पीड़ा नष्ट होती है।

४. भांग व तम्बाकू के पत्तों को पानी में पीसकर उनका लेप करने से अर्श में लाभ होता है।

५. स्वमूत्र से धोने से अर्श में पर्याप्त लाभ होता है।

६. कबूतर की बीट नीम के पत्ते, गुड़ व आक के दूध को एक साथ पीसकर लेप करने से बवासीर में लाभ होता है।

७. मुर्दासंख २० ग्राम, कत्था १० ग्राम, कपूर १० ग्राम, यशद भस्म ५ ग्राम तथा अजवायन सत्व ५ ग्राम को सफेद वैसलीन में मिलाकर मलहम बनायें इसका दिन में २-३ बार बाह्य प्रयोग करने से बवासीर मिटता है।

शास्त्रीय योगों में अर्शकुठार रस, बोल पर्पटी, नित्योदित रस, भल्लातक लौह, पुनर्नवामण्डूर, शंखोदर धनवटी, वैश्वानर चूर्ण, विजय चूर्ण, व्योषादि चूर्ण प्राणदा वटी, कांकायन वटी, अभयारिष्ट व फलारिष्ट विशेष उल्लेखनीय दवाएँ हैं।

दूध पीते बच्चों के दस्तों के लिए – कौमारभृत्यम्

अडूसा कपूरकचरी-हल्दी-दारूहल्दी–और इन्द्रयव–सब समभाग लेकर यव कूट करें। सोलह गुणा पानी डालकर रात को भिगोयें प्रातः चतुर्थांश क्वाथ छान कर बच्चे को उस की आयु के अनुसार ५ बून्द–१० बून्द से लेकर एक छोटी चम्मच चाय वाली भर, दिन में ३ बार या चार बार देवें, इस योग से बच्चे के दस्त बन्द हो जाते हैं तथा यह दूध पीते बच्चों के ज्वर-कासादि में भी लाभदायक है।

बच्चों के ज्वर-खांसी और वमन में :–

(क) पिपली-अतीस-काकड़ासिंगी तीनों समभाग सब बारीक करके कपड़े से छान लें मात्रा १ रती से १ ग्राम तक–आयुबल के अनुसार–मधु के साथ ३-४ बार, विशेष अनुभूत योग है।

(ख) अकेली अतीस ही बारीक करके कपड़े से छान कर लें इसकी एक रती मधु में मिलाकर दूध पीते बच्चे को देने से उसकी खांसी दूध फेंकना ज्वरादि नष्ट हो जाते है।

जब बच्चे का बोलना साफ न हो :- (बोलते हुए रूकता-अड़ता या थथियाता हो)

(क) तो बच्चे को थोड़ा मक्खन या घी में वच चूर्ण चौथाई से २ रती तक आयु के अनुसार प्रातः सायं खिलायें, इसके बाद उसे दूध पिलायें। यह चिकित्सा २-३ महीने करनी चाहिये, इससे बच्चे का बोलना रूकावट रहित शुद्ध और साफ हो जाता है। यह औषध बच्चों के आक्षेपों को भी ठीक करती है।

(ख) अथवा मुल्हठी-शंखपुष्पी और वचा समभाग मिला कर बारीक करके कपडा छान कर लें, पूर्ववत् इस का प्रयोग दूध के अनुपान के साथ बच्चों को देने से बच्चे का बोलना साफ हो जाता है। आक्षेपों से रक्षा और बुद्धि में तीव्रता आती है, बच्चों में सुन्दरता-कान्ति, वाक्शक्ति-बुद्धि और आयु बढ़ती है।

४. जब बच्चों का मन पढ़ाई के लिए नहीं करे, उस की स्मरण शक्ति में कमी आ रही हो तो :–

शंखपुष्पी, चित्रक, जटामांसी, अडूसा, सोंठ, पिप्पली, हल्दी, कूट, मुलहठी, सैन्धा नमक, सब समभाग– इन को महीन करके कपड़छन कर लें और आयु और बल के अनुसार इस औषध की मात्रा निश्चय करके मधु के संग बच्चे को नित्य एक बार प्रातः काल कुछ समय तक दिया करें। बच्चे की बुद्धि तीव्र हो जाती है और उस की रूचि पढ़ाई की तरफ बढ़ जाती है और स्मरण शक्ति भी विशेष बढ़ा करती है।

बच्चों के पेट में कृमि हों :–

मुनक्का -देवदारू-सुहांजना के पुष्प-त्रिफला-नागरमोथा पिप्पली, सब समभाग, यव कूट करके सोलह गुणा जल में भिगो कर यथा विधि चतुर्थांश क्वाथ तैयार करें इस क्वाथ को उचित मात्रा में बच्चों को कुछ दिन तक पिलाने से बच्चे के सब उदरकृमि मर के निकल जाते हैं।

जब बच्चे को बार बार नकसीर आती हो तो :-

दूर्वा(दूब घास) का रस निकाल कर एक दो बूंद बच्चे की नासिका में डाले–यही योग बड़ी आयु वालों के लिए भी यथावत् लाभदायक है दूर्वा रस की बूंद नाक में डाल कर नस्य (नसवार) की तरह अन्दर खेंचे।

दूर्वा धो लेनी चाहिये शुद्ध पात्र हो और जिस साधन से दूर्वा का रस निकले– वह भी स्वास्थ्यविज्ञान दृष्टि से सर्वथा शुद्ध होना चाहिए।

जब बच्चे के कान में दर्द या कोई और तत्सम्बन्ध विकार हो तो :-

लहसुन-अद्रख और संहांजना के रस के योग से यथाविधि सरसों या तिल्ली का तेल पका कर, छान कर शीशी में रख लें, आवश्यकता होने पर इस तेल को सहन योग्य गरम करके कान में डालने से कर्ण शूल नष्ट होता है और कान बहना-कर्णकृमि-सुनने की शक्ति में कमी आदि इस के प्रयोग से ठीक होते है।

दन्तकृमि-दन्तपीड़ा और दान्तों और मसूड़ों के कई प्रकार के विकार के लिए

निम्न तैल अपने चिकित्सालय में सदैव तैयार रखें।

(क)	जायफल	त्रिफला	त्रिकुटा	हल्दी	हरड़ छिलका
	१ भाग	३ भाग	३ भाग	१ भाग	१ भाग

सब को कूट चूर्ण कर लें फिर इन से चतुर्गुण गोमूत्र, गौदुग्ध और तेल लें और सर्व प्रथम यथाविधि कुटे चूर्ण का गोमूत्र में क्वाथ करें और गोदुग्ध और तिल तेल डालकर तेल सिद्ध करें, इस तेल का नित्य मसूड़ो और दान्तों में लगाने से दान्तों की पीड़ा नष्ट होती है।

(ख) लवंग का तेल रुई पर लगाकर चिमटी (Forceps) से दांत के सुराख में विधिपूर्वक रखने से दन्त-वेदना तत्काल शमन होती है।

जिव्हा के रोगों के लिए –

सिरका-नारियल का जल – गोमूत्र-सुपारी यवकूट की हुई सौठ, सब का क्वाथ बना लें, इस की कुल्ली करने से जिव्हा के रोग नष्ट होते है।

पाण्डु-कामला तथा यकृत रोगों के लिए –

त्रिफला-गिलोय-अडूसा-कुटकी और चिरायता सब समभाग इन का यथाविधि तैयार क्वाथ कुछ दिन पिलाते रहने से बहुत लाभ होता है।

शीत पित्त के लिए :–

गिलोय का घनसत्व (या सत्व), नीम की छाल का घनसत्व-धमांसा का घनसत्व अजवायन सत्व-रसौन्त– हींग सब समभाग लें और अजवायन सत्व को छोड़ कर शेष घटकों को अजवायन अर्क की सहायता से अच्छे

प्रकार मिला लें टिकिया बनाने से पूर्व अजवायन सत्व मिलाकर ५ ग्रेन की टिकिया बना कर हवा बंद शीशी में रखें–

शीत पित्त के आक्रमण काल में १ टिकिया जल से लें, तत्काल शीत पित्त से शान्ति होती है– जीर्ण रोग होने पर १-१ गोली प्रातः सायं सादे पानी से कुछ दिन तक लेते रहें – यह योग विविध कारणों से उत्पन्न– खारिश- फोड़े फुंसी आदि में विशेष लाभदायक है। उदरकृमिनाशक- कण्डूध्न और रक्त शोधक योग है।

बच्चों को ज्वर आने पर :–

१. नीम के पत्ते :– गिलोय, जवासा, परवल और इन्द्रयव इन्हीं का क्वाथ बनाकर पीयें तो बालकों का सतत अर्थात निरंतर ज्वर शीघ्र नष्ट होता है। मरोरफल्ली, हल्दी, सरसों चिरायता, सफेद अनन्तमूल अजमोद इन्हीं को बकरी के दूध से पीस शरीर पर तीन बार मलना बालकों के ज्वर से छुटकारा मिलता है।

२. त्रिफला, नीम की छाल, परवल, मुलहठी, खरैं इन का क्वाथ पीया जावे तो कफ ज्वर को नष्ट करता है।

३. गिलोय इन्द्रायण, नीम की छाल परवल कुटकी सोंठ चंदन नागर मोथा, इन्हीं के क्वाथ में पीपल का चूर्ण मिलाकर पीयें। यह अमृताष्टक पित्त, कफ ज्वर मुख में थूक का आना अरूचि सर्दी और दाह इन को दूर करता है।

४. धाय के फूल बेलगिरी धनियां लोध, इन्द्रायण, नेत्रवाला इनके चूर्ण में शहद डालकर चाटे। यह बालकों के ज्वर और अतीसार को जीतता है।

५. लोध, पीपर नेत्रवाला इन चूर्ण को अथवा धाय के फूलों का चूर्ण शहद में मिलाकर चाटें तो बालकों का अतीसार नष्ट होता है।

६. नेत्रवाला के चूर्ण को खांड और शहद में मिलायें, चावलों के पानी से पीये तो बालक के रक्तातिसार खांसी, श्वास सर्दी इन सबका नाश होता है।

७. इन्द्रयव को शहद में मिलाकर चाटें अथवा नागरमोथा, मोचरस, कोंच के बीज, इन्हीं के चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटें तो रक्त की बवासीर नष्ट होती है।

८. धनियां और सोंठ का क्वाथ बनायें अथवा उसमें सोंठ मिर्च, पीपल, चीता, जीरा का चूर्ण मिलायें और पीयें तो आमशूल और अजीर्ण नाश होती है।

९. पीपल वाला नमक हरड़ इन के चूर्ण को खाकर दही का पानी पीयेंगे सब प्रकार के शूल, गुल्म, अफारा, मंदाग्नि आदि को जीतता है।

हिचकी दूर करने की औषधि :–

जवासा पीपर दाख इन को शहद में मिलाकर तीन रात्रि अथवा पांच रात्रि चाटें तो बालकों की खांसी और श्वास हिचकी नष्ट होती है। हींग, केवडासींगी गेरू, मुलहटी, छोटी इलायची सोंठ इनके चूर्ण को शहद में मिलाकर चाटें तो हिचकी और श्वास दूर होता है।

खांसी की दवा :-

काकडासिंगी और मूली के बीजों का चूर्ण बनाकर घृत ओर शहद में मिलाकर बालकों को चटावें तो बच्चे की खांसी भी दूर होती है वंशलोचन के चूर्ण को शहद में मिलाकर चटावे तो बालक के श्वास और खांसी दूर होती है।

बालकों के दस्त के लिए :-

एरण्ड के बीज को नीम्बू के रस से पीस बालकों की नाभि पर अथवा गुदा पर लेप करने से दस्त लगते है।

बुद्धि बढाने के लिए :-

अर्कपुष्पी, घृत शहद गूलर का फल सफेद बच जायफल सफेद दूध-घृत शहद से चटायें। चूर्ण होने वाले चार अवलेह कहे गये हैं। ये बालको के शरीर बुद्धि बल और पुष्टि की कमी को दूर करते है।

असगन्ध के एक भाग कल्क में आठ गुना दूध में मिलाकर उससे घृत सिद्ध करें यह घृत बालकों को देने से पुष्टि करता है और बालको को बल को बढ़ाता है। इस तरह लंकाधिपति महापंडित रावणाचार्य ने ''कुमार तंत्र'' में अनेक बालोपयोगी औषधियों का वर्णनकिया है जो सर्वोपयोगी है।

बाल व्याधियों पर सरल प्रयोग :-(कौमारभृम्य)

१. आपके नन्हें मुन्ने को यदि बुखार आ गया है तो उसे शहद के साथ

अदरक व लहसुन के रस का सेवन कराइये। यदि फिर भी लाभ न मिले तो उसे हरड़ नीम, कडुवे परमल और मुलहठी का काढ़ा पिलाइये, शीघ्र आराम मिलेगा।

२. सर्दी की वजह से यदि छोटे बच्चे की पसलियाँ चलने लग जायें तो उनके सीने पर आप गर्म करके लहसुन का रस मलिये व हल्की सिकाई करिये, उसे शीघ्र आराम मिल जायेगा।

३. सौंठ, काली मिर्च, गुड व तुलसी की पत्तियों का काढ़ा पिलाने से नन्हे बालको की खासी ठीक हो जाती है।

४. नौसादर और छोटी पीपल का चूर्ण तुलसी के पत्तों के रस में मिलाकर देने से बच्चे की खाँसी दूर हो जाती है।

५. सर्दियों में सर्दी लग जाने की वजह से नन्हे शिशुओं को उल्टियाँ होने लगती हैं। इनसे बचाव के लिए कुटकी अथवा दालचीनी, इलायची, तेजपात तथा नागकेसर को शहद में मिलाकर चटाइये, फौरन बन्द हो जायेगी।

६. छोटे बच्चों की अफारा या पेट फूलने की शिकायत होने पर तुलसी के पत्तों का रस और पान का रस बराबर मात्रा में निकालकर इसकी दस-दस बूंदे दिन में तीन बार चटा दें, लाभ होता है।

७. यदि आम की भुनी गुठली को थोड़े से शहद के साथ दिन में दो-तीन बार बच्चों को देने से बच्चों को दस्तों से बचाया जा सकता है।

८. स्वच्छ अजवायन बारीक पीसकर रखें, थोडी मात्रा में माता के दूध में दिन में तीन बार छोटे शिशुओं को देने से हरे-पीले दस्त व दूध उलटने में लाभ होता है।

९. बच्चों के पेट में दर्द होने पर हींग गर्म पानी में घोलकर नाभि के चारो तरफ लेप करने से पेंट दर्द, अफारा, डकार में लाभ मिलता है। यदि पासिलयों में दर्द हो तो उस स्थान पर लेप करने से विशेष लाभ होगा।

१०. अतिसार की स्थिति अर्थात् पानी जैसे पतले दस्त बार-बार आने, प्यास लगने, आँखे अन्दर धसने लगे तो कॉफी पाउडर– आध चम्मच, जायफल– एक तिहाई चम्मच, चीनी– दो चम्मच को मिलाकर २५० मि०ली० दूध या पानी में उबालकर ठण्डा करें और एक से तीन चम्मच हर आधे घंटे बाद दें। अतिसार में लाभ होगा।

११. पेचिश या लेसयुक्त हरे या किसी अन्य रंग का तथा कभी-कभी रक्त के साथ होने वाले दस्त, जिस में पेट में दर्द भी होता है, पेचिश कहलाती है। इसमें २ ग्राम सौंठ का चूर्ण, २ ग्राम भुना हुआ पीसा जीरा मिलाकर चार खुराक बनायें और शहद के साथ दें। आराम मिलेगा।

१२. बच्चों की स्मरण शक्ति व बुद्धि विकास के लिए उनके सिर पर शुद्ध घी से मालिश करें। याद्दास्त बढ़ेगी।

विविध योग (अमृताः) –

कल्प प्रयोग निर्गुण्डी कल्प :– निर्गुण्डी की जड़ का चूर्ण ३२० ग्राम शहद ६४० ग्राम इन दोनो को मिलाकर घी से चुपड़ी हांडी में भर ले। फ़िर संधियों के जोड़ो को बन्द करके एक मास तक अनाज में दबा दें। एक मास पश्चात निकाल कर १० से २० ग्राम तक दवा प्रातः-सायं सेवन करें।

गुण- इसके सेवन से मनुष्य रोग रहित होकर वृद्धावस्था से मुक्त हो जाता है। **पिप्पली कल्प** (वर्धमान पिप्पली– छोटी पिप्पली ५ दाने, आधा किलो दूध में डालकर इतना पकायें कि पीपल नर्म हो जाये। फिर पिप्पली को निकाल कर खा लें और दूध में मिश्री मिलाकर पी लें। अगले दिन ३ पीपलें बढा दें और ८ दिनों तक निरंतर ३-३ पीपलें बढाते रहें। नवें दिन से ३-३ पिप्पली घटाते जाये, यहां तक कि ५ पिप्पली पर आ जायें । यह आयुर्वेद की एक अनोखी एवं अद्भुत चिकित्सा है। इसके सेवन से कई पुराने से पुराने बुखार, खांसी, दमा, क्षय, हिचकी, विषम ज्वर, आवाज बिगडना, बवासीर, पेट का वायु गोला, जुकाम आदि दूर हो जाते हैं। भूख खूब बढ़ती है। बर्द्धमान पिप्पली का प्रयोग मोटा करता है आवाज को सुरीली बनाता है, तिल्ली और दूसरे रोगों को दूर करता है। आयु और बुद्धि को बढ़ाता है। पाण्डु (पीलिया) रोग को दूर करने की रामबाण दवा है।

पथ्य :- औषधि सेवन करते समय केवल दूध और भात के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं खानी चाहिए।

सोंठ कल्प :- बढ़िया सोंठ दो किलो लेकर उसे कूट पीस कर कपड़े से छान लें इस चूर्ण में आधा किलो गुड़ और एक किलो घी मिलायें थोड़ी

गाय की छाछ भी मिलाकर उसे खूब मले फिर किसी चिकनी मिट्टी के बर्तन में रखकर उस बर्तन को कपड़ मिट्टी कर दें। सूखने पर एक मास तक धान के भीतर दबा दें, एक मास के पश्चात् निकाल लें। २० ग्राम दवा प्रतिदिन खिलायें ६ मास में सब रोग नष्ट हो जाते है औषधि लेने से पूर्व २-३ जुलाब लेकर पेट साफ कर लेना चाहिए।

बुद्धिवर्धक औषधियां

मालकांगनी लेकर साफ कर लें, पहले दिन एक दाना, दूसरे दिन दो दाने, तीसरे दिन ३ दाने खिलायें। इसी प्रकार बढ़ाते हुए ६० दानों तक ले जावें फिर एक-एक दाना घटाते हुए एक दाने पर आ जाये। इससे जोड़ो का दर्द वात-व्याधि और कफ के विकार नष्ट होते है। बुद्धि बढ़ती है वीर्य विकार नष्ट होते है।

गूंगापन दूर करने की औषधि –

पोखरा (नेपाल राज्य) वर्षा ऋतु में नाग नामक बूटी मिलती है। उस बूटी का रस १२ ग्राम प्रतिदिन निरंतर सात दिन तक पिलाना चाहिए। सात दिन तक औषधि प्रयोग करने वाले को ज्वर आयेगा, मुंह और गला फूल जायेगा। ऐसी अवस्था १५ दिन तक बनी रहेगी। सोलहवें दिन सारे उपद्रव अपने आप ठीक हो जावेंगे तथा रोगी बोलने लगेगा।

नोट :– इन दिनों में केवल दूध और शहद देना चाहिए, अन्य वर्जित है दो तीन माह सेवन करायें।

२. बच (सफेद) आधा ग्राम मूसली २ ग्राम यह एक मात्रा है दोनों दवाओं को अंत्यंत बारीक पीसकर और शहद में मिलाकर चाटने से मूक (गूंगा) भी वृहस्पति के समान बोलने लगेगा।

३. रसायन – पीली हरड गुठली रहित ३ ग्राम, चूर्ण आधा किलो दूध के साथ प्रतिदिन रात्रि में एक वर्ष तक सेवन किया जाये तो मनुष्य बीमारियों से दूर रहता है, यौवन स्थिर रहता है तथा समय से पूर्व बुढ़ापा नहीं आता।

गोरखमुण्डी – फूल आने से पूर्व लाकर छाया में सुखा लें इसी प्रकार काले भांगरे का चूर्ण बना लें दोनों को सम भाग लें १० ग्राम चूर्ण गाय के घी में मिलाकर चटायें पथ्य में केवल दूध-भात लें। इसे कम

से कम चार मास सेवन करें इससे वृद्धावस्था नष्ट होकर युवकों के समान बल, वीर्य, और उमंग प्राप्त होती है।

शक्तिवर्द्धक –

विदारी कंदका चूर्ण ६ ग्राम, गोघृत १० ग्राम, शहद २० ग्राम, तीनो को मिलाकर चाट लें, ऊपर से गोदुग्ध का सेवन करें, वृद्ध भी जवान हो जाता है। कम से कम ४० दिन लें। शतावर २०० ग्राम, असंगध २०० ग्राम, दोनों को बारीक पीस लें। ६ ग्राम दवा आधा किलो गोदुग्ध में डालकर इतना औटायें कि दूध आधा रह जाये। इसमें २० ग्राम मिश्री मिलाकर पीयें ४० दिन तक सेवन करायें शक्ति का प्रवाह होगा।

– काले तिल २० ग्राम, गोखरू २० ग्राम, दोनो को बारीक पीसकर बकरी के आधा किलो दूध में खीर बनाकर खिलायें। इसके १५-२० दिन सेवन करने से हस्तमैथुन के कारण उत्पन्न हुई कमजोरी दूर हो जाती है।

–तुलसी के बीज या पत्ते भूनकर और बराबर वजन का गुड़ मिलाकर एक-एक ग्राम. की गोलिया ताजा दूध के साथ लें। मर्दाना कमजोरी दूर होगी और समय से पूर्व बुढ़ापा नहीं आयेगा। इसका निरंतर एक वर्ष तक प्रयोग करें।

– अश्वगंधा और विधारा ५००-५०० ग्राम को कूट पीसकर बोतल में भर दें, प्रातः-सायं १०-१० ग्राम गोदुग्ध के साथ लें इसके सेवन से बुढापा दूर होता है, बाल काले होते है और वात रोग नष्ट होते है।

– सफेद मूसली ८ ग्राम के चूर्ण को घृत और मधु के साथ चाटने से अद्भुत बल और शक्ति बढ़ती है।

– निर्गुण्डी की जड़ के १० ग्राम चूर्ण को गोघृत के साथ पान करने वाला मनुष्य स्वर्ण के समान कांति वाला हो जाता है।

इस तरह आयुर्वेद साहित्य में कई अमृता औषधियां लिखी पड़ी है। जिनका हम लोग अनजान होने के कारण लाभ नहीं उठाते। जंगली भील एवं वहां के निवासीगण इन झाड़ियों के प्रभाव और प्रयोग को ठीक ढंग से कर विशेष लाभ उठाते है मेरी दृष्टि में भारतीय जनजीवन में घुली-मिली ये जड़ी बूटियां है, जिनके प्रयोग से हम दीर्घ जीवी और

यशस्वी हो सकते है। अर्कप्रकाश के प्रणेता महापंड़ित रावणाचार्य ने लिखा है कि यदि आदमी ब्राह्मी का सेवन पथ्यानुसार ६ माह तक कर ले तो वह कवि हो जाता है इस तरह असंख्य जड़ी बूटियों से भारतीय वन उपवन भरे पडे है पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के चकाचौंध में पडकर व्यक्ति इनसे दूर होता जा रहा है जो उसके भविष्य के लिए अंधकार स्वरूप है। इसीलिए श्लोक में लिखा है "पथगाधारा" आयुर्वेदविद्या जंगलों के रास्तों में उत्पन्न जड़ीबूटी विज्ञान पर आधारित है। चरक का अर्थ ही पथग है। जंगलों के पथग=पथिक भील-चरवाहे भलीभाँति जड़ीबूटी ज्ञान रखते हैं। चरैवेति चरैवेति = चरकः।

माधवः बाजीकरण प्रयोग(तरंगावली)

१. अश्वगन्धा योग

(ग॰ नि॰; वृ॰ मा॰। रसायन; यो॰ त॰। त॰ ७६)

असगंध के चूर्ण को १५ दिन तक दूध, घी या तेल अथवा उष्ण जल के साथ पीने से कृश मनुष्य का शरीर इस प्रकार पुष्ट हो जाता है जिस प्रकार वृष्टि होने से अनाज के पौधे बढ़ जाते हैं।

२. अश्वत्थ फलादि योग

(व॰ से॰। बाजीकरण)

अश्वत्थ (पीपल वृक्ष) के फल, अंकुर और छाल से सिद्ध दूध में खांड मिलाकरसेवन करने से वृद्ध पुरुष भी तरुण के समान हो जाता है।

३. आमलक्यादि चूर्णम्

४ सेर आमले के चूर्ण को उसी स्वरस की अनेक भावनाएं देकर उसमें ४-४ सेर घी तथा शहद और आधा सेर पीपल का चूर्ण तथा १ सेर खांड मिलाकर (मृत्पात्र में भरकर) वर्षा ऋतु से पूर्व राख के ढेर में दबा दें और वर्षा बीत जाने पर निकाल कर सेवन करें।

इसे सेवन करने से बलि पलित का नाश होता तथा रूप, वर्ण, प्रभाव, बुद्धि, मेधा, स्मृति, बल, वाणी, स्थैर्य और साहस की वृद्धि होती एवं आरोग्य प्राप्त होता है। (मात्रा–१ तोला)

४. गोक्षुरादि चूर्णम्

गोखरू, ईख की जड़, उड़द, कौंच के बीज और शतावर के (बराबर) चूर्ण को दूध में मिलाकर पीने से वृद्ध पुरुष में भी शक्ति आ जाती है।

५. भृंगराज रसायनम्

उत्तम भांगरे को कूटकर कपड़छान चूर्ण बनावें। इसे १ मास तक समान भाग दूध के साथ सेवन करें।

यदि इसे १ वर्ष पर्यन्त सेवन किया जाए तो अन्धा और लूला मनुष्य मदमस्त हाथी के समान चलने लगता है, गूंगा बोलने लगता है, बहिरा दूर के शब्द को भी सुन सकता है; नपुंसक को पुत्र प्राप्त हो जाता है, यदि बाल सफेद हो गये हों तो वे काले हो जाते हैं और कमजोर दांत पुनः दृढ़ हो जाते हैं।

६. विदार्यादियोगः (१)

(ग॰ नि॰। बाजीकरण)

पीपल, आमला, मुनक्का और मुलैठी समान भाग लेकर चूर्ण बनावें और उसे बिदारीकन्द के रस की बहुत सी भावनाएं देकर सुखा लें। तदन्तर उसमें उसके बराबर मिश्री मिलाकर रखें।

इसे शहद और घी के साथ चाटकर दूध पीना चाहिए।

७. हस्तिकर्ण रसायनम्

(वृ॰ मा॰। रसायना; र॰ र॰। रसायना॰)

प्रातःकाल हस्तिकर्ण पलाश (के पत्तों) का चूर्ण घी के साथ खाने और इच्छानुसार आहार करने से आयु अत्यन्त दीर्घ होती है; मेधा, बल और कामशक्ति अत्यधिक बढ़ जाती है। इसके प्रभाव से पुरुष समागम करने में समर्थ हो सकता है।

इसे शहद के साथ सेवन करने से भी अत्यन्त बल बढ़ता है; चाल घोड़े के समान तेज हो जाती है बल आ जाता है।

८. कामदेव वटी

कूठ, काय्रफल, सेंधा, त्रिकुटा, मैथी, अजवायन, अजमोद, बांसा, मोचरस, बिदारीकन्द, मूसली, जायफल, चीता, जीरा, काला जीरा, दाख, गजपीपल, हरड, कौंच, तालीसपत्र, दालचीनी, इलायची, तेजपाल, सेंधा, काला नमक, बिडलवण, बहेड़ा, काकड़ा-सींगी, केले की मूसली, शतावर, असगन्ध, कपूरकचरी, मुलैठी, पियाल, गिलोय, लौंग, जावित्री, केसर, सुगन्धवाला, गोखरू, सेमल, आमला, उड़द, बिसखपरा (पुनर्नवा-साटी), धतूरे के बीज, सिंघाड़ा मस्तंगी, जटामांसी, बला, अतिबला, नागबला, नलद, भारंगी, हस्तिकर्ण, तिल, कंकोल, अकरकरा, भांग, बेल, वच, काहू,

कमलगट्ठे।

प्रत्येक का महीन चूर्ण १-१ कर्ण, भांग सबके वजन से चौथाई। अभ्रक भस्म भांग से आधी, अभ्रक भरप से आधी बंग भस्म, बंग से आधी लोह भस्म और लौह भस्म से आधा रस सिन्दूर एवं सबके वजन से २ गुनी खांड। सबको शहद और घी में मिलाकर आधे-आधे पल की गोलियां (गोले) बनावें।

इन्हें यथाग्नि वयानुसार सुबह और रात को दूध के साथ सेवन करें, यह जरा नाशक, अत्यन्त बाजीकरण, वीर्य, क्षुधा, तेज, कान्ति और स्थूलतावर्द्धक तथा (चित्त, विभ्रम आदि) मानसिक रोगनाशक, मनोविनोदकारी है।

९. शुक्र स्तम्भकरी वटिका

(र० प्र० सु०। अ० १३)

श्री वेस्ट (चीर का गोंद) मस्तंगी, नागकेसर, लौंग, कंकोल, तुलसी के बीज, खुरासानी अजवायन, अफीम, जावित्री, समुद्रसोख, गजपीपल, अगर, केसर, कंकोल, बंसलोचन और जायफल, समान भाग लेकर चूर्ण बनावें और उसे एक नारियल के भीतर भर दें तथा नारियल के मुख को अच्छी तरह से बन्द करके उसे ५ दिन तक दूध में पकावें।

तदनन्तर उसमें से औषध को निकालकर थोड़ा सा शहद मिलाकर पीस लें और ५-५ माशे की गोलियां बना लें।

१०. बानरी गुटिका

२० तोले कौंच के बीजों को २ सेर गोदुग्ध में मन्दाग्नि पर पकावें, जब दूध गाढ़ा हो जाय तो बीजों को बारीक पीस लें। तदनन्तर उस पिट्ठी की छोटी-छोटी (१-१ तोले की) टिकिया बनाकर उन्हें गाय के घी में तल लें एवं उन्हें दो गुनी खांड की चाशनी में डाल दें (बालूशाही की भांति टिकियों पर चाशनी चढ़ावें) जब उन पर खांड अच्छी तरह चढ़कर सूख जाय तो उन्हें पत्थर, कांच आदि के पात्र में शहद में डुबोकर रखें।

इनमें से २-२ टिकिया नित्यप्रति प्रात-सायं सेवन करने से शीघ्रपतन और नपुंसकता नष्ट होती है।

प्रसूति तंत्र –

स्त्री रोगों के निदान एवं चिकित्सा

वन्ध्याकारक औषधियाँ

१. ऋतुस्नान के बाद पीपल, वायविडंग, सुहागा, बराबर मात्रा में पीसकर चूर्ण गर्म दूध के साथ सेवन करें, गर्भ नहीं होगा।

२. पुष्य के सूर्य में धतूरे की जड़ लाकर कमर में बांधने से गर्भ नहीं रहता।

३. चित्रक के चूर्ण में गुड़ और तेल मिलाकर ३ दिन पीने से गर्भस्थापना नहीं होती।

४. तालीशं पत्र ओर गेरू दोनों शीतल जल के साथ ४ दिन पीने से गर्भ नहीं रहता।

५. आर्तवकाल में ढाक के बीज जल में पीसकर ४ दिन पीवें तो वन्ध्या होती है।

८. गर्भस्राव– जवासा, सारिवां पदमारव, रास्ना मुलेठी कमल समभाग को गाय के दूध में पीस पिलावें, गर्भपात रुक जाता है।

९. शीघ्र प्रसव–पीपल के और बच पानी में पीसकर अरंडी तेल में मिलाकर नाभि में लेप करें।

१०. कटुतुम्बी, सांप की केचुली को कडुवे तेल में मिलाकर आग में योनि के पास धूनी दे तो जीवित/मृत बालक बाहर आ जाता है।

११. गर्भ शूल–सौंठ मिर्च पीपल दालचीनी तेज पत्र इलायची नाम केशर धनियां बराबर-बराबर पीस पुराने गुड़ के साथ खिलावें दर्द बंद हो जाता है।

स्त्री रोग चिकित्सा

१. योनि संकोचन के लिए जायफल, माजूफल, फिटकरी, लजालू धव के फूल; पांचों मिलाकर पोटली बनाकर भग में रखें तथा त्रिफला जल से योनि प्रक्षालन करें।

२. दारू हल्दी, आमा हल्दी, पदम-केसर समभाग पीस योनि में रखने से संकोचन होता है।

३. रजवीर्य परीक्षा – एक गमले में चने बोए उन पर अलग-अलग पेशाब करते रहें, ७ दिन ऐसा करें जिसके गमले के चने जमें वह शुद्ध।

४. मासिक धर्म के ३ दिन तक गाजर बीज का क्वाथ पिए तो गर्भ नहीं होता है।

५. गर्भपतन– आम की जड़ की छाल पीस योनि में रखे तो गर्भपात हो जाता है।

६. गर्भावस्था में यदि रक्तपात (ब्लीडिंग) हो तो कबूतर की विष्टा चावल के पानी के साथ पिलावे रक्त बन्द हो जायगा।

७. गर्भ स्थापना– नागकेशर, असगन्ध, गोरोचन, तीनों बराबर लेकर पीस, छान शीतल जल से पीएं गर्भ रहता है।

८. विजौरे नीबू के बीज पीसकर सब को गाय के दूध के साथ खाने से गर्भ रहता है।

९. सफेद लक्ष्मणा अथवा विष्णुकान्ता की जड़ या शिवलिंगी के बीज, गोदुग्ध के साथ पिलाने से पुत्र उत्पन्न होता है।

१०. नागकेशर, सुपारी दोनों को बराबर लेकर पीस छान लीजिए। मात्रा ३ से ६ माशा तक सेवन करने से गर्भ रहता है।

११. पुष्पनक्षत्र में सोना, चांदी या लोहा का पुतला बनाकर आग में तपाकर लाल कर लें। आठ तोला वही दूध पिलावें। विदारीकन्द के साथ सुवर्णभस्म खाने से गर्भ रहता है।

१२. असगन्ध जड़ के साथ चांदी भस्म बछडे वाली गाय के दूध के साथ सेवन करें तो संतान अवश्य होती है।

१३. ऋतुस्नान के बाद नागकेशर तथा अतिबला गो दुग्ध के साथ पीने से चिरंजीवी पुत्र होता है।

१४. अवेध मोती, मूंगा, जायफल मात्रा आधा-आधा पीसकर ऋतुसमय खाए तो गर्भ अवश्य स्थापित होगा।

१५. शुद्ध कपूर, मीठी वच, नागरमोथा, मीठा चिरायता, गिलोय, देवदारू, हल्दी, अतीस ,दारू हल्दी, पिपरा मूल, चीते की जड़ की छाल, धनियां चाव, वायबिडिंग, गजपीपर सौंठ, पीपर, गोल मिर्च शुद्ध, स्वर्णमाक्षिक भस्म, जवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, काला नमक, बिड नमक, हर्रे एक, ३-३ माशे। निशोध, दंती तेजपात, दालचीनी, इलायची दाना,

बंशलोचन १०-१० माशे, प्रत्येक–भस्म फौलाद १० माशा (लोहभस्म) इनका योग सन्तानदायक है।

मलाश्रित वायु पर सरल योगः– भैंस का ३० तोले धारोष्ण दुग्ध लेकर उसमें इतना गुड़ डाले कि जिससे उसका रंग लाल हो जायें, उसे खड़े-खड़े पी जावे और ढाई तीन घंटे नीचे बिल्कुल न बैठक कर इधर-उधर टहलते रहें। यह विधि और प्रयोग सारक और वायु हारक है। पेट को साफ करता है। अनेक बार का (अनुभूत है)।

स्त्री कल्याण बटी

कपूर शु० मीठी बच, नागर मोथा, मीठा चिरायता, गिलोय, देवदारू, हल्दी, अतीस, दारू हल्दी, पिपरामूर, चीते की जड़ की छाल, धनिया, त्रिफला, वायविडंग, गजपीपर, सौंठ, पीपर छोटा गोल, मिर्च, स्वर्ण माक्षिक भस्म, जवाखार सज्जीखार सेंधा नमक, काला नमक, विड नमक, प्रत्येक ३-३ माशा निशोथ, दंती तेजपात, दालचीनी, इलायची दाना, बंशलोचन, प्रत्येक १०-१० माशा (भस्म फौलाद) लोहाभस्म १० माशा, मिश्री २ तोला, शु० शिलाजीत, सत सूर्य तापी ५ तोला गुग्गुल शुद्ध ५ तोला, सब कूट पीस कर कपड़े से छान, ३-३ रत्ती की गोलियां बनाले। गोली प्रतिदिन गोदुग्ध के साथ सेवन करें तो पुत्र अवश्य होगा। बांझ के भी पुत्र होना निश्चित है। अजमूदा है स्त्री के कोई रोग भी न रहेगा। पथ्य, तेल, खटाई, मिर्च बादी, अधिक मीठा का परहेज करें।

सुन्दरी रक्षक चूर्ण

मोचरस, असगंध, नगौरी, तवाखीर, सिंगरी, बबूल, सनाहपाती, आंवला का छिलका, वहेर का छिलका, बड़ी हर्रे का छिलका, इसबगोल, शतावर, किवाच के बीज, शुद्ध उटगंन के बीज, बहमन सफेद, बहमन लाल, मुसली, विहीदाना, सालिम मिश्री, तालमखाना, बीज बंद, समुद्र शोख, शिलाजीत, सूर्यतापी, गोखरू बड़ी, दालचीनी बिदारी कंद शुद्ध, सबको समान भाग ५-५ तोला लेकर और शिवलिंगी के बीज ५ तोला मिलावे, इन सबको कूट, महीन छानकर बराबर उपर्युक्त चूर्ण को पीसकर मिश्री मिला दें, १ तोला वंग भस्म मिलावे, ४ माशा शाम को खाकर ऊपर से गौ का धारोष्ण दुग्ध पीना चाहिए।

गुण– लाल, पीला, नीला, काला, सफेद पानी आना योनी दोष के समस्त रोग मिट जाते है। कमर, पीठ, सिर में दर्द, भूख कम लगना, बदहजमी मासिक धर्म ठीक समय पर न होना समस्त योनि शिकायतें दूर हो जाती है।

स्त्री का रज, गर्भाशय व पुरूष का वीर्य :-

इन सबको शुद्ध होने से ही गर्भ रहता है। अगर स्त्री को किसी प्रकार का योनि रोग होता है। उसका मासिक धर्म बन्द हो जाता है या योनि में और कोई कष्ट होता है तथा स्त्री के योनिफूल में सात प्रकार के दोषों में से कोई दोष होता है। या प्रद्रर रोग होता है तो गर्भ नहीं रहता। इसलिए स्त्री को योनि रोग, आर्तव रोग, योनिफूल दोष, और प्रदर रोग प्रभृति को आराम करके तब गर्भ रहने का ख्याल मन में लाना चाहिए। इसी प्रकार पुरुष के वीर्य के दोषों का भी ध्यान रखना चहिए।

बाँझपन की परीक्षा :-

विधि -१

जिसका वीर्य पानी में डालने से एक बार ही पानी के भीतर चला जाय डूब जाय तो उसे गर्भाधान करने के लायक समझो। जिसके पेशाब में झाग उठें मर्द जानो, मिट्टी से भरे हुए दो गमलों में गेहूँ बोएं। एक गमले में स्त्री, एक गमले में पुरुष अपने-अपने गमले में सात दिन तक पेशाब करें। जिसके गमले में दाने उग आये वह बांझ नहीं है। जिसके गमले में दाने नही उगे वही बाँझ है। दो प्यालों में पानी भर दें फिर उन प्यालों में स्त्री पुरूष अलग-अलग अपना वीर्य डाले जिसका वीर्य पानी में बैठ जाय वही बाँझ नहीं है, वह गर्भ धारण करने लायक है। जिसका वीर्य पानी में तैरता रहे, न डूबे उसी में दोष है। स्त्री काहू या कद्दू के पेड़ के जड़ों में पेशाब करें जिसके पेशाब से पेड़ सूख जाये वही बाँझ है और जिसके पेशाब से पेड़ न सूखे वह सन्तान के योग्य है।

पुरुष की परीक्षा :-

फूल या कांसे के कटोरे में गर्म पानी भर दें, उसमें मर्द अपना वीर्य डालें, अगर वीर्य एक दम डूब जाये तो समझो मर्द गर्भाधान करने योग्य है। अगर पानी में फैल जाये तो समझो वह गर्भाधान करने योग्य नहीं है। अगर वीर्य न ऊपर रहे न नीचे बीच में जाकर ठहर जाय तो समझो

कि इस वीर्य से गर्भ तो रह जायेगा पर सन्तान होकर मर जायेगी।

स्त्री के रज की परीक्षा :-

एक मिट्टी के गमले में थोड़े से सोये के बीज बो दें, जब जाम आवै तो उनकी जड़ों में स्त्री पेशाब करती रहे। अगर पेशाब से वह पौधा मुर्झा जाएं तो समझो स्त्री का रज शुद्ध है। न मुर्झायें ज्यों का त्यों बने रहे तो रज अशुद्ध है।

मासिक धर्म खोलने की दवा :-

१. काले तिल त्रिकुटी (सोंठ काली मिर्च पीपर) भारंगी प्रत्येक तीन-तीन माशे इनका काढ़ा बनाकर गुड़ या लाल शक्कर डालकर प्रातः-सायं काल पीयें।

२. अथवा माल कांगनी राई विजयसार की लकड़ी और दुध बच इन चारों को बराबर कूट पीसकर कपड़े से छान लें। सुबह शाम ३ माशा की मात्रा से शीतल जल या कच्चे दूध के साथ सेवन करें।

३. गाजर के बीज पानी में पीसकर स्त्री को पिलाने से मासिक धर्म होता है। ऋतु होने के समय स्त्री की कमर में दर्द होवे तो ५ मासा सोंठ, ५ मासा वायविडंग मुलहठी, ५ मासा ४० मासा गुड़ में औटावे फिर पिलावै।

४. कडुई तुम्बी के बीजं, वीज दन्ती बड़ी पीपर पुरानागुड़ मैनफल सुराबीज जवाखार इन सबको बराबर-बराबर लेकर पीस छान लें फिर उस चूर्ण को थूहर के दूध में सान छोटी उंगली के बराबर वर्तिया बनाले छाया में सूखा वे इनमें से एक वर्ती रजो गर्भाशय के मुख में या योनी में रखने से मासिक धर्म खुल जाता है।

नोट :- शराब खिच जाने के बाद जो अन्त में तलछट रह जाता है। उसे ही सुराबीज कहते है।

५. जिन स्त्रियों का पुष्प जवानी में ही नष्ट हो जाता है (रजोधर्म बन्द हो जाता है) उन्हें चाहिए कि इन्द्रायण की जड़ को पीसकर जल के साथ छोटी-छोटी उंगली के समान वर्ति बनालें उस वर्ति को योनि मुख में रखे कई दिन के बाद रजोधर्म खुल जाता है।

रजोशोधक दवा बबूल का गोंद ३ तोला छोंटी इलाइची के दाने १ तोला नागौरी असगंध ५ तोला सतावर ५ तोला सब को कूट पीस छान

कर रखलें १ तीन या चार मासे तक सबेरे शाम, फांक कर ऊपर से धारोष्ण दूध पीयें १ पाव चालीस दिन तक खायें। परीक्षित है। परहेज– मैथुन, तेल, खटाई, मिर्च।

दवा :- किसी स्त्री के गर्भ हो और रक्त जाता हो तो कबूतर की विष्टा चावल के पानी से पिलावें तो रक्त बन्द होता है।

स्तन में फोड़ा हो गया है तो इन्द्रायण की जड़ कांजी से बांट लगावै तो ठीक होगा। किसी स्त्री के अंग अर्थात (लौकी) निकलती हो तो करेला के पत्तों का रस गरम करके लगावें। तीन दिन में ठीक होगा।

गर्भ पतन की औषधि

मोम आक के दूध में मिलायें और अरण्डी (रेड़ी) की जड़ चार अंगुली की उसमें लपेट कर तीन दिन रखे तो गर्भ गिर जायेगा अथवा आम की जड़ का बकल पानी में पीसकर भग में रखने पर गर्भ गिर जाता है, अथवा आम की जड़ का बकला पानी में पीसकर भग में रखे तो गर्भ गिर जाता है। ऋतु समय में तीन दिन तक गाजर के बीज का काढ़ा पिलावे तो गर्भ ना रहेगा।

अथभग संकोचन

जायफल, माजूफल, फिटकरी, लजालू, धव के फूल; यह पाँचो मिलाकर वाटे पोटरी करके भग में रखे तो भग संकुचित हो तथा ताल मखाना के बीज बाँटकर भग में रखें व लेप करें तो भग संकुचित हो। त्रिफला पानी में बाँटकर भग में लेप करें तो भग संकुचित हो। दारू हल्दी आमा हल्दी पदमकेसर बाँटकर योनि में रखे (लेप) करे तो भग संकुचित हो।

गर्भ प्रद नुस्खे

१. हाथी दांत का बुरादा साढे चार माशे खाने से गर्भ रहता है।

२. हींग का पेड़ का बीज जिसे वज्रसीलिया-लयूस कहते हैं खाने से अवश्य गर्भ रहता है। आजमूदा है।

३. कायफर को कूट छान कर और बराबर की शक्कर मिलाये ऋतु स्नान के बाद तीन दिन तक खायें, मात्रा आठआना भर पथ्य दूध भात नित्य खाये दवा खाने के बाद मैथुन करने से गर्भ रहता है।

४. काले धतूरे के फूल पीसकर और शहद घी में मिलाकर खाने से

गर्भ रहता है। नागकेशर असगंध गोरोचन तीनों को बराबर-बराबर लेकर पीस छानकर लो, इसे शीतल जल के साथ खाने से गर्भ रहता है। बिजौरे नीबू के बीज पीसकर बछड़े वाली गाय के दूध के साथ खाने से गर्भ रहता है। ऋतुस्नान करके असगन्ध को दूध में पकाकर और घी डालकर सवेरे ही पीवे और रात को भोग करें, गर्भ रहेगा। दूध, घी, बछड़े वाली गाय का ही हो। जो स्त्री ढाक (छिउल) के पत्ते को दूध में पीसकर पीती है उसके बलवान पुत्र होता है। छोटी पीपर सौंठ काली मिर्च और नागकेशर इनको बराबर-बराबर कूटपीस छान लो। उसमें से ६ मासे चूर्ण गाय के घी में मिलाकर ऋतुस्नान के बाद (यानी चौथे दिन) स्त्री चाट ले और रात में सहवास करें तो अवश्य पुत्र होगा, चाहे वह बाँझ क्यों न हो। परीक्षित है।

५. विष्णु कान्ता की जड़ या शिवलिंगी के बीज जो स्त्री पीती है उसके कन्या नहीं पुत्र ही होता है।

६. पुष्य नक्षत्र में सोने चाँदी या लोहे का पुतला बनाकर आग में तपा-तपा कर लाल कर दूध में बुझा लें उस दूध में से आठ तोला दूध स्त्री को पिला दे। साथ ही मोर दण्ड़ अपा मार्ग ऋषमक स्वेत कुंरटाइन में से १-२-३ या सबको जल में पिसकर स्त्री को पुष्य नक्षत्र में पिलायें तो पुत्र की प्राप्ति होती है।

स्त्री का योनि-रोग दूर करने तथा पुरूष का वीर्य शुद्ध करने का घृत :-

स्त्री के लिए घृत = गिलोय, त्रिफला, रासना हल्दी दारू हल्दी सतावर दोनों तरफ के सहचर, स्योनात,मेदा, पुनर्नवा सोंठ इनकी लुगदी बना लो। घी ५०० ग्राम, दूध २ किलो कड़ाई में बिनुवा कण्ड़े के आग में धीमी आँच में पकावें। जब घी मात्र शेष रह जाए तो उतार कर छान लो, यही योनि रोग नाशक घृत है। उस घी के पीने से योनि दर्द स्थान से हट जाना बाहर निकाल आना, मुँह चौड़ा होना पितयोनि, भ्रान्तियोनि षण्ढयोनि आदि दोष आराम होकर गर्भ धारण शक्ति हो जाती है, परीक्षित है। सहचर को पियावास या कटसरैया कहते है।

वृषतमघृत

विधारा जड़ ५० ग्राम कूट, छान पीने से लुगदी बना लो, गाय के घी

और दूध में उपरोक्त प्रकार घी बनाकर सेवन करें। पुरूषो के लिए परम उत्तम है। वीर्य पुष्टि और शुद्धि की अन्य दवा खाने पर भी सेवन करना लाभदायक है। उत्तम पुत्र होता है, परीक्षित है।

मेदा, मजीठ, मुलहठी, कूट, त्रिफला, खिरेंटी, सफेद विलाई कंद काकोली, क्षीर काकोली, असगंध की जड़, अजवाइन, हल्दी, दारूहल्दी हींग, कुटकी नीलकमल दोनो चन्दन, मिश्री, कुमुदिनी इन सबको २-२ तोला पानी से पीसकर लुगदी बना लें। गाय का घी चार किलो सतावर का रस छः किलो गाय का दूध छः किलो कड़ाही में लुगदी डालकर मंद आग से पकावें। यह घी स्त्री पुरूष दोनो सेवन कर सकते है। स्त्रियों के लिए योनि रोग उन्माद हिस्टीरिया पर रामबाण है। बाँझ के भी निश्चय ही सन्तान होती है नाम फल घृत है।

मोर शिखा की जड़ को लाकर कुंवारी कन्या से गाय के दूध में पिसवाकर ऋतुस्नान के अन्त में पीने से गर्भ रहता है। मात्र दो मासे विदारी कंद के साथ सोना भस्म खाने से पुत्र होता है। काकमाची के अर्क के साथ सोना भस्म खाने से गर्भ रहता है। रजोधर्म शुद्ध होता है। प्रदर रोग नष्ट हो जाता है। असगंध की जड़ के साथ चाँदी भस्म खाने से बछड़े वाली गाय के दूध के साथ खाये तो बाँझ के भी पुत्र होता है इसमे शक नहीं। अगर बाँझ इसे तीन दिन खाये, गर्भ रहेगा। मातुलिंगी के बीजो को बछड़े वाली गाय के दूध के साथ पीसकर चाँदी भस्म खाने से बाँझ के भी पुत्र होता है। ऋतु स्नान के बाद नागकेशर को अतिबला के साथ दूध में पीने से अवश्य चिंरजीवी पुत्र होता है। यह परीक्षित है। पथ्य गाय का दूध चावल मीठे पदार्थ (फल) खाना चाहिए चिन्ता, क्रोध, भय, दिन में सोना, सर्दी, गर्मी, धूप सहना मना है।

सफेद सरसों, बच ब्राह्मी, शंखाहुली काकड़ा, श्रृंगी, काकोली मुलहटी कूट कुटकी सारिवा, त्रिफला, अडूसा के फूल, प्रियंगू हुलहुल दशमूल, हरड़, भारंगी असगंध सतावर प्रत्येक के आठ-आठ तोले कुचलकर काढा करे चौथाई जल रहने पर उतार लें, फिर उस काढ़ें में एक किलो घी मिलाकर पकावें, इसे सोमघृत कहते हैं। मात्रा अपुत्रा नारी को २ मासे गर्भवती को ८ मासे रोज खिलाना, इसके सेवन से बाँझ भी शूर पंड़ित पुत्र पैदा करती है। शुक्र दोष योनिदोष नष्ट हो जाते हैं। सात दिन के सेवन

से वाणी की जड़ता, गूंगापन नष्ट हो जाता है। सुनी बात एक ही बार में याद हो जाती है। अग्नि बज्र आदि का भय नहीं होता। निर्गुण्डी २४ तोले, जायफल २ तोला, लाजवंती १ तोला, सब कूट छान कर गाय के दूध ५ सेर में गर्म कर चूर्ण सा कर लें और दवा के तौल से दूना, मिश्री १ सेर, गाय का घी ४ तोले बंगेश्वर रस मिलाकर एक दिल कर लो मात्रा सुपारी बराबर १ या २ माह खाये। खट्टा-मीठा, चटपटा न खायें। ईश्वर कृपा से १० माह में बालक होगा।

बन्ध्या बनाने वाली औषधि (परिवार नियोजन) :-

१. अगर स्त्री ऋतु स्नान के बाद पीपल वांयविडंग सुहाग बराबर मात्रा में पीस छान कर दो ग्राम मात्रा चूर्ण गर्म दूध के साथ फांके तो कदापि गर्भ नहीं रहेगा। ५ दिन तक फांकना चाहिए।

२. चार तोला हरड़ की मिगी मिश्री मिलाकर तीन दिन खाने से रजोधर्म नहीं होता, उसके ना होने से गर्भ भी नही होता।

३. दुधिया की जड़ बकरी के दूध में तीन दिन तक पीने से स्त्री रजस्वला नहीं होती।

४. पुष्पार्क में धतुरे की जड़ लाकर कमर में बाधने से कभी गर्भ नहीं रहता।

५. पलास के बीजो की राख शीतल जल के साथ पीने से गर्भ नहीं रहता।

स्त्री रोग निवारक नुस्खे

श्वेत प्रदर की समस्या : अश्वगंधा चूर्ण बार-बार माशा इतनी ही मात्रा में पिसी मिश्री, बूरा या चीनी मिलाकर प्रातः-सायं एक दो कप दूध के साथ कुछ दिनों तक नियमित लेते रहने से श्वेत प्रदर का नया रोग दूर हो जाता है तथा कमर का दर्द व नारी दौर्बल्य आदि का निवारण होकर देह सुन्दर व आकर्षक बन जाती है।

पुरुष रोग निवारक नुस्खे

गूलर के कच्चे या पक्के फल लेकर सुखा लें। तत्पश्चात् इनका चूर्ण बना लें, फिर इसमें समभाग बिदारीकन्द का चूर्ण सम्मिलित करके संमिश्रण बना लें। नित्य तीन से छह ग्राम तक सुबह शाम दो-दो चम्मच

शुद्ध घी मिले हुए दूध के साथ सेवन करते रहने से यह उत्तम बाजीकरण सिद्ध होता है। जहां यह युवकों के लिए परमहितकारी है वहीं इससे बड़ी आयु वाले व्यक्ति भी सजीव, चैतन्य व गृहस्थ धर्म में समर्थ बन जाते हैं। इसके सेवन के साथ पाचन सामान्य स्वास्थ्य का भी ध्यान अवश्य रखना चाहिये।

शतावर एवं गोखरूं हर एक दो सौ ग्राम लेकर मोटा-मोटा कूट कर रख लें। चालीस-पचास ग्राम के करीब यह चूर्ण, ढाई सौ ग्राम दूध तथा ढाई सौ ग्राम पानी मिलाकर उबालें। जब पानी जल कर सिर्फ दूध बाकी बचे तो उतार कर छान लें। तत्पश्चात् थोड़ासा मधु अथवा चीनी मिलाकर प्रातःकाल पिया करें। चालीस दिन तक प्रयोग करने से ही शरीर सबल बन जाता है। धातु दौर्बल्य, वृद्धावस्था की शिथिलता, आदि का शमन होकर मन में स्फूर्ति व चैतन्यता जागृत हो उठती है।

वीर्यवर्द्धक प्रयोग

सफेद प्याज का रस छह ग्राम और शहद छह ग्राम मिलाकर रोजाना प्रातः खाली पेट चाटने से वीर्य की वृद्धि होती है। आवश्यकतानुसार तीन सप्ताह से तीन मास तक सेवन करना चाहिये।

गर्भवती ज्वर नाशक नुस्खे :-

मुलेठी लाल चन्दन सारिवां कमल के पत्ते का काढ़ा मिश्री मिलाकर पीने से ज्वर जाता है।

बकरी के दूध के साथ सोंठ पीने से गर्भवती का विषम ज्वर में आराम हो जाता है।

अतिसार ग्रहणी आदि नाशक नुस्खे :-

सुगंध वाला अरलू, लाल चन्दन, खिंरेटी, धनिया, गिलोय, नागर मोथा, खस जवासा पित्त पापड़ा अनतीस इन दवाओं का काढ़ा बनकार पिलाने से गर्भवती स्त्रियों के अतिसार संग्रहणी ज्वर योनि से खून गिरना गर्भस्राव पीड़ा मड़ोर के दस्त होना आदि में निश्चय ही आराम होता है। यह परीक्षित है।

गोखरू, मुलेठी, कटेरी प्रियावांसा ऊपर की विधि से दूध में पकाकर पिलाये गर्भ दर्द शान्त होगा।

शालि (धानो की जड़) ईख कुशा कांस सरपत की जड़ को दूध में उपरोक्त विधि से बनाकर गर्भणी को पिलाओ यह पंचमूल दवा है। गर्भस्त्री का रुका हुआ पेशाब खुल जाता है। पस दाह जलन रक्तपित्त में आराम हो जाता हैं।

गर्भपात चिकित्सा :-

१. भौंरी के घर की मिट्टी मोगरे के फूल लाजवती धाय के फूल पीला गेरू रसौत राल ये सब अथवा जो मिलें उनका चूर्ण का शहद मिलाकर चाटने से गर्भ नही गिरता

जवासा, सरिता, पद्माख, रास्ना, मुलेठी कमल को गाय के दूध में पीसकर पिलाना चाहिये।

सिघांडा, कमल केशर दाख कसेरू, मुलेठी, मिश्री को पीसकर गाय के दूध में पिलावे। कुम्हार बर्तन बनाते समय हाथ की मिट्टी लगी हुई पोछता जाता है। उसे गर्भवती स्त्री को पिलाने से भी गर्भ नहीं गिरता।

कुशकांस लाल अंरड़ की जड़ गोखरू गाय के दूध में औटावे दवाओ का कल्क १ तोला दूध ३२ तोला पानी २८ तोला पकावे जब दूध की मात्रा शेषरहे तो गर्भवती स्त्री को पिलावे पीड़ा दूर होती है।

कुसुम के रंगे हुए लाल डोरे में एक करंज बाँधकर गर्भवती के कमर में बाँधने से बंधा रहने दें तो गर्भ गिरने का भय ही ना रहे।

कुंवारी कन्या के काते सूत से गर्भिणी के सिर से पैर के अंगूठे तक नापें उसी नाप के २१ तागा ले लें, फिर काले धतूरे की जड़ लाकर उसके टुकड़े करलो और हर टुकड़े को उस तार में अलग-अलग बाँध दे। फिर उस जड़ बधे सूत को स्त्री की कमर पर बाँध दो, गर्भ नही गिरेगा।

परीक्षित गर्भ विलाश तेल

विदारी कंद अनार के पत्ते कच्ची हल्दी, त्रिफला, सिंघाड़े के पत्ते जाती फूल शतावर नीलकमल और कमल इनको दो-दो तोले लेकर लुगदी बनाकर तेल विधि से तेल पकाकर रख लें इस की मालिस करने

से गर्भशूल गर्भस्राव बन्द हो जाता है और फिर गर्भ नहीं गिरता।

शीघ्र प्रसव के उपाय

अठारह मासे अमलतास के छिलकों का काढ़ा स्त्री को पिलाने से बच्चा सुख से होता है।

करियांरी की जड़ रेशम के धागे में बाँध, स्त्री के बांये में हाथ बाँधे तो प्रसव की पीड़ा न होगी।

सूरजमुखी और पाठला की जड़ गर्भिणी के गले में बांध दें तो शीघ्र प्रसव होता है।

पीपल और बच पानी में पीसकर रेड़ी के तेल में मिलाकर स्त्री की नाभ में लेप लगाने से बच्चा सुख से हो जाता है।

गेहूँ की सेवई पानी में १०० ग्राम घी ताजा मिलाकर रखले थोड़ा-थोड़ा स्त्री को पिलाता जाय पेट में पीड़ा शुरू हो जाये तो पानी देना बन्द कर दें तो जल्दी और सुख. से बच्चा पैदा हो जाता है। सांप की केचुली कड़वी तुरई और सरसों को लेकर कडुवे तेल में मिलाकर योनि में धूनी दी जाय तो जीवित व मरा बच्चा गर्भ से बाहर निकालने मे दवा रामबाण है। यह परीक्षित है।

मक्कलशूल :-

वायु के योनि में घुस जाने से हृदय शिर पेडू में शूल चलना अफरा आदि मक्कल शूल के लक्षण है।

चिकित्सा

जवारवार का महीन चूर्ण सुहाते २ गरम जल या घी के साथ पीवे। सौंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपत्ता, इलायची, नागकेशर धनियां को पुराने गुड़ के साथ खिलाओ तो शूल बन्द हो जाता है।

सूतिकान्तकरस :- शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक, अभ्रक, भस्म, तांबा भस्म सब बराबर-बराबर खुलकुड़ी के रस में घोटकर उड़द समान गोलिया बनाकर छाया में सुखा लें अदरख के रस के साथ सेवन करने से सूतिका अवस्था का ज्वर प्यास अरूचि अग्निमंद शोथ आदि रोग नष्ट हो जाते हैं।.

नाना रोग नाशक (वनस्पति तंत्र)

अमृता औषधियों का वर्णन

(आद्य धन्वन्तरि से प्राप्त)

भगवान धन्वन्तरि ने कहा है :– अडूसा मुलहठी या कचूर दोनो प्रकार की हल्दी और इन्द्रयव, इनका क्वाथ बालकों के सभी प्रकार के अतिसार में तथा स्तन्य (माता के दूध के) दोषों में प्रशस्त है। पीपल और अतीस के सहित काकडाश्रृगीं का अथवा केवल एक अतीस का चूर्ण कर के बालकों को मधु के साथ चटावें। उससे खासी, वमन और ज्वर नष्ट होता है। बालकों को दुग्ध, घृत अथवा तेल के साथ बच का सेवन करावें अथवा मुलैहटी और शंखपुष्पी को दूध के साथ बालक पीयें। इससे बालकों की वाक्शक्ति एवं रूप सम्पत्ति के साथ-साथ आयु बुद्धि और कांति की भी वृद्धि होती है। बच, कलिहारी, अडूसा, सोंठ पीपल, हल्दी, कूट, मुलेहटी और सैन्धव इनका चूर्ण बालको को प्रातःकाल पिलावें, इसका सेवन बुद्धिवर्द्धक है। देवदारू बडा, सहजन, त्रिफला और नागरमोथा– इनका क्वाथ अथवा पीपल और मुनक्का त्रिफला, तथा भृंगराज तथा अदरख के रस या मधु घृत में अथवा भेड़ के मूत्र या गो मूत्र में अंजन करने से नेत्र रोगो में लाभ होता है। दूर्वारस का नस्य नाक से बहने वाले रक्त रोग (नक्सीर) को शांत करने में उत्तम है।

लहसुन, अदरख ओर सहजन के रस से कान को भर देने पर अथवा अदरख के रस या तेल से कान को भर देने पर वह कर्ण-शूल का नाशक तथा ओष्ठ रोगों को दूर करने वाला होता है। जायफल, त्रिफला, व्योष (सोठ, मिर्च पीपल) गोमूत्र हल्दी गो दूध तथा बडी हरड़ें के कल्क से सिद्ध किया हुआ तिल का तेल कवल (कुल्ला) करने से दन्त पीडा का नाशक है। नारियल का जल, गो मूत्र, सुपारी तथा सोंठ इनके क्वाथ का कवल मुख में रखने से जिह्वा के रोग का नाश होता है। कलिहारी के कल्क तेल का नस्य लेने (नाक में डालने) से गण्डमाला और गलगण्ड रोग का नाश होता है। प्रमेह रोगी को त्रिफला दारूहल्दी बडी इन्द्रायण और नागर सोथा इनका क्वाथ आंवले कारस, हल्दी कल्क और मधु के साथ पीना चाहिये। अडूसे की जड़ गिलोय और अमलतास के क्वाथ में एरण्ड का तेल मिलाकर पीने से वातरक्त का नाश होता है। और प्लीहा

रोग को नष्ट करती है।

पेट रोगी को थूहर के दूध में अनेक बार भावना दी हुई पिप्पली का सेवा करना चाहियें। चित्रक, विडंग तथा त्रिकटु (सोंठ मिर्च, पीपल) के कल्क सिद्ध दूध अरूचि रोग का निवारण करता है। त्रिफला, गिलोय, अडूसा कुटकी, चिरायता। इनका क्वाथ पीने से कामला सहित पाण्डु रोग का नाश होता है।

हर्रे, सहजन, करञ्ज, आक, दाल चीनी, पुंनर्नवा, सौंठ और सैन्धव इनका गोमूत्र के साथ मिला करके लेप किया जाये तो यह विद्रिध की गांठ को पकाने के लिए उत्तम उपाय है। निशोथ, जीवन्ती, दन्तीमूल मन्जिष्ठा, दोनो हल्दी रसाज्जन और नीम के पत्ते का लेप भगन्दर में श्रेष्ठ है। अमलतास, हरिद्रा लाक्षा और अडूसा इनके चूर्ण को गोघृत और शहद के साथ बत्ती बनाकर नासूर में देवे। इससे नासूर का शोधन होकर घाव भर जाता है। पिप्पली मुलेठी, हल्दी लोध, पदमकाष्ठ अमलतास लाल चन्दन एवं काली मिर्च उनके साथ गौ-दुग्ध में सिद्ध किया हुआ तेल घाव को भरता है। दूध के साथ कुभीसार (गुग्गुलसार) को आग से जले हुए व्रण पर लेप करें। (अथवा जलकुम्भी को जलाकर दूध में मिलाकर लगाने से सभी प्रकार के व्रण ठीक होते है। इसी प्रकार नारियल के जड़ की मिट्टी में घृत मिलाकर सेंक करने से व्रण का नाश होता है।

सौंठ, अजमोद, सेंधा नमक, इमली की छाल इन सब के समान भाग हर्रे को तक्र या गरम जल साथ पीने से अतिसार का नाश होता है। इन्द्रयव, अतीस, सोंठ बेलगिरि और नागरमोथा का क्वाथ आम सहित जीर्ण अतिसार में और शूल सहित रक्त अतिसार में भी पिलाना चाहिए। ठंडे थूहर में सेंधा नमक भरकर आग में जला लें। फिर यथोचित मात्रा में उदरशूल वाले को गरम जल के साथ दें अथवा सेंधा नमक, हींग, पीपल, हर्रे, इनका गरम जल के साथ सेवन करावें। बड़ की वरोह, कमल और धान की खील का चूर्ण इनको शहद में भिगोकर कपड़े में पोटली बनाकर मुख में रखकर उसे चूसें तो इससे प्यास दूर होती है। अथवा कुटकी, पीपले मीठा कूट एवं धान का लावा मधु के साथ मिलाकर, पौटली में रखकर मुंह में रखे और चूसे तो प्यास दूर हो जाती है। पाठा दारूहल्दी, चमेली के पत्र मुन्नका की जड़ और त्रिफला इनका

क्वाथ बनाकर उसमें शहद मिला दें, इसको मुंख में धारण करने से मुखपाक रोंग नष्ट होता है। पीपल, अतीस, कुटकी इन्द्रयव देवदारू पाठा और नागर मोथा इनका गोमूत्र में बना क्वाथ मधु के साथ लेने पर सभी प्रकार के कण्ठ रोगों का नाश होता है। हर्रे, गोखरू जवासा अमलतास एवं पाषाण भेद इनके क्वाथ में शहद मिलाकर पीने से मूत्रकृच्छ का कष्ट दूर होता है। बांस का छिल्का और वरूण की छाल का क्वाथ शर्करा अश्मरी रोग का विनाश करते है। सोंठ, काला नमक और हींग इनका क्वाथ पीने से मलबन्ध दोष और तत्सम्बन्धी रोग नष्ट होते हैं गुल्म रोगों में सज्जीक्षार चित्रक हींग और अजमोद इनके रस के साथ या विडंग एवं चित्रक के साथ पान करें। आवंला परवल और मूंग इनके क्वाथ का घृत के साथ सेवन विसर्परोग का अपहरण करने वाला है। अथवा सोंठ, देवदारू और पुनर्नवा या बंशलोचन इनका दुग्ध युंक्त क्वाथ भी उपकारक है। गोमूत्र के साथ सोंठ, मिर्च पीपल, लोहचूर यवक्षार तथा त्रिफला का क्वाथ शोथ (सूजन) को शांत करता है। निशोथ एवं गुड़ के साथ त्रिफला का क्वाथ विरेचन करने वाला है। बच और मैनफल के क्वाथ का जल वमनकारक होता है। भृंगराज के रस में भावित त्रिफला सौ पल, वायविडंग और लोहचूर दस भाग एवं शतावरी, गिलोय और चित्रक पचीस पल ग्रहण करके उसका चूर्ण बना ले। उस चूर्ण को मधु घृत और तेल के साथ चाटने से मनुष्य बली और पलित से रहित होता है। अर्थात उसके मुहं पर झुर्रिया नहीं होती। और बाल नहीं पकते इसके सिवा वह सम्पूर्ण रोगों से मुक्त होकर सौ वर्षो तक़ जीवित रहता है। मधु और शर्करा के साथ त्रिफला का सेवन सर्व रोग नाशक है। त्रिफला और पीपल का मिश्री, मधु और घृत के साथ भक्षण करने पर भी पूर्वोक्त सभी फल या लाभ होते है। हर्रे चित्रक सोंठ गिलोय और मुसली का चूर्ण गुड़ के साथ खाने पर रोगों का नाशहोताहै।

प्रयोग- जलगोह (बिल्ली) की जरायु (गर्भ की झिल्ली) की धूप देने से चित्र दिखलायी नहीं देता। जड़ कपूर जोंक और मेढक का तेल इनको पीस कर दोनों पैरों में लगाकर मनुष्य जलते हुए अंगारो पर चल सकता है। तृणोत्थान (तृणों को आग में ऊपर फेंकता-उछालता) आश्चर्यजनक खेल दिखलाता हुआ चल सकता है।

मन्त्रौषधियाँ

अरूपयात्री- मंत्र

१. ज्वरनाशक अनुभूत मन्त्र :

जिस रोगी का ज्वर उतारना हो, चारपाई को इस प्रकार करें कि सिर पूर्व की दिशा में और पैर पश्चिम दिशा में हों। एक आटे का चौमुखा दीपक जलाकर रख लें। पैर की तरफ ३ कुशों को लेकर सिर से पैर की तरफ १०८ बार झाड़ें। मन्त्र इस प्रकार है :

शिवाज्ञा घोर रूपत्वं पूर्व वृत्तं तु संस्मर।
इमं देहं मनुष्यस्य त्यक्त्वा गच्छ महाज्वर।।

सिद्धि विधि– यह सिर्फ ग्रहण के दिन १०८ बार जपने से सिद्ध हो जाता है। इसके बाद काम में लेने से चमत्कार सिद्ध होता है।

ताजी स्वर्णक्षीरी की जड़ को हाथ में रखने से तथा अपामार्ग की पत्तियों को बांध देने से भी ज्वर उतर जाता है।

२. बवासीर पर अनुभूत मन्त्र :

ॐ नमो आदेश गुरु को अन्दर कई ऋषि रीपीढकम्। जो जो यह मन्त्र जाने उसे न होई और जो यह मन्त्र जानकर प्रगट न करे तो गऊ ब्राह्मण की हत्या लगे। जो मन्त्र पढ़ा न जाए तो मुनि अगस्त्य की हत्या फुरो मन्त्र ईश्वरो वाच।

यह १०८ बार जपने से ही बवासीर (अर्श) जाती रहती है।

३. बहु रोग शामक सावर मन्त्र :

ॐ नमो आदेश आदि पुरुष को अंगारी स्वंगारी सात समुद्र के तुम भंडारी सोने का जंत्र, सोने का पत्र, सोने की शिला। सोने की लुड़िया, सोने को धत्रु ह्य नहा कौन-कौन रोग कटाव आगी करन। मूत्रवाय, शूल, नहसूर, दाद, ग्रह डाकिनी, शाकिनी, पित्त मुत्रकृच्छ, अठारह कोढ़, बीस प्रमेह, गोला किहि, बरवट, वायगोला, कछवी, रावन भवना, टोणा टामणा, दीठ, मूठ, कीया कराया, राट, वाट, सांझ सकारे, चौरासी सिद्धक सराय अहि आमय नैरी की शक्ति बाबा आदम की भक्ति गुरु की शक्ति फुरो मन्त्र इश्वरो वाचा। दोहाई नोना चमईन की छ।

विधि– इस मन्त्र को ८४ बार जप कर इतना ही हवन कर दें। हवन पायत (खीर) से करें फिर झाड़ू के ३ सीक लेकर झाड़ दें तो निश्चय ही मन्त्रोक्त फल होवे।

४. नजर लगने पर अनुभूत मन्त्र :

नजर लगना, यह इस प्रकार की दृष्टि दोष है। यह एक मनोभावना का खेल है जैसे कि मेस्मेरेजिम होता है। किसी की दृष्टि में दुष्ट भावना की प्रबलता से ऐसा जहरीला विकार स्वाभाविक ही होता है कि वह जिस प्राणी की ओर देख लेवे या जिस अन्न या दूध आदि पदार्थों की ओर अपनी गहरी दृष्टि से देख ले, वह प्राणी या पदार्थ अवश्य विकृत हो जाते हैं। इसी को नजर लगना कहते हैं। भारतीय संस्कृति में यह नियम है कि भोजन और भजन एकान्त में करना चाहिए। अब हम एक प्रयोग प्रस्तुत करते हैं।

ॐ अंजनी गर्भ सम्भूतम् कुमारं ब्रह्मचारिणम्।
दृष्टि दोष विनाशाय हनुमन्तं स्मराम्यहम्।।

दीपावली या देवोत्थान पर १०८ बार मन्त्र जप कर गूगल व गुड़, घी से हवन करके १ रुपयो २५ पैसे का प्रशाद सीधा ब्राह्मण को दे देवें। हर साल इसी प्रकार जगाना चाहिए।

नजर वाले रोगी पर शुद्ध जल से ११ बार मन्त्र पढ़कर जल छिड़क देना चाहिए। या मोरपंख से झाड़ देना चाहिए। किसी भी दिन संध्या के समय गाय का कच्चा दूध किसी मिट्टी के बर्तन में कुल्हड़ आदि भरकर बायें हाथ से नजर लगे बच्चे के सिर पर ७ बार फेर कर किसी काले रंग के कुत्ते को पिला दीजिये। लगी हुई नजर उतर जायेगी। लालमिर्च डंठल समेत ७ नग लेकर नजर लगे हुए बच्चे पर २१ बार उतारकर जलते हुए चूल्हें में डाल दीजिये, यदि नजर है तो मिर्ची की धांस (गंध) नहीं आयेगी, बच्चा स्वस्थ हो जाएगा। मिट्टी का एक कुल्हड़ (मालवे में बुजारा कहते हैं) लेकर आग में खूब गर्म करें, एक परात में पानी डालें, उस कुल्हड़ को चीपिया से पकड़कर बच्चे पर २१ बार उतार कर परात में डाल देवें, नजर होगी तो वह कुल्हड़ आवाज करेगा और बच्चा स्वस्थ हो जायेगा।

संकटमोचन मन्त्रम्

उठ हनुमन्ता अंजना का पूतातेरी तांबे की मुद्रा, लोहे का कड़ा मारमार करंतामाई अंजनी का पूत खड़ा, मखना हाथी जरद अंवारी, जिस पर बैठे हनुमान बलधारी, तेरी तांबे की कला लोहे के ५ तीर, खेंचेगा कलुआ मारेगा वीर रख कला कडलियां शरीर, मेरी बैंरी तेरी भख, तलियां तोड़ी कलेजा चटकाली रखे काल से गुरी रक्खे मुठ से हनुमान जी रक्खे पीठ से हनुमान हठीला तोड़े बज्जर का कीला हाजर वे हनुमान तेई वो राम जी दुहाई रामजी के पैग लागे हनुमान बलधारी सभी परभाती सिमरिये निज काज सारेपवन के पुत्र की कौन शोभा करे चतुर मुख वेद, ब्रह्म उचारे सवासेर का रोट ईक लंगोट बिस परी चोट मेरी भक्त गुरू की शक्ति फुरो मन्त्र ईश्वर महादेव तेरी बाचा फुरे।

कष्ट से प्रसव होना

प्रयोग :

4	11	2	7
6	3	8	7
10	5	8	1
4	5	6	9

विधि– उपरोक्त यंत्र को काँसे की थाली में असली केसर से लिख दें और इसे पानी से घोलकर गर्भवती स्त्री को पिला दें। शीघ्र व आसानी से प्रसव हो जाएगा।

नोट :

१. केसर को पानी में घोटकर लिखने योग्य बनाकर लिखें।

२. पानी ऊपर की पंक्ति की ओर से डालें। इतना ही डालें कि कि गर्भवती पी सके।

३. यह प्रयोग काम में लेने पर किसी भी प्रकार का महनताना या पारितोषिक न लें।

निम्न मंत्र लिखकर आंखों से देखें तो द्विपारी तिजारी ज्वर से मुक्ति मिलती है–

समुद्रस्योत्तरे तीरे द्विविदोनाम वानरः।
ऐकाहिकज्वरं हन्ति लिखनं यस्तुपश्यति।।

इस मंत्र को लिखकर द्वार में टांग दे तो घर में एकाहिक ज्वर प्रवेश नहीं करता।

बिच्छू विष पर चमत्कारी प्रयोग :

आम के वृक्ष से सभी परिचित है, इसमें फूल लगने लगे तब फूलों को हाथों में लेकर रगड़ कर हाथों को फूलों के तरल से गीला कर लें फिर दूसरे दिन तक हाथों पर पानी नहीं लगने दें। इस प्रकार करने से हाथों में बिच्छू के विष को नष्ट करने की चमत्कारिक शक्ति हो जाती है जो एक वर्ष तक देखी गई है। आने वाले वर्ष जब आम में फूल लगने लगे तब यह प्रयोग पुनः कर लें। आम के फूलों को आम के बौर के नाम से भी जाना जाता है।

जंब किसी व्यक्ति को बिच्छू काट ले तो उस स्थान पर हाथ को स्पर्श कराने से ही बिच्छू का विष उतर जाता है।

तांत्रिक अंगुठी

एक हाथ के केचुवा लावे गाय का गोबर मिलावे फिर भैस का घी आधा सेर, शहद दस ग्राम, सुहागा ५ ग्राम, सब एकत्र करे। जब सड़ जाये तब मीजै फिर छोटी-छोटी टिकिया बांधे, सुखा लें, फिर अग्नि के द्वारा भस्म करे फिर पानी डालकर टिकिया की राख को पानी से सीचे ताबा नीचे पानी में बैठ जायेगा ऊपर की राख पानी से निकाल देवे। तांबा निकाल कर पुष्यनक्षत्र में मुदरी बनावे जब किसी को कष्ट होवे मुदरी धोकर जल पिला देवे या दूध (गाय) से धोकर पिला देवे। यह मुदरी तांत्रिक है। सब कार्यों की इससे सिद्धि होती है। और कष्ट निवारण में विशेष सहायक है। समस्त रोगो को दूर करती है।

मुद्रा तथा रोग

विभिन्न मुद्राएं एवं बीज मंत्र के प्रयोगों से जिन्हें आप प्रातः स्नानादि से निवृत होकर आसन बिछाकर पद्मासन, वज्रासन अथवा सुखासन में

कर सकते हैं। ५-१० गहरी सांस लेकर धीरे-२ छोड़ें व शान्तचित्त होकर इन मुद्राओं को दोनों हाथों से करें। विशेष परिस्थिति में आप भोजन से एक घंटा पूर्व व भोजन के चार घंटे बाद भी कर सकते हैं। दोनों हाथों की कलाइयों को अपने घुटने पर इस प्रकार रखें कि आपकी हथेलियां तथा उंगलियां नीचे तथा सामने की ओर हों। नीचे दिए गये बीच मंत्रों का उच्चारण मुद्राओं के साथ एक सांस में जितनी देर कर सकते हैं, करें।

जैसे ॐ (ओम्ऽऽऽ)

बीज मंत्र तथा मुद्राएं निम्न हैं।

१. ज्ञान मुद्रा– तर्जनी (प्रथम अंगुली) अंगूठे के ऊपरी भाग पर स्पर्श कराऐं। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रहें। मुद्रा के साथ ॐ बीज मंत्र का उच्चारण करते हुए अपना ध्यान भौहों के मध्य लगाएं। इस मुद्रा का अभ्यास आप जितनी देर कर सकते हैं, करें।

लाभ :

मानसिक रोग– अनिद्रा, अतिनिद्रा, कमजोर याद्दाश्त, क्रोधी स्वभाव आदि में यह मुद्रा अत्यन्त लाभदायक है।

२. पृथ्वी मुद्रा– कनिष्ठा (सबसे छोटी अंगुली को अंगूठे के ऊपरी भाग पर स्पर्श कराएं। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रहें। मुद्रा के साथ लं (लमऽऽ) बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए पीले रंग की चौकोर वस्तु का ध्यान करें।

लाभ :

शारीरिक दुर्बलता दूर होती है। ताजगी, स्फूर्ति आती है, तेज बढ़ता है। भय, शोक, चिंता आदि विकार दूर होते हैं।

३. सूर्य मुद्रा– अनामिका (सबसे छोटी अंगुलि के पास वाली) को मोड़कर उसके नख के ऊपर वाले भाग को अंगूठा स्पर्श करायें। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रखें, मुद्रा के साथ–रं (रम्ऽऽ) शब्द का उच्चारण करते हुए लाल रंग की त्रिभुजाकार वस्तु का ध्यान करें।

लाभ :

शरीर में एकत्रित अनावश्यक चर्बी, स्थूलता, सूजन, मंदाग्नि, अजीर्ण व क्रोधादि विकार दूर होते हैं।

४. वरुण मुद्रा– मध्यमा अर्थात् सबसे बड़ी अंगुलि मोड़कर उसके ऊपरी भाग को अंगूठे के ऊपरी भाग पर स्पर्श कराऐं। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रहें। मुद्रा के सात– वं (वम्ऽऽ) शब्द का उच्चारण करते हुए चांदी की भांति सफेद अर्ध चंद्राकार वस्तु का ध्यान करें।

लाभ :

चर्म रोग व अनीमिया जैसे रोग दूर होते हैं। भूख प्यास मिटती है। सहनशक्ति उत्पन्न होती है। जल में डूबने का भय समाप्त हो जाता है।

५. वायु मुद्रा– तर्जनी (प्रथम अंगुलि) को मोड़कर उसके नख के ऊपरी भाग को अंगूठे की गद्दी से स्पर्श कराऐं। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रहें। मुद्रा के साथ– यं (यम्ऽऽ) शब्द का उच्चारण करते हुए हरे रंग की गोलाकर (गेंद जैसी) वस्तु का ध्यान करें।

लाभ :

हाथ पैरों के जोड़ों का दर्द, लकवा, पक्षाघात, हिस्टीरिया, वात, दमा आदि रोगों का नाश होता है। इसी मुद्रा के साथ प्राणमुद्रा करने से शीघ्र लाभ होता है।

६. प्राण मुद्रा– कनिष्ठका, अनामिका एवं अंगूठे के ऊपरी भाग को परस्पर एक साथ स्पर्श करायें व शेष दोनों अंगुलियां सीधी रहें।

लाभ :

शरीर निरोगी रहता है। आंखों के रोग मिटाने व चश्में के नम्बर घटाने के लिए यह मुद्रा अत्यन्त लाभदायक है।

७. शून्य मुद्रा– सबसे लम्बी अंगुलि (मध्यमा) को मोड़कर उसके नख के ऊपर वाले भाग को अंगूठे का गुद्दी वाला भाग स्पर्श कराऐं। शेष तीनों अंगुलियां सीधी रहें। इसी मुद्रा के साथ– हं (हमऽऽ) बीजमंत्र का उच्चारण करते हुए नीले रंग के आकाश का ध्यान करें।

लाभ :

यह मुद्रा करने से कान का दर्द मिटता है। कान में से पस निकलता हो अथवा बहरापन हो तो यह मुद्रा चार से पांच मिनट करना चाहिए।

८. लिंग मुद्रा– हाथों को सीने के पास लाकर दोनों हाथों की अंगुलियां परस्पर भींचकर अन्दर की ओर वाले अंगूठे को ऊपर की ओर सीधा खड़ा करें। (कम से कम ५ मिनट)।

लाभ :

शरीर में उष्णता बढ़ती है। खांसी मिटती है। कफ का नाश करती है। मुद्राओं तथा बीज मंत्रों को करते समय आंखें बन्द रखें तो अधिक लाभदायक होगा।

मन्त्र औषधों का कथन (आद्य=धन्वन्तरि जी द्वारा)

धन्वन्तरि जी कहते है। ओंकार आदि मंत्र आयु देने वाले तथा सब रोगों का दूर कर के आरोग्य प्रदान करने वाले हैं। इतना ही नहीं, देह छूटने के पश्चात् वे स्वर्ग की भी प्राप्ति कराने वाले है। ओंकार सबसे उत्कृष्ट मंत्र है। उसका जप करके मनुष्य अमर हो जाता है। गायत्री भी उत्कृष्ट मंत्र है। उसका जप करे मनुष्य भोग एवं मोक्ष का भागी होता है। ऊँ नमों भगवते वासुदेवाय– यह मंत्र उत्तम औषध है। जप करने से देवता और असुर श्री सम्पन्न तथा निरोग हो गये। जगत के समस्त प्राणियों का उपकार तथा धर्माचरण यह महान औषधि है। धर्मः सद्धर्मकृत् धर्मी इन धर्म सम्बन्धी नामों के जप से मनुष्य निर्मल शुद्ध हो जाता है। श्रीदः श्रीश श्री निवासः श्रीधरः श्री निकेतनः श्रियः पतिः इन श्रीपति संबंधी नामात्मक मंत्र पदों के जप से मनुष्य लक्ष्मी (धन-सम्पत्ति) को पा लेता है। कामी, कामप्रदः कामः कामपालः हरिः आनन्दःमाधवः शौरि के इन नाम-मंत्रो के जप और कीर्तन से समस्त कामनाओं की पूर्ति हो जाती है। रामःपरशुराम नृसिहः विष्णुःत्रिविक्रमः– ये श्रीहरि के नाम से युद्ध में विजय की इच्छा रखने वाले योद्धाओं को जपने चाहिए। नित्य विद्याभ्यास करने वाले छात्रों को सदा श्री पुरूषोत्तम नाम का जप करना चाहिए। दामोदरः नाम बन्धन दूर करने वाला है। हृषिकेशः " इस नाम का स्मरण भयहारी है। औषध देते और लेते समय इन सब नामों का जप करना चाहिए, औषध कर्म में अच्युत– इस अमृत-मंत्र का भी जप करे। संग्राम में अपराजित होने तथा जल से पार होते समय श्रीनृसिंह का स्मरण करें जो पूर्वादि की यात्रा में सफलता की कामना रखने वाला, वह क्रमशः चक्री गदी शार्गी, और खड्गी का चिंतन करें। व्यवहारों में (मुकदमों में) भक्ति भाव से सर्वेश्वर अजित का स्मरण करे चिंतन करें। व्यवहारों में (मुकदमों में) भक्ति भाव से सर्वेश्वर अजित का स्मरण भीतियों को भगाने वाला है। गरूडध्वजः यह नाम विष का हरण करने वाला है। वासुदेव

नाम को सदा ही जप करना चाहिए। धान्य आदि को घर में रखते समय या शयन करते समय भी अनन्त और अच्युत का उच्चारण करे। दुःस्वप्न दीखने पर नारायण का तथा दाह आदि के अवसर पर जलशायी का स्मरण करें। विद्यार्थी हयग्रीव का चिंतन करे। पुत्र की प्राप्ति के लिए जगत्सूति का तथा शौर्य की कामना हो तो श्रीबलभद्र का स्मरण करें। इनमें से प्रत्येक नाम अभीष्ट मनोरथ को सिद्ध करने **मृतसंजीवन कारक** सिद्ध योगों का कथन :– धन्वन्तरि कहते है। सुश्रुत! अब मैं, आत्रेय के द्वारा वर्णित मृतसंजीवनकारक दिव्य सिद्ध योगों को कहता हूँ। जो सम्पूर्ण व्याधियों को विनाश करने वाले है। आत्रेय ने कहा वात ज्वर में बिल्वादि पंचमूल बेल सोना पाठा, गम्भारी पाटल एवं अरणी का काढ़ा दे और पाचन के लिए पिप्पलीमूल, गिलोय और सोंठ इनका क्वाथ दे। आंवला, अभया (बड़ी हर्रे) पीपल एवं चित्रक यह आमलक्यादि क्वाथ सब प्रकार के ज्वरों का नाश करने वाला है। बिल्वमूल, अरणी सोना पाठा, गम्भारी, पाटल, शालपर्णी गोखरू, पृश्निपर्णी बृहती (बड़ी कटेरी) और कण्टकारिका (छोटी कटेरी) ये दशमूल कहे गये है। इनका क्वाथ तथा कुश के मूल का क्वाथ ज्वर अपाचन पार्श्वशूल और कास (खांसी) का नाश करने वाला है। गिलोय, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, चिरायता, और सोंठ यह पन्चभद्र क्वाथ वात और पित्तज्वर में देना चाहिए। निशोथ, विशाला (इन्द्रवारूणी) कुटकी, त्रिफला और अमलतास इनका क्वाथ यवक्षार मिलाकर पिलावे यह विरेचक और सम्पूर्ण ज्वरों को शांत करने वाला है। वटांकुर, काकड़ासिंगी शिलाजीत लोध अनारदाना और मुलहठी इनका चूर्ण बनाकर उस चूर्ण के समान मात्रा में मिश्री मिला मधु के साथ अवलेह (चटनी) का निर्माण करें। इस वटशुंगादि के अवलेह को चावल के पानी के साथ लिया जाये तो उससे प्यास और छर्दि (वमन) का प्रशमन होता है। गिलोय, अडूसा लोध और पीपल इनका चूर्ण शहद के साथ कफयुक्त रक्त प्यास खांसी एवं ज्वर को नष्ट करने वाला है।

शंखपुष्पी बच और मीठा कूट से सिद्ध ब्राहमी रस को मिलाकर इन सबकी गुटिका बना लें तो वह पुराने उन्माद और अपस्मार रोग का नाश करती है। और उत्तम मेधावर्धक औषध है। हर्रे के साथ पंचगव्य या घृत का प्रयोग कुष्ठ-नाशक है। उपदंश की शांति के लिए त्रिफला के क्वाथ

या भृंगराज के रस से व्रणों का प्रक्षालन करें। परवल की पत्ती के चूर्ण के साथ अनार की छाल का चूर्ण अथवा गजपीपर या त्रिफला का चूर्ण पाउडर के रूप में ही उस पर छोड़े। त्रिफला लोह चूर्ण मुलहठी, आर्कव (कुकुरभाँगरा) नील कमल, कालीमिर्च, और सैन्धव नमक सहित पकाये हुए तेल के मर्दन से वमन की शांति होती है। दुग्ध मार्कव-रस मुलहठी और नील कमल इनको दो सेर लेकर तबतक पकायें जब तक एक पाव तेल शेष रह जाये इस तेल का नस्य वृद्धावस्था के बिन्दु पलित बाल पकने का नाशक है। नीम की छाल परवल की पत्ती त्रिफला गिलोय खेर की छाल अडूसा अथवा चिरायता पाठा त्रिफला और लाल चन्दन ये दानों योग ज्वर को नष्ट करते है तथा कुष्ठ फोडा-फुन्सी चकत्ते आदि को भी मिटा देते है। परवल की पत्ती गिलोय चिरायता अडूसा मजीठ एवं पित्तपापड़ा इनके क्वाथ में खदिर मिलाकर लिया जाये ज्वर को नष्ट या शांत करता है। दशमूल गिलोय हर्रे दारूहल्दी गदहपूर्णा सहजना एवं सोंठ ज्वर, विद्रधि तथा शोथ-रोगों में हितकर हैं। महुवा और नीम की पत्ती का लेप व्रण-शोधक होता है। त्रिफला, खैर (कत्था) दारू हल्दी, बरगद की छाल बरियार कुशा नीम वे पत्ते तथा मूली के पत्ते इनका क्वाथ शरीर के बाह्यशोधन के लिए हितकर है। करन्ज नीम का रस घाव के कृमियों को नष्ट करता है। धाय का फूल सफेद चन्दन खरेटी, मजीठ मुलहेठी, कमल, देवदारू का घृत सहित लेप व्रण रोपक (घाव को भरने वाला) है। गुग्गुल त्रिफला, पीपल, सोठ, मिर्च, पीपर इनका समान भाग लें और इन सबके समान घृत मिलाकर प्रयोग करें इस प्रयोग से मनुष्य नाड़ीब्रण, दुष्टव्रण शूल और भगन्दर आदि रोगों को दूर करें गोमूत्र में भिगोकर शुद्ध की हुई हरीतकी (छोटी हर्रे) को (अरंडी के) तेल में भूनकर सेंधा नमक के साथ प्रतिदिन प्रातः काल सेवन करें ऐसी हरीतकी कफ और वात से होने वाले रोगों को नष्ट करती है। सोंठ, मिर्च, पीपल और त्रिफला का क्वाथ यवक्षार और लवण मिलाकर पीयें कफ प्रधान वातप्रधान प्रकृतिवाले मनुष्यों के लिए विरेचन है और कफवृद्धि को दूर करता है। पीपल, पीपलामूल, वच चित्रक, सोंठ इनका क्वाथ सर्वांगवात तथा संधि, अस्थि और मज्जगत आमवात में पीना चाहिए। सोंठ एवं गोखरू का क्वाथ प्रतिदिन प्रातः काल सेवन किया

जाये तो वह आमवात के सहित कटिशूल ओरं पाण्डु रोग का नाश करता है। शाखा एवं पत्र सहित प्रसारिणी (छुंईमुई) का तेल भी उक्त रोग में लाभकर है। गिलोय का स्वरस कल्क, चूर्ण या क्वाथ दीर्घकाल तक सेवन करके रोगी वातरक्त रोग से छुटकारा पा जाता है। वर्धमान पिप्पली या गुड के साथ हर्रे का सेवन करना चाहिए (यह भी वातरक्त नाशक है) पटोल पत्र त्रिफला राई कुटकी और गिलोय इनका पाक तैयार करके उसके सेवन से दाहयुक्त वात रक्त रोग शीघ्र होता है। गुग्गुल को ठंडे-गर्म जल से और त्रिफला को समशीतोष्ण जल से अथवा खरेटी, पुनर्नवा, एरण्डमूल दोनों कटेरी गोखरू का क्वाथ हींग तथा लवण के लेने पर वह वात जनित पीड़ा को शीघ्र ही दूर कर देता हैं। एक तोला पीपलामूल, सैन्धव, सौवर्चल, विड सामुद्र एवं औदिभद पांचों नमक पिपली, चित्रकसोंठ त्रिफला, निशोथ वच यवक्षार सर्जक्षार, शीतला, दंती स्वर्णधारी (सत्यानाशी) और काकड़सिंगी इनकी बेर के समान गुटिका बनायें और कांजी के साथ उसका सेवन करें शोथ तथा उससे हुए पाक में भी इसका सेवन करें। उदरवृद्धि में भी निशोथ का प्रयोग विहित है। दारूहल्दी, पुनर्नवा तथा सोंठ इनसे सिद्ध किया हुआ दुग्ध शोथनाशक है। तथा मदार, गदहपूर्ण एवं चिरायता के क्वाथ से सेक (करने पर) शोथ का हरण होता है।

जो मनुष्य त्रिकुट युक्त घृत को तिगुने फ्लाश भस्म युक्त जल में सिद्ध करके पीता है। उसका अर्श रोग निस्संदेह नष्ट हो जाता है। फुल प्रियंगु, कमल, संभालू वायविडंग, चित्रक सैन्धवलवण रास्ना, दुग्ध देवदारू और बच से सिद्ध चौगुना कटुतैल मर्दन करने से (या जल के साथ ही पीसकर लेप करने से) गलगण्ड रोगों का नाश हो जाता है। कचूर, नागकेसर, कुमुद का पकाया हुआ क्वाथ तथा क्षीरविदारी, पीपल और अडूसा का कल्क दूध के साथ पकाकर लेने से क्षय रोग में लाभ होता है।

वचा, विडलवण अभया (बडी हर्रे) सोंठ हींग, कूट चित्रक और अजवायन इनके क्रमशः दो तीन छः चार एक सात पांच और चार भाग ग्रहण करके चूर्ण बनावें। यह चूर्ण गुल्मरोग उदर-रोग शूल, और कास रोग को दूर करता है पाठा, दंतीमूल त्रिकटु (सोंठ मिर्च, पीपल त्रिफला

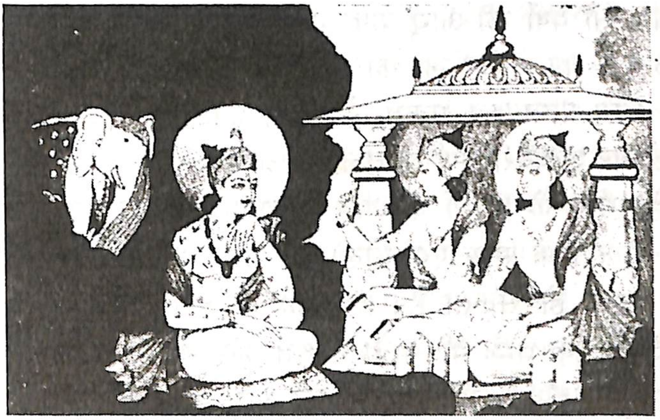
के साथ सेवन करने पर वात पित्त रोगों का शमन होता है। वाय विडंग का चूर्ण शहद के साथ लिया जाये तो वह कृमिनाशक है। विडंग, सेंधानमक यवक्षार एवं गोमूत्र के साथ ली गई हर्रे भी (कृमिध्न है) शाल्लकी (शाल विशेष) बेर, जामुन प्रियाल आम्र और अर्जुन इन वृक्षों की छाल का चूर्ण मधु मिलाकर दूध के साथ लेने पर रक्त अतिसार दूर होता है। कच्चे बेल का सूखा गूदा आम की छाल धाय का फूल पाठा सोंठ और मोच रस कदली स्वरस इन सबका समान भाग लेकर चूर्ण बना लें ओर गुड मिश्रित तक्र के साथ पीयें इससे दुःसाध्य अतिसार का भी अवरोध हो जाता है। चांगेरी, बेर दही का पानी सोंठ ओर यवक्षार इनका घृत सहित क्वाथ पीने से गुदभ्रंश रोग दूर होता है। बायविडंग अतीस नागरमोथा, देवदारू, पाठा, तथा इन्द्रयव दनके क्वाथ में मिर्च का चूर्ण मिलाकर पीने से शोथ युक्त अतिसार का नाश होता है।

शर्करा, सैन्धव और सोंठ के साथ अथवा पीपल, मधु एवं गुड सहित प्रतिदिन दोहर्रे का भक्षण करें तो उससे मनुष्य सौ वर्ष से अधिक काल तक सुखपूर्वक जीवित रह सकता है पिप्पली युक्त त्रिफला भी मधु और घृत के साथ प्रयोग लायी जाने पर वैसा ही फल देती है आंवले के स्वरस से भावित आंवले के चूर्ण को मधु तथ घृत शर्करा के साथ चाटकर दुग्धपान करें। उससे मनुष्य स्त्रियों का (प्रिय) प्रभु बन सकता है। उड़द पीपल अगहनी चावल जौ और गेहूँ इन सब का चूर्ण समान मात्रा में लेकर घृत में उसकी पूरी बना लें। उसका भोजन करके शर्करायुक्त दुग्धपान करें। निः संदेह इस प्रयोग से मनुष्य गोरैया पक्षी के समान दस बार स्त्री सम्भोग करने में समर्थ हो सकता है। मजीठ धाय के फूल लोध, नील कमल इनको दूध के साथ देना चाहिए। यह स्त्रियों के प्रदर रोग को दूर करता है। पीली कटसरैया मुलहठी ओर श्वेत चन्दन ये भी प्रदर रोग-नाशक श्वेत कमल और नील कमल की जड़ तथा मुलहठी शर्करा और तिल इनका चूर्ण गर्भपात की आशंका होने पर गर्भ को स्थिर करने में उत्तम योग है। देवदारू अभ्रक कूठ खस और सोंठ इनको कांजी में पीसकर तेल मिलाकर लेप करने से शिरो रोग का नाश करता है। सैंधव लवण को तेल में सिद्ध करे छान लें। जब थोड़ा गरम हो जाये तो उसको कान में डालने से कर्णशूल का शमन होता है।

लहसुन अदरक, सहजन और केला, इनमें से प्रत्येक का रस कर्णशूलहरी हैं। बरियार शतावरी रास्ना गिलोय, कटसरैया और त्रिफला इनसे सिद्ध घृत का पान तिमिर रोग का नाश करने में परम उत्तम माना गया है। त्रिफला त्रिकटु एवं सैन्धव लवण इन से सिद्ध किये हुए घृत का पान मनुष्य को करना चाहिएं यह चक्षुष्य (आंखों के लिए हितकर) है। गाय के गोबर के रस के साथ नीलकमल के पराग भी हितकर है। मुलहठी बच, पिप्पली बीज कटैया की छाल का कल्क और नीम का क्वाथ घोट देने से स्निग्ध किया गया या पकाया हुआ यव का पानी विरेचक होता है किंतु इसका अनुचित प्रयोग मन्दाग्नि उदर में भारीपन और अरूचि को उत्पन्न करता है हर्रे सैन्धव लवण और पीपल इनके समान भाग का चूर्ण गर्म जल के साथ लें यह नाराच संज्ञक चूर्ण सर्वरोगनाशक तथा विरेचक है।

महर्षि आत्रेय ने मुनिजनों के लिए जिन सिद्ध योगों का वर्णन किया था, समस्त योगो में श्रेष्ठ सर्वरोगनाशक योगों का ज्ञान सुश्रुत से प्राप्त किया।

यह अत्रिपथगा चिकित्सा है।



देवलोक के वैद्य आश्विनी कुमारों से आयुर्वेद ज्ञान प्राप्त करते हुए इन्द्रदेव।

मृत्युंजय योगों का वर्णन (विद्या आद्यात्)

भगवान धन्वन्तरि कहते है :– अब मै, मृत्युजंय कल्पों का वर्णन करता हूं, जो आयु देने वाले एवं सब रोगों का मर्दन करने वाले हैं। मधु, घृत, त्रिफला और गिलोय का सेवन करना चाहिए। ये रोग को नष्ट करने वाले हैं तथा तीन सौ वर्ष तक की आयु दे सकती है। चार तोले, दो तोले अथवा एक तोले की मात्रा में त्रिफला का सेवन वही फल देता है। एक मास तक बिल्व तेल का नस्य लेने से पांच सौ वर्ष की आयु और कवित्व-शक्ति उपलब्ध होती है। शुद्ध भिलावा एवं तिल का सेवन रोग अपमृत्यु और वृद्धावस्था को दूर करता है। बाकुची के पंचांग के चूर्ण को खैर (कत्था) के क्वाथ के साथ दश मास तक प्रयोग करने से रोगी कुष्ठ पर विजयी होता है। नीली कटसरैया के चूर्ण का मधु या दुग्ध के साथ सेवन हितकर है। प्रतिदिन प्रातः काल मधु घृत और सोंठ का चार तोले की मात्रा में सेवन करने वाले मनुष्य के चेहरे पर झुर्रियां नहीं पड़ती है। और उसके बाल नहीं पकते है, वह दीर्घ जीवन लाभ करता है। मधु के साथ उच्चता (भुई आंवला) को एक तोले की मात्रा में खाकर दुग्धपान करने वाले मनुष्य मृत्यु पर विजय पाता है। छः मास तक प्रतिदिन एक तोला भर पलाश तेल का मधु के साथ सेवन कर के दुग्धपान करने वाला पांच सौ वर्षो की आयु प्राप्त करता है। दुग्ध के साथ कागुंनी के पत्तों के रस का यात्रिफला का प्रयोग करें। इससे मनुष्य एक हजार वर्षो की आयु प्राप्त कर सकता है। इसी प्रकार मधु के साथ घृत और चार तोले भर शतावरी चूर्ण या तुलसी पत्र स्वरस रोग एवं मृत्यु का नाश करता है। नीम के पंचागं कौ खैर के क्वाथ (काढ़े) की भावना देकर भृगंराज के रस के साथ एक तोला भर सेवन करने से मनुष्य रोग को जीतकर अमर हो सकता है। हरीतकी के चूर्ण को भृंगराज रस की भावना देकर एक तोले की मात्रा में घृत और मधु के साथ सेवन करने वाला रोगमुक्त होकर तीन सौ वर्षो की आयु प्राप्त कर सकता है। शुद्ध लोहचूर्ण शतावरी समान भाग से भृंगराज रस तथा घी के साथ एक तोला की मात्रा में सेवन करने से मनुष्य पांच सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है। लौह भस्म तथा शतावरी की भृंगराज के रस में भावना देकर

मधु एवं घी के साथ लेने से तीन सौ वर्ष की आयु प्राप्त होती है। ताम्र भस्म गिलोय शुद्ध गन्धक समान भाग घी कुंवार के रस में घोटकर दो-दो रत्ती की गोलियां बनायें। इसका घृत से सेवन करने से मनुष्य पांच सौ वर्ष की आयु प्राप्त करता है। असगन्ध, त्रिफला चीनी तेल और घृत में सेवन करने वाला सौ वर्ष तक जीता है।

गदहपूर्णा का चूर्ण एक पल मधु, दुग्ध और घृत के साथ भक्षण करने वाला भी शतायु होता है। अशोक की छाल का एक पल चूर्ण मधु और घृत के साथ खाकर दुग्ध पान करने से अनेक रोगनाश होता है। निम्ब के तेल की मधु सहित नस्य लेने से मनुष्य सौ वर्ष जीता है। और उसके केश सदा काले रहते है। बहेड़े के चूर्ण की एक तोला मात्रा में शहद घी और दूध से पीने वाला शतायु होता है। मधुरादिगण की औषधियों और हरीतकी को गुड़ और घृत के साथ खाकर दूध के सहित अन्न भोजन करने वालो के केश सदा काले रहते हैं तथा वह रोग रहित होकर पांच सौ वर्षों का जीवन प्राप्त करता है। एक मास तक सफेद पेठे के एक पल (कालिंगमान से एक पल चार तोले का होता है) चूर्ण को मधु घृत और दूध के साथ सेवन करते हुए दुग्धान्न का भोजन करने वाला निरोग रहकर एक सहस्र वर्ष की आयु का उपभोग करता है। कड़वी तुम्बी के एक तोले भर का नस्य दो सौ वर्षों की आयु प्रदान करता है। इनका शतावरी के साथ सेवन अत्यंत बलप्रद और सहस्र वर्षों की आयु प्रदान करने वाला है। इनका चित्रक के साथ तथा सोंठ के साथ विडंग का प्रयोग भी पूर्ववत् है। त्रिफला पीपल और सोंठ इनका लोह भस्म भृंगराज खरेटी, निम्ब पंचांग, खैर निर्गुंडी कटेरी, अडूसा और पुनर्नवा के साथ या इनके रस की भावना देकर या इनके संयोग से वटी या चूर्ण का निर्माण करके उसका घृत मधु गुड़ और जलादि अनुपानों के साथ सेवन करने से पूर्वोक्त फल की प्राप्ति होती है। उसके सेवन से मनुष्य रोग और मृत्यु पर विजय प्राप्त करता है। देवता, असुर और मुनियों ने इन कल्प यो का सेवन किया है। आगे रसायन पाकों का वर्णन करेगें–

रसोन पाक

छिलके रहित लहसुन को शाम को मटठा में भिगो दें सवेरे मटठा से निकाल कर साफ सिल पर बांट पीठी बना ले, लहसुन की पीठी ४०

तोला, गाय का दूध २ सेर, मिश्री या शक्कर ४० तोला, शहद २० तोला, रास्ना सतावर, अरूस की जड़, गिलोय कचूर, सोंठ, देवदार, विधारा चित्रक, अजवायन, पथरचटा की जड़, असगन्ध, हरें, बहेर आमला, पीपर पिपरामूल, बायविडंग, कटेरी जड़, सब प्रत्येक १-१ तोला सब का चूर्ण कपड़ छान कर बना लें विधि लहुसन की पीठी दूध में डालकर पकावे अब गाढा खोया हो गाय के घी में डाल अबलाल कर भून ले, पिठ्ठी को चाशनी में मिलाय उक्त भुना खोया भी डालकर सब एकत्र घोंटकर अब ठण्डा हो जाय पीछे शहद मिलाय लड्डू १ तोला के प्रमाण तैयार कर प्रातः-सायंकाल सेवन करें ऊपर से गौ दूध पीवे। सब प्रकार के बात रोग, पक्षाघात लकवा गठियावाय पेट की वायु चिलकन आदि दूर होकर क्षुधा बढ़ती है।

स्तम्भन पाक (रंगावली प्रयोग)

बीजबंद तुकमलंगा रूमीमस्तगी तुलसी बीज भाँग के बीज तालमखाना शुद्धश्वेत गुंजा, शु० केवांच बीज उटंगन के बीज अकर करा, जायफल सोंठ मिर्च बंचलौचन बबूल की पकी सिगंरी बीजबन्द पत्येक २-२ तोला चूर्ण कपड़ छान कर रख ले फिर खोवा पोने दो सेर घी डेढ़ पाव में भुनकर मिश्री दो सेर की चाशनी कर खोवा मिला दे पीछे दवायें चूर्ण मिलाय बंगेश्वर १ तोला, लोह भस्म १ तोला मिलाय १ छटांक के मोदक बना लें। सुबह-शाम ऊपर से गर्म दूध पियें, ब्रह्मचर्य रहे अति पौष्टक स्तम्भन योग है।

वीर्य स्तम्भन पर

चोबचीनी, सफेद मूसली, बड़ी गोखरू, नागकेशर, तालामखाना, शतावर, केवांच के बीज, शुद्ध गगेरन की जड़, तुलसी के बीज, इन सबको बराबर लेकर चूर्ण करे और चूर्ण जितना है उससे आधी मात्रा में मिश्री मिला देवें, मात्रा आठ आने भर एक तोला तक। ऊपर से दूध पीवे, समय– दोनो वक्त।

मदन प्रकाश पाक

तालमखाना, मूशली, सोठ, बिहारी कंद बीजबंद, असगंध, जायफल, सतावर, केवांच बीज, शुद्ध सेमरके फूल, मोचरस, गोखरू, उर्द की दाल धुली हुई, घी से भुनी मूंग, प्रत्येक ४-४ तोले महीन चूर्ण कपड़ छान कर

लें फिर खोवा ढाई पाव घी में भुन ले फिर गुड २ सैर चाशनी कर उसी चाशनी में खोवा और उपर्युक्त सब दवाईया मिलाय घोंट दें मात्रा १ तोला से २ तोला ऊपर से दूध। रोग प्रमेह, धातु, क्षय, बल वीर्य का बढ़ाने वाला है स्तम्भन है।

गोक्षुर पाक

गुखरू का चूर्ण एक सेर को चार सेर दूध में डाल औंट कर खोवा बना लें फिर ढाई सेर घी में भुन ले, फिर उसमें जावित्री, लौंग, काली मिर्च, कपूर, शु० अकरकरा, समुंद्र शोख, दोनों जीरा स्याह, मुसली, पीपर छोटी, आमला का छिलका, केशर, जावित्री, जायफल, अजवायन, सोंठ, खस, दालचीनी, तेजपात, नागकेशर, गजपीपर, हरदी, बीज बंद, सतावर, बंचलोचन, तालम खाना, प्रत्येक का चूर्ण २-२ तोला भांग १० तोला धुली भुनी हुई का चूर्ण लोह भस्म २ तोला २ सेर की चाशनी बनाकर उस चाशनी में सब मिलाय मात्रा ११ आना से १ तोला तक की गोलियां बना ले, प्रातः शाम, गोली खाकर ऊपर से दूध पीवे। लाभ—वीर्य स्तम्भन तुष्टि पुष्टि करता है।

बादाम पाक

बादाम के मगज, १ सेर जल में भिगो दे, छिलका निकालकर पिटठी करले पश्चात् चार सेर दूध में मिलाय पचाय मावा करें। फिर एक सेर घी मिलाकर भुने। फिर मिश्री ४ सेर की चाशनी को केशर बंगभस्म एक तोला घोंट और बादाम मावा दोनों चाशनी में मिला कर घोंट दें तथा जायफल, जावित्री, त्रिकुटा, लौंग, दालचीनी, तेजपत्र, इलायची, मुसली, विदारी कंद, सब १-१ तोला कूट कपड़ छान चूर्ण कर मिला दे। फिर रस मकर ध्वज अभ्रक भस्म लोह भस्म बंग भस्म १-१ तोला मिलावे मात्रा ४-४ तोले के लड्डू बना ले, समय प्रातः-सायं, ऊपर से दूध डेढ पाव पिये हृदय मस्तिष्क को लाभ देता है। मानसिक रोग वीर्यक्षय वातवृद्धि आदि दूर कर पुष्टि करता है। स्मृति, क्रान्ति को बढ़ाता है।

रति वर्द्धनपाक

पिपरामूल अकरकराविडंग १-१ तोला प्रत्येक बड़ी हर्रे का छिलका, सफेद मूसली, सालिम मिश्री, बीजबंद, इमली की गिरी, छोटी इलायची के

दाने, पिस्ते छिले, ककरी के बीज की गिरी, तरबूजे के बीज की गिरी, प्रत्येक ३-३ तोला मेथी, इन्द्र जौ, नारियल की गिरी, दाल चीनी, बादाम की गिरी, प्रत्येक ५-५ तोला खस २ तोला सोंठ बिहीदाना प्रत्येक पाव २ भर जायफल, जावित्री, केशर, अच्छी काली मिर्च, धुली भारंगी, ६-६ माशागुखरू बड़ी, चिरौजी, गोंद कतीरा, आध २ पावुअम्बर कस्तूरी १-१ माशा सोने के वर्क १५ चांदी के वर्क ३० नग गोंद बबूल तीन पाव सत्तू गेंहू एक सेर खाड साढे तीन सेर घी गाय का दो सेर विधि सब दवायें कूट पीस छान कर दूध गौ का खोवा डेढ सेर कर फिर गेहू का सतू घी में भूने खोवा भी भुने शकर या मिश्री की चाशनी कर उसमें खोया और भुना गेहूं का सतू डाल पाक बनाये शेष वर्क कस्तूरी आदि भस्में मिलाये कुछ ठंडा होने पर १-१ तोले की गोलियां बना लें। समय सुबह-शाम, ऊपर से दूध गाय का डेढ पाव पीवें रोग २० प्रकार प्रमेह धातुपतन पतलापन, इन्द्रियशिथिलता आदि दूर कर व्यक्ति जवान होगा।

पंचतिक्तक्वाथ

भटकटाई जड़, टका भर, पुहकरमूल टकाभर, चिरायताकटु, सोंठ गिलोय एक-एक तोला सब को कुचल कर क्वाथ जल में सिद्ध करें सर्वज्वर नष्ट करने वाला योग है बात में चतुर्थांश पित्त में पष्ठांश कफ में अष्टमांश क्वाथ जल शेष रहना चाहिए।

अष्टमंगल मालिश ज्वरशामक

कचूर चिरायता, सरसों, मुरहरी, मोथा गुजराती, सफेत सिरसा के बीज सब बराबर लेकर बकरी के दूध से बांट मालिश किया जाय तो बालकों के समस्त ग्रह शांत होते हैं ६ वर्ष तक बालकों के लिए है।

सुलभ प्रयोग-आयुर्वेद (तरंगावली)

१. चने की भीगी दाल और शक्कर की १०-१० ग्राम मात्रा नित्य प्रातः सेवन करें बाद में ३० मिनट तक और कुछ भी खायें पियें नहीं नित्य ४० दिन तक यह प्रयोग करते रहने से धातु पुष्ट होती है।

२. शौच के समय बायें पैर की एड़ी को उठाने रखने की आदत बना लेने से कब्ज नहीं रहता।

३. खुलकर शौच न आने की दशा में गुदा का बार-बार आकुंचन करने से शौच खुलकर आने में मदद मिलती है।

४. कमजोर हृदय वाले नित्य प्रातः और सायं दो-दो चम्मच गुलकंद खाये तो दिल का तेज धड़कना, घबराहट तथा कमजोरी में लाभ मिलता है।

५. पाँच छोटी ईलायची के दाने पीसकर एक गिलास गरम मीठे दूध के साथ प्रातः लें, यही प्रयोग रात को सोने से पूर्व करते रहें। मूत्र मार्ग में जलन रुक-रुक कर मूत्र आने की शिकायत इस प्रयोग से मिट जाती है।

६. नित्य भुने चनों की ३० से ५० ग्राम तक मात्रा खाते रहने से हृदय रोग की सम्भावना मिटती है। जो व्यक्ति भूने साबुत चने न खा सकें वे इन्हे पिसवा कर खा लिया करें ऊपर से पानी पी लें।

७. एक पोथिया लहसून का नित्य सेवन करने से खून में बढ़ें केलोस्ट्रोल की मात्रा घट कर सामान्य होने लगती है।

८. बादाम के तेल की ४-५ बूंदे नित्य सोने से पहले रात्रि में नाक के दोनों नथुनों में डालने से उच्च रक्त चाप में फायदा होता है।

६. २५० ग्राम दूध में १० ग्राम किशमिश और मिश्री की एक चम्मच भर मात्रा डालकर उबालें।

जब दूध उबल जाये फिर नीचे उतार कर गुनगुना होने तक ठण्ड़ा करें, अब इसमें डाली हुई किशमिश निकाल कर खा लें तथा ऊपर से दूध पी जायें। ३० दिन तक यह प्रयोग करते रहने से हृदय की अनियमित धड़कने ठीक होती हैं।

१०. बट (बरगद) की ग्यारह पत्तियां (बेल पत्र जिनसे सावन के महीने में भगवान शिव की आराधना की जाती है एक डण्ठल सहित पत्तियों को लेकर पानी के साथ चटनी की तरह तीन काली मिर्च के साथ पीस लें और कपड़े से छानकर पी जायें। यह प्रयोग ४१ दिन तक नित्य एक बार करें। मधुमेह नियंत्रण हेतु एक असर कारक प्रयोग है।

११. ५ बेल के पत्ते, २१ काली मिर्च के पत्ते, ७ नीम के पत्ते, ११ काली मिर्च।

सबको सिल पर जल के साथ चटनी की तरह पीसकर जल में मिलाकर पी जायें, २५ दिन तक यह प्रयोग नित्य एक बार करने से ब्लड़ शुगर में आशातीत लाभ होता है।

विशेष—पथ्यापथ्य का विशेष ध्यान रोगी को रखना चाहिए। नित्य प्रातः

सूर्योदय से पहले तथा सायं भोजन के बाद खुली हवा में घूमना चाहिए।

१२. **वृक्क शूल में**–अजवायन का चूर्ण ३ ग्राम. की मात्रा में सुबह-शाम कुछ दिनों तक सेवन करते रहने पर गुर्दे के दर्द में लाभ होता है।

१३. **मूर्च्छा में**– छोटी कटेरी सोंठ गिलोय पीपरामूल प्रत्येक सामान्य भाग लेकर चूर्ण का काढ़ा बनायें। इसी काढ़े से २ ग्राम पीपल चूर्ण मिलाकर दिन में तीन चार बार पिलाने से मूर्च्छा ठीक होती है।

१४. **नेत्र गुहेरी में** – रसौत तथा त्रिकुट को पीसकर उसकी गोली बनाकर उसका लेप करने से लाभ होता है।

१५. **हृदय की दुर्बलता में**–धनिये के चूर्ण में समभाग मिश्री चूर्ण मिलाकर प्रतिदिन ७ ग्राम में ताजे जल के साथ सेवन करने से धनिया का फाण्ट शक्कर और दूध मिलाकर प्रतिदिन पिलाने से हृदय की दुर्बलता तथा ज्यादा धड़कन में लाभ होता है।

१६. **श्वेत कुष्ठ में** – अपराजिता की जड़ भाग चक्रमर्द जड़ १ भाग इन दोनों को जल के साथ पीसकर लेप करने तथा इसके बीजो को घृत में भूनकर चूर्ण कर जल के साथ प्रातः सेवन कराने से श्वेत कुष्ठ ठीक होता है।

१७. **अम्लपित्त में** – सौंफ आंवला दोनों को सम भाग लेकर चौथाई गुलाब का फूल पुष्प मिलाकर इन सबके बराबर मिश्री मिलाकर चूर्ण बना लें दिन में तीन बार तक प्रयोग कराने पर अम्ल पित्त ठीक होता है। खटाई प्याज एवं मिर्च बंद रखें।

१८. **खांसी में** – तुलसी पत्र १०, लौंग ३, काली मिर्च १५ तथा २ इलायची को कूटकर मिश्री मिलाकर चासनी बनाकर खाने पर सभी की खांसी ठीक होती है।

१९. **लू लगने पर** – खस ३ ग्राम, आंवला ६ ग्राम, कर्पूर २ ग्रेन, छोटी इलायची ८ ग्रेन, श्वेत चन्दन १२ ग्राम, मिश्री २४ ग्राम लें। यह सब जल में मिलाकर २५० ग्राम पानी में छानकर बार-बार पिलाने से लू लगने से छुटकारा मिलता है।

२०. **मुख पाक में** – चमेली के पत्तों को चबा चबाकर थूकने रहने से मुंह के छाले, मुख पाक में लाभ होता है।

फलप्रद प्रयोग

१. दारु शिरःशूल में – अर्क (आकरण) की लाल पत्ती (कच्ची पत्ती) तोड़कर लाकर गुड में गोली बना कर उग्रशूल होने पर निगल जावें। आधा शूल होने (आधी गोली) प्रातः सूर्योदय के पूर्व इसे निगल लेवे। सिर शूल आर्धावभेदक एक ही दिन में मिट जावेगा।

२. श्वास शामक रोग– आनन्द भैरव रस २ गोली दौरे के समय अहिफेन के जल में निगल लेवे। करीब आधे घण्टे में श्वास का वेग कम पड़ जावेगा। अहिफेन जल अहिफेन १ रत्ती के करीब लेकर (या रोगी की सहनशक्ति के अनुसार) पानी में भिगों दें। पूरा घुल जाने पर वस्त्र में छानकर प्रयोग में लेवें। यही आहिफेन जल है।

३. वृक्कशूल में–मुसब्बर का चूर्ण बनाकर के कैपसूल (जिलेटिव वाले) में भरकर गर्म पानी में निगलवा दें। १ घण्टे में वृक्कशूल कम हो जावेगा।

४. दन्तशूल–शरपुंखा की जड़ लाकर उसे पानी में उबालें। अष्टमांश पानी शेष रहने पर उसे छानकर मुंह में रखें। २ मिनट रखकर थूक दें। इस प्रकार ३-४ बार करें। दन्त पीड़ा समाप्त हो जावेंगी रैकटीफाइड स्प्रिट में घोल तैयार कर इसका फूहा (रुई का) लगाया जा सकता है। इसके इंजेक्शन तैयार किये जा सकते है।

५. छूमन्तर–चूना नौसादर तथा लहसुन का रस। तीनों का मिश्रण कर हवा मुक्त शीशी में रख लें। जुकाम, सिर पीड़ा आदि में सुंघाते ही तत्काल लाभ होता है। यह जादू की तरह काम करता है। परन्तु कमजोर प्रकृति वालों को कभी न सुंघावें। ह्रदय रोग वालों को भी इससे दूर रखें।

६. हिंगु कर्पूर कस्तूर्यादि वटी–कच्ची हींग, देशी कर्पूर १-१ तोला कस्तूरी १ माशे मिलाकर गोली बना ले। इसके खरल में मर्दन करने से गोली बन जाती है परन्तु कदाचित यदि गोली न बने तो इसे कैपसूल में डालकर (१-१ रत्ती की मात्रा में) गर्म पानी या चाय से सेवन करने से कफ के विकारों, ह्रदयशूल तथा उदावर्त शूल में लाभ करता हैं सुप्रसिद्ध योग है। आचार्य यादव जी का बनाया हुआ है।

७. शूलहरयोग–आजवायन १ तोला, अफीम २ रत्ती से की हुई हींग (घृतभूनी हिंगु) १/२ तोला, ताम्र भस्म १/४ तोला। इन्हे बारीक कर खरल में पीसते रहें। फिर अर्क दुग्ध डालकर मर्दन कर १-१ रत्ती की गोली बनावें।

मात्रा – १ से २ गोली अनुपान गर्म पानी। पेट तथा वृक्कशूल में लाभ करती है।

८. **शूलहरी वटी**–घृत भूनी शु० हींग १ तोले करञ्ज बीज सेके हुए (आग पर) १ तोले, धुली हुई लहसुन की कली १ तोला, सोंठ १ तोला, यवक्षार २ तोले, जीरा सफेद १ तोला। सभी औषधियों का चूर्ण मिश्रित कर २ रत्ती की गोली बना लें। आवश्यकता हो तो पानी मिलाकर वटी बना लें। २-४ वटी गर्म पानी के साथ सेवन करें।

यह प्रयोग उदर शूल में बारम्बार लिया जा सकता है। जब तक पीड़ा न मिटे। गुल्म आदि उदर रोगो में इसे लम्बे वक्त तक लेना उचित है, पीडानाशक उत्तम योग है।

पीलिया – अधिक गर्म प्रकृति के, खट्टे, नमकीन एवं तेज मिर्च मसाले युक्त, तले हुए और मांसादि युक्त आहार लेनेवालों को पीलियां होने की संम्भावना अधिक होती है। पित्तवर्द्धक, भारी, गरिष्ठ और खटाई तथा तेल युक्त आहार लेने से शरीर में पित्त कुपित होता है और पेट की अग्नि एवं पित्त के बढ़ने से पीलिया हो जाता है। पित्त पित्ताशय में जाने की अपेक्षा रक्त में मिलने लगता है और पीलिया हो जाता है। बाहरी कारणों में दूषित जल और खाद्य पदार्थो का सेवन करना ही है। ऐसी स्थिति में कच्चा पानी पीना बंद करें अर्थात् जल को उबालकर ठंडा करके ही पियें। भोजन में हल्के सुपाच्य और जल्दी हजम होने वाले पदार्थों का ही सेवन करें। चिकनाई युक्त आहार न लें। नारियल का पानी, गन्ने का रस, नीबूं का शरबत, पतली छाछ का खूब सेवन करें।

चिकित्सा –१. खाने का सोड़ा दो रत्ती लेकर उसे दही में मिलाकर प्रतिदिन रोगी को पिलाने से रोग नष्ट हो जाता है। सप्ताह भर में पूर्ण लाभ हो जाता है। गन्ने का रस और चिकनाई रहित दूध पिलाते रहने से शीघ्र लाभ होता है।

२. चने के बराबर फिटकरी लेकर उसे आग पर सेककर फूला कर लें। एक पका हुआ केला बीच में से आधा काटकर दो चीरें कर लें। इन चीरों पर फूली हुई फिटकरी का महीन चूर्ण बुरककर दोनों

चीरें पुनः मिलाकर खाएं।

३. ठण्ड लगकर आनें वाले किसी प्रकार के ज्वर (चाहे वह रोज आता हो, एक दिन छोड़कर या दो दिन छोड़कर आता हो) के लिये–"नागर–बेल का पान अर्थात् खाने का पान रूचि अनुसार कत्था, चूना, सुपारी आदि युक्त लेकर उसमें आंकड़े (अकौआ, अर्क या मदार) के दूध की २ बूंदें टपका कर पान मुंह में रख लें पान को धीरे–धीरे चबाएं। इसकी पीक को बाहर न थूककर भीतर उतारते रहना चाहिए"। यह प्रयोग बुखार चढ़ने के पहले ही कर लें। एक बार के प्रयोग से यदि लाभ न हो तो दूसरी बार पुनः बुखार चढ़ने से पहले इसका प्रयोग करें। पूर्ण विश्वास है तीसरी बार प्रयोग नहीं करना पड़ेगा।

४. मलेरिया ज्वर में जामुन के वृक्ष की ऊपर वाली छाल का चवन्नी के आकार बराबर टुकड़ा लेकर बराबर मात्रा में गुड़ के साथ मिलाकर मलेरिया ग्रस्त रोगी को दें और खूब चबाकर ही निगलने को कहें। ऊपर से, उबालकर ठण्डा किया हुआ, २–४ घूंट पानी पिला दें। पहले शरीर का ताप थोड़ा बढ़ेगा फिर बिना किसी उपद्रव के बुखार उतर जायेगा। फिर लौटकर नहीं आयेगा।

अतुल शक्ति दाता रसायन

शुद्ध बुरादा लौह	=	२० तोला
श्वेत संखिया	=	१ तोला
कपूर	=	१ १/२ माशा

उपरोक्त दवा को लेकर घीग्वार (ग्वारपाढ़े) के रस में २४ घंटे खरल करो, फिर ५ किलो उपलों की आग दें। फिर उक्त दवा को पीसकर एक तोला वर्कीया हरताल और १.५ माशा कपूर मिलाकर ग्वारपाठे के रस में २४ घंटे खरल करके कपड़ मिट्टी करके ५ घंटे की आग दें। तीसरी बार तो गंधक आवलासार व १.५ माशा कपूर मिलाकर उपरोक्त तरीके से आग दें। चौथी बार तो शुद्ध पारा व १.५ माशा कपूर मिलाकर आग दें। इसी तरह उपरोक्त क्रम को

दुहराते हुए (सिलसिलेबार) कुल २० आंच दें व हर बार २४ घंटे ग्वारपाढ़े के रस में खरल करके कपड़छन करके आंच देनी है। जब २० आग दी जा चुके तो दवाई को एक नई हाण्डी में बन्द करके जहां पशु बंधते है गडढ़ा खोदकर दबा दें। ४० दिन के बाद दबा को निकालकर एक आग देकर खरल करके बारीक पीस लें वस महौषधी तैयार है

खुराक – चार चावल के बराबर दवा सुबह शाम खाना खाने के २ घंटे बाद मक्खन या मलाई से खावें।

परहेज –गुड, तेल, खटाई, लालमिर्च, व तली हुई वस्तुएं न खावें।

गुण –स्वप्न दोष, नामर्दी, शीघ्रपतन, मधुमेह, खांसी, दमा, गठिया, कमर दर्द पर अच्छा काम करती है।

अक्सीर - ए - सेहत

हरा कसीश १२ ग्राम को लोहे की कढ़ाई में ८ सेर पानी डालकर उसके अन्दर हल करें। फिर इसके अन्दर नीम के पत्ते, चिरायता, गिलोय, शाहतरा हर एक १२५ ग्राम लेकर कूटकर डाल देवें व ६ ग्राम गन्धक का तेजाब भी इसमें शामिलकरें व चूल्हे या आग पर रख कर गर्म करें जब ४–५ उबाल आ चुकें तो आग मंन्दी करके सोड़ा सल्फास व मेग्नेशियम सल्फेट २०० ग्राम डाल देवें व फिर दवा को गर्म करें। जब दवा का पानी जल कर आधा रह जावे तो दवा को नीचे उतार लेवें व मोटे कपड़े से छान लेवें। कढ़ाई को साफ करके छनी दवा को पुनः कढ़ाई में डालकर गर्म करें। जब सारा खुश्क हो जावे तो दवा को कढ़ाई से खुरच कर लोहे के दस्ते से २ घंटे रगड़कर दवा को सुरक्षित रखें।

खुराक – पहले दिन १ रत्ती दवा सुबह शाम खाना खाने के बाद दें फिर १ चावल हर खुराक के साथ बढ़ाकर १५–२० रोज तक दवा खायें।

गुण – यह दवा हर प्रकार के ज्वर, पुराने ज्वर के बाद की

कमजोरी , आंतों की सोजस जिगर व तिल्ली की खराबी, चेहरे का पीलापन दिल की धड़कन आदि बीमारियों को ठीक करती है। नया खून बनाती है। चेहरे पर चमक व औज़ पैदा करती है।

पाचक वटी

शुद्ध कुचला	२० ग्राम
चित्रक चूर्ण	२० "
अर्क मूलत्वक चूर्ण	२० "
नौसादर	४० "
काला नमक	४० "
सौंठ	४० "
काली मिर्च	४० "
हींग घी में भुनी हुई	१० "

सभी औषधियों को नींबू के रस में खरल करके चणक प्रमाण गोली बना लेवें।

मात्रा – २–२ गोली गर्म पानी या ताजाजल से सुबह शाम लें।

गुण – यह दवा हाजमें को ठीक करती है। दस्तों में भी लाभ करती है व पेट दर्द में अच्छा लाभ करती है।

हृदय रोग

अर्जुन वृक्ष की छाल का कपड़छन चूर्ण	७० ग्राम
प्रवाल पिष्टी	१० "
मुक्ता शुक्ति पिष्टी	१० "
जहरमोहरा पिष्टी	१० "
अकीक पिष्टी	१० "
शुद्ध सुखा शिलाजीत	१० "
सुवर्ण माक्षिक भष्म	१० "
शतपुटी लौह भस्म	१० "

सभी उपरोक्त दवाओं को अर्जुन की छाल के क्वाथ से एक सप्ताह खरल करके सुखाकर १–१ ग्राम के केप्सूल भर लेवें १–१

केप्सूल सुबह, दोपहर, शाम को दूध के साथ लेवें। भोजन के बाद दोनों समय अर्जुनारिष्ट ४ चम्मच ४ चम्मच पानी मिलाकर सेवन करें।

इस योग से हृदय रोग दूर होकर हृदय बलवान बन जाता है दिल की धड़कन व घबराहट दूर हो जाती है व पित्तज विकार, मन्दाग्नि, चक्कर आना आदि विकार दूर हो जाते हैं।

वातांकुंश वटी

शुद्ध आंवलासार गन्धक प्रत्येक
शुद्ध कुचला दवा
सुहागा चौकिया भुना समभाग लें
भुनी हींग
हरड़ का वक्कल
वहेड़े का वक्कल
आंवला गुठली रहित
पीपला मूल
चित्रक छाल
सौंठ
काला नमक
सेन्धा नमक
पुराना गुड़

सभी दवाओं को कूटपीसकर कपड़छन कर लेवें। दो दिन निम्बू के रस से खरल करके जंगली बेर सदृश वटी बना लें छाया में सुखाकर सुरक्षित रखें २ गोली प्रातः २ गोली रात को सोते समय गर्म पानी से निगल जावें। वायु कारक वस्तुओं का परहेज रखें।

यह दवा प्रत्येक वात व्याधि व हर प्रकार के शरीर दर्द के लिए लाभदायक है।

धन्वन्तरी वटी

सौंठ सुहागा सोंचर गन्धी.

सहजने के रस गोली बंधी।
चौसठ वाय बहत्तर शूल,
कहे धान्वन्तरि रहे ना मूल।

उपरोक्त पद्य में दवा के घटक एवं गुण दोनों का सुन्दर समावेश है। सौंठ सुहागा काला नमक व हीगं भुनी हुई बराबर मात्रा में लेकर सहजने के रस अथवा स्वरस में घोटकर चणक प्रमाण गोली बनावें। २ से ४ गोली गर्म जल के साथ सुबह शाम सेवन से वायुरोग एवं हर प्रकार का शूल दूर हो जाता है। गैस बनना, अफरा आदि उदर विकारों में यह दवा अच्छा काम करती है।

आनन्द लोशन

गुलाब जल	२५० ग्राम
लाल फिटकरी	१२ "
बोरिक एसिड	१२ "
भीमसेनी कपूर	३ "
पीपर मेंट	१ "

सभी दवाओं को बारीक पीसकर गुलाब जल में हल करके शीशी में भर लेवें व मजबूत कार्क लगाकर शीशी को अच्छी तरह हिलाकर तीन दिन तक किसी ठण्डी जगह या ठण्डे पानी के अन्दर रख देवें दवा तैयार हो जावेगी।

सुबह दोपहर शाम को २–२ बूंद दवा आंखों में डालें। यह दवा दुखती आंखों को शीघ्र ठीक करती है। आंख की लाली, गर्मी, पानी गिरना आदि रोगों को दूर करके आंखों में शीतलता प्रदान करती है।

गठिया वात रोग की दवा

मीठी सुरंजान, असगंध, विधारा, बराबर उसकी आधाशौंठ चूर्ण महीन बनाकर प्रातः सांय कुनकुने पानी या दूध से सेवन करें, शीघ्र आराम। मात्रा– एक चम्मंच चाय वाला।

मंत्रौषधियां

नीचे लिखी औषधियों को ११ बार निम्न मंत्र जपकर सेवन करें तो दवा में रामबाण संजीवनी शक्ति आकर लाभ होता है।

मंत्र - ''ॐ ह्रूं जूं सः''

दमा रोग –गुल बनफशा ३ ग्राम, मुलहठी ३ ग्राम, सौंफ ३ ग्राम लेसुडे ११ नग, उन्नाव ५ नग, गाजवां ३ ग्राम, जफागुल३ ग्राम, अंजीर १ नग, खत्मीकाली ३ ग्राम, काली मुनक्का ७ नग, मकोय डोडी ३ ग्राम, अडूसा के पत्ते ३ ग्राम, पोस्ता का छिलका ३ ग्राम, और अच्छी साफ मिश्री आवश्यकतानुसार। यह सब एक नुस्खा है। सुविधा के लिए २० दिन के लिए इक्कटठा नुस्खा तैयार कर लें। औषधियां २० गुनी मात्रा में ले लें। सबके बराबर २०–२० हिस्से कर लें। फिर एक–एक हिस्से को मिलाकर २० पुड़े बांधकर रखलें।

अब एक पुड़ा खोलकर सब औषधियों को एक किलो पानी में सुबह डालकर गलने के लिए रख दें। रात को खूब अच्छी तरह मसलें और उबलने के लिए आग पर चढ़ा दें। जब उबलते उबलते यह पानी एक कप बचे तब उतारकर आवश्यकता के अनुसार पिसी हुई मिश्री डालकर घोलें। मिश्री घुल जाए तब इसे छानकर पी लें।

हृदय रोग (ब्लड प्रेशर) –दोनों समय भोजन के बाद २ लोंग खूब महीन पिसी हुई खाकर ऊपर से २ घूंट जल पियें। भोजन में नमक तथा चिकनाई कम खाएं। गले में असली रुद्राक्ष की माला धारण करें। रात को रुद्राक्ष के ३ बड़े दानों को तांबे के लोटे में जल भर कर उसमें डाल दें। प्रातःकाल बिना कुछ खाए पिऐ शौच जाने के पूर्व इस लोटे के जल को पियें। दिन में रुद्राक्ष के दानों तांबे के तार में पिरोकर उस स्थान पर लटका दें या रख दें जहां सूर्य की धूप लगभग पूरे दिन रहती हो। सन्ध्या को पुनः इन्हें ताबे के लोटे में पानी भरकर डाल दें।

उच्च रक्त चाप (हाई ब्लड प्रैशर)– श्वेत पर्पटी १० ग्राम और सर्पगंधा चूर्ण १० ग्राम– इन दोनों को अच्छी तरह मिलाकर बराबर बराबर मात्रा की २० पुड़ियां बना लें। सुबह, दोपहर और शाम को १–१ पुड़िया रोगी को पानी के साथ खिलाए। रक्त चाप तत्काल सामान्य हो जाता है। यह

एक हानिरहित योग है। अतः आवश्यकतानुसार लिए जाते रह सकते हैं।

निम्न रक्त चाप (लॉ ब्लड प्रैशर) –निम्न रक्त चाप (लॉ ब्लड प्रैशर) के कारण जिन व्यक्तियों को कमजोरी थकान आदि महसूस होती हो उन्हें चिकित्सा के रूप में स्वच्छ पीने के पानी में थोड़ा सा नमक डालकर पी लेना चाहिए। इस रोग का यही सबसे सरल एवं सफल उपचार है।

सायटिका (गृध्रसी) – सायटिका रोग के लिए निम्नाकिंत प्रयोग पूर्ण सिद्ध हैं–

१. ''हारसिंगा'' अर्थात शेफालिका, पारिजात, हरश्रृंगार (इसे अंग्रेजी में ''नाइट जेस्मिन'' कहते हैं) हार सिंगार के २५० ग्राम पत्तों को अलग से साफ धोकर एक लीटर पानी में उबालें। जब ७५० ग्राम लगभग पानी रह जाए तब उतारकर छान लें। अब इसमें एक रत्ती केशर पीसकर डाल दें और अच्छी तरह घोल दें। इस को बोतलों में भरकर रख लें।

५० ग्राम जल प्रातः और ५० ग्राम जल शाम को पियें। ऐसी ४ बोतल जल पीने पर सायटिका से छुटकारा मिल जाता है। यह एक अनोखा प्रयोग है।

२. नेगड़ के सौ ग्राम बीजों को साफ करके कूट–पीस लें तथा इसकी बराबर मात्रा की १० पुड़ियां बना लें। प्रातः सूर्योदय से पहले उठकर शुद्ध घी एवं गुड़ मिश्रित आटे या रवे का हलुआ जितना आप खा सकते हैं उतना तैयार कर उसमे चूर्ण की एक पूड़िया मिलाकर खा लें और पुनः सो जाएं। हलुआ खाने के बाद पानी बिल्कुल न पीएं। १०–१२ दिन के प्रयोग से ही साइटिका, जोड़ों का दर्द, कमर दर्द एवं घुटनों का दर्द बन्द हो जाता है। पेट को साफ रखें अर्थात् कब्ज कभी न होने दें। सायटिका दर्द वालों को अपने नित्य के भोजन में लहसुन का प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

गठिया (सन्धिबात)– ७ दाने अरण्ड के बीज लेकर छिलका उतार दें। इसके बाद इन छिले हुए बीजों को चकले–बेलन से दबाकर पीस लें। इस पिसे गुदे को एक कप गरम मीठे दूध में डालकर अच्छा घोल–मसलकर प्रातः खाली पेट पी लें। दूसरे दिन ८ दाने, तीसरे दिन ६ दाने, चौथे दिन १० दाने अर्थात् प्रतिदिन एक –एक दाना घटते क्रम

में घटाना शुरू कर दें। इस प्रकार एक–एक दाना कम करते हुए पुनः ७ दानों पर पहुंचकर प्रयोग बन्द कर दें।

यह विशेष ध्यान रखें कि प्रयोग में एक भी दिन की नागा न होने पाये। जब दानो की संख्या अधिक होती है तब दोपहर को भोजन की इच्छा नहीं होती।

(लकवा पक्षाघात)– बीरबहूटी तेल और माल कंगनी का तेल – समान मात्रा में मिलाकर लकवा ग्रस्त अंग पर रक्त प्रवाह से उल्टी दिशा में मालिश करनी चाहिए। मठठे•में ५–६ लहसुन शांम को गलने रख दें। प्रातः इनकी कलियों को छीलकर छाया में सुखा लें। सूख जाने के बाद इन्हें घी में भून लें और शीशी में भरकर रख लें। सुबह शाम ५–५ कलियां खाने से बहुत लाभ होता है। (यह बात रोग एवं स्नायु दौर्बल्य के लिए भी बहुत हितकारी है।)

२. आक के पत्ते सरसों के तेल में पकाएं। लकवा ग्रस्त अंग पर इस तेल की मालिश करके एक पत्ते पर थोड़ा तेल चुपड़कर बांध दें। थोड़े ही दिनों में लकवाग्रस्त अंग स्वस्थ हो जायेगा।

हाथ कम्पन्न – हाथ की कपकपी अर्थात् कम्पन की शिकायत हो जाने पर हाथ कंपने लगता है और हाथ से लिखने या कुछ काम करने में कठिनाई होती है। इसके लिए प्रतिदिन १० बार निम्नलिखित अभ्यास करना और औषधि सेवन करना चाहिए।

जो हाथ कांपता हो उसकी मुठ्ठी इस प्रकार बांधे कि अंगूठा अन्दर और चारों ओर अंगुलियां अंगूठे को ढके हों। मुट्ठी खूब कसकर बांधें और एक मिनट तक बांधें रहें। घड़ी पास न हो तो एक से सौ तक गिनती गिनें और मुट्ठी खोलें दें। ऐसा १० बार करें। यह १० मिनट का अभ्यास दिन में एक बार कभी भी कर सकते हैं।

औषधि के रूप में असगंध नागौरी को कूट–पीसकर महीन चूर्ण तैयार कर लें। ५ ग्राम चूर्ण रात को थोड़े घी के साथ मिलाकर सोते वक्त चाट लें तथा ऊपर से एक गिलास दूध पी लें। यह प्रयोग ४० दिन तक निरन्तर करने से कपकपी जड़ से मिट जाती है। यदि बन सके तो एक गले हुए बादाम का छिलका निकालकर उसे चन्दन की तरह पत्थर पर दूध टपका कर घिस लें और इसे दूध मिलाकर पी जाएं। बादाम के प्रयोग से सारे शरीर की कमजोरी, स्नायविक–दौर्बल्य, दिमागी कमजोरी

और धातुक्षीणता आदि भी दूर हो जायगी।

नोट– इन औषधियों का लाभ तभी जबकि मंत्र पढ़कर सेवन किया जाए।

श्वेत प्रदर – मैनफल, मुलहठी और माजूफल को ५०–५० ग्राम की मात्रा में लेकर अलग–अलग कूट–पीसकर कपड़छन कर लें। तदनन्तर इन तीनों को आपस में मिलाकर लें। पुनः इसमें २५ ग्राम कपूर भी पीसकर मिला दें। फिर किसी शीशी में भरकर रख लें। अमलतास वृक्ष की छाल पर्याप्त मात्रा में लाकर घर में रख लें। लगभग ५० ग्राम का एक छाल का टुकड़ा मोटा–मोटा जौकुट कर एक गिलास पानी में रात को डालकर रख दें। सुबह स्नान के वक्त इसे अच्छी तरह मसलकर छान लें। फिर इस जल से योनि को अन्दर तक अच्छी तरह धोयें या डूश करें। इसके बाद शीशी में से एक चम्मच मैनफल, मुलहठी और मूलफल का चूर्ण लेकर उसमें थोड़ा सा शुद्ध शहद मिलाकर मोटा गाढ़ा लेप बनाकर अंगुली से इसे योनि के अन्दर अच्छी तरह से लगा लें। रात को सोते समय भी योनि साफ कर यही प्रयोग करें और सो जाए। संयम से रहें। लगातार ४०–६० दिन तक यह प्रयोग करने से योनि संबंधी व्याधियां दूर हो जाती हैं। साथ ही फैली हुई शिथिल और कमजोर योनि संकुचित होकर मजबूत और निरोग हो जाती हैं।



समुन्द्रमन्थन के समय आयुर्वेद के आदिदेव श्री धन्वन्तरि भगवान् एक हाथ में अमृतकलश, दूसरे में आयुर्वेदामृत लिए हुए प्रकट हुए

उपयोगी चिकित्सा (अन्य योग)

हयात-ए-नव-पिल्ज

(जोड़ों के दर्द व गठिया में पूर्ण प्रभावी)

यह जालिम रोग वर्षों तक पीछा नहीं छोड़ते परन्तु जहां-तहां इस योग का प्रयोग हुआ वहां गठिया, रेंगन वायु, रूमेटिज्म, जोड़ों का दर्द, कमर के दर्द के रोगों पूर्ण स्वस्थ हुए हैं। लंगड़ी का दर्द (सायटिका), बाजू के जोड़ों में दर्द, टांग का दर्द इससे दूर होते हैं। गठिया के ऐसेऐसे रोगी ठीक हो जाते हैं जो चलने फिरने से मजबूर हैं। रात-दिन कराहते रहते हैं। विधिवत् उपचार तथा परहेज से सदैव के लिये रोग समाप्त हो जाता है। ऐसे रोगियों को कब्ज कदापि नहीं हो सकती, बिजली के तेल की बाह्य मालिश करें। यह योग वायु गोला, पेट दर्द, बदहजमी, अफारा तिल्ली, जिगर, पाण्डु, रक्ताल्पता, सिरदर्द, अन्दरूनी सूजन वातरोग, कण्ठमाला, उदरकृमि, कुष्ठ, जुकाम, खट्टी डकार के रोगों में लाभप्रदायक है।

योग व निर्माण विधि : शुद्ध गुग्गुल, तोला, तरबद का चूर्ण, पोस्त, चित्रक का चूर्ण प्रत्येक साढ़े तीन तोला, शुद्ध पारा, शुद्ध गंधक आंवलासार, उत्तम कुश्ता फौलाद, कुश्ता तांबा, शुद्ध तूतिया, सुहागा बिरयां, सैन्धा नमक प्रत्येक एक तोला। गुग्गुल को कूट कर लोहे की खरल में पानी से इतना खरल करें कि वह बिल्कुल घुल जाये। फिर शेष औषधियों का चूर्ण मिलाकर पानी डालकर एक दो दिन खरल करें तथा चार-चार रत्ती की गोलियां बना लें। हाँ, प्रथम पारा गन्धक की कज्जली बनाकर उसमें अन्य औषधियों का कपड़छान चूर्ण मिला, एकत्र कर घी के साथ घोंट कर गोलियां बना कर छाया में सुखा कर सुरक्षित कर लें।

प्रयोग विधि : दो-दो गोली कुनकुना पानी या अर्क सौंफ से दें। इसमें एक तोला मधु मिला ली जायें तो तीव्र प्रभावी हो जाता है। एक दो सप्ताह दें। यदि रोग पुराना हो तो त्रिफला के जोशान्दे साथ दें। त्रिफला के जोशान्दे में एक तोला केस्टर आयल मिला लिया करें। दिनभर में दो बार दें।

जोशान्दा त्रिफला : पोस्त, हरड़, बहेड़ा, आंवला ताजा उत्तम प्रकार का लेकर समान वजन मिलाकर अब इस तैयार मिश्रण की एक तोला की मात्रा में लेकर रात को एक पाव पानी में भिगो दें। सुबह गर्म करें चौथाई रहने पर उतार कर छानकर मधु मिलाकर 'हयात ए नव पिल्ज' दो अदद साथ

दें। रात को फिर ताजा जोशान्दा बना कर दो पिल्ज खिलाएं आराम होगा।

सरल उपाय कमर दर्द व जोड़ों आदि के दर्द की : ढाई सौ ग्राम अलसी के तेल में पन्द्रह ग्राम पिसी सोंठ तथा चार चाय के चम्मच भर नमक मिलाकर गर्म करें। जब तेल में धुआं उठने लगे तो उतार कर छान कर रख लें। इस तेल की मालिश से पीठ का दर्द, कोई भी मांसल पीड़ा, कमर का दर्द, जोड़ों का दर्द आदि ठीक हो जाते हैं।

स्वास्थ्यप्रद : सौ ग्राम अश्वगन्धा चूर्ण, पचास ग्राम सोंठ चूर्ण, डेढ़ सौ ग्राम पिसी मिश्री, बुरा या चीनी पिसी मिलाकर रख लें। दो दो चम्मच भर दिन में दो तीन बार दूध या चाय से सेचन करते रहें। इस के प्रयोग से मांसपेशियों का दर्द, सामान्य गृद्धसी, शारीरिक दर्द, स्नायुविक दौर्बल्य, उदर, वायु व कफ के विकार, निद्रानाश एवं बुढ़ापे के दर्द व कमजोरी आदि विकारों का निवारण होता है। पाचन क्रिया में सुधार हो जाता हे। आदमी खुद को चुस्त-दुरूस्त व स्वस्थ महसूस करने लगता है।

रक्त वृद्धि : रात्रि में नित्य दस बारह मुनक्का धोकर भिगो दिया करें। बारह घण्टे भीगने के पश्चात् मुनक्का के बीज निकाल कर फेंक दें और मुनक्कों को चबा-चबाकर खाया करें। ऐसा चार-पांच सप्ताह तक सेवन करने से ही रक्त की वृद्धि होती है।

बिस्तर पर पेशाब करना : पचास-पचास ग्राम जटामासी एवं अश्वगन्धा का चूर्ण लेकर सम्मिश्रित कर लें। बीस ग्राम यह चूर्ण एक गिलास जल में डालकर तेज उबाल कर नित्य पांच दिन तक रात्रि को पीकर सोया करने से बिस्तर में पेशाब करने का रोग दूर हो जाता है।

उदर विकार : जीरा हलका सा भून लें औरे बराबर मात्रा की शक्कर लेकर दोनों को साथ लेकर पीस लें। इसे एक चम्मच मात्रा में, दिन में २-३ मूंह में ड़ालकर चूसने से पेट फूलना, उलटी दस्त और अपच में लाभ होता है।

बुखार : बुखार के रोगी को, पानी में जीरा ड़ालकर उबाला हुआ पानी ठण्डा करके पीना चाहिए। इससे बुखार की गर्मी और पेशाब की जलन शान्त होती है।

जहरीला दंश

१.–आक (अकौआ या आकड़ा, जिसके फूल शिवजी पर चढ़ाये जाते है) के बड़े आकार वाले ८ पत्तों को सिल पर पीस कर १०० मि.लि. खाने

के तेल में डाल लें और गर्म होने के लिए रख दें।

जब अच्छी तरह उबल जाएं तब उतार कर, ठण्डा होने पर, छान कर बोतल में भर लें। इसे जहरीले कीडे द्वारा काटे गये स्थान पर, रुई के फाहे में यह तेल लगाने से आराम होता है। इस तेल को लगाने से शारीरिक दर्द भी दूर होता है। इस तेल तथा तेल के हाथों से आंखें बचानी चाहियें।

२.- ˗ गस्त्य का फूल, अडूसा का फूल और कच्ची हल्दी को बराबर वजन में लेकर छाया में अच्छी तरह सुखाकर कूट पीसकर महीन चूर्ण करके थोडी सी काली मिर्च पीसकर मिला लें। इस चूर्ण को एक चम्मच मात्रा में, शहद में मिलाकर, सुबह दोपहर व शाम लेने से २-३ दिन में ही आराम हो जाता है। यदि अगस्त्य का फूल न मिले तो इसकी जड़ ले लें और अडूसा के फूल की जगह इसके पत्ते, डण्ठल अलग करके प्रयोग कर लें।

दाद की अचूक दवा

नुस्खा बहुत सरल है। बेशरम (बेहया) का लम्बा बड़ा पौधा हर जगह गांव-गांव पैदा होता है जो खेतों की बागड़ या नालों के किनारें पर, झाड़ी की शक्ल में होता है। बस, इस पौधे से दूध निकाल कर दाद पर लगाइए, २-३ दिन में दाद ठीक हो जाएगी।

श्वांस रोग

श्वास रोग को दमा यानि अस्थमा भी कहते हैं। यह कष्ट ज्यादा करके, वात और कफ के प्रकोप से होता है।

वातजन्य श्वास रोग का रोगी यदि युवा है तो उसे मालकांगनी का एक बीज पहले दिन, दूसरे दिन दो बीज, तीसरे दिन तीन, इसी तरह दसवें दिन दस बीज पानी के साथ निगलना चाहिए। फिर १-१ बीज कम करके सेवन करना चाहिए। इसके साथ समीर पन्नग रस आधा ग्राम, थोड़े से शहद में मिलाकर सुबह शाम २१ दिन तक सेवन करें। श्वास रोग नष्ट हो जाएगा।

कफजन्य श्वासें के रोगी को शाम को रोजाना, पान में जावित्री और पीपल का महीन चूर्ण २-२ ग्राम रख कर खाना चाहिए। ८-१० दिन में ही इस प्रयोग सेलाभ होने लगता है।

प्राकृतिक जड़ी बूटियों से उपचार

अनार (Pomegranate)

अनार हृदयपौष्टिक, तृषाशामक (प्यास को शान्त करने वाला), वमनहर,

अग्निप्रदीपक, पाचक, रक्तरोधक, ज्वरनाशक है। इसके प्रयोग से बच्चों एवं बड़ों के अतिसार, रक्तातिसार, पेचिश, गर्मी के कारण, दाह, व्याकुलता, सगर्भा स्त्रियों की वमन, निर्बलता, नेत्र दाह, रक्तपित, छाती की जलन, मस्तिष्क की उष्णता, नकसीर, अम्लपित आदि में बड़ा लाभ पहुँचाता है। गर्मी में उत्पन्न दाह एवं तृषा का शमन करने के लिए इसका विशेष प्रयोग होता है। इसके प्रयोग से बच्चों के दस्त, उल्टी आदि में बड़ा लाभ होता है, अग्नि प्रदीप्त होती है, भूख लगने लगती है। अपने विशिष्ट गुणों के कारण इससे हृदय, यकृत, आमाशय को बल मिलता है और मन प्रसन्न हो जाता है।

करेला (Momordica Charantia)

करेला मधुमेह (डायबिटीज) के लिए अमृतोपम है। इसके प्रातः साय ३ ग्राम मात्रा में जल से लेने पर मधुमेह रोगी के रक्त (blood) एवं मूत्र (urine) में शर्करा का प्रतिशत कम होने में मदद मिलती है। इससे यकृत ठीक होता है, भूख बढ़ती और पाचन किया ठीक होती है। शरीर में स्फूर्ति का संचार होता है। पूर्णतया निरापद है।

मात्रा– बड़ों को ३-३ ग्राम प्रातः-सायं, बच्चों को १ से २ ग्राम।

गुलाब (Rosa Centifolia)

गुलाब शीतवीर्य, हृद्य, रक्तपित, दाह एवं मलावरोध (Constipation) में उपयोगी है। इससे शारीरिक उष्णता (गर्मी) का शमन हो, सिर दर्द, दिल की धड़कन, घबराहट आदि दूर हो जाते है। इसके गुलकंद सेवन से सुकुमार बच्चों एवं महिलाओं की कब्ज दूर होती है। और हृदय, फुफ्फस, आमाशय, आँत वृक्क, मूत्राशय को बल मिलता है। यह हृदय में होने वाली घबराहट, तृषा, प्यास, दाह को शांत करता है। ज़िससे मन को बड़ी शान्ति मिलती है।

इसकी पंखुड़ियों के २० ग्राम को रात्रि के समय जल में भिगों दें। सुबह के समय उसे छान मिश्री मिला पीयें। इससे दिलो दिमाग की गर्मी शान्त हो बड़ी राहत मिलती है। इससे शीतला, रोमंतिका, विषम ज्वरजन्य उष्मा में भी पर्याप्त लाभ होता है।

पोदीना (Mentha Spicata)

पोदीना गर्मी के विकारों यथा वमन, तृषा, पेट में अपचन, गुड़गुड़, दस्त लगना, घबराहट, हैजा आदि रोगों की शताब्दियों से परीक्षित घरेलू

औषधि है। इसके १० ग्राम पाउडर को समभाग मिश्री मिला पानी में घोटकर पीने से पेटदर्द, अपचन, उल्टी, दस्त, आदि में तुरन्त राहत मिलती है, गर्मी एवं दाह दूर होती है, मन प्रसन्न होता है। इसके पाउडर में जीरा, हींग, कालीमिर्च तथा थोड़ा नमक मिला पानी में पीसकर लेने से अफारा दूर होता है। हैजे में प्याज एवं नींबू के रस के साथ एसे घोटकर पिलाने से विशेष लाभ होता है। दस ग्राम पुदीना, बीस ग्राम गुड़, दो सौ ग्राम पानी में उबाल पीने से बार-बार उछलने वाली पित्ती ठीक होती है। हिचकी में भी इसका प्रयोग लाभदायक है।

बिल्व पत्र (Aegle Marmelos)

बिल्व पत्र को भारतीय साहित्य में अत्यन्त ही पवित्र माना गया है और भगवान शंकर को प्रसन्न करने के लिये इसका प्रयोग किया जाता है। औषधि रूप में लेने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। औषधि रूप में यह अत्यन्त हितकारी है। इसके पत्तों का पाउडर 3-5 ग्राम लेने पर मधुमेह रोग के नियन्त्रण में बड़ी सहायता मिलती है, अतः इसका व्यापकता से प्रयोग किया जाता है। इससे यह उत्तम ग्राही, रक्तस्तंभक, दीपक-पाचक है। इसके लेने से अतिसार, प्रवाहिक, संग्रहणी, खूनी बवासीर, आंव का बनना आदि में बड़ा लाभ होता है। यह मधुमेह एवं शुक्रमेह में भी उपयोग है, इसकी मात्रा 3 से 5 ग्राम है।

ब्राह्मी बूटी (Bocopa Monnieri)

बुद्धि एवं स्मरणशक्ति बढ़ाने वाली आयुर्वेद की यह सर्वश्रेष्ठ जड़ी-बूटी है। यह अत्यन्त हृद्य, शीतवीर्य, बुद्धिवर्द्धक, स्मृतिप्रदा, स्वरप्रद, आयुवर्द्धक रसायन है। इसे मस्तिष्क की निर्बलता, याददाश्त की कमी, दिमाग की थकावट तथा कमजोरी, हृदय क्रिया की शिथिलता, वाननाड़ी, सिरदर्द, गर्मी से चक्कर आना, दौर्बल्य आदि में अत्यन्त लाभकारी बताया है। इससे स्मृतिनाश, अपस्मार (मिरगी), उन्माद, हिस्टीरिया, अनिद्रा, उच्च रक्तचाप आदि नष्ट होते हैं। मस्तिष्क को नई चुस्ती, स्फूर्ति, ताजगी मिलती है। आवाज साफ होती है, स्वर में मधुरता का समावेश होता है। मस्तिष्क सबल बनता है। आयु एवं बुद्धि बढ़ती है। पढ़ने तथा दिमागी काम करने वाले विद्यार्थियों, अधिकारियों व वकीलों आदि के लिए इसका प्रयोग अत्यन्त हितावह है।

इसके तीन ग्राम पाउडर को प्रातः-सायं दूध से लेने अथवा गर्मियों में इसे घोट कर मिश्री मिला कर पीने से लाभ होता है।

मुलहठी (Glycyrhiza Glabra)

मुलहठी कफ, खाँसी, गले के रोग, सूजन आदि की प्रमुख वनौषधि है। इसे पान में डालकर अथवा अकेले ही मुँह में डाल कर धीरे-धीरे चूसने से गला साफ होता है, कंठ की सूजन दूर होती है, गले का दर्द, सूखी खाँसी, खरखराहट में त्वरित लाभ होता है। ब्रोंकाइटस में भी प्रभावी है। गले के रोगों एवं श्वसन प्रणाली की झिल्ली पर इसका शीघ्र प्रभाव होने से खाँसी, श्वास की तकलीफों में इसे अकेले या सितोपलादि चूर्ण के साथ शहद में मिला कर लेने से बड़ी राहत मिलती है। आंवला तथा मुलहठी पाउडर समभाग मिला पाँच ग्राम पाउडर रात्रि को सोते समय लेने पर बलगम एकदम साफ हो जाता है। मिश्री मिलाकर लेने से छाले भी ठीक होते है।

संतरा छिलका (Orange Peel)

संतरा प्रकृति का अनुपम उपहार है। इसमें विटामिन 'सी' पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है और यदि केवल एक संतरा प्रतिदिन खाया जाय तो शरीर के लिए आवश्यक विटामिन सी की पूर्ति हो जाती है। इसके छिलकों का पाउडर भी अत्यन्त उपयोगी है। इसके छिलकों का पाउडर भी यदि उबटन के रूप में प्रतिदिन उपयोग किया जाये तो चेहरे में निखार आता है, रंग साफ होता है, चेहरे पर दाग, धब्बे, आँखों के नीचे कालिमा भी मिट जाती है। इसके 20 ग्राम पाउडर को गुलाबजल में पीस पेस्ट की तरह बना नित्य चेहरे पर मलने से चेचक के गहरे दाग भी मंद पड़ जाते हैं, मुँहासे, कील झांई ठीक हो जाते हैं। मुँह की दुर्गन्ध दूर होती है, दाँतों के साथ खून आना (पायरिया) में लाभ होता है।

सर्पगंधा (Rauwolfia Serpentina)

सर्पगंधा आयुर्वेद की श्रेष्ठ वनौषधि है, जिसका प्रयोग भारत में ही नहीं, विदेशों में भी मानसिक रोगों के उपचार हेतु व्यापकता से होता है। दिमाग को ठीक करने का गुण होने के कारण इसे पागलपन की बूटी भी कहते हैं।

इसका सूक्ष्म मात्रा में उपयोग करने से उन्माद, हिस्टेरिया, अपस्मार,

अनिंद्रा, उच्च रक्तचाप, चित्त विभ्रम आदि रोगों में लाभ होता है। मदात्यय या किसी भी कारण से जब नींद न आ रही हो, इसके प्रयोग से शान्त निद्रा आती है। इससे उच्च रक्तचाप नियन्त्रित होता है। पागलपन के लिए इस की उपयोगिता निर्विवाद है। इसके क्वाथ के उपयोग से उदरशूल का शमन होता है। सर्पविष के उपचार में यह लाभकारी है।

इसके अधिक मात्रा प्रयोग से घबराहट, हृदय में भारीपन, रक्तदबाव कम होने की संभावना रहती है,

अतः इसका प्रयोग सगर्भा तथा न्यून रक्तदबाव वाले रोगियों को नहीं करना चाहिये।

सिंघाड़ा (Trapa Bispinosa)

यह शीतल, स्वादिष्ट, वीर्यवर्द्धक एवं शुक्र प्रमेह में अत्यन्त उपयोगी है। जिन युवकों का वीर्य गलत आदतों के कारण पतला पड़ गया हो, उन्हें इसका सेवन अवश्य करना चाहिये। इससे वीर्य की वृद्धि होती है, काम चेतना बढ़ती है।

इसका प्रयोग विशेष रूप से स्त्रियों के प्रदर (ल्यूकोरिया) में किया जाता है। जिन स्त्रियों को सफेद पानी या खून पड़ता हो, निर्बल हो, गर्भ नहीं ठहरता हो अथवा गर्भस्राव, गर्भपात हो जाता हो, उन्हें इसके सेवन से पर्याप्त लाभ होता है। इसके सेवन से बच्चा उत्पन्न होने के बाद की कमजोरी दूर होती है तथा शरीर एकदम पुष्ट हो जाता है।

शंखपुष्पी (Convolvlus Pluricaulis)

मस्तिष्क की शक्ति बढ़ाने वाली प्राकृतिक जड़ी बूटियों में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। महर्षि चरक ने इसे मेध्या की संज्ञा देते हुए स्मरणशक्ति बढ़ाने में इसकी खूब-प्रंशसा की है। सब प्रकार की मानसिक कमजोरी एवं उससे उत्पन्न अपस्मार, भूतबाधा, हिस्टेरिया, मानसिक तनाव, स्वभाव में चिड़चिड़ापन, सिर दर्द, चिन्ता आदि में यह परमोपयोगी है। रसनिघण्टु कार ने इसे अनिद्रा में अत्यन्त हितावह बताया है।

बुद्धि एवं मेधाशक्ति बढ़ाने का गुण होने का कारण यह जड़ी मानसिक श्रम एवं प्रतियोगी परीक्षा में बैठने तथा पढ़ाई करने वाले विद्यार्थियों, वकीलों, अधिकारियों के लिए विशेष उपयोगी है। पढ़ते समय आने वाले

आलस्य एवं थकावट को दूर करती है। इसके प्रयोग से दिमाग ताजा एवं स्वस्थ रहता है, ज्ञान तंतुओं का बल मिलता है। इसका पाउडर बच्चों को देते रहने से बच्चों का दिमाग तेज हो जाता है।

इसमें हृदय और मस्तिष्क के संतुलन को बनाए रखने की विशेष क्षमता है। अपने उत्तेजनाशामक गुण के कारण उच्च रक्तचाप (High Blood Pressure) में भी अति हितकर है। यह अन्य शामक (Sedative) औषधियों की अपेक्षा अधिक लाभकर है। इसके पाउडर को प्रातः, दोपहर, सांय लिया जाये तो उच्च रक्तचाप नियन्त्रित हो जाता है। दूध के साथ लेने से दिमाग तरो-ताजा रहता है। इसे लम्बे समय तक निर्भयता पूर्वक लिया जा सकता है, क्योंकि इसका कोई दुष्प्रभाव अथवा इसकी आदत नहीं पड़ती।

मस्तिष्क के अलावा यह सामान्य दौर्बल्य में भी उपयोगी है। इसका जनरल टॉनिक के रूप में प्रयोग किया जा सकता है। शोधों के अनुसार इसका थायोराइड-ग्रंथि की वृद्धि से उत्पन्न रोगों में भी आशुकारी प्रभाव है। जो प्रौढ़ व्यक्ति इसका विषम भाग घृत, मधु आदि के साथ प्रयोग करते है, उनके शरीर पर झूरियां नहीं पड़ती और स्मरण शक्ति बनी रहती है।

शैया मूत्र जिसमें बच्चे रात्रि में सोते-सोते बिस्तर पर पेशाब कर देते है, इसका पाउडर ३.३ ग्राम प्रातःसांय देने से बड़ा लाभ होता है। जितने भी मनोविकार है, उन्हें नियंत्रित करने में शंखपुष्पी का विशेष प्रभाव है। बालों को बढ़ाने, पाचन शक्ति को ठीक कर शरीर को चुस्त-स्फूर्त बनाने में भी इसका उपयोग किया जाता है। मात्रा ३ से ५ ग्राम, प्रातः-सायं दूध के साथ है।

शिकाकाई

शिकाकाई का उपयोग मुख्य रूप से बालों को धोने के लिए किया जाता है। इससे बाल धोने पर बाल लम्बे, घने, काले और चमकदार होते है। बालों का झड़ना, सफेद होना बंद होता है और यदि सिर में रूसी जमती हो तो उसके दूर होने में मदद मिलती है।

शिकाकाई का प्रयोग स्वतंत्र रूप से अथवा आंवला, रीठे के छिलका आदि के साथ भी होता है।

विद्युत तेल

घटक एवं निर्माण विधिः– सरसों का तेल १ किलो, पिसी हुई लाल

मिर्च १५० ग्राम (लाल मिर्च की मात्रा आवश्यकतानुसार घटाई बढ़ाई जा सकती है)। लाल मिर्च को पानी मिलाकर चटनी के समान सिला पर महीन पीसें। और उसकी छोटी -२ पकौड़ी बना लें जब तेल उबलने लगे तो उन्हें पकने को डालें। अच्छी तरह पक जाय तब धीरे से पकौड़ी अलग निकालें, और शीतल होने पर तेल को कपड़े से छान लें।

यह विद्युत तेल लगाने पर रोमकूपों द्वारा शीघ्र प्रविष्ट हो लाभ पहुँचाता है। मिर्च के कारण थोड़ी चुनचुनाहट होती है। आँख के आस पास व कटे जले स्थानों को छोड़कर इसका सभी वेदनाओं में प्रयोग किया जाता है।

अनुभवः— शरीर के किसी भाग की वेदना को इस तैल के केवल २ मिनट मर्दन से अतीच असह्य दर्द दूर होता है। सभी प्रकार के वात रोग यथा पक्षाघात, आमवात, कटिवात, गृधसी आदि में शीघ्र लाभकारी है। चोट लगने से उत्पन्न सूजन एवं दर्द में भी तत्काल लाभ पहुँचाता है।

आम वात

अश्वगंधा, हरमल के बीज - सुरञ्जान मीठा -

१- सोंठ

सब दवायें समान भाग लेकर कूट पीसकर रख लें। ३ ग्राम सुबह, ३ ग्राम रात्रि को, गरम जल या शहद से लेने पर आमवात में बहुत लाभ होता है।

व्रणकुठार तेल (एक अनुभव)

घटक — शुद्ध सरसों का तेल २५० ग्राम, स्वर्ण क्षीर(सत्यानासी स्वरस) १ किलोग्राम ।

निर्माण विधि :— पीले फूलवाली स्वर्णक्षीरी अच्छी ताजा लाकर उसको पानी से धोकर जड़ों को अलग काट कर फेंक देवें। तथा साफ सिला पर पीसकर कपड़े में निचोड़कर स्वरस निकाल लेवें। फिर उस रस से चतुर्थांश सरसों का तेल मिलाकर मंदाग्नि पर पकावें। तेल मात्रा अवशेष रहने पर छान, निथार कर बोतलों में भर लेवें। व्रण में लगावें।

उच्च रक्त चाप

१— वच, शंखपुष्पी, जटामासी, और सर्पगंधा का महीन चूर्ण ४ रत्ती २ बार मधु के साथ दें।

२– अर्क शंखपुष्पी २ तोला, २ बार भोजन के बाद जल में मिलाकर दें।

३– सर्पगंधा घनवटी १-२ गो० आवश्यकतानुसार, नींद नहीं आती हो, दें, अथवा १ गोली अच्छी नींद के लिए दी जा सकती है।

(१) काम दीपक कैपसूल

शुद्ध कुचला ५ ग्राम, पुनर्नवाजड़ चूर्ण १० ग्राम, सभी औषधियों को लेकर खरल में डालकर बंगला पान के रस खरल कर सुखा लें। कैपसूल में भरके शीशी में भर कर रख लें।

मात्रा एक-एक कैपसूल गरम दूध के साथ या ताजा जल के साथ सुबह शाम सेवन करायें।

गुण – इसके प्रयोग करने से नपुंसकता दूर होती है, एवं मर्दाना ताकत पैदा होती है; यह वाजीकरण की हानिरहित परीक्षित औषधि हैं।

(२) वाजीकरण कैपसूल

तालमखाना, बड़ा गोखरू, सतावर, खरेटी जड़, वरियारा, कन्धी की जड़, बीजबन्द, काली तुलसी की जड़, मदन मस्त, सब समान भाग लेकर जौ कूटकर आठ गुना जल में क्वाथ करें। जब चौथाई जल शेष रहे तब उतारकर छानकर एक स्टील के पात्र में घनसत्व तैयार कर सुखाकर घोंट पीसकर ५०० मि० ग्राम के कैपसूल में भर कर रख लें।

मात्रा – एक एक कैपसूल प्रातः साय गुन-गुने दूध के साथ सेवन करने से मनुष्य सौ स्त्रियों के साथ मैथुन करने में समर्थ हो जाता है। बल वीर्य की बृद्धि होती है।

मोटापा

कच्चे पपीते के टुकड़े काटकर कांच की बरनी में डाल दो, ऊपर से नौसादर, काला नमक, संचर नमक, सैधव नमक और बिड़ नमक २०-२० ग्राम डालकर ढक्कन पर कपड़ मिट्टी कर एक सप्ताह के लिए जमीन में गाड़ दो। बस औषधि तैयार है। उन टुकडों से नित्य दो टुकडें खाईये। आप हल्के हो जावेंगें और वजन भी कम हो जावेगा।

मरहम

खाने का चूना १०० ग्राम, फिटकरी ५० ग्राम, गेरू २५ ग्राम मिलाकर बेसलीन में घोंट लें, मरहम तैयार है। किसी भी अर्वुद, विद्रधि, घाव या फोड़े फुन्सी पर लगावें। त्वरित आराम मिलेगा।

गैस : अजवाइन २५० ग्राम १ कि० नींबू के रस में डाल दो। रस सूखने तक प्रतीक्षा करो। फिर छाया में सुखाकर चूर्ण तैयार कर लो, आधा चम्मच नित्य रात को सोते समय ठंडे जल से सेवन करने से गैस की सारी व्याधियां समाप्त हो जावेंगीं।

नकसीर

योग – १ तोला जीरा दो चार घंटे थोड़े पानी में गलाकर उसे पानी के साथ पीसकर माथे पर सुबह-शाम करते रहें। जीरा सुबह शाम के लिए गलाते है। धनियां ४ तोले ५ गुने पानी में गला दें। रात को सुबह मसलकर छानकर पिला दें। सुबह शाम बच्चों को आधी खुराक दें। प्रतिदिन नक्सीर चलने में लाभकारी हैं।

गुणः-इस प्रकार जीरे का लेप एवं धनिये का पानी पीने से भयंकर नाक स्त्राव में २४ घंटें में लाभ होता हैं अनुभूत योग हैं।

परहेज –चाय, लाल मिर्च, गुड़ व खटाई न दें। असली घी दूध में फेंट कर दे सकते हैं।

गृध्रसी (सायटिका)

कटि प्रदेश में नाड़ी विशेष पर दाब पड़ने से किसी एक पांव में तीव्र नाड़ी शूल होता है। इसे सायटिका, गृधसी नाम से पुकारा जाता है। इसकी अनुभूत चिकित्सा निम्न हैं :–

कूडज छाल – १०० ग्राम
हार सिंगार – ५० ग्राम
स्याह जीरा – ५० ग्राम
शतावरी – ५० ग्राम
सोंठ – २५ ग्राम
सहजना गोंद – २५ ग्राम
निर्गुण्डी बीज – ५० ग्राम
काली मिर्च – ५० ग्राम

विधि :– सभी औषधियों को कूट पीसकर चूर्ण बनावें। चार-चार ग्राम चूर्ण दिन में तीन बार गर्म पानी के साथ देने से २-३ सप्ताह में पूर्ण लाभ होता है।

विशेष :–

रोगी को दही, अचार, एवं खट्टी व ठंडी वस्तुएं वर्जित हैं। रोगी को

पूर्ण आराम करना आवश्यक है। कब्ज रहने पर ईसबगोल, त्रिफला, मुनक्का आदि का प्रयोग करना चाहिए । यदि रोगी खाँसी व मधुमेह से पीड़ित हो तो सम्बधित उपचार भी करना चाहिए । कमर व नितम्ब पर गर्म पानी की थैली का सेवन करना भी लाभप्रद है। शूल की तीव्रता हो तो उपयुक्त योग के साथ-साथ विषतिन्दुक वटी २-२ गोली दोबारा दूध के साथ लेने से शीघ्र पीड़ा शमन होता है।

साइटिका की सुगम चिकित्सा

१– लहसुन का कल्क २० ग्रा०, गौदूध ८० ग्रा०, जल २४० ग्रा० को क्षीरपाक विधि से पकाकर जब दुग्ध मात्रा शेष रह जायें तो छान कर पिलायें। इसे ही लहसुन क्षीर कहते हैं।

२– एरण्ड स्नेह २० मि० ली० को गौमूत्र ६० मि०ली० में मिलाकर एक महीने तक पिलाने से रोग दूर होता है।

३– एरण्ड़ के बीज (ऊपर का छिलका हटाकर तथा भींगीं तोड़कर) ४ से १६ तक प्रति दिन ३५० ग्रा० दुग्ध मे अच्छी तरह पकाकर

खीर रूप में एक महीने तक सेवन करने से रोग दूर होता है।

४– निर्गुण्ड़ी जो कि अपने वातनाशक चूर्ण के लिए प्रसिद्ध है। पत्तों का क्वाथ १० ग्रा० मात्रा में प्रतिदिन सुबह शाम पीने से साइटिका रोग की समाप्ति हो जाती है।

मोतिया बिन्दु :–

१, प्रातःकाल बिस्तर से उठते ही बासी मुँह का थूक आँखों में आंजना करें।

२, बिना डण्डी के नीम के पुष्प समान मात्रा में कलमी शोरा के साथ घोट पीसकर नीम की सलाई से रात को प्रयोग करें।

उदर रोग :–

घटक द्रव्य

सोंठ १० ग्राम, सज्जी खार ५ ग्रा०, जवाखार ५ ग्रा०, पीपल १०ग्रा०, काली मिर्च १० ग्रा०, चव्य ५ ग्रा, चित्रक १० ग्रा०, काला नमक १० ग्राम, सेन्धा नमक १० ग्रा०, अजमोद ५ ग्रा, सफेद जीरा १० ग्रा०, सौंफ १० ग्रा०, हींग १ रत्ती।

बनाने की विधि :-

उपरोक्त औषधि द्रव्यों को महीन कूट पीसकर कपड़छन चूर्ण कर सूखी शीशी में भर लें ।

आवाज बैठ जाना

घटक द्रव्य

जावित्री १० ग्रा०, लोंग ५ ग्रा०, छोटी इंलायची ५ ग्रा०, मुलहठी ३५ ग्रा०, पिपरमेन्ट २ ग्रा.०,कपूर ५ ग्रा, काली मिर्च ३ ग्रा० ।

बनाने की विधि :-

ऊपर लिखी औषधि द्रव्यों को महीन कूट पीसकर कपड़छन चूर्ण प्राप्त कर पानी के साथ घुटाई कर पान के पत्ते के स्वरस की भावना देकर एक एक रत्ती की गोलियां शीशी में भरकर सुरक्षित रख लें ।

सेवन विधि :-

दिन में तीन बार दो दो गोली मुँह में रखकर धीरे धीरे चूसें।

रोगोपयोग – किसी भी कारण से बैठी हुई आवाज ठीक हो जाती है। इसके अतिरिक्त उल्टी, अजीर्ण श्वास कास आदि रोगों को भी दूर करता है।

उदर में स्थित कृमि

घटक द्रव्य

अतीस २ ग्रा०, खुरासानी अजवाइन २ ग्रा०, मोथा २ ग्रा०, पिप्पली २ ग्रा०, काकड़ा सिगी २ ग्रा०, वायविड़ग २ ग्रा, अजवायन २ ग्रा०,

बनाने की विधि –

उपरोक्त औषधि द्रव्य को लेकर अच्छी तरह कपड़छन चूर्ण कर शीशी मं भर लें ।

सेवन विधि, मात्र और अनुपान– एक एक रत्ती सुबह और शाम भोजनोपरान्त लगभग एक सप्ताह तक शहद के साथ चाटें।

अष्ट मंगल धृत :-

बच, वाबची, मण्डूकपर्णी, शंखपुष्पी, शतावर, विधारा, गिलोय, ब्रह्मी, गाय का दूध, गाय का घृत लें। १ से ८तक द्रव्य ५०-५० ग्राम दूध ४ किलो, धृत १ किलो,।

विधि :- धृत पाक विधि से धृत पाक कर शीशी में भर लें। मात्रा तथा अनुमान रोगी की आयु के अनुसार १ से १/२ चम्मच सुबह शाम दूध के

साथ मिलाकर दें।

उपयोग : – इस धृत के प्रयोग में मंदबुद्धि बालकों में स्मृति, बुद्धि, मेधा शारीरिक शक्ति आदि में लाभ होता है।

केशकाला तेल

घटक–

त्रिफला (१:२:३ के अनुपात का) – ३०० ग्राम

बादाम की मिगी – १००ग्राम

पोस्त का दाना – ५० ग्राम

सिकाकाई – ५० ग्राम

रीठा (पीज रहित) – ५० ग्राम

मेंहदी (हरी) – ५० ग्राम

भृंगराज – ५० ग्राम

निर्माण विधि :– सारी दवायें रात्रि को पानी में भिगो दें। सुबह सबको पीस लें , तत्पश्चात २ किलो तिल का तेल लोहे की कढ़ाई मे गर्म करें । जब धुआँ उठने लगे तभी कढ़ाई को नीचे उतार दें। कुछ ठंड़ा होने पर उपरोक्त पिसी हुई औषधियां दुबारा चूल्हे पर चढ़ा दें और मन्दाग्नि पर पाक करें , जब तेल काला हो जाय, नीचे उतार कर रख लें। ठंड़ा होने पर छान लें इसके बाद २५ ग्राम कपूर बारीक पीस कर मिला दें और शीशी में भर कर रख लें।

लाभ –

इस तेल के प्रयोग से बाल काले हो जाते हैं। सिर दर्द , अरूषिका, बालों का टूटना आदि रोग दूर हो जाते है।

शिरः शूल लेप:– सत अजबायन ३ माशा, पिपरमेंट ३ माशा, बढ़िया कपूर ६ माशा, मोंम २ तोले, गाय का घी १ तोला

निर्माण विधि – कपूर सत अजबायन, पिपरमेंट एक शीशी में डाट (काग) लगाकर धूप में रख लें। जब तीनों चीजें गलकर पानी के समान हो जाय। तब घी आग में गर्मकर मिला देवें । जब पिघल जावे तब शीशी वाला मसाला जो पानी हो गया है छोंड़ देवें और पेंच वाली शीशियों में बन्द कर रख दें। ठंड़ी होने पर दवा जम जायेगी। अब इसे लेकर सिर से कनपटी बगेरा जहाँ दर्द हो मल लेवें, दर्द शीघ्र बन्द हो

जायेगा।

४- सूर्यावर्त – कड़वी तोरई को लेकर खूब महीन चूर्ण करें । फिर वही थोड़ा चूर्ण सावधानी से रोगी की नाक में डाल दें। इससे पानी बहकर सूयावर्त पीड़ा जाती रहेगी।

एक शर्बत

ग्रीष्म ऋतुओं में प्रायः दाह होती है। साथ ही बैचैनी, कभी कभी उल्टी भी हो जाती है। ऐसी स्थिति में प्रायः विभिन्न प्रकार के पेय पदार्थो का सेवन किया जाता है । ऐसी स्थिति में कभी कभी लू भी लग सकती है।

गेहूँ- थोड़ी सी मात्रा, गिलोय– एक हरी डड़ी या थोड़े से पत्र, बादाम ५ नग, इलायची १ नग, काली मिर्च २-३ नग, मिश्री थोड़ी मात्रा में ।

उक्त सभी द्रव्यों को घोल के शीतल दुग्ध के साथ मिलाया जाता है। एक उत्तम पेय (ठंडाई) तैयार हुआ, अनुभव से पाया गया है। कि शर्बत जहाँ सम्पूर्ण शरीर में ठंडक पहुँचाकर तुरन्त लाभ करता है साथ ही विशेषता या रोगों की पुनरावृति भी नहीं होती है। एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता की भी वृद्धि होती है। लगभग 2 चम्मच ठंडाई से एक गिलास शर्बत तैयार हो जाता है। तीव्र गर्मी में निरन्तर सेवन से कोई हानि नहीं होती।

कर्णप्रयोगः- कड़वे बादाम का तेल 200 मि. लि. बकरी का मूत्र अपामार्ग के बीजों का चुर्ण, निर्गुण्डी के पतों का स्वरस, वालविल्व के गूदे को जल में घिसकर एवं निकाला हुआ कपड़ छान स्वरस- इनमें चूर्ण 100 ग्राम तथा खरल प्रत्येक 100–**100** मि. लि. लेकर एक कलईदार कढ़ाही में सबको डालकर और मिलाकर मन्द अग्नि पर पकायें। जब तेल मात्र शेष रह जाये तो उतारकर वस्त्र से छानकर कांच की बोतल में सुरक्षित रख लें। प्रतिदिन 2–**3** बार उसकी 2–4 बूंद कान में डालते रहने से वधिरता दूर होती है तथा कर्ण रोगों में लाभप्रद है।

शक्ति योग औषधि – बबुलफली समुद्र कोष, अष्टवर्ग की प्रत्येक औषधियाँ या उनके शास्त्र कृपा प्रतिनिधि द्रव्य, सालिवपंजा, सेमलमुसरी, तृणकान्त (कदर या समई) छोटी इलायची बीज, कतीश, सफेद मूसली इन प्रत्येक औषधियों को एक-एक भाग ईसबगोल की भूसी 4 भाग सबको मिलाकर चूर्ण करकें सबको बराबर मिश्री चूर्ण कर घोटपीस

बोतल में भर रख लें। दवा तैयार है।

मात्रा- उसे 6 ग्राम दिन में तीन बार गौ दुग्ध के जल से लें।

गुण- स्वप्नदोष को थोड़े ही दिनों में रोककर वीर्य गाढ़ा बनाकर शरीर को पुष्ट करने में अद्वितीय है।

कासनाशक रोग (चक्र दत्त)

काली मिर्च 1 तोला, पीपल 6 माशा, जवाखार 6 माशा, अनार का छिलका 4 तोला, गुड़ 8 तोला इन सबका चूर्ण करके खरल में गुड़ के साथ रगड़े, जब अच्छी तरह से मिल जाऐ फिर चने के बराबर की गोली बनाकर एक गोली 3-3 घंटे के बाद में डालकर रस चूसें। भंयकर खाँसी दूर होती है।

ईसिनोफीलिया

आहार – ईसिनोफीलिया के रोगी को कफकारक भोजन चावल, मैदा, चीनी, दाल, दूध, दही, मूली, प्याज, चोकर रहित आटा, मिठाइयाँ, खोवा, रबड़ी, तले पदार्थ, मांस, मछली, एक दम त्याग देना चाहिये। भोजन में चोकर सहित रोटी, उबली हरी सब्जी नमक कम लेना चाहिए। भोजन खूब चबा-चबाकर करें ताकि पाचन सही रहे। विहार – प्रातः धूप स्नान, खुली हवा में भ्रमण गहरी सांसे लेना ये सब हितकारी है। स्नान हल्के गुनगुने जल से ही करें। पेट में कब्ज न रहने पाये इसके लिए रात में सोते समय ईसबगोल की भूसी + पंचसकार चूर्ण मिलाकर कभी कभी लें।

नाश्ता - नाश्तें में पका पपीता, संतरा, जामुन अन्नना‌स, गाजर, अमरूद सेवन करें।

औषधि प्रयोग - मल्ल सिन्दूर 2 ग्राम, श्वास कुठार रस 2 ग्राम, अभ्रक भस्म 5 ग्राम लौहभस्म 2 ग्राम, छोटी चौसठ प्रहरी पिप्पली (डाबर) 5 ग्राम, कालीमिर्च 5 ग्राम, घी में भूनी हल्दी 10 ग्राम। सबको खरल में डालकर अच्छी तरह घोंटकर 30 पुड़िया बनायें। 1-1 पुड़िया सुबह दोपहर-शाम तुलसी रस व मधु के साथ सेवन करें।

रस सिन्दूर 3 ग्राम, अभ्रमभस्म 5 ग्राम, लौहभस्म 2 ग्राम, मृगश्रंग भस्म 2 ग्राम, प्रवालभस्म 2 ग्राम, कालीमिर्च 5 ग्राम, घी में भुनी हल्दी चूर्ण 10 ग्राम सभी को घोंटकर 30 पुड़िया बनायें। 1-1 पुड़िया सुबह-दोपहर-शाम अदरख रस व मधु के साथ सेवन करायें।

श्रृंगारभस्म 10 ग्राम+श्वांस कुठार रस 10 ग्राम+शिलाजित्वादि लौह 10 ग्राम+यवक्षार 1 ग्राम+घी में भुनी हल्दी चूर्ण 20 ग्राम सभी को घोंटकर 40 पुड़िया बनायें। 1-1 पुड़िया सुबह-शाम मधु और तुलसी रस के साथ सेवन करे।

उपरोक्त तीनों योगों में से कोई भी योग चयन कर लें सभी लाभपद्र है।

सिद्ध योग

1. मलेरिया मानमर्दन- गोदन्ती भस्म 500 मि. ग्राम, लौंग चूर्ण 50 मिलीग्राम, धत्तूर बीज चूर्ण 50 मि. ग्राम, मिरच चूर्ण 50 मिली ग्राम। चारों द्रव्यों को एकत्र खरल कर वस्त्र से छान लें। फिर तुलसी पत्र स्वरस में 2 दिन मर्दन कर 650 मिली ग्राम के कवच भर लें। ज्वर आने से चार घण्टे पूर्व 1-1 घण्टा पश्चात् 1-1 कवच उष्णोदक से दें। उसी दिन ज्वर रूक जायेगा। 2-3 दिन में जीर्ण विषम ज्वर भी नष्ट हो जाता है।

चमत्कारी दवा

एक शीशे के जार में २ सेर पानी डाल कर एक पाव नीला थोथा (तूतिया) बारीक पीसकर उसमें हल करें। यह नीले रंग का पानी होगा। फिर इसमें जिस्त के पतरे एक पांव डाल दें। इसमें जोश पैदा होगा। और २-३ दिन में पानी का रंग सफेद हो जायेगा । इस पानी को आहिस्ता से नितार कर हाण्डी या एल्यूमिनियम की बनी हुई चिलमची में डाल कर खुश्क करें, आग नीचे नरम नरम जलावें सफेद रंग का पाउडर पैदा होगा। यह एक अदुभुत दवा तैयार होगी। जिसे निम्न रोगों पर प्रयोग करें–

१– दाँतो की बीमारियों पर यह दवा जादू की तरह असर करती है। इसमें सम भाग फिटकरी भष्म व सोना गेरू मिलाकर उत्तम मंजान तैयार होता है।

२– श्वेत प्रदर पर गजब का फायदा करती है। १/२ रत्ती दवा मख्खन के साथ खाने से एक सप्ताह में फायदा हो जाता है

३– बवासीर के लिए ये भरोसे की दवा है, १ रत्ती दवा मख्खन में रखकर खिलावें । व एक तोला मख्खन में ३ माशा दवा मिलाकर मस्सों पर लगावें, १५ दिन में बीमारी ठीक हो जायेगी।

४– बच्चों के दस्तों में एक खशखाश के दाने के बराबर पानी में हल करके दें ।

५– आतसक व सुजाक के लिए मुफीद है।

६– मुँह के छालों पर लगाने से ठीक हो जाते हैं।

७– आँखों की बीमारी के लिए १ तो० सुर्मा में १ माशा मिलाकर बारीक खरल करके सोते वक्त सलाई से लगावें , या १ तो० अर्क गुलाब में १ रत्ती दवा डाल करके ड्रापर से डालें ।

इसी दवा को सुर्ख अरण्ड के पत्तों के रस में खरल करके ५ किलो की आग देकर फिर फास्फोरस से खरल करके मोमियां बनाया जा सकता है । कुछ बार अमल करने पर फास्फोरस आग पकड़ना बन्द कर देती है। व मोमिया बन जाती है। इस प्रकार इस दवा से अहलेफन अपनी समझ से अन्य दवाईयां तैयार कर सकते हैं।

(२) लाल अकसीर

अनेक रोगों को दूर करने की एक अद्भुत एवं सस्ती दवा है। देखने में बहुत साधारण सी प्रतीत होने वाली यह दवाई लाभ में बड़े-२ योगों से बढ़कर है।

योग यह है – काली मिर्च १ तोला, नौसादर १ तोला, गेरू २ तोला। सभी को अत्यन्त बारीक पीसकर सुरक्षित रखें,

मात्रा केवल २ रत्ती अनुमान से लें ।

१– मस्तिष्क रोगों –सिरशूल, प्रतिश्याय, अचेतना (मूर्छा) के लिए थोड़ी दवा लेकर भस्म की भाँति सुघावें।

२– दन्त रोगों– दन्तशूल, दाँतों का हिलना, तथा दाँतों के मैल के लिए मंजनवत प्रयोग करें।

३– आमाशय रोगों के लिए– अजीर्ण, अपच, पेट दर्द, अफरा आदि के लिए २ रत्ती अर्क शौफ से दें, अतिसार मरोड़ के लिए २ तोला गुलकन्द में दवा मिलाकर ऊपर से ईसबगोल का लुआब पीवें।

४– नत्र रोग– धुन्ध, जाला, फूला, रतौधी के लिए चार भाग सुरमें में मिलाकर अंजन करें।

कफ और वात रोगों को दूर करने वाली अनुपम एवं आश्चर्यजनक औषधि - कुचला चूर्ण

कुचले को विष समझा जाता हैं, साधारण व्यक्ति इसका नाम सुनकर ही विचलित हो जाता है। परन्तु प्रकृति ने इस फल के अन्दर बहुत ही

अद्भुत गुण भरे हुए है। प्रायः सभी पैथियों में इससे दवा बनाई जाती है, प्रस्तुत योग बनाने मे बहुत ही सरल है। योग – कुचला ५ तोला लेकर गौघृत में भून लें, जब सुर्ख रंग हो जावें तो नीचे उतार कर गर्म -२ कूट लें। महीन चूर्ण बनाकर इसमें समभाग पीपला मूल, काली मिर्च, सौठ, दालचीनी, सुंहागा(खील) अलग अलग पीसकर मिलाकर खरल करके रखें।

१ नजला, जुकाम, खाँसी, के लिए एक रत्ती दवा मुनक्का में लपेट कर खिलावें।

२– बायु, गठियां, कटिशूल आदि बात रोगों में पहले रेचन देकर फिर यह दवा बतासे में रखकर खिलाकर ऊपर से उष्ण जल में शहद मिलाकर पिलावें।

३– पाचन शक्ति की मन्दता, कब्ज, अजीर्ण, भूख की कमी में १ रत्ती दवा खाण्ड में मिलाकर ऊपर से अर्क सौफं या अर्क अजवाइन समोष्ण करके पिलावें।

४ – पार्श्व शूल एवं कफज ज्वरों के लिए एक रत्ती दवा सौफं के क्वाथ से दें।

५- तृतीयक (तिजारी) ज्वर में ज्वर से पूर्व २ घंटे पहले खाण्ड में दवा देकर ऊपर से दूध पिलावें, तो ज्वर नहीं आयेगा ।

(४) पुराने एवं कष्ट साध्य रोगों की अचूक औषधि संखिए की अक्सीर **(पाउडर ऑफ आरसैनिक)**

प्रकृति ने अपनी संपदा में कोई भी वस्तु निरर्थक नहीं बताई है, बहुत सी वस्तुऐं अक्सीरी गुण रखती है। संखियां भी उनमें से एक है। यद्यपि संखियां एक विष है तथापि इसको भिन्न परिमाणों (मात्राओं) में सेवन करना बड़े बड़े जीर्ण रोगों को दूर करने के लिए राम बाण के समान है, और चन्द मात्राओं में रोगी स्वस्थ हो जाता है।

दवा न० १ – योग– सर्वप्रथम एक दूधियां संखिया लेकर प्रसिद्ध विधि से जौहर उड़ा ले, फिर यह जौहर (सत्व) १ माशा लेकर इसमें १ तोला बंशलोचन असली व एक तोला देशी खाण्ड़ अलग अलग बारीक पीसकर मिलाकर ६ घंटे खरल करें, बस दवा तैयार हो गई।

सेवन विधि-

यह दवा निराहार सेवन नहीं करनी चाहिए, और न ही छोटे बच्चों को

देनी चाहिए, नये रोगों की अपेक्षा निर्बल रोगी व जीर्ण रोगों पर अत्यन्त लाभदायक है।

१ – वाजीकरण मन्दता एवं हस्त मैथुन के रोगों के लिए यह औषधि बहुत ही लाभप्रद है। एक दो सप्ताह के सेवन से ही असीम शक्ति उत्पन्न हो जाती है। प्रातः साय एक रत्ती दवा मख्खन या मलाई में लपेटकर खिलावें, व घी दूध अधिक मात्रा खिलावें।

२ – जीर्ण श्वास व कास के लिए यह दबा असीम लाभदायक है। मलाई में लपेट कर एक रत्ती दें। कुछ ही दिनों में रोग समूल नष्ट हो जायेगा।

३ – पक्षाघात (अधरंग या फालिज), अर्दित(लकवा), में भी इसी तरह दबा देने से अत्यन्त लाभ पहुँचाती है।

४ – पारीका ज्वर (बारीका बुखार), कंप ज्वर, अर्थात जो ज्वर उतर कर चढ़ने वाला हों उसके लिए यह औषधि बहुत लाभदायक है। ज्वर आने से १ –१½घंटा पहले मख्खन या पेड़ा खिलाकर ऊपर से १ रत्ती मात्रा में औषधि खिला देवें। एक दो मात्रा से ही रोग दूर हो जावेगा।

संखिये का चूर्ण न० २

उपरोक्त दवा अर्थात चूर्ण न० १ में से १ तोला दवाई लेकर वंश लोचन २ तोला, दानेदार खाण्ड २ तोला, तीनों दवाओं को लेकर स्वच्छ खरल में डालकर पूरे १२ घंटें खरल करें। शीशी में डालकर सुरक्षित रखें। मात्रा १ रत्ती दवा ताजा जल के साथ दें।

(१) रक्त विकार – रक्त विकार की सभी अवस्थाओं में यह औषधि अत्यन्त लाभदायक है। रक्त बनाने में भी लाभकारी है। थोड़े ही दिनों में नया खून बनकर चेहरा लालिया मुक्त हो जाता है।

(२) दाद, कण्डु, चम्बल, आदि चर्म रोग जो जीर्ण हो जाते है, इस दवा के सेवन से शीघ्र ठीक हो जाता हैं।

(३) जीर्ण ज्वर– जब ज्वर पीछा न छोड़ता हो तो प्रातः साय १-१ रत्ती दवा जल के साथ सेवन करायें ·। ज्वर भाग जावेगा।

(४) वमन व अतिसार जब किसी दवा से न रूकते हों तो यह दवा जादू का सा प्रभाव दिखाती है। उपरोक्त विधि से दवा दें, निःसन्देह लाभ होगा।

संखिया चूर्ण न० ३

उपरोक्त चूर्ण न० २ में एक तोला वंश लोचन ३ १/२ तोला दानेदार

खाण्ड ३ १/२ तीनों को मिलाकर १२ घंटें खरल करके सुरक्षित रखें।

यह दवा नितान्त हानिरहित है, क्योंकि इसमें संखिये का १०२५ वां भाग ही रहता है।

मात्रा १ रत्ती ताजे जल से दें।

(१) आमाशय की दुर्बलता में यह दवा उत्कृष्ट लाभ पहुँचाती है।

(२) हृदय की दुर्बलता में यह दवा जवाहर मोहरा व याकूतियों से भी अधिक लाभप्रद सावित हुई है। .चन्द मात्रा से ही लाभ प्रतीत होने लगता है।

इसके अतिरिक्त यक्षमा, सिल, मरोड़, प्लेग, तथा सभी प्रकार के जख्मों, घावों के लिए भी यंह दवा बहुत उपयोगी साबित हुई है।

बच्चों को भी यह दवा बेखटके सेवन कराई जा सकती है। मात्रा बच्चों के लिए केवल २ चावल ही देनी चाहिए।

(५) कुस्ता सिमाव

यह कुस्ता अकसीरी गुण रखता है। काया को रंगने के लिए यह एक बेहतरीन नुख्सा है। बुढ़ापे में चेहरे की झुरियां व आम कमजोरियां दूर होकर नौ जवानों जैसी ताकत हासिल हो जाती हैं। नामर्द इसके सेवन से मर्द हो जाते है। फालिज, लकवा, नजला, गठियां, शीघ्र पतन आदि के लिए गजब की दवा हैं।

योग – शुद्ध पारा ५ तोले, जर्दी वैजामुर्ग ३ अदद में इस प्रकार खरल करें, कि पारा बिल्कुल दिखाई ना पड़े। अर्थात पारे के जर्रात नाबूद हो जावें, इसके बाद शराब बराण्ड़ी १/२ पाव थोड़ी -२ डाल कर खरल करें। खरल थोड़ी देर करें इसे खुश्क नहीं करना हैं । फिर इसे ताँबे के बर्तन में जिसका ढ़क्कन भी ताँबे का ही हो। बन्द करके मजबूत कपड़ मिटटी करके एक साल तक गोबर के ढेर में दबा दें। सर्दी के समय में दबाबें एक साल के बाद निकाल कर देखेगें तो बहुत ही उत्तम किस्म का अकसीरी कुस्ता तैयार मिलेगा। निकाल कर बारीक खरल करके काम में लें।

मात्रा – १ से ३ चावल बल व सामर्थ्य के अनुसार मख्खन में मिलाकर लेवें, व खुराक अच्छी यानी घी, दूध का प्रयोग ज्यादा करें।

सामान्य रोगों पर आसान से प्रयोग (यात्रिपथगा)

१. आधासीसी-दर्द –सेन्धानमक १ तोला, गुड़ से बना सिरका ५ तोला दोनों को शीशी में मिलाकर रख लें, रोगी को सीधा सुलाकर ड्रापर भर कर नाक में डालें। ५ मिनट बाद रोगी को बैठा दें, जमा हुआ कफ निकलेगा और दर्द हमेशा के लिए दूर हो जायेगा।

२. सूर्यावर्त–यह सिर दर्द सूर्योदय पर प्रारम्भ होता है जैसे-जैसे चढ़ता जाता है और सूर्य के ढलने पर घट कर सूर्यास्त होने तक अपने आप मिट जाता है।

ठीकरी का नौसादर पीसकर १ माशा सूर्योदय से १ घण्टा पहले पानी में घोल कर पीने से उसी दिन या दूसरे-तीसरे दिन दर्द बिल्कुल ठीक हो जायेगा। न०१ दवा भी नाक में अवश्य डाली जावे।

३. लड़कियों का सिर दर्द – आजकल कालेज में पढ़ने वाली लड़कियों को प्रायः सिर दर्द की शिकायत करती है जिसका कारण अश्लील उपन्यास पढ़ना, अधिक सिनेमा देखना तथा मासिक धर्म के पालनीय नियमों की अवहेलना करना तथा असंयमित खान-पान है। अतः पथ्य पालन आवश्यक है।

चिकित्सा–सतगिलोय ४ रत्ती, कौड़ी की भस्म ४ रत्ती, मुश्की कपूर १ रत्ती यह १ मात्रा है। प्रायः-सायं दूध से लेनी चाहिए। १-२ मास के प्रयोग से यह रोग हमेशा के लिए चला जाता है।

४. बच्चों का शैय्या मूत्र–गूलर, पीपर वृक्ष, अर्जुन की छाल, सोंठ १०-१० ग्राम तथा राई ८० ग्राम सबका चूर्ण बना लें। २-२ ग्रा० की ३ पुड़िया प्रातः मध्यान्ह सायं शहद से दें। चाय, लस्सी, शर्बत पीना बन्द करावें रात में दूध भी नहीं पिलावें तो इस रोग से छुटकारा मिल जायेगा।

५. वृद्धों की बहुमूत्रता–प्रायः वृद्धावस्था में मूत्र अधिक और बार-बार आता है, रात में उठना पड़ता है। जिसमें तारकेश्वर रस ४ रत्ती, चन्द्रप्रभावटी २ गोली, ऐसी ४ मात्रा मर्दन करके मधु से देनी चाहिए।

६. जीर्ण प्रतिश्याय –बड़ी बीमारी है इसमें प्रातः सायं त्रिफला चूर्ण ४ माशा+नौसादर ठीकरी ४ रत्ती, काला नमक १ माशा, उष्ण जल से दें, भोजनोत्तर चित्रक हरीतकी ४ माशा प्रवाल भस्म १ माशा उष्ण जल से एवं रात्रि को सोते समय लक्ष्मीविलास रस २ रत्ती, मधु+अदरख रस दें, षड्बिन्दु

तेल का नस्य दें।

७. नव प्रतिश्याय में तुलसी पत्र १० कालीमिर्च १० दाने कूटे हुए, १ कप दूध, १ कप पानी की चाय बना कर चीनी मिलाकर गरम-गरम चाय की तरह पीने से सिर दर्द, बुखार, जुकाम तत्काल ठीक होते है।

८. कर्ण स्राव–गोमूत्र या बकरी का मूत्र गर्म करके गुनगुना रहने पर ५-१० बूंदें कान में डाले। इससे कर्णस्राव एवं कान की सूजन में लाभ होता है। क्षार तेल का प्रयोग भी अत्युत्तम है।

९. दन्तशूल–दांत के गढ्ढे में बढ़िया हींग या मुश्की कपूर भर कर सलाई से दबा दें और ऊपर से जरा सी रुई रखकर उसे भली प्रकार जमा दें। अमृतधारा व लौंग के तेल का फोहा भी इसी प्रकार दवा देने से तत्काल शूल शमन होता है। दांतो में सरद-गरम चीजों का लगना भी कष्टदायक है। इसके लिए रात में सोते समय गर्म घी के फोहे से दांत और मसूढ़ों को १५-२० मिनिट टकोर करें। इसे करने के बाद तत्काल कोई वस्तु नहीं खानी चाहिए। २-४ दिन ऐसा करने से यह कष्ट दूर हो जाता है।

१०. तेजाब से जल जाने पर –खाने का सोड़ा १ तोला+शीतल जल २० तोला मिलाकर भीगी पट्टी बार-बार रखने पर कष्ट शांत होता है।

११. हैजा–प्याज का रस २ तोला, लहसुन का रस २ तोले, काली मिर्च ३ माशा, नौसादर ३ माशा, नमक १ तोले, नीबू का रस ५ तोला मिलाकर बर्त्तन में रख लें और २-२ चम्मच १५-१५ मिनिट बाद पिलावें उपद्रवों की शांति होकर दूर हो जायेगा।

१२. युवान पिडिका (मुंहासे)–१ नीबू के रस में २ औंस पुदीना मिलाकर मुख पर लगावे तथा सारिवादि आसव १-२ तोला+बराबर पानी मिलाकर भोजनोत्तर पीना चाहिए।

१३. प्रवाहिका–हरड़ का चूर्ण ४ माशा, पीपल का चूर्ण १ माशा काला नमक १ भाग ऐसी मात्रा दिन में ४ बार लें तो आम का मल द्वारा निस्सारण होकर रोग का शमन होगा।

१४. उदर शूल–यदि तीव्र हो तो शूलवज्रिणी वटी गोल, नारिकेल लवण १ माशा गर्म पानी से दिन में ३-४ बार दें। पेट में बार-बार होने वाली पुरानी दर्द तथा अम्लपित्त एवं परिणाम शूल, अन्नद्रव शूल में तत्काल लाभ होता है। अमृतधारा की ८-१० बूंदे बताशा या मिश्री के टुकड़े या पानी के १ चम्मच में डाल कर लेने से भी उदर शूल में तत्काल लाभ होता है।

शालाक्य-ऊर्ध्वजत्रुगत एवं आँखों के रोग (आदृक)

नेत्र ज्योति बढ़ाने के लिए :

पहला प्रयोग : इन्द्रवरणा (बड़ी इन्द्रफला) के फल को काटकर अन्दर के बीज निकाल दें। इन्द्रवरण की फाँक को रात्रि में सोते समय लेटकर आँख से ऊपर (ललाट पर) बाँध दें। आँख में उसका पानी न जाये, यह सावधानी रखें। इस प्रयोग से नेत्र ज्योति बढ़ती है।

दूसरा प्रयोग : त्रिफला चूर्ण को रात्रि में पानी में भिगोकर सुबह छानकर उस पानी से आँखे धोने से नेत्र ज्योति बढ़ती है।

तीसरा प्रयोग ' जलनेति करने से नेत्र ज्योति बढ़ती है। इससे आँख, नाक के समस्त रोग मिट जाते है।

रतौंधी (रात को न दिखना) : पहला प्रयोग : बेलपत्र का रस पीने और आँखों से आँजने से रतौंधी रोग में आराम होता है।

दूसरा प्रयोग : श्याम तुलसी के पत्तों का दो-दो बूंद रस १४ दिन तक आँखों में डालने से रतौंधी रोग में लाभ होता है। इस प्रयोग से आँखों का पीलापन भी मिटता है।

तीसरा प्रयोग : मिश्री तथा जीरे को घी के साथ खाने से एवं लेंडीपीपर को छाछ में घिसकर आँजने से रतौंधी में लाभ होता है।

आंखों का पीलापन : रात्रि में सोते समय अरण्डी का तेल या शहद आँखों में डालने से आँखों की सफेदी बढ़ती है।

आँखों की लालिमा :

पहला प्रयोग : आंवले के पानी से आँखें धोने से या गुलाब जल डालने से लाभ होता है।

दूसरा प्रयोग : जायफल के पत्तों की पुल्टिस बनाकर रात्रि में सोते समय आँख पर बांधने से आँखों का दर्द मिटता है, सूजन और वेदना दूर होती है।

आँखों का कालापन : आँखों के नीचे के काले हिस्से पर सरसों के तेल की मालिश करने से तथा सूखे आंवले एवं मिश्री का चूर्ण समान मात्रा में सुबह शाम पानी के साथ लेने से आँखों के पास के काले दाग दूर होते है।

आँखों की गर्मी या आँख आने पर : नींबू एवं गुलाब जल का समान मात्रा का मिश्रण एक-एक घंटे के अन्तर से आँखों में डालने से एवं हल्का-हल्का सेंक करते रहने से एक दिन में ही आई हुई आँखे ठीक होती हैं।

आँख की अँजनी (गुहेरी या बिलनी) : हल्दी एवं लौंग को पानी में

घिसकर गर्म करके अथवा चने की दाल को पीसकर पलकों पर लगाने से तीन दिन में ही गुहेरी मिट जाती है।

आँख में कचरा जाने पर :

पहला प्रयोग : सौ ग्राम पानी में एक नीबू का रस डालकर आँखे धोने से कचरा निकल जाता है।

दूसरा प्रयोग : आँख में चूना जाने पर घी अथवा दही का तोर (पानी) आँजने पर कचरा निकल जाता है।

मोतियाबिंद झामर (तनाव) :

पहला प्रयोग : पलाश (टेसू) का अर्क आँखों में डालने से नये मोतियाबिंद में लाभ होता है। इससे झामर में भी लाभ होता है।

दूसरा प्रयोग : गुलाब जल में विषखपरा (पुनर्नवा) घिसकर आँजने से झामर में लाभ होता है।

चश्मा उतारने के लिए : छः से आठ माह तक नियमित जलनेति करने से एवं पाँव के तलवों तथा कनपटी पर गाय का घी घिसने से लाभ होता है।

आँखों की सुरक्षा : रात्रि को आंवला चूर्ण खाने, हरियाली देखने तथा कड़ी धूप से बचने से आँखों की सुरक्षा होती है।

नाक के रोग :-

नकसीर (नाक से रक्त गिरना) :-

पहला प्रयोग : फिटकरी का पानी बनाकर उसकी कुछ बूंदे अथवा दाव के रस की या निबौली के तेल की कुछ बूंदे डालने से नकसीर से लाभ होता है।

दूसरा प्रयोग : हरे आंवले के रस में मिश्री मिलाकर पीने से पुराने नकसीर में भी लाभ होता है।

घ्राणशक्ति का अभाव : घ्राणशक्तिनाशक रोग में मरीज को नाक द्वारा किसी भी प्रकार की गंध का अहसास नहीं होता। ऐसे मरीज को लहसुन की पत्तियों अथवा कलियों का रस नाक द्वारा लेना चाहिए।

त्वचा के रोग :-

गर्मी (त्वचा की लालिमा व जलन) : नीम के पत्तों का रस पीने से शरीर की गर्मी दूर होती है।

घमौरियाँ : नीबू का रस लगाने से अथवा आम की गुठली के चूर्ण को

पानी में मिलाकर उसे लेकर एक पाव नारियल तेल में डालकर धूप में रख दें। सबके मिल जाने पर शरीर में लगावें। यदि यह शरीर में बहुत लगे तो इसमें और नारियल तेल और मिला लें।

बवासीर पर—कपूर, कोहरवा, बकायन के फूल रसोत, चन्दन बुरादा सफेद, खश एलुआ, दारू हल्दी, निबोली सफेद राल, लाख प्रत्येक द्रव्य समान भाग में लेकर कूट पीस घोटकर मटर के बराबर गोलियाँ बनालें। मात्रा दो-दो गोली सुबह और शाम को।

पेचिश पर—छोटी और बड़ी माजूफल, गोंद बबूल, अफीम-प्रत्येक द्रव्य तीन-तीन माशे लेकर पानी में पीसकर मटर के बराबर गोलियां बना लें। एक-एक गोली शरबत अनार के साथ सुबह शाम लेवें। खुराक में खिचड़ी खाने को दें।

गृध्रसी बात (सायटिका) पर —(१) कड़वी लौकी आध पाव को पीसकर बकरी के एक पाव दूध में मिला कर लोहे के खुले मुँह के चौड़े पात्र तसला आदि में रख दे। दो तीन दिन रखे रहने के बाद दो रत्ती अफीम को उस बरतन में डालकर उसे रोगी के हाथों से ही मसलवायें और उसमें दर्द वाले सारे पैर में मालिश करवायें। गृध्रसी बात से रहित दूसरे पैर के तलवे में भी मालिश करवायें। ऐसा करने से दो तीन दिन में आराम आ जाता है।

(२) कालीहरड़, पीली हरड़ (हलीला जरद) काबुली हरंड़, काली जीरी, सौंठ मगज करंज-हर एक छः माशे लेकर चूर्ण करें। इस सम्मिलित द्रव्यों के चूर्ण को दो तोले मुनक्के के साथ पीसकर बाजरे के दाने के बराबर गोलियां बना लें। सुबह और शाम को २१-२१ गोलियों की एक-एक खुराक लें।

सुजाक पर – फिटकरी कच्ची १ तोला, बताशा १५ तोला-दोनों को अलग-अलग पीस लें। दो सकोरे लेकर एक सकोरे में बतासे के चूर्ण के बीच में फिटकरी रखकर उसे दूसरे सकोरे से ढँक कर दोनों के किनारो को कपड़-मिट्टी से जोड़ दें। फिर इस को एक सेर बेर की लकडियो की धीमी-धीमी आंच दे। आग ठंडी होने पर एवं सकोरे भी ठंडे होने पर दवा को निकाल कर पीस लें, मात्रा—३ माशा घी के साथ।

खांसी बुखार (क्षय रोग की प्रथम अवस्था) पर – तवाशीर १ माशा, मिश्री २ माशा, पिप्पलामूल ६ माशा, छोटी इलायची बीज ६ माशा, सत्त

गिलोय २ माशा, मुलहठी सत्त्व १ माशा, तज ७ माशा—इन सबका सूक्ष्म चूर्ण कर शाहद में मिलाकर चटायें।

हैजा पर – (१) आक की जड़ छिलका १ तोला, काली मिर्च ६ माशा १ तोला, काली मिर्च ६ माशा—इन दोनों को अर्क गुलाब में पीस कर चने के समान गोलियां बना लें तथा यथा योग्य मात्रा में सेवन करावें। प्यास के समय अर्क गुलाब पिलावें।

(२) जहर मोहरा तथा नानखताई समान भाग पीसकर पीने को दें।

पीनस में नाक में कीड़े होने पर—मरवे की पत्तियों को पीसकर माथे पर लेप करें। सूँघने को भी दें। कीड़े बाहर आ जाते हैं।

बाय गोला पर—मक्का के दाने के बराबर असली मोम लेकर उसमें आधी रत्ती हींग भर कर उसे गरम पानी से निगलवा दें।

साधारण नुस्खे -

१. सिरदर्द –कर्पूर चूना और नौसादर को बराबर बारीक पीस लें। उसे कांच की रंगीन शीशी में डालकर ऊपर से पानी डाल दें और हिलावें काम में लायें। इसे हिलाने से इसमें गैस बन जाती है। इसे सूंघने से तीव्र सिरदर्द भी ठीक हो जाता है।

२. कान का बहना—कान को साफ करके थोड़ी सी मात्रा में स्प्रिट डालने से कान का बहना ३-४ दिन में ही बन्द हो जाता है।

३. नकसीर फूटना—१० ग्राम मुलतानी मिट्टी में रात को आधा लीटर पानी डालकर भिगो दें और प्रातः काल पानी निथार कर रोगी को हल्का मीठा करके पिलायें तो पुराने से पुराना नकसीर रोग भी कुछ दिनों में ठीक हो जाता है।

४. खुजली—१०० ग्राम नारियल के तेल में २० ग्राम कपूर मिलाकर रख लें इसे खाज-खुजली आदि पर लगाने से सभी प्रकार के चर्म रोग दूर हो जाते है। पेट साफ रखें।

५. शीत पित्त—१ छटांक चिरौंजी बिना टोके ३ दिन खाने से हर प्रकार की पित्ती शान्त हो जाती है।

६. विवाई फटना – १ तोला गरम घी में ३ ग्राम मोम, १० ग्राम राल मिलाकर रखलें। पैरों को अच्छी तरह से साफ करके इसे सुबहशाम लगायें। दवा लगाने के बाद पैरो को धूल से बचाते रहें। कुछ ही दिन में विवाई फटना ठीक हो जाती है।

७. **जुकाम**– गेंहू के आटे का चोकर (भुसी) एक कप पानी में उबालकर, छान लें। फिर इसमें दूध और शक्कर मिलाकर पीने से नजला जुकाम मिट जाता है।

८. **वायु गोला**–७ ग्राम अण्डी के तेल में ७ ग्राम दही मिलाकर आधे-आधे घंटे के अन्तर से रोगी को पिलाने से वायु गोला हमेशा के लिए नष्ट हो जाता है।

६. **अम्लपित्त**–१० ग्राम आंवला रात को पानी में भिगो दें। प्रातः काल मसलकर छान लें। इस पानी में मिश्री और जीरे का चूर्ण मिलाकर पीने से अम्लपित्त में लाभ होता है।

१०. **अतिसार**–४ ग्राम सफेद राल और ८ ग्राम मिश्री को बारीक पीस लें ७ ग्राम दवा दही में मिलाकर खाने से अतिसार मिट जाता है। अगर पहली खुराक से लाभ न हो तो क्रमशः ३–४ खुराक तक देते जायें।

११. **हैजा**–एक लाल मिर्च के बीज तथा ४ रत्ती देशी मोम मिलाकर गर्म पानी अथवा सौंफ अर्क के साथ निगलवा दें। दो तीन मात्रायें देने से ही रोगी ठीक हो जाता है।

१२. **कुत्ता काटने पर**–कुत्ते द्वारा काटे गये स्थान पर मिट्टी के तेल से भली प्रकार साफ कर लें तथा लाल मिर्च बारीक पीसकर बांध दें। ऐसा तीन-चार दिन करने से रोगी निरोग हो जाता है।

१४. **गुदा पकने पर**–शंख भस्म मुलहठी और रसौत को पानी में पीसकर बालक की गुदा पर दिन में २-३ बार लगाने से गुदापाक मिट जाता है।

१५. **कर्णशूल**–तारपीन का तेल ३-४ बूंद कान में डालने से कान की सूजन तथा दर्द मिट जाता है। इसी प्रयोग से कान के कीड़े भी बाहर आ जाते हैं।

१६. **रक्त प्रदर**–सोना गेरू और सेलखड़ी समानभाग को बारीक पीस लें। ३-३ ग्राम दवा दिन में ३ बार अनार के रस से दें उसके सेवन से रक्तसार, नकसीर, आदि ठीक हो जाते हैं।

१७. **पीलिया**–१० ग्राम मेंहदी के पत्तों को २०० ग्राम पानी में रात को भिगो दें। सुबह छानकर रोगी को पिला दें– कुछ दिन मे ही पीलिया रोग जड़ से मिट जाता है। मिर्च और खटाई न खायें।

१८. **वीर्यपात में**–रात को सोते समय या मूत्र त्याग के समय या मूत्र त्याग के बाद अनैच्छिक वीर्य निकलने की स्थिति में एक मुटठी गेंहू शाम

को पानी में भिगो दें। प्रातः काल शौचादि क्रिया से निवृत होकर गेंहू पीस कर लस्सी बना लें। स्वाद के अनुसार मीठा करके निराहार पियें। इसके सेवन से वीर्य सम्बन्धी सभी रोग खत्म हो जाते है।

१६. रोहे फूलने पर—रात को थोड़े से पानी में गेंहू भीगने के लिए डाल दें। सुबह २१ दाने गिनकर माला बना लें और जिन बच्चों के रोहे फूल गये हो उनकी गर्दन में यह माला बिना टोके सूर्य निकलने से पहले डाल दें। इसके प्रयोंग से बालकों के रोहे फूलना बन्द हो जाते है।

२०. गुर्दे का दर्द—पुराने गुड़ २० ग्राम में बुझा हुआ चुना एक ग्राम मिलाकर बराबर की चार गोलियां तैयार कर लें। गर्म पानी से एक गोली दें। इससे आराम न हो तो दूसरी गोली दें। ३-४ गोलियों के सेवन से ही दर्द शान्त होकर आराम हो जायेगा। यह प्रयोग उदरशूल और अम्लपित्त में भी लाभकारी हैं।

२१ निमोनिया—कपूर १ माशे को तारपीन का तेल दो तोले में मिलाकर रख लें। आवश्यकता के समय पीठ और पसलियों पर ३-३ घंटे बाद मलकर पुरानी रुई गर्म करके बांध दें। कफ की अधिकता हो तो १ चावल भर एलुआ दूध पिलावें। इससे दस्त व वमन होकर कफ निकल जाता है।

आसानी से किये जाने वाले सफल इलाज -

१. कच्छु या खुजली के लिए उपयोगी— चूने का पानी १०० ग्राम+सरसों का तेल ५० ग्राम, बाकुची का तेल ५० ग्राम नीलाथोथा ५ ग्राम+गंधक १० ग्राम। सर्वप्रथम चूने के पानी में दोनों तेलों को मिला कर अच्छी तरह हिलायें। जब गाढ़ा हो जाय तब नीलाथोथा व गधक महीन पीसकर मिलाकर रख लें। सब प्रकार की खुजली में दो बार लगाये।

२. सन्निपात ज्वर में अद्‌भुत प्रयोग—मुर्गी का एक अण्डा लेकर किसी स्थान में पूरे १ वर्ष तक रखें। एक वर्ष पश्चात् इसमें से जो भी निकले उसे महीन पीसकर शीशी में भर लें। आवश्यकता के समय सन्निपात ज्वर में एक चावल भर दवा मुनक्का में रखकर गरम जल से दें। अनुभूत योग है ३-४ दिन में एक बार दें।

चेचक व खसरा में गुणकारी प्रयोग—केले का बीज शूगर आफ मिल्क अच्छी तरह घोटकर रख लें।

मात्रा—जल या दुग्ध के साथ ४-४ ग्राम यही पाउडर दिन में ३ बार सेवन

करायें।

४. एक्जीमा व विचर्चिका में—आक के पत्ते का रस १ तोला गंधक २ तोला, तिल तेल ५०० ग्राम सर्वप्रथम आक के पत्ते का रस एवं तिल तेल एक पात्र में डालकर गरम करें। जब रस पूरा जल जाय तो उसमें गंधक का पिसा हुआ पाउडर कुछ जलने पर उतारकर ठण्डे होने पर शीशी में भर लें। पीड़ित स्थान में २-३ बार इसे लगायें। परीक्षित प्रयोग है।

५. अर्श वेदनांतक मलहम—शतधौत गोघृत २० तोला, कपूर २ तोला, पोदीने का सत्व ११ तोला, अजवाइन सत्व १ तोला, कपूर पोदीना सत्व अजवाइन सत्व को एक शीशी में डालकर रख दें। द्रव हो जाने पर घृत मिलाकर रखें। इसे मस्सों में लगाये। इससे मस्से सिकुड़ जाते है एवं वेदना शान्त होती है।

६. आँख के फूला में—बरगद के दूध में देशी कपूर को पीसकर एक बत्ती बनाइये। इस बत्ती को पानी में घोलकर अञ्जन की तरह आंख में लगायें। २०-२५ दिनमें प्रारम्भिक हुआ फूला कट जाता है। अनुभूत परन्तु पुराने फूले में लाभप्रद नहीं है।

७. संधिवातहर उत्तम प्रयोग—नागौरी असगंध, सोंठ, विधारा तीनों समान मात्रा में लेकर पीसकर रखें।

मात्रा—६ माशा से १ तोला प्रातः सायंकाल गर्म जल से सेवन करायें। घुटनों एवं कमर दर्द में होने वाले वायु के शूल में अव्यर्थ है।

८. श्वेत प्रदर में—बड़ी इलायची, माजूफल शूद्ध समान भाग तथा दोनों के बराबर मिश्री मिलाकर महीन पीसकर रखें। २-२ माशा सुबह शाम जल से दें परीक्षित है।

साधारण बीमारियों के साधारण उपचार –

सामान्य पेट दर्द—अदरक का रस तथा मूली रस जितना ही दूध मिलाकर लेने से पेट दर्द में आराम मिलता है। अदरक के रस में अजवाइन मिलाकर ६-६ घंटे से लेने पर भी पेट दर्द में आराम मिलता है।

जूँ की दवा—सिर के बालो की जूँ नष्ट करने के लिए निम्बोली का बीज निकाल लें। इन बीजों को बारीक पीस लें और बालो में २ घंटे तक अच्छी तरह लगा रहने दें। धूप में बाल सूख जाएँ तो काली मिट्टी पानी

में घोलकर बालों में मसलें और बाल धो डालें। २-३ बार करने से जूँ समाप्त हो जाती हैं।

जोड़ो की सूजन—अमलतास की फुला लें। मसलकर छानकर आग पर पकाके गाढ़ा कर लें और इस लेप से जहां सूजन हो मालिश करें। सूजन उतर जायेगी।

ज्वर—तुलसी के ताजे पत्ते बराबर वजन में काली मिर्च लेकर दोनों को पीस लें और चने के बराबर गोलियां बनाकर सुखाकर शीशी में रख लें। बुखार होने पर बच्चो को १-१ व बड़ा को २-२ गोली शहद के साथ सुबह शाम देने पर बुखार ठीक हो जायेगा।

चेहरे की चमक—थोड़ा सा बादाम का तेल लें। विटामिन का कैप्सुल तोड़कर तेल में मिला दें। लगाने से पहले चेहरे को धोकर पोछ लें फिर पूरे चेहरे पर लगाकर कुछ देर तक हल्के-हल्के मसाज करते रहें। एक घण्टे के बाद चहरे को ठण्डे पानी से धो लें। कुछ ही दिनों में चेहरा चमकने लगेगा।

कान की पीड़ा—एक छोटी बरगद की डाल के सिरे को अंगुठे की मोटाई के बराबर बालिश्त भर तोड़ कर सेक लें। फिर उसको पकड़कर ऐंठ दें जब उसके अर्क की बूंदे टपकने लगें तो वही गर्म अर्क कान में २-३ बार डालें। दर्द तुरन्त दूर हो जाएगा।

सिर दर्द—गाय का ताजा घी सिर पर मालिश करने से सिर दर्द में शीघ्र आराम मिलेगा। यदि सिर दर्द गर्मी के कारण हो रहा हो तो प्याज सूंघिये और चंदन में थोड़ा सा कपूर मिलाकर माथे पर लेप करें। आराम मिलेगा।

होंठ फटना—रात्रि को सोने से पूर्व नाभि में मक्खन, सरसों का तेल या बादाम रोगन नियमित रूप से लगाने पर होंठ फटेंगे नहीं।

गंजापन—यदि प्रारम्भिक अवस्था वाला गंजापन हो तो पुराने आम के आचार के तेल की मालिश करने से गंजापन दूर हो जाता है।

गले की खराश—एक कप पानी में थोड़ा सी दालचीनी लेकर अच्छी तरह उबाल लें फिर उसमें थोड़ा सा अदरक का रस मिलाये और सहते गर्म पानी से गरारे करें। गले की खराश दूर हो जावेगी।

खांसी—सूखे हुए आंवले का चूर्ण बना लें और पिसी हुई मिश्री मिलाकर दिन में २-३ बार ताजे पानी के साथ लें, पुरानी खांसी दूर हो जायेगी तथा आवाज भी खुलेगी। टॉसिल वृद्धि रोग में भी लाभ होगा।

नकसीर—नाक से निकलने वाला खून नकसीर कहलाता है। ठण्डे पानी

में थोड़ी सी फिटकरी मिलाकर नाक में डालने से नकसीर तुरंत बंद हो जाती है।

दाँत का हिलना—मौलश्री की छाल नियमित रूप से चबाने पर असमय हिलने वाले दांत पुनः जम जाते हैं।

मुँह की दुर्गन्ध—गुनगुने पानी में थोड़ा सा नींबू का रस निचोड़कर उस पानी में कुल्ला करें, मुँह की दुर्गन्ध जाती रहेगी साथ ही दाँत भी चमक उठेंगे।

पैरों का गलना—बारिश में पैर और अंगुलियाँ गलने लगते है यदि इससें छुटकारा पाना हो तो पैरों पर सरसों का तेल लगा लें और मेहन्दी का पावडर छिड़क दें। नियमित रूप से करने पर जल्दी ही ठीक हो जायेंगे।

धातुओं का शोधन-मरण आवश्यक तभी (अमृता)

धातुओं का प्राप्ति खनन से होती है अतः स्थान भेद के अनुसार इनमें प्राकृतिक रूप से अन्य खनिज पदार्थ मिले हुये हो सकते हैं, इसके अतिरिक्त किसी भी अल्पमूल्य धातु को मूल्यवान् धातु में कृत्रिम रूप से सम्मिश्रित कर विपणन (व्यापार) किया जा सकता है, यह प्राचीन काल में कम होता था और वर्तमान काल में अधिक होता है।

मिलावट चाहे प्राकृतिक रूप से हो या कृत्रिम रूप से औषधरूप में धातु का प्राकृतिक स्वरूप ही होना आवश्यक है, इसलिये विभिन्न परीक्षणों और अनुभवों के आधार पर आचार्यों ने प्रत्येक धातु के शोधन के अनेक तरीके पृथक-पृथक रूप से बताये है।[5] जब शास्त्र निर्दिष्ट विधि से धातु को शुद्ध कर लिया जाता है तो उसका भस्म रूप में परिणत करने को विशिष्ट विधि का प्रयोग किया जाता है, इसे मारण कहते है [6] यह मारण भी प्रत्येक धातु का अलग-अलग रूप से होता है।

किसी भी धातु को विखण्डित या विचूर्णित करने की क्षमता किसी न किसी अन्य धातु खनिज द्रव्य या वनस्पति द्रव्य से होती है। अतः भस्म बनाते समय इन द्रव्यों के सहयोग से विशिष्ट विधिपूर्वक धातुओं की भस्में बनायी जाती हैं। उदाहरण के लिये यह कहा जा सकता है कि—लौह की भस्म बनाने के लिए त्रिफला आँवला, गोमूत्र, ग्वारपाठा आदि, वङ्गभस्म के निर्माण क्रम में अपामार्ग, अजवायन, पीपल के पेड़ की छाल, इमली की छाल आदि (नाग) भस्म के लिये हल्दी, निर्गुण्डी बीज आदि, यशद (जस्ते) की भस्म के लिये पारद, गन्धक, नींबू जीरा, हल्दी आदि, रजत (चाँदी) भस्म के लिये पारद-गन्धक-नींबू आदि का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त भस्म निर्माण के बाद उसका परीक्षण किया जाता है। उसके

बाद अनेक भस्मों का अमृतीकरण किया जाता है तभी वे काम में लेने योग्य होती हैं। काम में लेते समय भी उनके साथ औषधि-रुप में ऐसे द्रव्य मिलाये जाते हें जो उस भस्म का शरीर में शोषणपूर्वक उपयोग करवा सकें, साथ ही पथ्य एवं अपथ्य की हिदायत भी दी जाती है। ऐसा सब करने पर वह विशुद्ध भस्म शरीर में हानि नहीं करती है।

१. मुख सौगन्धिक – दालचीनी - छोटी इलायची के बीज-जायफल-नागकेशर–सब समभाग स्वर्ण वर्क १/४ भाग सब बारीक कपड़ छान कर के गुड़ की सहायता से १-१ रती की गोलियां बनायें और सोने के वर्क पड़ी एक कटोरी में डालकर अच्छे प्रकार हिला कर एक चौड़ी थाली में डाल कर सुखा लें। एक गोली मुंह में रखने से सभी प्रकार की मुख दुर्गन्ध दूर होती है।

२. मुख कान्ति – हरिद्रा बारीक चूर्ण–४ भाग, लालचन्दन–२ भाग मजीठ–१ भाग–सब का महीन चूर्ण कर के कपड़-छान कर लें। इस योग में से २ से ४ चम्मच तक यह महीन चूर्ण लेकर उस से दुगना दूध मिला कर गाढ़ा सा लेप बना लें। इस लेप को रात को सोने से पहले मुंह पर लेप कर के थोड़ी देर बाद सो जायें। प्रातः उठ कर बिना साबुन के मुंह धो लें, सर्दियों में गरम पानी में मुंह धो सकते हैं।

इस योग के बहि प्रयोग से मुंह की कीलें, यौवन की पिटिकायें, नीले काले दाग, फुंसी-मुहांसे आदि सब ठीक हो जाते हैं और चेहरा पूर्ण चन्द्रमा की तरह चमकने लगता है।

इस योग में कोई भी दूध लिया जा सकता है – किंतु बकरी का दूध विशेष लाभ करता है।

३. बालश्यामा – एक विशेष तैल जो बाल काले करने के लिये बहुत परीक्षित है।

आम की गुठली की गिरी – कान्तपाषण-गुंजाश्वेत मण्डूर-आमला -भांगर-सब समभाग लें, निहायत बारीक चूर्ण करें और एक स्थान पर मिला लें और भांगरे के रस में प्लावित कर के रखें, सात दिन के बाद सुखा लें। सफेदा असली-१ भाग - कमल की जड़ के पास की मिट्टी-१ भाग सब मिलाकर अनबुझे चूने के पानी से अच्छे प्रकार रगड़ कर बारीक चूर्ण कर के रख लें अब दोनों को मिला लें। आवश्यकता पर श्वेत बालों को साबुनादि से धोकर उपरोक्त योग को पानी में घोलकर गाढ़ा-सा लेप बना कर बालों पर लेप कर लें।

यह लेप बालों पर रात को लगा कर शिर पर कोई प्लास्टिक की टोपी

या केले का पत्ता बांध कर आराम से सो जायें, प्रातः बालों को पहिले सरसों आदि का तैल मल कर थोड़ी देर के बाद शिर को साबुन से धो लें—बाल काले हो जायेंगे। अब बालों पर आम की गुठली की गिरी का तैल या नारियल का तैल लगा दें। इस से शिर के बाल भंवरे की तरह काले हो जाते हैं और रंग बहुत काल तक स्थिर रहता है।

४. रक्षा धूप – नागर मोथा-सरसों श्वेत-भिलावाफल-करंजफल- कौंच बीज-गुड़ – सब सम भाग ले कर मोटासा सा चूर्ण कर लें। एक भाग इस योग में आक के फल (रुई वाला) वह भी बढ़ा दें। सब के बराबर राल मिला लें। अब रक्षा धूप तैयार है। इस को जलते हुवे कोयले या गोबरी पर डाल कर कमरे में रखें और कमरे की खिड़किया दरवाजे-पंखे आदि थोड़ी देर के लिये बन्द रखें—इस धूप से घर में से सब जहरीले मच्छर-खटमल, चूहे-छिपकली-बिच्छु-सांप आदि बहुत दूर भाग जाते है। विशेष अनुभूत है।

नाभिचक्र :- अत्यधिक बोझ उठाने, पाचन शक्ति मंद पड़ने या अत्यधिक गैस (वायु) उत्पन्न होने पर प्रायः मनुष्य को धारण (नाभ) पड़ जाता है। इसे नाभि चक्र भी कहते हैं। नाभिचक्र घड़ी के मेन स्प्रिंग जैसा होता है। यह छाती के परदे के नीचे स्थित सभी अवयवों का संचालन करता है इस नाभिचक्र का उल्लेख केवल भारतीय आयुर्वेद चिकित्सा में ही मिलता है। प्राचीन काल में चिकित्सा आरम्भ करने के पूर्व वैद्य नाभिचक्र का परीक्षण अवश्य करते थे।

शरीर को रोगमुक्त रखने में नाभिचक्र का विशेष महत्त्व है। नाभिचक्र के स्थान भ्रष्ट होने से कई रोग लग जाते हैं। कब्ज, दस्त, सुस्ती, पेट-दर्द, जी-मिचलाना, अपच, मंदाग्नि, थकावट आदि इसके उदाहरण हैं। नाभिचक्र के ऊपर की ओर सरकने पर कब्ज और नीचे की ओर सरकने पर वायुदाब के कारण दस्त की शिकायत होती है। दवाईयों से धरण पड़ने की यह तकलीफ दूर नहीं होती है। कोई भी उपचार शुरू करने से पहले इस बात की जाँच करना आवश्यक हो जाता है कि नाभिचक्र अपनी जगह पर है या नहीं। जब तक यह वापस यथास्थान नहीं आ जाती, किसी भी उपचार से अपेक्षित परिणाम नहीं निकल सकता।

नाभिचक्र की जाँच के लिए सुबह खाली पेट, पीठ के बल सीधा लेटकर एक हाथ का अंगूठा नाभि के अन्दर की ओर रखना चाहिए। यदि वहां (नामि में) हृदय की धड़कन जैसी, धड़कन महसूस हो, तो समझना चाहिए कि नाभिचक्र अपने स्थान पर है। परन्तु नाभिचक्र के सरकने पर धड़कन नाभि में नहीं, बल्कि उसके आप-पास मालूम होगी। ऐसी स्थिति में अंगूठे तथा

अंगुलियों की सहायता से नाभि की ओर हल्की दाब देते हुए सरका कर नाभिचक्र को अपने स्थान पर लाया जाता है। यह एक जटिल क्रिया है, इसलिए अनुभवी लोगों से ही ऐसा कार्य करवाना चाहिए।

नाभिचक्र को यथास्थान लाने अर्थात् धरण बैठानें का प्रयोग प्रातः खाली पेट या भोजन के तीन-चार घंटे बाद ही करना प्रभावी होता है। नाभिचक्र परखने और बैठाने की सामान्य विधियाँ निम्नवत् हैं—

(१) नाभिचक्र अपने स्थान पर है या नहीं, इसकी जाँच के लिए प्रातः काल, भूखे पेट पीठ के बल सीधा लेट जाना चाहिए और दोनों हाथ सीधे शरीर से सटाकर रखना चाहिए। कोई दूसरा व्यक्ति एक धागे द्वारा नाभी से दायं और बायें स्तनाग्र की नाप करें यदि नाप में दोनों की दूरी समान हो तो नाभिचक्र ठीक समझना चाहिए और यदि बायें और दायें स्तनाग्र की नाप में अन्तर हो तो नाभिचक्र सरका हुआ समझना चाहिए।

नाभिचक्र के ठीक हो जाने पर भी रोगी को पीठ के बल लेटकर अपने दोनों टांगों को धीरे-धीरे ऊपर की ओर १० डिग्री तक उठाना चाहिए पुनः धीरे-धीरे नीचे की तरफ पूर्ववत् लाना चाहिए। इस प्रकार कुछ दिनों तक अभ्यास करने से नाभिचक्र अपने स्थान से फिर नहीं हटती है और मनुष्य स्वस्थ रहता है।

नाभिचक्र की परख करने का दूसरा तरीका यह है कि सुबह भूखे पेट पीठ के बल सीधे लेटकर दोनों टांगों को सीधा रखना चाहिए, अगर नाभिचक्र अपने स्थान पर होगी तो दोनों पैर के अंगूठे समानान्तर होंगे और यदि नाभिचक्र अपने स्थान से हटी होगी तो किसी एक पैर का अंगूठा दूसरे से कुछ ऊँचा होगा। ऐसी स्थिति में नीचे वाले अंगूठे को हाथ से ऊपर की ओर खींचकर दूसरे के बराबर करके नाभिचक्र को अपने स्थान पर लाया जाता है।

नाभिचक्र के हटे होने पर, उसे ठीक करने का प्रभावी और प्राचीन तरीक़ा यह है कि प्रातः काल भूखे पेट पीठ के बल लेटकर एक छोटा-सा दीपक जलाकर नाभि पर रखना चाहिए। तत्पश्चात् जलते दीपक को पीतल या स्टील के गिलास से उलटकर रख देना चाहिए। कुछ देर में दीपक बुझ जाने पर गिलास के भीतर खालीपन होगा, जिससे यह नाभिचक्र को खींचकर केन्द्र में लाएगा। इस प्रयोग को प्रतिदिन दो-चार बार करना चाहिए। यह प्रयोग किसी अनुभवी व्यक्ति के साथ समापन करें क्योंकि कई बार गिलास लोटा त्वचा से इतना चिपक जाता है कि काफी कठिनाई से छुटता है।

पंचकर्म - सामान्य ज्ञान (पंचामृता)

रोगों के कारण को सम्पूर्ण जड़ से नष्ट करके तथा दोषों की समरुपता बनाने एवं बनाये रखने के लिए पंचकर्म एक सफल चिकित्सा पद्धति मानी गई है। चिकित्सा की दृष्टि से आयुर्वेद दो भागों में विभाजित है।

१. शमन चिकित्सा २. शोधन चिकित्सा

शोधन चिकित्सा : में शोधन चिकित्सायें जो पंचकर्म अर्थात् पांच प्रमुख माध्यमों में विभाजित हैं।

१. वमन कर्म–(कफ दोषों की विकृति के लिये उपयुक्त)

२. विरेचन–(पित्त दोषों की विकृति के लिये उपयुक्त)

३. वस्ति – (वात दोषों की विकृति के लिये)

४. नस्य – वात पित्त कफ त्रिदोषों की विकृति के लिये)

५. रक्त मोक्षण – रक्त धातु, वात, पित्त, कफ त्रिदोष के लिये।

१. वमन कर्म :- वमन का अर्थ है उल्टियाँ करना, इसके द्वारा शरीर में दूषित दोषों को मुख मार्ग के द्वारा बाहर निकाला जाता है। रोगी को मदनफल एवं सिद्धक्वाथ को पिलाकर उल्टियां कराई जाती है अर्थात् मदनफल एवं सिद्धक्वाथ वामक द्रव्य हैं।

२. विरेचन कर्म :- विरेचन अर्थात् अधोमार्ग (गुदामार्ग) से शरीर के दूषित दोषों को बाहर निकालना है। विरेचन कराने के लिये प्रशस्त विरेचन द्रव्य त्रिवृत, (निशोथ), अमलतास, एरण्ड, सनाय आदि है।

३. वस्ति कर्म :- इस कर्म में वस्ति् यंत्र द्वारा औषधि द्रव्यों का क्वाथ, स्नेह आदि द्रव्यों को गुदामार्ग द्वारा पक्वाशय में प्रविष्ट किया जाता है। गुदामार्ग के अलावा मूत्रमार्ग एवं योनि मार्ग में भी वस्ति कर्म किया जाता है अर्थात् वस्ति दी जाती है यानि औषध द्रव्यों को मूत्रमार्ग एवं योनि मार्ग में प्रविष्ट कराया जाता है। उसे उत्तरवस्ति कहा जाता है। जिस प्रकार मूत्रमार्ग में (मूत्राशय में) एवं योनिमार्ग में (गर्भाशय में) वस्ति दी जाती है। वस्तुतः वस्ति के प्रकारों में आधुनिक एनीमा है। क्योंकि अधिकतर मल के निष्कासन के लिये एनीमा दिया जाता है। वस्ति कर्म को पूर्व कर्म स्नेहन – स्वेदन वमन, विरेचन आदि की तुलना में श्रेष्ठ माना गया है। इनमें तैल, घृत, मज्जा, वसा आदि की वस्ति देनी चाहिये। आचार्य सुश्रुत ने मधु का भी उल्लेख कर मधुतैलिक वस्ति बतायी है।

४. नस्य कर्म :- "नासा हि शिरसोद्वारं" अर्थात् नासा शिर का द्वार माना जाता है। शिर के विकारों में नस्य कर्म की प्रमुखता बतायी गयी है। नासिका मार्ग के द्वारा औषधियां औषधिसिद्ध स्नेहों को नाक द्वारा ग्रहण कराया

जाता है। इसे शिरोविरेचन, शिरोविरेक व मूर्धा विरेचन, शिर शमन भी कहा जाता है। प्रमुख रूप से शास्त्रों में उर्ध्वजत्रुगत रोगों में षड्बिन्दु तैल एवं अन्य नस्य द्रव्यों का नस्य देने का विधान है।

५. **रक्तमोक्षण कर्म :-** इस क्रिया में दूषित रक्त को एक निश्चित मात्रा में शरीर से बाहर निकाल देना या मुक्त करना है। पित्तज रोगों में रक्तमोक्षण प्रमुख रूप में उपयोगी होता है। क्योंकि खर एवं पित्त में आश्रय आश्रयीभाव रहता है। जिसके कारण खर के निष्कासन के समय पित्तज दोष का भी निष्कासन होता है। **रक्तमोक्षण** एक तो चिकित्सक शस्त्र के द्वारा रक्तस्राव कराता है। दूसरा जलौका श्रृंगी आदि के द्वारा दूषित रक्त का अवचूषण होता है।

ये उपरोक्त पांचों कर्मों का (पंचकर्म का) सामान्य परिचय बताते हुये हम आपको अब पूर्व कर्म अर्थात् वह कर्म जो उपरोक्त पांचों कर्म (पंचकर्म) करने के पहले रोगी को कराना चाहिये। यह प्रमुख रूप से दो बताये गये हैं :—

१. स्नेहन कर्म
२. स्वेदन कर्म

स्नेहन कर्म—अर्थात् कुछ दिनों तक विविध औषधियों में से सिद्ध स्निग्ध पदार्थ जैसे तैल, घी आदि शरीरिक बाह्य एवं आम्यंतर मार्गों द्वारा शरीर में पहुंचाना पड़ता है। अर्थात् अम्यंग कराना पड़ता है। अर्थात् इसमें स्नेह द्रव्य का अ़ल्प मात्रा में सेवन कराना चाहिये।

स्वेदन कर्म— यानि विशिष्ट निर्धारित समय तक औषधिसिद्ध क्वाथ की वाष्प को शरीर पर लेना अर्थात् स्वेद उत्पन्न करने वाली प्रक्रिया स्वेदन कहलाती है। इसमें आवश्यकता के अनुरूप आग्नेय विधियों का प्रयोग किया जाता है। यह स्थानिक एवं सर्वदैहिक रोग की स्थिति को देखते हुये करना चाहिये। पूर्व कर्म के अतिरिक्त पश्चात् कर्म जो संसर्जन कर्म के नाम से जाना जाता है। उसके बारे में सामान्य जानकारी जाननी चाहिये। इसमें एक निश्चित समय तक रोगी की पथ्य व्यवस्था एवं विशिष्ट दिनचर्या बताई गई है।

पंचकर्म चिकित्सा आयुर्वेद में महत्त्वपूर्ण है।.इसे पंचामृता चिकित्सा भी कहते हैं।

आयुर्वेद का एक भाग अगद तंत्र (विष विद्या) है (अहिमा)

१. तांत्रिक अंगूठी— एक सेर केचुआ (वर्षा ऋतु में लम्बे पैदा होते हैं) लेकर एक पाव हल्दी मिलावें १ ऊन, सुहागा, मछली, गुड़ गुग्गुलु, लाख

(लाक्षा) तिल की खरी १-१ छटांक डालिए। सबको पीसकर गोला बना लीजिए पाताल यंत्र से सत्व निकालें तो ताम्र निकेलेगा। उसकी अंगूठी बनाकर पहनिए जब पुष्यनक्षत्र में सूर्य हो उसको विषदोष नहीं होता उसे धोकर पिलाने से सभी प्रकार जहर उतर जाता है।

२. सर्वविध विषरक्षा– पुष्यनक्षत्र आने पर एक वर्ष तक चावल के धोवन के साथ सफेद पथर चटा बूटी पीते रहें तो कोई विष प्रभावित नहीं करता।

३. जब-जब वृष राशि में सूर्य हो शिरसा (सिरीष) का बीज एक खाएं तो वर्ष भर सर्प जहर प्रभाव नहीं करेगा।

४. नागपंचमी के दिन नागमोड़ी बूटी १ माशा (१२ रती) पानी में पीसकर १ छटांक तेल में पकाकर मालिश करें तो एक वर्ष तक सर्पविष प्रभावित नहीं होगा।

५. अजैपाल के बीज मोरपक्षी के अंडे में छेदकर भर दीजिए १५ दिन तक रखिए। फिर छाया में सुखा लीजिए महीन छानकर शीशी में रख लें उसका आखों में अंजन करें तो काले सांप का विष नष्ट होता है।

६. पलाश वृक्ष (ढाक) जड़ १ तोला ५ काली मिर्च पीसकर जल में पिलाए तो सर्प विष नाश

७. नेवला का दांत लेकर तावीज बनाकर पहनने से सर्प पास नहीं आता।

८. शिरष (शिरीष) वृक्ष के पुष्प स्वरस में सफेद मिर्च (काली मिर्च का भेद) धोंट पीस ७ दिन रखिए उसे जल से पिलाने तथा आंख में लगाने से सर्पविष नष्ट होता है।

९. मरी छछूदर को सम्पुट कर गजपुट आग में रख फूंके फिर उस चूर्ण को ३ रती मात्रा में गाय के मटठे के पिला दें तथा नाक से सुंधा दें तो सांप का जहर उतर जाता है।

बिच्छु विष

१. अजैपाल को जल में रगड़कर जहां बिच्छु का डंक हो लगा दें तो विष उतर जाता है।

२. नौसादर और हड़ताल बराबर पानी में पीसकर लगावे बिच्छु दर्द नाश।

३. मूली के बीज पीस लेप करें। अथवा इमली बीज को घिसकर बिच्छु काटे की जगह चिपका दें तो जहर समाप्त

४. चमगादड़ के दो नेत्र जो अपने पास रखे या ताबीज बनाकर पहने तो बिच्छु का भय नहीं रहता।

कुत्ता काटे का विष

१. विजौरा निब्बू की जड़ जल में पीसकर पिलावे

२. चूहे के बिल की मिट्टी कटे जगह लेप करें

३. आक के २ पत्ते ५ मिर्च जल से पीसे पिलावें।

विष चिकित्सा (अहिमालाभा)

सांप के काटने पर : सांप बहुत विषैला कीड़ा होता है, इसकी कई जातियां होती हैं। जिनमें कई विष रहित हैं तो कई विषैली हैं। सांप के काटने पर निम्नांकित कुछ ऐसे उपाय हैं जो सर्प विष के दुष्प्रभाव को दूर करते हैं। इनमें उस समय जो याद आ जाए या घर में उपलब्ध हो वैसा उपाय करें ताकि रोगी कि जान बच जाऐ।

- जैसे ही यह जानकारी हो कि रोगी को सांप ने काट लिया है। तो उसे तुरन्त एक पाव घी या ऐसी कोई वस्तु पिला देनी चाहिये ताकि उल्टी हो। उल्टी के साथ विष निकल जायेगा। जहां पर सर्प ने काटा हो उस स्थान को थोड़ा और काट दें तथा दबायें ताकि अच्छी तरह खून बह जाये। इससे विष का प्रभाव दूर होगा।

- सांप के काटने पर तीन ग्राम नौशादर को पानी में घोलकर पिला देना चाहिए। पांच मिनट पश्चात् ६ ग्राम चूना और ६ ग्राम नौशादर पीसकर रोगी को थोड़ी-थोड़ी देर पर सुंघाते रहें। फिर यह पिसी सामग्री दोनों नाक के नथूनों में भरकर नथुनों को बन्द कर देना चाहिये। ध्यान रहे कि अधिक देर तक नथुनों को बन्द नहीं करें। सहनशक्ति को देखते हुए तदनुसार ही बन्द रखें। हाथ पैर पकड़े रहें।

– ५ ग्राम पीने वाला तम्बाकू लेकर सौ ग्राम पानी में घोलकर पिलायें, जिससे सर्प काटे व्यक्ति को उल्टी हो जायेगी और विष बाहर निकल जायेगा।

– केले के पेड़ के बीच का गूदा पीसकर रस निकालें और उसे सांप काटे हुए रोगी को बार-बार पिलायें।

– यदि मोर के अण्डे मिल जाए तो उनमें छोटे-छोटे छेदकर छेदों में काली मिर्च भर कर छेदों को मोम से बन्द कर दें। इस प्रक्रिया से काली मिर्च अण्डों के रस को चूसकर फूल जावेगी। ८ दिन बाद अण्डे को फोड़कर काली मिर्च निकालकर छाया में सुखाकर रख लें।

जब कभी किसी को सांप काट ले तो आधा किलो केले के डण्ठल को पानी में १४ दाने काली मिर्च पीसकर मिला लें। इस घोल को २–२ मिनट में १-१ चम्मच पिलाने से सर्प विष समाप्त हो जाता है।

– छः ग्राम साठी की जड़ ग्यारह दाने काली मिर्च दोनों को पानी में घोलकर रोगी को पिलाकर से सर्प विष समाप्त हो जाता है। हर आधे घंटा में पिलाना चाहिये।

– सफेद कनेर की जड़ बारह तोले लेकर उसमें सात दाने काली मिर्च महीन पीस लें। दोनों के घोल को एक घंटे तक किसी शीशी में भरकर रख दें हिलाकर रोगी को धीरे-धीरे पिलाने से सर्प विष उतर जाता है।

बिच्छू के काटने पर : बिच्छू काटने की पीड़ा भुक्तभोगी ही जान सकता है। इसमें झन्नाटे दार पीड़ा होती है तो असहनीय होती है। नीचे कुछ ऐसे प्रयोग दिये जा रहे हैं जो बिच्छू के दर्द और विष दूर करने में कार्यकारी हैं।

– जिस स्थान पर बिच्छू ने डंक मारा हो उस स्थान पर निर्मिली के बीजों को पानी भिगोकर घिसकर दंश स्थान पर चिपका दे। जब तक विष रहेगा तब तक निर्मली रहेगी इसके बाद स्वतः गिर जायेगी।

– बिच्छू के डंक मारे स्थान पर नौसादर काफी मात्रा में (पिसा हुआ) रखकर एक मोटे कपड़े से पट्टी बांध दें। फिर ठण्डे पानी की धार कुछ देर तक छोड़ें। लाभ होगा।

– इमली और चूना पीसकर डंक मारे स्थान पर लगाने से दर्द दूर हो जाता है।

– प्याज और फिटकरी पीसकर दंश स्थान में बांध देने से लाभ होता है।

– रोगी को एक ग्राम चूना पानी में घोलकर पिला देने से बिच्छू का विष उतर जाता है।

– सीताफल का डण्ठल को पानी में घिसकर बिच्छू डंक मारे स्थान पर लगाने से विष उतर जाता है।

बर्र के काटने पर : जिस स्थान पर बर्र ने काटा हो वहां गेंदे की पत्ती खूब मल दें। लाभ होगा।

–दिया सलाई की तीली के मसाले को निकालकर भिगोकर पीसकर बर्र काटे स्थान पर लगाने से तत्काल लाभ होगा।

कुत्ता काटने पर : कुत्ता, बिल्ली, सियार के काटने पर पहले यह पता लगाना चाहिये कि वह जानवर पागल तो नहीं हुआ। निम्नांकित लक्षण यदि दिखायी दें तो यह माने कि वह पागल हो गया है तदनुसार चिकित्सा करें।

– पागल कुत्ता, बिल्ली सियार के निचले जबड़े और पांव कमजोर हो जाते हैं।

– जो जानवर पानी से डरता हो उसे निश्चय ही पागल समझना चाहिये।

– कुत्ता घर से दूर भागने की इच्छा करे कुत्ते के मुंह से झाग या लार बहती हो, कुत्ते के भोंकने का ढंग बदला हुआ हो, कुत्ते की ओर कोई लकड़ी या वस्तु फेंके और उस पर वह लपके तो समझ लेना चाहिये कि वह पागल है।

– जब किसी को कुत्ते ने काट लिया हो उस स्थान को तत्काल पानी से धो डालें। जब वह सूख जाय तो जख्म में लालमिर्च पीसकर भर देनी चाहिये।

– जिस स्थान पर कुत्ते ने काटा हो तो उस स्थान पर ग्वार पाठा (घृतकुमारी) को एक ओर छीलकर उस सेंधा नमक बारीक छिड़ककर बांध देना चाहिये। यह क्रिया दो-तीन दिन बराबर दोहरानी चाहिये।

अन्य विषों की चिकित्सा

१. दूर्बारस और मिश्री जल से पिलाइए धतूरा जहर उतरे। अफीम धतूरा की दवा-रीठा फल की छाल को जल में पीसकर पिलाइए नशा उतर जाता है।

२. जितनी अफीम खाई हो उतनी मात्रा में हींग खिला दीजिए

३. आमला की पत्ती आधा सेर पानी में पीस १-२ बार पिलाइए

४. कस्तूरी अधिक खा जाए तो नीबू रस पिलाइए

५. हड़ताल जहर खाने पर बटवृक्ष की लाख घी के साथ खिलावे

६. शंखिया–नवनीत (मक्खन) खिलाइए अथवा आम के बीज को पीसकर जल में पिलाइए।

७. नीला थोथा, तूतिया, मुर्दाशंख, गांजा, भांग, मनसिल आदि के जहर होने पर मट्ठा खूब पिलाइए।

८. छोटे मोटे उपरोक्त जहर दोष मिटाने के लिए समुद्र फेन को दूध के साथ पिलायें।

९. शुद्ध स्वर्ण माक्षिक सुवर्ण वर्क शहद मिश्री के साथ लेते रहने से व्याप्त विष धीरे-धीरे समाप्त हो जाता है।

कच्ची धातु भक्षण जन्य विष चिकित्सा

१. अशुद्ध सुवर्णभस्म दोषनाश के लिए भूनी हरड और चीनी मिलाकर तीन दिन सेवन करें।

२. चांदी और ताम्रभस्म दोष निवारण के लिए धनियां शक्कर तीन दिन पिलावें।

३. भल्लातक– कुचला विष निवारण के लिए चौलाई स्वरस मधु मिश्री के साथ पिलाने से ठीक।

४. जमालगोटा अधिक खाने से चन्दन धनियां शहद दही रस मिलाकर पिलाने से आराम।००

केन्द्र बिन्दुओं की मालिश से रोग निवारण (अंगावली)

बाह्य हथेली

आयुर्वेद चरक में १०७ मर्मो का वर्णन 'मर्मशरीरम्' के अध्याय में दिया गया है। शारीरिक मर्मो के अतिरिक्त कुछ केन्द्र बिन्दुओं का मर्म चिकित्सकों ने अनुसंधान किया। जिसके आधार पर हमारे शरीर में कुछ केन्द्र बिन्दु हैं। जिनकों संबंधित रोगों के निवारण के लिए ५-७ मिनट तक मसलने से प्राण वायु गति अवरोधको की सफाई होने से रोग का शमन हो जाता है।

दक्षिण (दायें) हाथ के केन्द्र बिन्दु :-

१. दायें हाथ के पृष्ठ भाग में स्थित केन्द्र बिन्दुओं का विवरण; दक्षिण (दायें) हाथ के पृष्ठ भाग में मुख्य रूप से १ केन्द्र बिन्दु है। अंगूठे से नीचे तर्जनी अंगुली की नस पर है। इस केन्द्र के बिन्दु के दबाने से वमन (उल्टी) आकस्मिक कान का दर्द आदि विकारों का शमन होता है।

२. द्वितीय क्रम संख्या का केन्द्र बिन्दु अंगुष्ठ के मध्य भाग में स्थित है। लू लग जाना या मुख लाल हो जाने पर इसके मसलने से लाभ होता है।

३. तृतीय केन्द्र बिन्दु तर्जनी अंगुली के नख से थोड़ा ऊपर स्थित है। बड़ी आंत में दर्द या अन्य विकार होने पर तथा डूरिग डेनाटिस्ट होने पर इस केन्द्र के दबाने से लाभ होता है।

४. चतुर्थ केन्द्र बिन्दु माध्यमा अंगुली में नख से ऊपर है। ब्लड प्रैशर के होने पर दबाना लाभकारी सिद्ध होता है।

५. पंचम केन्द्र बिन्दु अनामिका अंगुली में नख से ऊपर है। इस केन्द्र बिन्दु के मसलने से सम्पूर्ण शरीर में शक्तिसंचार होता है।

६. षष्ठ का केन्द्र कनिष्ठिका अंगुली प्रथम पर्व के मोड़ पर स्थित है। इस मर्म को मसलने से छोटी आंत तथा हृदय में होने वाले विकारों का शमन होता है, इस मर्म केन्द्र का संबंध इन स्थानों से है।

७. सप्तम मर्म–केन्द्र अनामिका तथा कनिष्ठिका अंगुलियों के मूलों

के मध्य में स्थित हैं। इस मर्म का संबंध हृदय से है। इस मर्म को मसलने से हृदय संबंधी रोग दूर होते है।

८. अष्टम मर्म–केन्द्र कनिष्ठका के मूल में बाहर की ओर स्थित है। इस मर्म का सम्बन्ध मस्तिष्क के ज्ञान तन्तुओं से है। इसके मसलने से दौरे के कारणों का शमन होकर शीघ्र आराम होता है।

९. नवम मर्म–उपरोक्त सप्तम व अष्टम मर्मो के मध्य में नीचे की ओर स्थित है, इस मर्म का सम्बन्ध मानसिक तन्तुओं से है, इसके मसलने से मानसिक तथा शारीरिक स्फूर्ति तथा मानसिक चेतना और प्रसन्नता अनुभव होती है। इसके अतिरिक्त यह कोहनी से सम्बन्ध होने के कारण वहां के विकारों को ठीक करने में भी सहायक है।

१०. दशम मर्म–्दक्षिण हस्त की कलाई में बाहर की ओर उठी हुई ग्रंथि के पास यह स्थित है। सिर तथा गर्दन सम्बन्ध है। इस केन्द्र को शनैः शनै मसलने से सिर की पीड़ा तथा गर्दन की पीड़ा शांत होती है और बाहु में आने वाली शिथिलता दूर होती है।

बायें हाथ की (हथेली)

बायें हाथ की हथेली में प्रमुख रूप से १२ मर्म स्थान अभी तक अनुभव में आये हैं जिनको जानकर विधिपूर्वक दबाने से निर्दिष्ट रोगो की शांति होती है इन मर्मो का विवरण इस प्रकार है :–

१. प्रथम मर्म केन्द्र कनिष्ठा अंगुली के पहले पर्व में स्थित है इसका संबंध हृदय से इस मर्म केन्द्र के मसलने से दिल के दौरे तथा दबाव या भारीपन-सा होने का रोग नष्ट होता है।

२. द्वितीय मर्म केन्द्र मध्यमा अंगुली के प्रथम पर्व में स्थित है इसका संबंध रक्त के नियंत्रण से है। इस मर्म के मसलने से रक्त चाप का नियंत्रण होता है। तथा रक्त संचार न होने पर रक्त परिभ्रमण करने लगता है।

३. तृतीय मर्म केन्द्र तर्जनी के द्वितीय पर्व में मोड़ के पास स्थित है। आमाशय में वायु निरोध के कारण हिचकी का विकार होता है। इस केन्द्र के दबाने से हिचकी बंद हो जाती है।

४. चतुर्थ मर्म केन्द्र अंगूठे के प्रथम पर्व में बाहर की और स्थित है इसका संबंध फेफड़े से है। इस केन्द्र के मसलने से फेफड़े के विकारों का नाश होता है।

७. सप्तम मर्म केन्द्र कलाई के ऊपर की ओर अंगूठे वाली नस पर स्थित है। विषाक्त भोजन कर लेने पर स्थान विशेष पर आघात लग

जाने पर शक्ति का ह्रास होने पर तथा श्वास प्रक्रिया बंद होने पर इस मर्म के मसलने से इन विकारों में लाभ होता है।

८. यह मर्म केन्द्र कलाई में मध्यमा अंगुली की नस पर स्थित है। कण्ठ प्रदाह (गले में जलन) पीड़ा बायें बांह में दर्द एवं छाती में विकार आदि रोगों में इस मर्म केन्द्र के मसलने से लाभ होता है।

९. दशम मर्म केन्द्र कनिष्टका, अंगुली की सीध में गद्दी जैसी मोटे भाग में स्थित है। रोगी को जब दौरे पड़ते हों या भय प्रतीत होता है। मिरगी (मूर्च्छा) एवं अशांति (घबराहट) होती है तब इस केन्द्र शनैः-शनैः मसलने से चेतना के साथ शांति अनुभव करने लगता है।

१०.,११. ये दोनों केन्द्र बिन्दु कनिष्टका एवं अनामिका के बीच में थोडे नीचे की ओर तथा मध्यमा एवं अनामिका के बीच थोड़े नीचे स्थित है। ये दोनों केन्द्र हृदय से संबंध है। इनके निरीक्षण से हृदय की गति तथा निरोगता की जांच की जाती है। दशम केन्द्र हृदय रेखा पर स्थित है।

पादतल (पैरों के तलवों) के मर्मो का ज्ञान तथा रोग निवारण दक्ष पादतल (दाये पैर का तलवा) -

शरीर विज्ञान के मर्मज्ञों ने मानव के सम्पूर्ण शरीर का संबंध पैरों के तलवों से बताया गया है। हृदय उदर में सूक्ष्म अवयवों का संबंध भी पैरों से है। इन मर्म बिन्दुओं की जानकारी पाठकों की ज्ञानवृद्धि एवं रोग निवारण हेतु यहां दी गई है :-

१. प्रथम केन्द्र बिन्दु दक्षिण पैर के अंगुठे में स्थित है इसके दबाने से बिगड़ा हुआ प्रतिश्याय (जुकाम) ठीक होता है।

२. दूसरा मर्म केन्द्र पैर के अगले भाग में स्थित है, इसका संबंध फेफड़ों से है। इस मर्म केन्द्र को दबाने से फेफड़ो के विकार दूर होते है और निर्बल फेफड़े भली-भांति कार्य प्रारम्भ कर देते है।

प्राचीन काल में आश्रमों में निवास करने वाले ऋषि-मुनि महात्मा अथवा राजा भी काष्ठ की पादुका पहनते थे। रामायण की प्रसिद्ध घटना है कि जब रामचन्द्र जी अपने पिता राजा दशरथ की आज्ञा का पालन करने के लिए निज धर्म पत्नी सीता तथा छोटे भाई लक्ष्मण के साथ चौदह वर्ष के लिए वनवास को चले गये। भरत उस समय ननिहाल में थे। लौटकर आने पर रामचन्द्र जी का वन प्रस्थान उसे बहुत असह्य हुआ। भरत से रामचन्द्र जी का वियोग सहन नहीं हुआ और उसी समय उन्हें वन से लौटाने को चल पड़े। रामचन्द्र जी के मिल जाने पर अयोध्या लौटने को लिए रामचन्द्र जी ने भरत को बहुत समझाया और

राज्य को सम्भालने को कहा। भरत ने भाई के प्रेम के वशीभूत अपने नाम से राज्य सम्भालने को भी मना कर दिया। अंत में वह रामचन्द्र जी की चरण पादुका लेकर, उन्हें राजगद्दी पर रख, खुद भूमि पर निवास करते रहे। इस प्रसंग से हमारा तात्पर्य है कि पहले राजा भी खड़ाऊ पहनते थे। अंगूठे को शुक्र नाड़ी से संबंध होने के कारण खडाऊ काष्ठ की होने से विशेष लाभ होता है। आधुनिक काल में मुलायम तलवे के जूते या चप्पल पहनने वाले इस लाभ से वंचित रहते है और हृदय तथा फेफड़ो के रोगी प्रायः देखे जाते हैं।

३. तीसरा मर्म केन्द्र अंगूठे से नीचे की ओर स्थित है, इसका संबंध गले से है। इसको दबाने से गला दर्द, सूज जाना तथा ब्रण आदि विकारों का शमन होता है।

४. द्वितीय मर्म के नीचे बाहर की ओर चौथा मर्म स्थान है इसका सम्बन्ध दायें कन्धों से है। यहां दबाने से कंधों का दर्द तथा अन्य विकार शांत होते हैं।

५. यह मर्म स्थान चतुर्थ मर्म केन्द्र के पास अन्दर की ओर है, इसका संबंध यकृत से है। इस स्थान को दबाने से यकृत का विकार दूर होता है।

६. यह छठा मर्म स्थान पंचम मर्म के किनारे तृतीय मर्म के नीचे है। इसका संबंध आमाशय से है। इस स्थान पर दबाने का प्रभाव आमाशय पर पड़ता है। भोजन पाचन में भी लाभकारी होता है।

७. पैर के ठीक बीच में से सप्तम मर्म का स्थान है। इसका संबंध मूत्राशय से है। इस स्थान पर दबाने से या बार-बार मसलने से मूत्राशय के विकार दूर होते हैं।

८. सप्तम केन्द्र बिन्दु से दक्षिण की ओर बड़ी आंत की आकृति से मिलता हुआ स्थित है। इस स्थान को दबाने से तथा मसलने से बड़ी आंतों की सूजन आदि विकार नष्ट होते है।

९. नवम केन्द्र बिन्दु सप्तम केन्द्र बिन्दु से बायें ओर स्थित है। इसका सम्बन्ध गुर्दे से है। इसके दबाने से गुर्दे में होने वाले रोगों की निवृति होती है।

११. किडनी तथा पेशाब ग्रन्थि को मिलाने वाली मूत्रनली ग्यारहवें केन्द्र पर स्थित है। इसके दबाने से मूत्रनली की विकृति दूर होती है।

१२. बारहवां केन्द्र बिन्दु पेशाब की ग्रन्थि है। इससे पेडू की हड्डी भी संबंधित है। इसके दबाने से पथरी के रोग या मूत्र विकारों में लाभ होता है।

१३. तेरहवां केन्द्र बिन्दु नलिका के समान पूरे पैर में एड़ी को अलग करता है। इससे मेरूदण्ड की अस्थि का संबंध है। इससे मेरूदण्ड के विकारों का नाश होता है।

१४. एड़ी के पिछले भाग में यह केन्द्र बिन्दु स्थित है। इसके दबाने से खूनी बवासीर में अत्यन्त शीघ्र लाभ होता है। खडाऊ पहनने से इस स्थान पर बराबर दबाब पड़ता है। इस कारण बवासीर का रोग नहीं होता।

इन चौदह केन्द्र बिन्दुओं के अतिरिक्त अन्य बहुत से सूक्ष्म केन्द्र बिन्दु है। जिनका संबंध शरीर के विभिन्न स्थानों से है। दोनों पैरों में अंगूठा तथा दो पास खाली अंगुलियों के अगले भाग में मस्तिष्क से संबंधित केन्द्र है, जो कि मस्तिष्क की निर्बलता को दूर करते है। पहली दोनों अंगुलियों के मूल में आंखों से संबंधित केन्द्र स्थित हैं। शेष दोनो कनिष्ठका एवं कनिष्ठका के साथ वाली अंगुली के मूल में कानों से संबंधित केन्द्र बिन्दु है।

सामान्य रूप से दोनों पादतलों के केन्द्र बिन्दु समान स्थिति रखते है। इनके अतिरिक्त वाम पादतल (बायें पैर के तलवे) में जो विशेष केन्द्र है, उन्हें नीचे वर्णित किया गया है।

१. वाम बायें पैर के तलवे के लगभग मध्य भाग में हृदय का केन्द्र बिन्दु है इस केन्द्र के दबाने से हृदय के विकार नष्ट होते है हृदय की निर्बलता तथा हृदय का स्तम्भन इसके दबाब से अधिक समय तक नियमित कार्य करता है।

२. वाम (बायें) पैर के मध्य से बाहर की ओर द्वितीय विशेष केन्द्र प्लीहा तिल्ली का है। रक्त का शोधन न होना, शरीर पीला पड जाना, भूख न लगना आदि विकारों में इस स्थान को दबाने से इन रोगों से छुटकारा मिलता है।

३. बायें पैर के तृतीय केन्द्र बिन्दु से शरीर के बायें फेफड़े के विकारों की निवृत्ति, तथा मध्य मस्तिष्क संबंधित है। इन ग्रेन्थियों को दबाने से मस्तिष्क दुर्बलता, चक्कर आना, स्मृति विभ्रग तथा मस्तिष्क संबंधी अन्य दोषों का विनाश होता है।

६. इस केन्द्र बिन्दु का स्थान एड़ी के पास साइटिका से नीचे हैं इस केन्द्र का संबंध जननेन्द्रिय (मूत्रनली) से है। सुजाक तथा मूत्र विकार के अन्य रोगों में इस केन्द्र के दबाने से लाभ होता है।

रीढ़ की हड्डी का महत्त्व एवं रोग का कारण

मनुष्य के शरीर को सीधा रखने में मेरूदण्ड़ का मुख्य कार्य है। हमारे पृष्ठ भाग में यह नाड़ियां स्थित हैं। इस मेरूदण्ड़ में २४ कसेरू प्रमुख रूप से होते हैं। इन कसेरूओं में अन्दर से छिद्र होता है। इसके दोनों ओर दो नाड़ियां है। बायीं नाडी का संबंध बायी ओर से नासिका छिद्र से है, इस को चन्द्र (इड़ा) नाड़ी कहते है। दूसरी नाड़ी दायीं ओर रहती है, जिसका संबंध दायीं ओर के नासिका (छिद्र) से रहता है, इसको सूर्य (पिंगला) नाड़ी कहते है। इन दोनों के बीच में सूक्ष्म सुषुम्ना नाड़ी है। इसमें सूक्ष्म प्राणसंचार होता है। शारीरिक प्राणशक्ति, इसमें संचार करती है। इस मेरूदण्ड़ से शरीर के प्रमुख केन्द्रों का नाड़ियों द्वारा सम्बन्ध जुड़ा रहता है। कुछ प्राणवाहिनी नाड़िया है, कुछ रक्तवाहिनी। इसी प्रकार कुछ ज्ञानवाहिनी (चेतना) की अनुभूति कराने वाली है।

मेरूदण्ड़ के २४ कसेरूओं को रगड़ से बचाने के लिए प्रत्येक कसेरू के बीच में श्लेष्मिक (ग्रीस) जैसा पदार्थ भरा रहता है। जिसमें विकार होने के कारण कमर में दर्द या नीचे के हिस्से का बेकार हो जाना आदि रोग हो जाते है।

इसी प्रकार कभी नीचे-ऊंचे में पैर रखने से इन ग्रन्थियों में दूरी कम या अधिक हो जाती है। तो शरीर में दर्द होने लगता है और श्वास प्रक्रिया में भी बाधा पड़ने लगती है। इडा नाड़ी से श्वास चलता है तो शरीर में शीतलता का प्रभाव रहता है। पिंगला नाड़ी के अधिक चलने से शरीर उष्मा से प्रभावित रहता है। नाड़ी विशेषज्ञों के अनुसार एक स्वर से दूसरे स्वर के परिवर्तन में २ घड़ी (लगभग १ घण्टा) का समय लगता है। जब दोनों नाड़ियां समान रूप से श्वास-प्रश्वास करती है तो सुषुम्ना नाड़ी से आते है। जब सुषुम्ना के कसेरू किसी कारण गतिरोधित हो जाते हैं तो श्वास में अंतर पड़ जाता है। इसी कारण शरीर के सूक्ष्म तन्तुओं में भी अन्तर पड़ जाता है और शरीर अनेक व्याधियों का शिकार हो जाता है।

मेरूदण्ड़ के मसलने से रोग निवारण-मेरूदण्ड़ के कसेरूओं में कमी जा आने पर रोगी को मेरूदण्ड़ के आसन करने चाहिए। इसके अतिरिक्त

प्रातः खाली पेट रहते हुए रोगी को पेट के बल लिटा कर रीढ़ में तेल लगाकर धीरे-धीरे मसलना चाहिए। इस क्रम को ८-१० मिनट तक करें इस प्रकार ४-५ दिन करने से शरीर में होने वाले विकार शांत हो जाते हैं।

स्नायुतंत्र या वातनाड़ी

हमारे शरीर के अन्दर स्नायुतंत्र वह संस्थान है जिनसे गति, भाव या चेतना की अनुभूति होती है, इसे सम्बन्ध में विशिष्ट अध्ययन हम इस प्रकार कर सकते हैं।

१. संवेदनिक नाड़ियां

२. सौषुम्न या मस्तिष्क मेरूदण्ड सम्बन्धी नाड़ियां

सांवेदनिक नाड़ियों से पोषण संस्थान, रक्तवाहिनियों संस्थान के अवयव (Organs) एवं ग्रंथियों को स्नायु प्राप्त होते हैं। ये सौषुम्न नाड़ियों से मिली हुई होती है। इनके दो भाग होते हैं जो कि कशेरूकाओं के दोनों ओर लगे होते हैं। प्रत्येक भाग में गुच्छे सदृश स्नायु हैं। इन गुच्छों को नाड़ी गण्ड (Gangliza) कहते है। नाड़ी या स्नायु सूत्र के सिरे जो नाड़ी गण्ड से मिले होते हैं। उन्हें नाड़ी जाल या स्नायु जाल (Plexuses) कहते हैं।

सौषुम्न नाड़ी संस्थान इस प्रकार है :

१. मस्तिष्क– बृहत्त मस्तिष्क (Cerebrum)
लघु मस्तिष्क (Cereleellum)

२. मस्तिष्क सेतु (Pons Verdii)

३. सुषुम्ना

४. नाड़ी धर, नाड़ी सूत्र, नाड़ी-पुच्छ

वृहत मस्तिष्क (Cerebrum)- यह दो भागों में बंटा होता है। दोनों भागों के बीच एक दरार (Sagital fissures) होती है। इस दरार के द्वारा मस्तिष्क जिन दो भागों में बंटता है उन्हें मस्तिष्क गोलार्ध (Cerebral hemispheres) कहते हैं। ये दोनों गोलार्ध दायें और बायें ओर अवस्थित होते हैं, दायीं ओर वाले को दायीं गोलार्ध (Right hemisphere) और बायीं ओर वाले को बायीं गोलार्ध (Left hemisphere)

कहते हैं। दोनों गोलार्ध दो भागों में मात्र ऊपर से विभक्त होते हैं, दोनों के निम्न भाग मिले ही होते हैं उसे महा संयोजक कहते हैं। अंग्रेजी में यह कोर्पस कैलोजम (Corpus Callosum) नाम से जाना जाता है।

वृहत मस्तिष्क का आन्तरिक भाग मटमैले रंग के पदार्थ से निर्मित होते हैं जो लहरदार होते हैं, अर्थात कहीं गहराई तो कहीं उभार होते हैं, उभरे भाग को क्राक (Convolution) कहते हैं। इसका भीतरी भाग सफेद पदार्थ (white matter) से बना होता है दूसरे अंश को बल्क (Graymatter or cortex) कहते हैं।

मस्तिष्क का बारी भाग कोशिकाओं (Cells) के द्वारा निर्मित होता है, जबकि आन्तरिक भाग नाड़ी तन्तुओं (Nervous Tissues) से। प्रत्येक गोलार्ध का निम्नभाग खोखला होता है। दोनों गोलार्धो के बीच में एक पतला सा पदार्थ होता है जिसके अन्दर कुछ तरह सदृश होता है।

लघु मस्तिष्क (Cerebellum)

वृहत मस्तिष्क की तरह इसके भी दो भाग होते हैं। जो कि वृहत मस्तिष्क के नीचे होते हैं। इनमें अनेक सीतायें (Sulenses) होती हैं जोकि अपेक्षाकृत गहरे होते हैं इसके तीन भाग हैं। ऊपर के दोनों भाग दो गोलार्ध (Hemispheres) और निचले भाग को मध्यांश (Vernis) कहते है। इनके बीच में एक डण्टलनुमा रचना होती है जिसे कार्पस डेन्टेटम (Corpus dentatum) कहते हैं। ये तीन स्तम्भों से युक्त होते हैं।

मस्तिष्क सेतु (Pons verolli) यह लघु मस्तिष्क के सामने का एक घुमा हुआ (Curved) भाग है। जिसका रंग सफेद है। यहीं से सुषुम्ना, लघु मस्तिष्क और वृहत मस्तिष्क की ओर जाने वाली नाड़ियां निकली हैं। सेतु के नीचे छोटे-छोटे दो गोल रचनायें होती हैं। जिन्हें मैमिलेयर (Mammillare) कहते हैं। उसके सामने एक पिण्ड होता है। जिसे वृहत पिण्ड (Hiphosis) फिर दृष्टि योजिका (Optec chisam) और उसके वादघ्राण पथ (Medeela oblongata) है।

सुषुम्ना : यह सुई के सदृश, लगभग एक इंच सिरा ऊपर की ओर बढ़ा होता है। यह कहीं मोटा होता है तो कहीं पतला। ऊपरी भाग सफेद पर भीतरी भाग मटमैला होता है। इसके मध्य में एक छिद्र है। छिद्र में एक नली होती है। यह नली मस्तिष्क के चतुर्थ कोष्टक (Fourth

Chamleer) से जाकर मिलती है। इस नली का दूसरा हिस्सा मेरूदण्ड की प्रणाली में होता है।

मेरूदण्ड (Spinal Cord) मेरूमज्जा– यह एक से डेढ फुट लम्बी होती है। पूरे मेरूदण्ड में छिद्र रहते हैं, इससे ३१ (इकतीस) जोड़े नाड़ियां निकलती हैं बाह्य भाग धूसर रंग के पदार्थ से और भीतरी भाग सफेद रंग के पदार्थ (White matter) से बना है। मध्य में सौषुम्न पथ है।

वृहत मस्तिष्क, सेतु सुषुम्ना और मेरूदण्ड पर झिल्लियां होती हैं, जिसके तीन परत होती हैं, बाहरी आवरण परत को मस्तिष्क ब्राह्यावरण (Duramater) कहते हैं। इसका अस्थिगत्रावरण से सम्बन्धं होता है। मध्यावरण को मस्तिष्क मध्यावरण (Archnoid) कहते हैं। सबसे भीतरी आवरण को मस्तिष्क अन्तर आवरण कहते हैं। यह अंग्रेजी में पायामेटर नाम से जाना जाता है। इनमें रक्त वाहिनियों का जाल सा होता है जिसके द्वारा एकएक कोशिका तक रक्त का संचार होता है।

नाड़ी या स्नायु (Nerves)– स्नायु तंत्र शरीर के एक एक कोशिका से जुड़ी होती है। मस्तिष्क से विभिन्न अंगों तक सम्वाद या सूचना पहूंचाने का काम यह स्नायुतंत्र ही सम्पादित करता है इसे हम निम्न रूप से अध्ययन कर सकते हैं।

मस्तिष्क नाड़ियां (Cranial nerves)– ये वो नाड़ियां हैं जो लघु मस्तिष्क के भीतरी पटल से निकलती हैं संख्या में दो जोड़े हैं प्रत्येक पार्श्व में एक-एक।

सौषुम्न नाड़ियां (Spinal nerves)– मेरूदण्ड या सुषुम्ना के दोनों पार्श्वों से जो नाड़ियों के ३१ (इकतीस) जोड़े निकलते हैं उन्हें सौषुम्न नाड़ियां कहते हैं।

(i) घ्राण नाड़ियां (Olfactory nerves) इससे घ्राण शक्ति (सूंघने का ज्ञान) प्राप्त होता है।

(ii) दृष्टि नाड़ियां (Optec nerves) यह चक्षुगोलक में प्रवेश कर भीतरी पटल (Ratina) पर फैलती है इससे हम देखने की शक्ति प्राप्त करते हैं।

(iii) नेत्र चालिनी नाड़ियां (Oculo-motor nerves) इनके सहारे हम

चक्षु गोलकों को ऊपर नीचे बायें-दायें संचालित करने में सक्षम होते हैं।

(iv) नेत्रचालिनी द्वितीया (Trachlaear) इसके द्वारा आंखों की पलकें हम ऊपर उठा पाते हैं।

(v) त्रिशाखा नाड़ी (Trigeminal nerves) इसके सहारे निचला जबड़ा, मुंह, नाक, जीभ का दो तिहाई भाग, चेहरा आदि में हम गाते पैदा करते हैं या इन अंगों की संवेदना अनुभव करते हैं, निचले जबड़े को संचालित कर दांतों, के सहारे किसी चीज को जो चबाते या काटते हैं उस समय यही नाड़ी कार्य करती है।

(vi) छठा जोड़ा (Abducens) इसके सहारे चक्षु गोलक को मात्र ऊपर की ओर उठाते हैं।

(vii) मौखिकी नाड़ियां (Facial nerves) इससे खोपडी और चेहरे की पेशियों में गति शक्ति प्राप्त होती है।

(viii) श्रावणी नाड़ी (Auditory nerves) इससे सुनने की शक्ति प्राप्त होती है।

(ix) जिह्वा कण्ठ नाड़ियां (Glasso pharyngeal nerves) इससे कण्ड की पेशियों में संचालन की क्षमता एवं जिह्वा से स्वाद ज्ञान की क्षमता प्राप्त होती है।

(x) दशवी नाड़ियां (Pneumogastric nerves) इनके सहारे स्वर यंत्र टेटुआ, फेफड़ा, आमाशय पाक्वाशय, यकृत आदि का सम्बन्ध होता है।

(xi) एकादशी नाड़ियां (Spinal accessory) यह पीठ एवं गर्दन की पेशियों को गति देती है।

(xii) जिह्वाधोवर्ती नाड़ी (Hypoglossal) इससे जिह्वा की मांसपेशियों में गति होती है।

सौषुम्न नाड़ियां – सुषुम्ना से निकलने वाली नाड़ियां जो इकतीस जोड़े निकलते हैं वे सर्वांग शरीर में फैले हैं। जो नाड़ियां जिन दो भागों में जुड़ी हैं उन्हें पूर्व मूल (Anterior) और पिछले को पाश्चात्य मूल (Posterior) कहते हैं। सौषुम्न नाड़ियां निम्न प्रकार से हैं :–

कण्ड देशीय–८, गुदास्थि में १, और त्रिकास्थि स्थानीय–५, कटि स्थानीय–५, वक्ष देशीय–१२ आदि।

मिरगी (Epilepsy)

कारण और उपचार – यह स्नायु तंत्र की पुरानी बीमारी है, जिससे प्रायः सर्व साधारण परिचित होते हैं एकाएक बेहोश होकर गिर पड़ना या चिल्लाकर कुछ अस्पष्ट आवाज देते हुए गिर पड़ना और हाथपैर खींचने लगना, मुंह से झाग निकलना, जबड़े बैठ जाना, बेहोशी अवस्था में ही ओ..... ओ..... सा शब्द करते रहना आदि। मिरगी का सहज लक्षण है जिसे देखकर कोई मिरगीं के दौरे का अनुमान कर लेता है।

कारण – जैसा कि कहा गया है कि यह स्नायविक दोष के कारण होता है लेकिन इसके कुछ गौण कारण भी हैं जिनके चलते स्नायुतंत्र प्रभावित होता है और इस रोग के समस्त लक्षणप्रकट होते हैं, जैसे वंशगत रोग होना, सिर में चोट लगना, अचानक डर जाना, हस्तमैथुन, उपदंश, अधिक मादक द्रव्य का सेवन, शक्ति से अधिक बोलते रहना मस्तिष्क में अर्बुद होना, कृमि, शारीरिक या मानसिक अवसन्नता, किसी अन्य रोगी के दौरे का दृश्य दिमाग में खचित होना आदि।

प्रारम्भ में वर्णित लक्षणों के साथ रोगी बेहाश होकर यदि जमीन पर गिर जाये तो तत्कांल पलक उठाकर देखें, यदि सामने का भाग काला के बदले मात्रा सफेद भाग हो तो मिरगी के ही दौरे हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं। ऐसा समझें।

मिरगी के रोगी को –

१. कब्ज और थकान से मुक्त रहना चाहिए। खासकर मानसिक तनाव से तो निश्चित ही।

२. शाकाहारी भोजन एवं सादा जीवन व्यतीत करने का सुझाव दें।

३. रात का खाना सोने से दो घंटा पूर्व ही दें।

४. अविवाहित हो तो विवाह की राय न दें।

५. रात्रि जागरण से पूर्ण परहेज करें।

६. पेड़ पर चढ़ना, आग के पास काम करना या पानी में तैरने से मना है।

७. किसी भी प्रकार के मैथुन से वर्जित रखें।

उपरोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए रोगी के उम्र और शरीर की

दशा देखते हुए औषधि की मात्रा निर्धारित कर दवा सेवन करावें। विभिन्न चिकित्सा पद्धतियों के द्वारा प्रयुक्त औषधियों की जानकारी दी जा रही है।

संहिता (एन्टीग्रेटिड चिकित्सा) का एक नमूना----

एलोपैथिक – इस पद्धति के अनुसार मिरगी कई तरह की होती है, जिसके अनुसार दवायें एवं चिकित्सा विधियां भी अलग-अलग व्यवहृत होते हैं।

अकड़न एवं मूर्च्छा युक्त मिरगी (Epileps Grandmal) डायलेन्टीन (पार्क डेविस) की १ कै० तीन बार या इप्टोयन (बूट्स) की १ गोली कर तीन बार नित्य दें। यदि सन्तोषजनक सुधार नहीं हो तो Gardenal (गार्डिनल) ३० एम०जी० की गोली भी साथ में देना प्रारम्भ कर दें लाभ हो जाएगा। यदि इतने के बाद भी दौरा आ जाये तो या बच्चा रोगी हो तो, गार्डिनल की मात्रा कम करते जायें और उसके स्थान पर माइसोंलिन (Mysolin) जोकि आई०सी०आई० कं० द्वारा Primidone की गोली है, आधी गोली की मात्रा बढ़ाते जाएं। जब एक गोली कर नित्य तीन बार दी जाने लगे तो और अधिक न बढ़ायें। मात्रा स्थिर कर दें। अर्थात् नित्य दोनों दवायें ३-३ की मात्रा में देते रहें। डायलेन्टीन या इप्टोयन एवं माय्रसोलीन ३. इनके अतिरिक्त मेजिटॉल, सोडियम वेल्पोरेट आदि भी इसमें उपयोग है जो कि उपरोक्त दवाओं के सदृश ही कार्य क्षमता वाले हैं, मिरगी के चिकित्सा में ध्यान रखना चाहिये कि दौरा धीरे-धीरे पीछे छोड़ता है अतः चिकित्सा अवधि में दौरा यदि आ भी जाए तो यह समझ कर चिकित्सा नहीं छोडनी चाहिये कि लाभ नहीं हुआ बल्कि दो दौरों के बीच के अन्तराल की तुलना चिकित्सा अवधि और चिकित्सा पूर्व के अन्तराल अवधि से करनी चाहिये। ठीक इसी तरह औषधि सेवन करते ही यदि दौरा रुक जाए तो यह भी नहीं समझ लेना चाहिये कि रोग मुक्त हो गया और अब दवा नहीं लेना है। इसे ध्यान रखना चाहिये कि अन्तिम दौरे के पांच वर्ष बाद तक कम से कम औषधि सेवन अपेक्षित है।

मिरगी के आक्रमण (दौरा) के समय –

Diazepam (डायजीपाम) १० एम०जी० की एक एम्पुल तुरन्त नस

में दें। दवा बहुत धीरे-धीरे प्रविष्ट करें। कम से कम पांच मिनट समय लगायें। यदि दौरा का पुनवृत्ति हो तो आधा घंटा बाद पुनः औषधि की मात्रा दें। पुनरावृति करें।

क्षणिक अचेतावस्थायुक्त मिरगी –

इस मिरगी के रोगी मूर्च्छा की स्थिति में नहीं पहुंचता है। शरीर में अकड़न या ऐंठन भी नहीं आती। दौरा आता है पर असर क्षणिक ही होता है। जब तक रोगी मूर्च्छित हो या अकड़न की स्थिति आवे रोगी स्वतः सामान्य स्थिति में आ जाता है। जैसे कि जीवनी शक्ति स्वतः सब कुछ संभाल लिया है रोगी ज्यादा से ज्यादा क्षणिक अवसन्नता का ही अनुभव कर पाता है। Sodium valporate (सोडियम वैल्पोरेट) २०० एम०जी० की १ गोली नित्य तीन बार तक दें। इसके बाद और मात्रा में वृद्धि न करें। यद्यपि यह औषधि सभी के लिये उपयोगी है पर बच्चों के लिए खासकर विशिष्ट औषधि मानी जाती है।

Zarontin Syrup (जेरॉनटिन सिरप) प्रत्येक ५ मिलि० में २५० एम०जी० औषधि होती है। जो बच्चे पांच वर्ष से कम हैं उन्हें १ चम्मच नित्य एवं जो पांच वर्ष से अधिक आयु के हैं उन्हें एक चम्मच कर दो बार दें।

कनपटी खण्ड से सम्बन्धित मिरगी (Temporal lolee Epilepsy) - Mysoline (मायसोलीन) या Dilantin डायलेन्टीन या दोनों एक साथ अवस्थानुसार पूर्व निर्देशित मात्रा में सेवन करें या Mazetol (मेजिटॉल) जो कि carbamezapin काबीमेजापिन दवा की गोली है नित्य १ गोली कर ३ बार दें। प्रति सप्ताह आधी गोली बढ़ाते हुए १ गोली कर नित्य ४ बार तक दें और अधिक मात्रा न बढ़ायें। पेशीय स्फुरण मिरगी (Myoclonic Epilepsy)

अकड़न युक्त मिरगी या मूर्च्छायुक्त मिरगी (Grandmal) में वर्णित सब औषधियां उपयोगी है। यदि वे पूर्ण सफलता न दें तो सैण्डोज कं० की रिवोट्रील तक गोली है। जो कि बाजार में रिवोट्रील जैसे अनेक व्यापारी नामों से उपलब्ध हैं अथवा Hypnotex (हिप्नोटेक्स) की १ गोली कर निम्य ३ बार कर दें।

होम्योपथिक दवायें (Homoeopathic medicines) ये दवायें

लक्षण सदृश्यता के आधार पर कार्य होती है। अधिक से अधिक जिस औषधि के लक्षण के साथ रोगी के रेग लक्षण की सदृश्यता हो उसी औषधि का चुनाव उस रोगी के निमित्त करें। आपकी यह सदृश्यता का चुनाव क्षमता ही आपकी सफलता होगी।

एब्सिन्थियम (Absinthlum) ६.३० शक्ति दौरे से पहले चक्कर, आंखों के सामने मूर्ति दिखाई देती है। दौरे आ जाने पर इसकी मूल अर्क मात्र १ एक बूंद जीभ पर टपका देने से ही रोगी तत्काल होश में आ जाता है।

एमिल नाइट्रेट (Amylnit.) दौरा या अकड़न की स्थिति में रूमाल में डालकर सुंघायें। तत्काल मूर्च्छा दूर होगी।

आर्तिमेसिया (Artemesia) एक के बाद एक दौरा आता रहे तो इसकी ६ एक्स शक्ति सेवन कराते रहने से लाभ होता है। यह कृमि जनित मिरगी सदृश दौरे में भी उपयोगी है।

ब्युफोराना (Bufo Rana) 2x3 शक्ति १ दौरा से पूर्व रोगी जोर से चिल्ला उठता है। मुंह की आवाज अस्पष्ट होती है। दिन की अपेक्षा रात में आने वाली दौरा में यह अधिक उपयोगी है।

एसिड हाइड्रो (Acid Hydro) 3x30 शक्ति। असली मिरगी नहीं, पर मिरगी की तरह बेहोशी खींचना आरम्भ होने से पूर्व मिचली वमन एवं मुंह में पानी भर आना। अस्टेरियास (Asterias Rubens) ६,३०,२०० मिरगी का दौरा आने के चार पांच दिन पूर्व से ही मांसपेशियां फड़कती है। क्युप्रममेट (Cuprim Met.) ३०, २०० आक्षेप की स्थिति में शरीर और चेहरा नीला हो उठता है। बच्चा मुट्ठी बांध लेता है।

अनान्थी क्रॉ (onunanthe crocate) यह मिरगी रोग में एक भरोसे की दवा मानी जाती है। यदि सिर में चोट, मासिक स्राव की गड़बड़ी रोग का मूल कारण हो तो यही चमत्कारिक दवा सिद्ध होगी।

जिजिया ऑर (Zizia Aur) २३ मिरगी का दौरा यदि मात्र सुप्तावस्था में ही आवे तो इसी के सहायता मिरगी पूर्णताः दूर की जा सकती है।

सौलेनम कैरो (Solanum Cardin) मूल अर्क २० से ४० बूंद की मात्रा में नित्य दो-तीन बार, अवस्थानुसार दें। आक्षेप, बेहोशी, युक्त मिरगी में लाभदायी है।

बायोकैमिक (Blochemic Medicines) यद्यपि बायोकेमिक की कैलीम्यूर इस रोग की पेटेण्ट मानी जाती है। लेकिन मैं बायो॰ की चार दवायें इसमें प्रयोग करता हूं। कैलिम्यूर ६ एक्स चर्म रोग के साथ या चर्मरोगोपरान्तमिरगी में कैलिफांस स्नायुतंत्र संबंधित होने के कारण। मैगफॉस (Magphos) ३ पेशियों में ऐंठन होने के साथ नेटन सल्फ (Natram Sulph) १२ गिरने या मस्तिष्क में चोट के कारण मिरगी। विशेष परिस्थिति में बायो॰ के चारो दवायें एक साथ मिलाकर दी जा सकती है। कोई आपत्ति नहीं। मैं भी ऐसा करता हूं।

आयुर्वेदिक दवायें - (Ayurvediac Medicines)

– रौप्य माक्षिक भस्म १ से २ रत्ती की मात्रा में सुबह शाम मिश्री मिले मक्खन के साथ सेवन करने से मिरगी रोग नष्ट होता है।

– बच का पूर्ण १ माशा कर शहद के साथ सुबह शाम दें।

– दौरे की स्थिति में ताम्र सिन्दूर एक रत्ती लौह भस्म आधी रत्ती शहद में मिलाकर तत्काल चटायें। लाभ होगा।

– उन्मत्त रस नाक में सुंघाने मात्र से दौरा शांत होता है।

– चतुर्भुज रस १ गोली कर सुबहशाम जटामांसी क्वाथ के साथ सेवन करने से मिरगी एवं अन्य स्नायुतंत्र के रोग भी शांत होते हैं।

– चिन्तामणि चतुर्मुख रस १ गोली कर सुबह शाम डेढ से २ माशा त्रिफलाचूर्ण के साथ सेवन करने से लाभ होता है।

– बसन्त तिलक रस १ गोली कर सुबह शाम गिलोय के रस के साथ सेवन कराने से लाभ होता है।

– पंच गव्य घृत या कल्याण घृत ३ से ६ माशा की मात्रा में मिश्री मिले गोदुग्ध के साथ सेवन करने से आशातीत लाभ होता है।

– सर्पगन्धा चूर्ण १ माशा कर सुबहशाम जल के साथ देने से नये मिरगी रोग में लाभ होता है।

– अश्वगन्धारिष्ट और सारस्वतारिष्ट सवा तोला कर दोनों कुछ ढाई तोला की मात्रा में बराबर जल के साथ सेवन करने से आशातीत लाभ होता है।

– लक्ष्मी विलास तैल या श्री गोपाल तैल सिर पर मालिश करने मिरगी एवं अन्य नाड़ी तंत्र के रोग दूर होते हैं।

कुछ टोटके

– एक जायफल को छिद्र कर धागे में पिरोकर गले में धारण करें तो दौड़ा नहीं आयेगा।

– भैंस के खुर की राख ३ माशा की मात्रा में नित्य खाली पेट में जल के साथ १ महीने तक सेवन करें तो लाभ हो जायेगा।

– गदहे के खुर की अंगुठी दाहिने हाथ की कनिष्ठा में धारण करें तो रोग नष्ट होता है। औरत बायें कनिष्टा में।

– लाजवन्ती या लज्जावती (छुईमुई) की जड़ लाल कपड़े या डोरे (धागा) में बांधकर रविवार या मंगलवार को धारण करें तो दौरा मिट जाता है। इसे पूर्णिमा को धारण करने से मानसिक तनाव कम होता है।

नोट : होमियो या आयुर्वेद कई दवायें दी गई हैं। सब एक साथ चलाना अनिवार्य नहीं है। अपने रोगी के स्थिति के अनुसार एक से दो ही अनुकूल दवायें चुनकर चलावें और प्रतीक्षा करें।



महर्षि भारद्वाज ने इन्द्र से ज्ञान प्राप्त किया।

इन्द्रिय विज्ञान (तरंगावली-अन्तरंगावली)

"इन्द्रिय समूहः शरीरम्" अर्थात् इन्द्रियों के समूह ही शरीर है, शरीर की प्रथम अन्तरंगावली इन्द्रियां ही हैं। इन्हीं इन्द्रियों से ग्यारहवीं इन्द्रिय मन द्वारा नाना प्रकार की तरंगें इच्छाएं, काम, क्रोध, लोभ मोह मद मत्सर दुर्गुणों से दुर्गन्धित तथा इनके विरुद्ध सदाचार की तरंगें सुगन्धित उत्पन्न होती रहती हैं, दुर्गन्धित से प्रज्ञापराधरोग मानसिक रोग तथा मिथ्या आहारविहार से उत्पन्न शारीरिक रोग तथा असावधानी (रजतम की अधिकता से) आगन्तुक रोग भी पैदा होते हैं। इन्द्रियों का ज्ञान उनके स्वरूप, स्वास्थ्य का ज्ञान आवश्यक है। इसीलिए श्लोक में तरंगावली अन्तरंगावली आयुर्वेद विशेषण का उल्लेख है। साथ ही अन्तरंगमर्मों पर चुम्बक, इलैक्ट्रोपैथी, एक्यूप्रेसर, एक्यूपंकचर पद्धतियाँ आविष्कृत है। इसीलिए इन समस्त चिकित्साओं को धाराधर विशेषण से श्लोक में सम्बोधित किया गया है।

(यः गां= इन्द्रिय समूहं आतः जगाम इति)

(इन्द्रिय विज्ञान संकेतः) (अरूपयात्रिणः शब्दस्पर्शरूप गन्धेन्द्रियविषयास्तेषां पन्थानं गच्छति अरूपयात्रिपथगा विद्या)

तंत्रकल्प इन्द्रिय विज्ञान (तांत्रिकभावता)

मन और शरीर आत्मा के लिए योग की नितान्त आवश्यकता है। ध्यान से मन, आसनों से शरीर, समाधि से आत्मा को आनन्द मिलता है। मानसिक, शारीरिक व आध्यत्मिक क्षमता बढ़ती है तथा रोग दोष शांत होते है। इसी प्रसंग में इन्द्रिय विज्ञान समझने की आवश्यकता है। जो भी सुख-दुःख का अनुभव होता है, उसके मूल कारण इन्द्रियां हैं। इन्द्रियां स्वप्न द्वारा भविष्य वक्ता भी हैं। आपके जीवन में क्या आगे होने जा रहा है, इन्द्रियों द्वारा प्रतीति होती है। जैसे यदि आप खराब काम करने की सोचे तो आत्मा द्वारा अन्दर से एक आवाज आती है कि यह काम अच्छा है या बुरा। आदमी उस आवाज की अवहेलना कर क़ाम कर बैठता है। उसी से उसे दुःख मिलता है। उसी प्रकार इन्द्रियों का स्वप्न विज्ञान अत्यन्त वैज्ञानिक है– चरक शास्त्र मतानुसार सब की जानकारी के लिए कुछ बातें लिखी जा रही है :–

पंच ज्ञानेन्द्रियों, पंच कर्मेन्द्रियों का ज्ञान करने से हमारी चिकित्सा

पंचामृता आराधिका है। आत्मा आदृक् = दिव्य द्रष्टा साक्षी है। माधवः– शक्तियों का स्वामी है यह इस चेतना जगत का आचार्य है, यह अग (प्रकृति पुरुष) को, गौ = इन्द्रियों को, धियम् = बुद्धि को धारण करता है तथा चन्द्र (मन) की महिमा की धाराओं (मन की लीलाओं, गतिविधियों) को धारण करता है। यही आत्मा अरूप=निराकार होते हुए भी अदृश्य शक्ति से (त्रिपथगापं) = सत्वरजतम के प्रवाह को समझता है। आत्मा की जो पंचामृता या अमृता=सनातन संस्कृति=आध्यात्मिक सम्पदा है। उसी भारत की भारतीय मुदिता (संस्कृति) उदीयमान है तथा आध्यात्मिक जीवन के स्वराज्य में मानव आवृत रहता है। आत्मा के कारण ही आत्मानन्द परमानन्द प्राप्त होता है। इन्द्रस्य इमानि इन्द्रियाणि, समस्त इन्द्रियां उसी आत्मा-परमात्मा की प्राप्ति की साधन है, परंतु हम उन इन्द्रियों का दुरूपयोग कर क्षीण, केवल विषयाधीन कर बैठते हैं जिससे इन्द्रियां दोष विकारों से आवृत हो जाती हैं। गीता में भगवान कृष्ण ने कहा है, 'इन्द्रियाणि पराण्याहुः इन्द्रियेम्यः परं मनः'– इन्द्रियां, इन्द्रियों से परे मन, मन से परे बुद्धि और बुद्धि से परे (श्रेष्ठ) आत्मा है।

इन्द्रियाणां हिचरतां यन्मनोनुविधीयते।
तदस्य हरति प्रज्ञां वायुर्नावमिवाम्भसि।

जब उल्टी गंगा बहने लगती है। इन्द्रियां मन के अधीन न रहकर मन को अपने वशीभूत कर लेती है, तब बुद्धि नष्ट हो जाती है। जैसे तुफान नाव को डुबो देता है।

भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसां
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते। (गीता)

मानव जीवन का प्रधान विषय योग और ईश्वर है परंतु योग को छोड़कर भोग ईश्वर को छोड़कर ऐश्वर्य (भौतिक सुख-विलास) का जब वरण करते हैं तो रोग-शोक से मनुष्य घेरा जाता है। यही नहीं पुनर्जन्म तक प्रभावित करता है। जब हमारा आचार-विचार, रहन-सहन, चाल-चलन अव्यवस्थित तथा दुरुपयोगयुक्त होता है तो वह सब हमारे मन तथा इन्द्रियों में (स्थान) आवास कर लेता है। वही वासना बन जाती है। वासनाग्रस्त इन्द्रियाँ आने वाले रोगों, शोकों का स्वप्न द्वारा संकेतकारी है। तंत्रविद्या में ऐसी-ऐसी मंत्र विधि है कि इन्द्रियों द्वारा किसी का जागृत स्वप्न सुषुप्ति तुरीया अवस्थाओं में दर्शन (आत्मा-परमात्मा-मृताआत्मा) कराया जा सकता है। मंत्र

का प्रभाव मन पर पड़ता है। मन, आत्मा, शरीर यह विचित्र चमत्कारों का स्थान है, आइए इन्द्रिय विज्ञान पर कुछ समझें।

"तन्मात्रा-पंचमहाभूत-पंच ज्ञानेन्द्रियां', यही जीवन सृष्टि की त्रिपथगा गंगा है।

तन्मात्रा	पंचमहाभूत	ज्ञानेन्द्रियां
शब्द	आकाश	कान (कर्ण या श्रोत्र)
स्पर्श	वायु (वात)	त्वचा (चर्म)
रूप	तेज (पित्त)	आंख (नेत्र)
रस	जल (कफ)	जीभ (रसना)
गंध	पृथ्वी	नासिका (नाक)

एक-एक तन्मात्रा से एक-एक महाभूत बना है। एक-एक महाभूत की प्रधानता से एक एक ज्ञानेन्द्रिय का निर्माण हुआ है। उदाहरण के लिए शब्द गुण आकाश का है। जहां आकाश है वहां शब्द है। शब्द तन्मात्रा से आकाश बना है और दोनों से कान बने। इसीलिए कान से शब्द सुनाई देते हैं, अन्य इन्द्रियों से नहीं और जब उस इन्द्रिय में खराबी होगी रोग होगा, इसका अर्थ है कि उस तन्मात्रा या महाभूत में कमी या वृद्धि हो रही है। मान लीजिए शरीर का वजन बढ़ रहा है इसके माने हैं कि शरीर का पृथ्वी तत्व बढ़ गया है। पृथ्वी भार का द्योतक है उसमें गुरूत्वाकर्षण है तुरन्त भारी वजनी पौष्टिक चीजें खाना बंद करना होगा। जब शरीर का भार घटने लगेगा तब वजनी चीजें घी, दूध, उड़द, जैसी भोज्य वस्तुएं देनी होंगी। आयुर्वेद के फार्मूले (योग) इन्हीं पांच महाभूत तज्जन्य वात पित्त, कफ के वृद्धिक्षय की दृष्टि से बने हैं। पृथ्वी का गुण गन्ध है। गन्ध वहीं होगा जहां भार (जमातत्व है) जमा+इन जमीन (पृथु=स्थूलता भारवत्ता से पृथ्वी शब्द बना है। वैसे ऐतिहासिक दृष्टि से राजा पृथु (अवतार) की पुत्री का नाम पृथ्वी है। इन्हीं तत्वों के क्षीण वृद्धि प्रकुपित होने पर सूक्ष्म रूप से इन्द्रियों में रोग जड़ जमाने लगते है। उसी समय स्वप्न यह बतला देता है कि कौनसा रोग, क्या विषय परिस्थिति आने वाली है। यह स्वप्न ३ प्रकार है १. शुभ २. अशुभ ३. वासनाजन्य निरर्थक।

१. भूतसूचक २. वर्तमान सूचक ३. भविष्य सूचक (परिस्थिति और काल दृष्टि से) स्वप्न विद्या भी त्रिपथगा है। स्वप्न विज्ञान के विषय में चर्चा

अथर्ववेद में भी की गई है। इन्द्रिय विज्ञान का एक भाग स्वप्न विज्ञान है। यहां जो अशुभ स्वप्नों का वर्णन किया जा रहा है यदि नीरोगी उसे देखे तो महाकष्ट आने वाला है। यदि रोगी देखे तो मृत्यु समीप है सतर्कता से औषधि तंत्र-मंत्र-यंत्र विधान करना अनिवार्य है।

स्वप्नविज्ञान (सा+आभा+भा)

१. अपने को नीचे लिखे प्रकार से देखें तो कष्टकारक, अशुभ लक्षण है, जैसे– जिसके शिर पर स्वप्न में लता, वृक्ष उत्पन्न हुए, पक्षी घोंसला बनाकर रहते, बैठा हुआ, गिद्ध, उल्लु, कुत्ता काग से घिरा हुआ, प्रेतपिशाच, अन्धे व्यक्तियों के साथ बैठा हुआ या घिरा हुआ, कांटों तलवार पर चलता हुआ, साथ ही रास्ता नहीं दिखाई दे और गिर पड़े अथवा स्वप्न में चलते-चलते खाट से अधिक गिरता दिखे, मलिन जल, मल, कीचड़ अन्धा कुआं में गिरा दिखे तथा स्वप्न में तेल, घी पीना, मालिस दिखे, सुवर्णधन की प्राप्ति, दस्त वमन होने, दांत सूर्य, चन्द्र, दीपक गिरते दिखे, शमशान में प्रवेश, स्वप्न में लाल माला पहने हंसता हो, साधारणतया भी अट्टहास करता हो दिखे, जूते गायब होना, दक्षिण दिशा की यात्रा बन्दर के साथ नग्न चलते हुए, रथ में बैठकर भयानक जंगल की यात्रा; यह सब अनिष्टकारक हैं।

२. कषाय (गेरूआ) वस्त्र पहने व्यक्ति को देखें (नग्न दंडधारी व्यक्ति को देखे), लाल रंग पहने काली औरत देखें यह अशुभ लक्षण है।

३. स्वप्न में भोजन करना, हंसना अशुभ लक्षण हैं। यदि कोई व्यक्ति हंसता हुआ स्वप्न में दिखे तो वह व्यक्ति बीमार है या बीमार होने वाला है। यदि स्वयं स्वप्न में रोए तो कष्ट दूर होने वाला है।

४. नाचता हुआ प्रेत भूत काला व्यक्ति यदि किसी को शिर नीचे करके ले जाता दिखता हो तो उसको शीघ्र अपस्मार, उन्माद रोग होने वाला है। स्वप्न में नाचता हुआ आदमी जल में डूब जाए तो भी पागलपन आने के आसार हैं।

५. स्वप्न में जो तेल, वसा, मज्जा, घी पीता है, उसे मधुमेह होने वाला है।

६. स्वप्न में यदि पुरुष नग्न होकर अंगों में तेल या घी चुपड़े, अग्नि में आहुति देता है या जिसकी छाती में कमल फूल नजर आवे, उसे कुष्ठ रोग हो जाता है।

७. जिस पुरुष के हृदय-देश पर कांटो वाली लता उगती नजर आए उसे गुल्म विद्रधि, कैन्सर, एडस हो सकते हैं।

८. जो व्यक्ति स्वप्न में जलती मशाल, आम, लालवर्ण के फूल लाल वस्त्र पहने अपने आपको देखें, उसे रक्तपित्त का रोग सम्भावित है।

९. जो स्वप्न में शराब पीता है, कुत्ते काटते हैं, वह ज्वर से पीडित होता है।

१०. कुत्ते, ऊँट या गधे पर सवारी करता है, उसे यक्ष्मा रोग होता है। यदि दक्षिण दिशा की ओर यात्रा करता है, वह मरणासन्न है।

११. यदि स्वप्न में बिल्ली रोती दिखाई दे और काटने दौड़े तो जेल या सजा हो सकती है।

१२. यदि स्वप्न में काला सर्प दिखाई दे तो दुश्मन कोई नुकसान पहुंचाने की सोच रहा है। यदि सर्प काट ले तो धन प्राप्ति का भी योग होता है। स्वप्न में मल देखे तो शुभ, परंतु अपने को मल करते देखे तो धनहानि।

१३. यदि कोई व्यक्ति जागृत अवस्था में साधारणतया चन्द्रमा में ग्रहण देखता है तो कुछ दिन जीवन शेष है।

१४. जो सहसा बिना बादल की गरज के गरजना सुनता है वह बहरा हो सकता है, कान का रोग समीपस्थ है।

१५. जो सुगन्धि में गन्धहीनता तथा सुगन्धि में दुर्गन्धि समझता है वह भी अल्पायु है।

१६. यदि आंख का रोग न हो आंखे समान्यतया स्वस्थ हो और जागृत अवस्था में ध्रुवतारा, आकाशगंगा, अरुन्धतीनक्षत्र दिखाई नहीं देता हो तो आयुक्षीणता का प्रमाण जाने।

१७. रोगी के लोम (रोम) खीचे और दर्द का अनुभव नहीं होता और रोम उखड़ जाए तो आयु समाप्त प्राय समझे।

१८. चन्दन केशर आदि के लेप में दुर्गन्धि आए, मूत्र पुरीष की गन्ध आने लगे तो आयु एक वर्ष और है।

१९. जिसके ओठ पके हुए जामुन के समान नीले जो जाए वह भी गतायु है तथा जिस रोगी के चेहरे में अचानक तिल उत्पन्न हो जाए वह मृत्यु सूचक है।

२०. बल, वर्ण, स्वर, प्राकृतिक न रहकर विकृत हो जाएं तो आयुक्षीणता

के लक्षण हैं। यदि रोग के कारण परिवर्तन हो तो कोई बात नहीं।

२१. जिसके सोने के समय दांत किटकिटाते हों तो पेट में कीड़े पैदा हो गए हैं।

२२. ज्वराक्रान्त व्यक्ति को प्रातः ज्यादा पसीना आए तो रोग असाध्य की ओर जा रहा है।

२३. जिसके मल, कफ, थूक पानी में डूब जाते हैं उन्हें शीघ्र शरीर की जांच करानी चाहिए अन्यथा भयानक रोग हो सकता है।

२४. ललाट पर वस्तिदेश में बाल चन्द्रमा की तरह नीली रेखा दिखाई दे तो मरणासन्न अवस्था होती है। सिर पर कौआ का बैठना अशुभ है।

२५. जिस पुरूष के स्नान, अनुलेपन के पश्चात सब अंगों के गीला रहते हुए पहले छाती सूखती है उसका जीवन समाप्ति की ओर जा रहा है।

प्रत्यक्ष लक्षण :- रोगी

२६. यदि किसी रोगी का दूत वैद्य के पास कोई चीज हाथ या दांत से काटता हुआ पहुंचे तो रोग असाध्य है।

२७. जब वैद्य हवन करता हो या पितरों को जल पिंड दान या श्राद्ध तर्पण कर रहा हो दूत आए तो रोगी समाप्त होने वाला है।

२८. जब वैद्य किसी के मर जाने की बात कर रहा हो यदि रोगी का दूत उसी समय पहुंच जाए तो रोगी का ठीक होना कठिन है।

२९. यात्रा के समय काली बिल्ली रास्ता काट जाए, खाली घड़े सामने हों, एक या तीन बार छींके, कांटा वस्त्र में उलझ जाये, कुत्ता अचानक भोकने या रोने लगे तो रोगी ठीक नहीं होगा समझकर दवा करें। दवा करने के पूर्व कुछ अनुष्ठान करने से लाभ सम्भव है।

३०. यदि रोगी बीमार हो और कुत्ता या बिल्ली रोए तो समझना कि रोगी के लिए विशेष अशुभ है। यदि रोग नहीं हो और साधारण बिल्ली, कुत्ता रोए तो भी कोई बीमार होने वाला, किसी की मौत होने वाली है, मुकदमा चलने वाला है। मुकदमे में हार होने वाली है। छापा पड़ने वाला है, समझना।

३१. यदि वैद्य रोगी के घर प्रवेश के समय टूटा हुआ हवन कुण्ड घर

से निकलता जल से भरा घड़ा, सांड, अन्न देवमूर्ति देखे तो समझें कुछ अशुभ होने वाला है।

३२. दही अक्षत, रोली, चन्दन, ब्राह्मण, रत्न, जल भरा घड़ा, कबूतर, झंडा-झंडियां, फल प्रज्वलित अग्नि, मोदक, श्वेत पुष्प, बालक लिए स्त्री बछड़े को दूध पिलाती गौ, मोर मृग, मछली, हाथी-हाथी दांत की वस्तुएं दर्पण गोरोचन, दूर्वा हल्दी संगीत, मृदंग, शंख यह सब कुछ शुभ शकुन है।

३३. स्वप्न में घोड़ा, हाथी, बैल पर चढ़ना, राजभवन में प्रवेश, आकाश में उड़ना, समुद्र पार जाना, देवता, पितरों, मृतात्मा, से बात करना, मांस-मछली, विष, मल, दर्पण छत्ता, श्वेत पदार्थ, सब शुभ हैं।

धाराधरा आयुर्वेद चिकित्सा (शास्त्र गुरु परम्परा धारा)

शास्त्रं गुरूमुखोद्गीर्णमादायोपास्य चासकृत्
यः कर्म कुरूते वैद्यः स वैद्यःभिषगुच्यते
आयुर्वेद चिकित्सा, ज्योतिषं धर्मनिर्णयः
बिना शास्त्रं हि यो ब्रूते तमाहुः ब्रह्मघातकम्।
तस्भाच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ।
यः शास्त्र विधिभुत्सृज्य वर्तते कामकारतः
नस सिद्धि मवाप्नोति न सुखं परमां गतिम् (गीता)

चन्द्रमहिमालाभा :- रसोहमप्सु कौन्तेय प्रमास्मि शशिसूर्ययोः १७-८ गीता

गामाविश्य च भूतानि धारयाम्यहमोजसा
पुष्णामिचौषधीः सर्वाः सोमो भूत्वारसात्मकः गीता ५-१३
अमृताराधिका मृताराधिका (आयुर्वेदविद्या)
तपाम्यमहं वर्ष निगृहणाम्युत्सृजामिच
अमृतं चैव मृत्युश्च सदसत् चाहमर्जुन (गीता ६-१६)
माधव :— कृष्णः —वसंतः
मासानां मार्गशीर्षोहं ऋतूनां कुसुमाकरः (गीता १०-३५)

आयुर्वेद त्रिपथगा चिकित्सा पद्धति है। तीन मार्गो पर आयुर्वेद का चिकित्सा दर्शन अवलम्बित है। इनके बिना आयुर्वेद में प्रवेश असम्भव है। आयुर्वेद रहस्य को खोलने वाली त्रिस्कन्ध कुंजी है। इन की

नामावली मात्र यहां पर पूर्व में दी गई है। सम्पूर्ण विवरण चरक सुश्रुत वाग्भट में देखना चाहिए।

अरूपयात्रिपथगा- का अर्थ मणिमंत्रौषधि मनोविज्ञान से भी है।

तांत्रिक भावता - आयुर्वेद में रसतंत्र की प्रधानता

(विद्या आद्यात् = शिवात्) भारती इयम् उदिता

संसारस्य परं पारं दत्तेऽ सौ पारदः स्मृतः। अभ्रंकं तवन्वीजंतु ममवीजं तु पारदः। अनयोर्मेलनं देवि मृत्युदारिद्र्यनाशनम् (रस दर्शन)

चिकित्सा मार्ग में रस शास्त्र की वरीयता एवं उपादेयता से आप अनभिज्ञ नहीं हैं, आप भली प्रकार जानते हैं, कि सृष्टि रचना के अनन्तर वेदों के साथ-साथ आयुर्वेद का भी प्रादुर्भाव हुआ था, महर्षि शुक्राचार्य इसे ऋग्वेद का उपाड़्ग मानते हैं–

विन्दत्यायुर्वेत्ति सम्यगाकृत्यौषधि हेतुतः।
यस्मिनृग्वेदोऽपवेदः स चायुर्वेद संज्ञकः।।

और महर्षि सुश्रुताचार्य इसे अथर्ववेद का उपाड़्ग कहते हैं

इह खल्वायुर्वेदो नाम यदुपाङ्गमथर्ववेदस्य।।''

ऋषिवरों के अपने अनुमान हैं कुछ भी हो आखिर आयुर्वेद वेद ही तो है और रसशास्त्र इस का वरिष्ठतम अंग, जो आज भी असाध्य कहे जाने वाले रोगों की सफलतापूर्ण चिकित्सा करने में सक्षम है अत्यधिक अवस्थाओं के प्रतिकार में तत्काल यशप्रद है, असह्य वेदना, आक्षेप, रोग प्रकोपादिजात नाना प्रकार के उपद्रवों को शान्त करने के लिए रसौषध का जवाब नहीं है। क्षीणवीर्य हों, चाहे क्षीणकाय, उन के वृंहण एवं स्थूलकाय मनुष्यों के कर्षण के लिए रसौषधों से बढ़ के प्रभु ने कोई औषधि बनने ही नहीं दी। महिलाओं और बच्चों की असंख्य दुःसाध्य एवं असाध्य कही जाने वाली बीमारियों में रसौषध ही तो कारगर है ऐसा अनुभव बताता है। जरा-व्याध्यादि नाशन के लिए हजारों वर्षो से अनुभव की कसौटी पर पूरे उतरे रसशास्त्र के रसायन एवं वाजीकरणादि सिद्ध योगों पर ही नजर टिकती है। यही नहीं सामान्यतः रसशास्त्र ही जनमात्र के स्वास्थ्य-संरक्षण, रोग-संक्रमण, ईश्वरीय-प्रकोपादि कारणों से जात जनपदध्वंस/महामारी आदि के प्रकोप से अकेले मानव को ही नहीं विश्व भर के संरक्षण, तथा उस तरह से पैदा हुए उपद्रवों को दूर करने में समर्थ है। इस के लिए रसशास्त्री के लिए

आयुर्वेद एवं सांख्योक्त सृष्टि-सिद्धांत (Physics), शरीरशास्त्र तथा शारीरिक क्रिया विज्ञान; (Anatomy & Physiology), शरीरों पर सामान्य औषधों, रसौषधादिकों की क्रिया एवं प्रभाव का ज्ञान (Pharmacology & Chemistry), अत्यन्त आवश्यक है। रसशास्त्र का गहरा अध्ययन बताता है कि रस-शास्त्र-प्रवर्तक हमारे ऋषियों का द्रव्यगुण विज्ञान पर पूरा अधिकार था, पदार्थधर्मसंग्रह में श्री प्रशस्तपादाचार्य लिखते हैं कि "षण्णामपि पदार्थानां साधर्म्यमस्तित्वामिधेयत्व ज्ञेयत्वानि।" पदार्थ का अभिप्राय "अस्तित्व" (भावता) 'अभिधेय' (वर्णन करने योग्य) एवं 'ज्ञेयत्व' जानने योग्य से है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार यह पदार्थ द्रव्य-गुण-कर्म सामान्य, विशेष और समवाय, छः तथा न्याय दर्शन में द्रव्य-गुण-कर्म सामान्य, विशेष और समवाय, छ' प्रमाण प्रमेयादि सोलह पदार्थ हैं – भाव मिश्र ने यह पदार्थ पांच माने हैं, यथा–

द्रव्यं रसो गुणो वीर्यं विपाकः शक्तिरेव च।
पदार्थाः पंच तिष्ठन्ति स्वं स्वं कुर्वन्ति कर्म च।।

इस प्रकार द्रव्य सहित रस गुण वीर्यविपाकादि पंचगुण शब्द संगृहीत इन पांच पदार्थो में उन की क्रिया भी बढ़ा दी जाय तो यह सात पदार्थ बन जाते हैं। अतः आयुर्वेदानुसार द्रव्यगुण विज्ञान में सात पदार्थ लेने का विधान है। इन की विशद व्याख्या इस समय स्थानाभाव के कारण नहीं हो सकती, यह द्रव्य तीन प्रकार के कहे गये हैं। जड़्गम पार्थिव तथा औद्भिद्। उद्भिद् द्रव्यों में चिकित्सा एवं रसायंन शास्त्र में प्रयुक्त होने वाली तीन प्रकार की वनस्पतियों का वर्णन है– तृणौषध-सामान्यौषध तथा दिव्यौषध। तृणौषध सर्वत्र सुलभ है– सामान्यौषधियां प्रायः हम औषधद्रव्यविक्रेताओं द्वारा जो इन्हें अपने साधनों से संग्रह कर के विक्रयार्थ रखते हैं, ग्रहण करते हैं या कोई प्रसिद्ध ऐसा द्रव्य हमारे निकट कहीं दृष्ट हुआ तो ले लेते हैं, किन्तु दिव्यौषधियां जो अधिकतर रसकर्म में प्रयुक्त होती हैं कहीं कहीं मिलती हैं– इन्हे कुलौषध भी कहा गया है। जिन की संख्या ६४ कही गई है।

भ्रमन्ति पशवो मूढाः कुलौषधिविवर्जिताः।
तृणौषधिरसानांच नैव सिद्धिः प्रजायते।।
अदिव्यास्ते तृणौषध्यो जायन्ते गिरिगह्वरे।
तृणौषध्या रसे सूतं नैव बद्धं कदाचन।।

रसार्णव द्वादश पटल –

विविध पौधों के पंचाग, तैल-स्वरस, दूध-क्षार-गोंद-स्नेहादि, तथा कई जगह पौधे मूल के साथ लगी मिट्टी तक प्रयोग में आती है।

इसी प्रकार पार्थिवद्रव्यों से अभिप्राय रसराज (पारद) तथा आठ महारसादिकों से लेकर साधारण रसादि तक और बहुत से पार्थिव द्रव्यों से है। यथा –

अष्टमहारस-

''अभ्र वैक्रांत माक्षीक विमलाद्रिज सस्यजम्
चपलो रसकश्चेति ज्ञेया ह्यष्टौ महारसाः।।''

आठ उपरस–

''गन्धाश्म गैरकासीस काङ्क्षणी ताल शिलांजनम्।
कंकुष्ठः चेत्युपरसाश्चाष्टौ पारदकर्मणि।''

सप्तधातु–

स्वर्ण रूप्यं च ताम्रं च रङ्गं यशदमेव च।
सीसं लोहं च सप्तैते धातवो गिरिसम्भवाः।।

सप्तोपधातवः–

सप्तोपधातवः स्वर्णमाक्षिकं (स्वर्णमाक्षिक सत्त्व)
तारमाक्षिकम् (तारमाक्षिक सत्त्व)।
तुत्थं कास्यं च रीतिश्च सिन्दूरश्च शिलाजतु।।

नवरत्नानि–

रत्नं (वज्रं) गारूत्मतं पुष्परागो माणिक्यमेव च।
इन्द्रनीलश्च गोमेदस्तथा वैडूर्यमित्यपि।।

नवोपरत्न–

उपरत्नानि काचश्च कर्पूराश्मा तथैव च।
मुक्ताशुक्तिश्च शम्बूक शङ्खादीनि बहून्यपि।।

क्षुद्रोपरसाः –

गन्धो-हिङ्गुल मभ्रशोरक शिला स्त्रोतोऽजनं टङ्कणम्।
राजावर्तक चुम्बकौ स्फटिकया शङ्खं खटी गैरिकम्।।
कासीसं रसकं कपर्द सिकता बोलाश्च कङ्कुष्ठकम्
सौराष्ट्री च मता अमी उपरसाः सूतस्य किंचिद्गुणैः।।

साधारण रसाः –

कम्पिलश्चपलो गौरीपाषाणो नवसागरः।

कपर्दो बह्निजारश्च गिरिसिन्दूर हिङ्गुलौ।

वोद्दारशृंगमित्यष्टौ साधारणरसाः स्मृता।

इसी प्रकार जङ्गम-औषध-द्रव्यों से अभिप्राय विविध प्रकार के जीवों द्वारा ग्रहीत बहुत से द्रव्य-मधु - मृगमद - गौरोचन - अम्बर - जंदेबेदस्तर, कुकुटाण्डत्वक - कुकुटाण्ड की श्वेत पीत मज्जात्मक लसिका - कूर्मपृष्ठास्थि - वीरवहूटी (इन्द्रगोप) - केंचुवे - मंडूक - वृश्चिक - सर्प - कर्कट - कपोत - कांटेदार - मूषकादि नाना प्रकार के जीवों के पित्ताशय तथा कुछ और अंगों, रक्त, अस्थि, लोम मज्जा, मेद, लाला, दन्त, मद, वीर्य, मल, मूत्र, दुग्ध, नवनीत-घृत कर्णाक्षिमलादि अनेक द्रव्यों से है।

विष द्रव्यों में उद्भद-पार्थिव-जंगमादि में से वत्सनाभादि आठ महाविष तथा नाना प्रकार से उपविष और संखियादि पार्थिव तथा नाना प्रकार के उपविष इसी श्रेणी के अन्दर आते हैं। रस शास्त्र में तेजांबु-तैलाम्बु, विषोदक, शैलोदक, उष्णोदकादि के वर्णन के अतिरिक्त उन से रसादिकों पर क्रिया का विधान हमें मिलता है।

रस शास्त्र कोई साधारण विद्या नहीं, दिव्य विद्या है अतः सांगोपांग अष्टाङ्ग- आयुर्वेद का सम्यक् अध्ययन करने के बाद ही रसशास्त्र के क्षेत्र में किसी को पग रखने का अधिकार है। रसशास्त्र केवल मात्र साधारण रूप से धातु-उपधातुओं के शोधन-मारण-कूपी पक्वादि क्रिया एवं पारद के कुछ संस्कारों तक ही सीमित नहीं यह तो उस की कलायें हैं, और न ही इस की सीमा कीमिया गिरी (स्वर्ण रजतादि सिद्धि हैं), और फिर यदि इस मार्ग में स्वर्णनिर्माणादि क्रिया सिद्ध भी हो जाय तो ऐसा रससिद्ध अपने संस्थान में सोने चांदी के ढेर नहीं लगाता, विश्व भर के कल्याण के लिए उस का सर्व प्रथम संकल्प होता है।

"सिद्धे रसे करिष्यामि निर्दारिद्रयमिंदं जगत्।।"

जिस को वाणी द्वारा अच्छे प्रकार वर्णित अथवा सम्पादित किया जा सके वह विद्या कहलाती है तथा जिसे गूंगा भी इशारों द्वारा मार्ग दर्शन करने से कर सके वह कला कहलाती है।

"यद्यत्स्याद्वाचिकं सम्यक् कर्म विद्याभि संज्ञकम्।

शक्तो मूकोऽपि यत्कर्तुं कला संज्ञंतु तत्स्मृतम्।।"

आयुर्वेद/रसशास्त्र एक समृद्ध शास्त्र होने के साथ-साथ असंख्य

कलाओं से भरपूर है, अतः मानव समाज के गूंगें-बहरे, एवं लंगड़े आदि वर्ग भाग को भी यह आजीविका दिलानें में समर्थता रखता है।

रस शास्त्र में आयुर्वेद सम्बन्धित असंख्य कलाओं में से दस प्रसिद्ध कलाओं का वर्णन दिया है। जिनमें आसवारिष्ट मद्यादि बनाना, शरीर के अन्दर घुसे हुये शल्य, बाण, गोली, आदि को सुख पूर्वक निकालना, तथा शिराओं पर उत्पन्न हुये व्रणों को शस्त्र द्वारा चीर कर ठीक करने का ज्ञान, हींग आदि रासायनिक द्रव्यों द्वारा अनाजादि का संरक्षण, वृक्षादिकों का रोपण तथा उन का कलम चढ़ाना एवं उन की रक्षा करने की विधि का ज्ञान, पाषाणादि द्रव्यों से सत्व एवं, स्वर्णादि धातुओं को गलाना और उनकी भस्म तैयार करना, ईखादि उद्भिज द्रव्यों से गुड़-शर्करा-खाण्डादि का निर्माण करना – रस धात्वादि द्रव्यों को दूसरी औषधों के साथ शास्त्र एवं गुरू मार्ग दर्शन द्वारा यथा विधि मिलान कर के प्रयोगार्थ तैयार करना, स्वर्णादि धातुओं के साथ मिल जाने से संकर रूप के उस धातु से स्वर्ण रजतादि के पार्थक्य करने की विधि का ज्ञान तथाधातुवों के अपूर्व रीति से परस्पर मिश्रण करने का ज्ञान और और औषधियों और वनस्पतियों के क्षार सत्त्वादि निकालने की क्रियायें आयुर्वेद और आगम शास्त्र (रस शास्त्र) की दस प्रसिद्ध कलायें कहलाती है– **शुक्रनीतिसार**

विविध प्रकार के रसद्रव्यों तथा लोहादिकों पर कई प्रकार की दिव्यौषधियों के स्वरस द्वारा भावनायें देते हुये केवल मात्र एक सौ अग्नि पुटें ही नहीं, कई स्थानों पर एक-एक हजारे पुटें देकर औषधयोग को अमृत तुल्य बना दिया जाता है– अथर्ववेद का नीचे दिया मंत्र पारद सिद्ध के लिए हमें दर्शित करता है।

धनुर्विभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रध्नि शतवध शिखण्डिनम्।
रूद्रस्येषुश्चरति देव हेति- स्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीइतः।

अथर्ववेदकाण्ड ११ द्वितीय सर्ग

यहां धनु शब्द से भल्लातक अर्थ लिया है– (विभर्षितः विमर्दितः-विभावितः) और शिखण्डि शब्द से अपामार्ग – और हरित से अर्क इनके द्रवों तैल, स्वरस, एवं दुग्ध से एक हजार अथवा एक सौ बार भी भावना दिया हुवा गन्धक तैलरूप में पारिवर्तित हो जाता है तथा उस में 'पार' (रूद्र), (हेति) तीव्र अग्नि के तेज अंगारें या शोलो में भी चक्कर खाता हुआ स्थिर रहता है।

"पुट बाहल्यं गुणाधिक्याय"

शतादिस्तु सहस्रान्तः पुटो देयो रसायने।
दशादिस्तुशतान्तः स्याद्व्याधिवारणकर्मणि।।

रसेन्द्रचिन्तामणि

इस प्रकार तैयार किया गया अमृत तुल्य रसौषध योग अथवा औषधि का शरीर की विविध प्रकृतियों के अनुकूल कल्पना करते हुए प्रयोग केवल मात्र दुःसाध्य ही नहीं असाध्य रोगों पर भी तत्काल विजय पाने के लिए शक्त है।

रसशास्त्र भी तंत्र, पुराण, ज्योतिषादि एवं प्रान्तीय भाषाओं में बहुत से ग्रन्थों में बिखरा पड़ा है, तंत्र शास्त्र में तो इस विद्या का खजाना मिल सकता है, हरगौरीराम्वादात्मक श्री मातृकाभेद तंत्र में तो बिना स्वर्ण-धात्वादि के मिलान के केवल मात्र वनौषधरस से स्पष्ट पारद-शिवलिंग बनाने का विधान है, जिसे क्रम से भावना और हल्का उत्ताप देकर दृढ़ किया जा सकता है– अन्वेषणकारों को तो कौटिल्यार्थ शास्त्र-वाराही संहिता-गोरक्षसंहिता-संग्राम विजयोदय - युद्ध जयार्णव, मातृकाभेद तंत्र-महाकाल संहिता - तथा पुराणों का बार-बार अध्ययन करना चाहिये। रसतंत्रकारों ने ६४ दिव्यौषधियों का वर्णन किया है– तो तंत्र साहित्य ने पचास औषधियों का उल्लेख किया है और प्रत्येक औषध द्रव्य का वर्णावली के एक-एक स्वर या वर्ण से नामकरण किया है –यथा –

"पंचाशद्वारगुणिता पंचाशद्वर्णमालिकाम्।
सूते तद्वर्णतोऽभिन्ना कला रूद्रादिकान् क्रमात्।।"

शारदातिलक प्रथम पटल –

यो यो मंत्रस्तस्य तस्य वर्णौषधिविनिर्मिताः।
तत्तद्वर्णोऽत्थसंख्याभिर्गुलिका मंत्रसिद्धदा।।
तयाभिषेकस्तद्धरणं तत्स्वादस्तद्विलेपनम्।
तत् पूजा च तथा सिद्धिलाभाय स्यान्न चान्यथा।।

इस प्रकार तंत्र शास्त्र में अकारादि पहिले सोलह स्वरों में क्रम से आठ महारसों और आठ उपरसों का वर्णन करते हुवे उन का सम्बन्ध क्रम से आगे के ककारादि पंचक के अनुसार पांच स्थानों पर थोड़ा भेद रख कर धातुभस्मों के साथ यथोचित औषधानुपान के साथ कई प्रकार के

असाध्य रोगों के निवारण के लिए मार्ग दर्शन करता है। टोडरानंद में दिया गया पंचपंचामृत रस इस का उदाहरण है। यथा–

''पंच पंचामृतंप्रोक्तं पंचधा पंचधाकृतम्।
पंचानांचाति धातूनां पञ्चरोगहरं परम्।।
पंचानुपानयोगेन पंचानां पाचनान्वितम्।
पंचपातकि पापघ्नं पंचरोगहरं परम्।।''

(पंचामृता रसविद्या)

यह बहुत विस्तृत विषय है, इसके ज्ञान से तंत्र शास्त्र में कथित मंत्र बीजों द्वारा औषध – रसायनद्रव्यादि के ज्ञान का मार्ग प्रदर्शित होता है जिन के प्रयोग से रोगनिवारण से आरंभ कर के शत्रुनिवारण तक की क्रियायें सिद्ध हो सकती हैं।

''रोगाणामथभूतानां मारणं येन सिद्यति।''

आयुर्वेद रोग और स्वस्थता के मूल कारण इस प्रकार बताता है

''रोगस्तु दोषवैषम्यं दोषसाम्यं निरोगिता।''

इस के उत्तर में रसशास्त्र हमें विविध प्रकार की लोहादि भस्म बनाने के लिए अलग-अलग उपदेश देता है– जैसे रसेन्द्रसारसंग्रहोक्त सामान्य पुटपाक के लिए त्रिफलादि गण - वात प्रधान विकारनिवारण के लिए एरण्डादिगण द्रव्यों के रस के क्वाथ की भावनायें - पैत्तिक विकारों में किरातादिगणद्रव्यों के स्वरस या क्वाथ की भावनायें इसी प्रकार वात पित्त, पित्तकफ, तथा वात कफ आदि द्विदोषज एवं त्रिदोषज व्याधियों के निवारण के लिए क्रम से मुस्तादि गण- पटोलादि गण-गोक्षुरादि गण तथा किंशुकादि गणों के औषध द्रव्यों के क्वाथ अथवा स्वरसादिकों की भावना दी हुई लोहादिकों की भस्मों द्वारा तैयार किये रसौषध योग तत्काल एवं प्रत्यक्ष रोगनिवारक सिद्ध होते हैं इसी का नाम तांत्रिक भावता है, सामान्य ढंग से सामान्य पुट पाक द्रव्यों द्वारा तैयार लोह भस्में वह गुण नहीं दिखा सकतीं। अतः सामान्य पुटपाक विधि से तैयार लोह भस्मों को यथोक्त वातादिदोषनिवारकगणौषध द्रव्यों की कम से कम दस पुटें और दी जायें– ध्यान रहे कि अभ्रकादि की भस्में लोह या स्टील के खरल में नहीं बननी चाहियें, कारण कि प्रत्येक बार की रगड़ाई के बाद उस भस्म में कच्चे लोह या स्टील का अंश मिला रहता है जो अभ्रक के वास्तविक

गुणों को केवल मात्र न्यून ही नहीं करता वरन् कुछ रोगों में हानिकर भी सिद्ध हो सकता है। ऐसी भस्म को चुम्बक परीक्षा से प्रत्यक्ष देखते हुये उस के फल का आप महानुभाव स्वयं अनुमान लगा सकते हैं; पुट देने के लिए अलग-अलग स्थानों पर अग्नि देने के लिए अग्निप्रमाण का भी नियम हैं जो गुरूमुख द्वारा जानकारी प्राप्त करने पर दृष्टिगत रखना चाहिए।

रसशास्त्र भारत वर्ष की मूल देन है, उदाहरण के तौर पर १९२४ ई० लाहौर में छपे यूनानी के प्रसिद्ध विद्वान जनाब हकीम करीम बख्श साहिब तथा हकीम मुहम्मद शरीफ साहिब द्वारा संग्रहीत एवं लिखे प्रसिद्ध ग्रन्थ "मुफ्ताह-उल्खज़ायन" जो भारत सरकार द्वारा यूनानी औषधनिर्माण कार्य एवं अध्यापन कार्यादि के लिए भी मान्य है, में रसशास्त्र की प्रतिष्ठा में बहुत साफ लिखे उद्गार आप महानुभावों के ज्ञान के लिए दे रहा हूं।

"मगर सच पूछो तो बकसीर हिन्दुस्तान का खुदरौ पौधा है, यहीं पैदा हुआ इसी जगह इस ने नशोनुमा पाई यहीं फूला और फला, महात्मा ऋषियों और बाखुदा योगियों के सीना बेकीना में अल्हाम-उल्काय-रूबानी के अबरे नेसां से सरसब्ज हुवा। हां, यह मुकद्दस इल्म जो किसी वक्त मुतबर्रक महापुरुषों को बतोरे अल्हास मालूम हुआ था और जिसको पाया-ए-तकमीले तक पहुंचाने के लिए हिन्दुस्तान के अलुल्-अज़्म वैद्यौ और संन्यासियों ने पहाड़ों जंगलो और मैदानों का कोना-कोना ढूंढ मारा था। अभी तक माहिराने-फने-अकसीर के सीनों के सन्दूकों में मुकुल्फल मौजूद है।

आज सब से ज्यादा कामयाब तबीब वहीं समझा जाता है, जिसे मुब्दयेफैरूयाज ने तिब्बेयुनानी के खिल्लतनुमा गिरांमाया से मलबूस करने के अलावा फने– अकसीर का जवाहरनिगार-ताज उस के सिर पर रखा है।" रसशास्त्र की सर्वश्रेष्ठता एवं वरिष्ठता के बारे में हकीम साहिबान के शब्द सुनहरी अक्षरों से लिखने योग्य हैं।

आशा है आपके हाथों रसशास्त्र सुचारू रूप से उन्नति करेगा और दुःखी संसार को रोगों और दुःखो से रहित करेगा।(आन्त्रिकभावता)

प्रवाल भस्म

निर्माण प्रक्रिया– प्रथम शाखा प्रवाल लेकर लोहे के खरल में

डालकर सूक्ष्म चूर्ण कर लें। फिर कज्जली मिला घी कुमार के गूदें में 12 घण्टे घोंटकर छोटी छोटी टिकिया बनाकर सुखा लें। पश्चात् समपुट में बन्द कर गजपुट मे फूंक दो। गुलाबी झाई वाली भस्म हो जायेगी।

शास्त्रीय दृष्टि से गुण प्रभाव

यह भस्म क्षय, रक्त पित्त, कास श्वास, धातु दोष मूत्र विकार, विष विकार, भूतबाधा, शिरो रोग, नेत्र दाह, रक्तार्श, कामला, यकृत विकार, प्रकृति दोष जनित वमन आदि रोगों में सत्वर लाभ करती है। मोतीझरा, जीर्ण ज्वर नाशक है।

मंडूरभस्म

शोधन विधि - उत्तम प्रकार का १०० वर्ष पुरानी छिद्ररहित भारी, स्निग्ध मंडूर लेकर उसे तेज कोयलों की अग्नि पर तपाया जाता है, जब मण्डूर लाल हो जाता है, तो उसे गोमूत्र में बुझाते हैं। ऐसा २१ बार करने से मंडूर, शुद्ध हो जाता है। फिर इस मण्डूर की भस्म प्राय : निम्न प्रकार बनायी जाती है।

भस्म विधि उपर्युक्त प्रकार से शुद्ध किये हुए मंडूर को सुखाकर खरल में बारीक पीसकर छान लेते हैं और फिर उसमें गोमूत्र की भावना देकर टिकिया बना ली जातीं हैं। इसे सुखाकर (मिट्टी का बर्तन) में बन्द कर देते है। अब जमीन मे डेढ़ हाथ गहरा तथा डेढ़ हाथ लम्बा अथवा इतना ही चौड़ा गड्ढा बना, उसमें आधे में जंगली कण्डे भर देते हैं तथा बीच में मंडूर से भरा हुआ सम्पुट रख देते है, फिर ऊपर तक गड्ढे में कण्डे भरकर अग्नि देते हैं, इसे गजपुट कहते हैं। जब अग्नि पूर्णतया शान्त हो जाती है तो मण्डुर को बाहर निकाल कर गोमूत्र में अच्छी तरह घुटाई करते हैं, फिर दुबारा इसी तरह गजपुट देते हैं, ऐसा ७ बार करते है। अन्त में पानी के साथ कपड़े से छान लेते हैं। इस प्रकार यह उत्तम प्रकार की मंडूर भस्म तैयार होती है।

मात्रा - २५० मिग्रा. से १ ग्राम तक प्रात : सायं।

अनुपान - मधु (शहद)

गुण - यह सौम्य, शीतल और कषाय गुण प्रधान होती है। इसके गुण तो लौह भस्म के समान होते है, परन्तु लौह भस्म की अपेक्षा मण्डूर भस्म शरीर में शीघ्र कार्य करती है। यह विशेषकर यकृत पर असर डालती है।

अत : यकृत की खराबी होने पर उसकी चिकित्सा में अत्युत्तम औषधि है। यकृत रोग-पाण्डु, कामला, कुम्भकामला, बवासीर, शरीर की सूजन, प्लीहा, पुराना बुखार, अस्थि शोष, अनार्तव व बवासीर में उपयोगी है।

भस्म (कौड़ी) कपर्दिका

शुद्ध की हुई पीली कौड़ी 40 तोले लेकर, निर्धूम तेज अग्नि पर रखकर लाल करें, लाल हो जाने पर अच्छी तरह फूल जाने पर उसे धीरे-धीरे हल्के चिमटे से उठा उठा कर घी कुमार के रस में या निम्बूरस में डाल दें, बाद में उसी रस में खरल कर दो-दो तोले की टिकिया बनाकर सूर्य की धूप में सूखा लें, और सम्पुट में रखकर गजपुट की अग्नि देकर भस्म तैयार करें।

मात्रा - 2 से 4 रत्ती तक। दिन में 2 - 3 बार।

अनुपान

घी मिश्री से, तक्र से, गरम जल से, निम्बू रस से. शहद से, पान के रस से, तथा रोगानुसार उचित अनुपात से दें। इसमें क्षार अधिक होने से मुख में छाले पड़े जाते हैं या गला खराब हो जाता है।

गोदन्तीभस्म

मृत्तिका रहित अच्छी गोदन्ती लाकर, उसको गरम जल में धो, साफ कर धूप में सुखा जमीन में एक हाथ गहरा गड्ढा बना, उसका ¾ भाग उपलों (कण्डों) से भर, ऊपर गोदन्ती के टुकड़े रख, खड्ढे के शेष अशं को उपलों से भर कर अग्नि देवें। स्वांग शीतल होने पर इस भस्म को चन्दनादि अर्क की एक भावना दे सुखा, पिसा, कपड़छान करके बोतल में भर लें। यदि जमीन में खड्ढा कर के उपलों की अग्नि देने की सुविधा न हो तो अंगीठी में लकड़ी के कोयलों की अग्नि में पूर्वोक्त विधि से भस्म बना लें। कई वैद्य इस प्रकार भस्म तैयार करके पीछे उसको या गोदन्ती के चूर्ण की भावना दे टिकिया बना, उनको सुखा, मिट्टी के दो तवों के बीच में रख कर अग्नि पुट देते हैं।

ताम्रभस्म

घटक द्रव्य - हिंगलोत्थ पारद 25 ग्राम गंधक 50 ग्राम, शुद्ध तांबे का चूर्ण अथवा शुद्ध तांबे का पतला बारीक पत्र 72 ग्राम।

निर्माण विधि - सर्व प्रथम ताम्र को आग में तपा तपाकर 7-7 बार तैल, तक्र, गोमूत्र, काजी और कुल्थी के क्वाथ में बुझाकर निकालें। फिर एक खरल में पारा और गंधक की कन्जली करके निम्बू रस में घोलकर ताम्र पत्र पर लेप कर दें। सूखने पर शराव सम्पुट में रखकर कपड़ मिट्टी करके गजपुट में फूकं दें। शीतल होने पर निकाल कर खरल में डालकर आमलकी स्वरस अथवा क्वाथ की एक भावना देकर गोला बनाकर सुखाकर अर्द्ध गज पुट में फूंक दें, तीसरी बार घृतकुमारी के रस में घोंटकर गोला बना गज पुट में फूंके और चौथी बार निम्बू स्वरस में घोटकर फूंके और पांचवी बार भी यही क्रिया करें तो ताम्र भस्मीभूत हो जाता है।

इसे भस्म, आसवा अरिष्ट निर्माण करें अवतारणमता पद्धति कहते हैं।

ताम्र भस्म की पहचान - ताम्र की भस्म स्याह काले वर्ण का होता है। प्रयोगशाला में परीक्षा करने पर वह एक ताम्र की आक्साइड के रूप में मिलता है। ताम्र का उत्तम भस्म के होने की एंक मोटी पहचान यह है कि जब ताम्र भस्म में निम्बू का स्वरस डालकर रख दें और 24 घन्टे बाद देंखे और निम्बू के स्वरस का रंग हरा न मिले तो उत्तम भस्म जाने (समझें) किन्तु यदि हरापन आजायें तो समझे कि ताम्र भस्म शुद्ध नहीं है। पहचान की दूसरी विधि यह है कि सूर्य की किरणों द्वारा देखने से चन्दिका रहित मालूम पड़े एवं थोड़े से दही मिलाकर 12 घंटे तक कांच पात्र में रखने पर भी नीलापन न दिखाई दे तों ताम्र भस्म को शुद्ध समझना चाहियें।

विकारों में गांठ (ग्रन्थि) का क्षरण करने के लिए ताम्र भस्म का उपयोग अति लाभप्रद सिद्ध हुआ है। गुल्म पर ताम्र भस्म उपयोग कुमार्यासव अथवा अन्य सार एवं सूक्ष्म रेचक औषध के साथ करना परम उपयोगी है। आमाशय में उत्पन्न हुए कर्कट, स्फोट को भी नष्ट करता है। मांसार्बुद में यदि वात प्रधान दोष हो तो ताम्र भस्म अवश्य देना चाहिये और यदि पित्त प्रधान दोष ग्रन्थि में लीन हुआ हो तो वंग भस्म देना चाहिये। ताम्र भस्म देने से दोष का स्त्राव होता है, किन्तु रक्त स्त्राव होता हो तो ताम्र भस्म का प्रयोग नही करना चाहिये, ऐसे समय पर वंग भस्म ही देना चाहिये। पाण्डु रोग में प्लीहा और यकृत इन दोनों

को अथवा इन दोनों में एक की वृद्धि होने पर ताम्र भस्म का प्रयोग करना चाहिये।

पाण्डु वर्ण की अपेक्षा निस्तेजता अधिक हो त्वचा चिकनी-सी लगती हो, मुंह मण्डल पर शोथ (सूजन) प्रतीत हो और मुंह का वर्ण श्वेत हो गया हो समस्त शरीर में थोड़ा शोथ (सूजन) इनमें भी यकृत प्लीहा विकृति कारण हो तथा पित्त क्षीण हो और कफ वृद्धि हो तो ताम्र भस्म का उपयोग कर लाभ उठाना चाहिये। मांस खाने वालों को होने वाले प्रमेह रोग में अन्य औषधियों की अपेक्षा ताम्र भस्म विशेष लाभदायक सिद्ध हुआ है। ताम्र भस्म के योग मांस घटकों को पचाने के लिये उपयोगी होते है एवं पित्त की उत्पत्ति में सहायक होता है।

ग्रहणी रोग में पित्त की उत्पत्ति अल्प मात्रा में होती है तथा जो पित्त उत्पन्न होता है वह भी निर्बल होता है। ऐसी स्थिति में जल में मिले हुए बाजरे के आटे के समान सफेद मैले रंग का और लस्सदार दस्त होता है, दस्त में दुर्गन्ध आती है। उवाक (मतली) भी आती और वमन भी होता है वह भी लस्सेदार फीकी और दुर्गन्ध वाली इन लक्षणों में ताम्र भस्म का उपयोग अतिगुणकारी होता है। मदोत्पादक हो अथवा सेन्द्रिय विष उदर में आ जाय तो उसका संशोधन करने के लिए ताम्र भस्म का सेवन लाभदायक है।

विभिन्न रोगों से भिन्न अनुपात के साथ ताम्र भस्म का प्रयोग :

1. कफ प्रधान सन्निपात में - अदरक स्वरस और गोलमिर्च चूर्ण के साथ

2. हिचकी में - निम्बू स्वरस अथवा 125 मि.ग्रा. काकड़ा सिंधी और 250 मि. ग्रा. पीपल चूर्ण शहद के साथ दें।

3. आम संग्रहणी में - सोंठ चूर्ण और घृत के साथ दें।

4. आमातिसार में - आंवला चूर्ण 2 ग्राम सोंठ चूर्ण 1 ग्राम तक के साथ दें।

5. कफ प्रमेह में - गूलर फल का चूर्ण 2 ग्राम के साथ दें।

6. यकृत दाह में - मीठे अनार के स्वरस के साथ दें।

7. अग्निमांद्य में - पीपल और मधु अथवा हल्दी चूर्ण के साथ।

8. जलोदर में - शहद के साथ चाटकर ऊपर से चित्रक मूल का क्वाथ या हल्दी क्वाथ पिलायें।

9. गुल्म में - कुमार्यासव के साथ दें।

10. गुल्म बात जन्य शूल में - विसूचिका में त्रिकटु और पंच लवण के साथ दें।

11. औदुम्बर कुष्ठ में - ताम्र भस्म, अपामार्ग का क्षार, सज्जीखार और जवाखार चारों समान भाग मिलाकर 250 मि. ग्रा. की मात्रा में दिन में तीन बार शीतल जल के साथ 49 दिन तक दें। कुष्ठ रोगी उड़द मछली, दूध, दाह करने वाली वस्तुओं का परित्याग कर दें।

12. शूल में - ताम्रभस्म और रससिन्दूर अदरख रस और मधु के साथ।

13. अम्ल पित्त में - शक्कर अथवा शहद के साथ

"हिंगुल से पारद निष्कासन"

2 किलो ग्राम हिंगुल लेकर उसे शुद्ध करने हेतु उसमें बिजौरा निम्बू एवं परिभद्र वृक्ष के क्वाथ की क्रमश : सात सात दिन भावना देने के पश्चात हिंगुल को सुखाकर दो विधियों से हिंगुल से पारद प्राप्त जिसमें एक विधि शास्त्रोक्त है द्वितीय विधि अनुभूत है।

प्रथम विधि-

डमरू यंत्र द्वारा हिंगुल से पारद निष्कासन- इसमें रसतंरगिणी ग्रन्थ का आधार लेकर हिंगुल से पारद निष्कासन किया इसमें 1 किलो ग्राम हिंगुल लिया उससे हमें 583 ग्राम पारद प्राप्त हुआ इसमें हमने प्रात : 9 बजे से सांय 5 बजे तक डमरू यन्त्र को अग्नि दी एवं अग्नि क्रमशः मध्यम अग्नि व तीव्र अग्नि दी, अग्नि के माप हेतु, थर्मामीटर से हमने (68 डिग्री से. से 168 डिग्री सेन्टीग्रेड) तक अग्नि दी, डमरू यन्त्र का निर्माण सभी विद्वानजन कर ही सकते हैं, अतः विस्तार भय से उसे वर्णित नहीं कर रहें हैं।

द्वितीय विधि-

कन्दुक यन्त्र विधि द्वारा हिंगुल से पारद निष्कासन - यह पारद निष्कासन की अनुभूत विधि है इसमें दर्जी के यहाँ से सूती कपड़े की कतरन लाकर हिंगुल के चूर्ण की चार या पाँच तह (पहले सूती कपड़ा

बिछाकर उस पर कपड़े की कतरन विछावें। पश्चात उस पर हिंगुल चूर्ण फैलावे, उसके ऊपर पुन : कपड़े की कतरन बिछावें इस प्रकार चार पाँच तह) करके पश्चात सूती कपड़े की चारों तरफ से इस प्रकार लपेटें कि उसकी गेंद जैसी पोटली बन जावे, जिससे उसमें से हिंगुल चूर्ण बाहर नहीं निकले, पश्चात उसकी सुतली से अच्छी प्रकार बांध देवें एव उस गेंद की पोटली के चारों ओर मिट्टी का तेल डालकर आग लगा दें एवं धागे (तसले) से ढंक दें दूसरे दिन पोटली (जो जल चुकी है) उससे एवं धागे के चारों और चिपके हुए पारदीय कणों को एकत्रित करलें। इस विधि से हमको 5 किलो ग्राम हिंगुल से 695 ग्राम पारद प्राप्त होता है।

त्रिभुवनकीर्ति रस-

निर्माण विधि - शुद्ध हिंगुल, शुद्ध बच्छनाग, सौंठ, पीपल, काली मिर्च सुहागे की खील (फूला) और पीपला मूल इन सबको समान भाग लें, कूट पीसकर छान कर महीन चूर्ण बना कर तुलसी अदरख और धतूरे के रस की 3-3 भावनाएं देकर एक-एक रत्ती की गोलियाँ बनाकर सुखा लें।

मात्रा और अनुपात - इसकी 1-1 गोली दिन में तीन बार अदरक रस और मधु के साथ या तुलसी पत्र के फांट के साथ अथवा किसी ज्वरध्न क्वाथ के अनुपात के साथ देना चाहिए।

उपयोगिता - इसमें पड़े घटक द्रव्य हिंगुल और टंकण दोनों ज्वरकारी जीवाणुओं की वृद्धि को रोकते हैं, तथा उनसे उत्पन्न विषैलता को कम करते हैं त्रिकटु और पिप्पली मूल कफ नाशक और बात हर होने से कफ दोष जन्य कफ ज्वर, बात ज्वर को दूर करते है। इसके सभी घटक पित्त वर्द्धक दीपन और पाचन होने से जठराग्नि को प्रज्वलित करते हैं। ज्वर उतारने में यह पैरासीटामोल की तरह तीव्र लाभ पहुँचाता है। यह बढ़े हुए तापमान को कम करके हृदय और नाड़ी की तीव्रता को कम करता है। और पसीना निकालकर बुखार को कम करता है।

कफ प्रधान ज्वर में - ज्वर का वेग कम हो, शरीर में आलस्य चलने-फिरने की इच्छा न हो निद्रा ज्यादा हो, थोड़ी-थोड़ी पीड़ा समूचे शरीर में हो नाक और मुंह से पतला कफ निकलना हाँथपाव में ऐठन गर्दन में दर्द इत्यादि लक्षण उपस्थित होने पर यह रसायन गोदन्ती भस्म

के साथ देने से विकृत कफ दूर हो जाता है और कफ-विकार से उत्पन्न रोग भी शान्त हो जाते है।

न्यूमोनिया में - इस रसायन के साथ अभ्रक भस्म, श्रृंग भस्म और चन्द्रामृत रस मिलाकर देने से बहुत लाभ होता है। आन्त्रिक सन्निपात में पित्त प्रधान होने पर यदि इस रस का उपयोग करना हो तो किसी सौम्य औषधि यथा प्रबाल चन्द्रपुटी, गिलोय सत्व आदि के साथ देना चाहिए। इससे पित्त की तीक्ष्णता बहुत शीघ्र शान्त हो जाती है।

इन्फ्लुएन्जा में - यदि पैत्तिक लक्षण दाह घबराना आदि न हो, सिर्फ कफ के **लक्षण यथा - शरीर में थोड़ा** - थोड़ा दर्द होना हाथ पैरों के अंगुलियों के जोड़ों (सन्धियों) में दर्द होना पहले जुकाम होकर कफ सूखा गया हो और सूखी खाँसी हो कण्ठ में दर्द हो तथा इस खाँसी के कारण फुफ्फुस के आसपास में शोथ हो गया हो तो त्रिभुवनकीर्ति रस को शुद्ध टंकण और अपामार्ग क्षार के साथ मधु में मिलाकर उपयोग करने से अच्छा लाभ होता है।

छोटी माता - चेचक - में सब फुन्सियाँ एक बार में ही नहीं निकल जाती है, अतएव यह बहुत कष्टदायक होती है, क्योंकि इसकी विषाक्त गैस अन्दर रहने से अनेक प्रकार की व्याधियाँ उत्पन्न कर देती है। इसमें रोगी को साधारणतया आँखों से पानी निकलना सर्दी मालूम होना जुकाम होना ज्वर मुंह पर लाल-लाल दाने उग आना बेचैन रहना इत्यादि उपद्रव होते है। ऐसी स्थिति में इस रोग की विषाक्त गैस को अन्दर से निकालने और कफ दोष को शान्त करने के लिए त्रिभुवनकीर्ति रस का उपयोग दशमूल क्वाथ या लौंग के पानी से करना चाहिए।

इस रसायन में हिंगुल कीटाणु और कफ दोषनाशक तथा पतले कफ को गाढ़ा कर शोध कम करने वाला है। बच्छनांग ज्वरघ्न पसीना लाने वाला और शोथनाशक है। पिप्पली और पीपलामूल उत्तेजक पाचक और दीपक है। सोंठ स्वेद (पसीना) लाने वाली ज्वरनाशक और अग्निदीपक है। तुलसी-पसीना लाने वाली और उत्तेजक है। धतूरा रस-वेदना (दर्द) नाशक, शोथघ्न ज्वरनाशक तथा पसीना लाने वाला है। सुहागा आक्षेपघ्न कफनाशक कफ को पतला करने वाला तथा आंतों से विषाक्त गैस को बाहर निकालने वाला है। अत : त्रिभुवनकीर्तिरस का उपयोग करने से मनुष्य गैस का भी रोगी नहीं होने पाता।

दाह—चम्मेली के पत्ते-पटोलपत्र-करंज के पत्र शहद के छत्ते की मोम-मुलैठी-कुट-हल्दी-दारूहल्दी के छिलके-कुटकी-मजीठ-पद्माख-लौग-हरड़ छिलका-कमलकेशर-नीलाथोथा भूनाहुआ-अनंतमूल (सारिवा) करंजबीज- यह सब समभाग लेकर, कूट के 16 गुना पानी में शाम को भिगो दें। प्रात : क्वाथ के वजन के बराबर तिल का तैल डाल कर पाक करते हुए तैल मात्र बचने पर छान कर रखें। यह वह साधारण सा दिखने वाला तैल है जो अपने अन्दर बिसर्पादि रोगों के निवारण के लिये दिव्य शक्ति रखता है। स्थानीय दाह, लालिमा के दृष्ट होने पर इस का उस रोगग्रस्त पर रूई के साथ प्रयोग करने पर जहां वेदना दाहादि से छुटकारा मिलता है वहां रोग आगे बढ़ नहीं सकता, विस्फोटक नहीं बन पाते।

त्रैलोक्यचिन्तामणि रस

भैषज्यरत्नावली में दिया गया रसायनाधिकार का यह योग अब तो अपने प्रयोग में असंख्य बार आ चुका है - बहुत उपयोग और लाजवाब योग है यह योग वस्तिरोग हों चाहे यकृत प्लीहा अथवा पित्ताशय मे अश्मरी हो वृक्क वस्ति की अथवा पित्ताशय की या कहीं आन्त्र में व्यथा हों, आमाशय में विकार हो अथवा विकार बढ़कर जलोदर का रूप धारण कर गया हों, यकृतदाल्युदर (Corrhosis of Liver) हो या Hepatitis A-B-C आमदोष-रसारक्तादि के उपसर्गजात कई रोग। (Leukaemia] Lymphoma आदि) विद्रधि-अर्बुद-दुष्ट्रार्बुद, भगन्दर और इस के साथ हो रही भयंकर वेदना-ज्वरशूल-पाण्डु-ग्रहणी-रक्तातिसार-कई प्रकार के प्रमेह-शोध कुष्ठादिकों में योग की कुछ थोड़ी ही मात्रायें कुछ दिनों में ही भयंकर रोग जीत लेती है। इसका योग इस प्रकार है—

इस योग में कायाकल्प गुण ही समझिये, मरते हुए व्यक्ति इस योग के प्रयोग से बचे है, भयानक बीमारियों के लिये यह रामबाण है। इस योग के घटक निम्न है - अष्टसंस्कार किया हुआ शुद्ध पारा - हीरक भस्म-रजत भस्म-तीक्ष्ण लोह भस्म-अभ्रक भस्म-मुक्ता भस्म-विशुद्ध गन्धक-शंख भस्म-प्रवाल भस्म-हरिताल शुद्ध-मनः शिला शुद्ध-सब समान भाग लेकर चित्रकमूल के स्वरस में सात दिन तक खरल करें, इस के बाद अर्क के दूध से तीन दिन मर्दन करें तदनंतर - सम्भालु (निर्गुण्डी) स्वरस से तीन दिन लगातार खरल हो - फिर जिमीकन्द के स्वरस से तीन दिन तक

खरल कर के , तीन दिन थोहर (स्नुहि) के दूध से खरल किया जाये- अब पीली कौड़ियाँ लेकर जलादि से अच्छे प्रकार साफ करके इस योग को कोड़ियों में भर दिया जाये- अब कच्चा सुहागा अर्क के दूध के साथ रगड़कर इस योग से कोड़ियों का मुंह लिप्त कर लें- अब इन कौड़ियों को मृत्तिकावस्त्रपूत मृतिकापात्र में अच्छे प्रकार बंद कर के गजपुट की आग दें, स्वांग शीतल होने पर निकाल कर कौड़ियों समेत पीस लें। अब इस चूर्ण को तोल लें और उसके बराबर पारद भस्म या षडगुण रससिन्दूर मिलायें और रससिन्दूर से चौथाई भाग व्रैकान्त भस्म मिला कर सुहांजने के रस, चित्रकमूल स्वरस या क्वाथ से सात-सात बार भावनायें देकर आधा रत्ती के लगभग गोली बनायें-मात्रा एक गोली-अतिआवश्यकता पर दो गोली तक दे सकते हैं।

रोगानुसार अनुपात के साथ यह दिव्ययोग प्रयोग कराया जाये। यह रसायनयोग बुढ़ापे और अकाल मृत्यु का निवारण करता है, एक उत्तम कायाकल्प के तौर पर शरीर में संचित जीर्ण या अर्वाचीन नाना प्रकार दोषों को दूर कर के शरीर का लावण्य, सौन्दर्य और चुस्ती बढ़ाता है, रसराक्तादि धातुओं से उपसर्ग दोष हटाता हुआ त्वचा, पेशियों को कोमल एवं बलयुक्त बनाने में सहायक होता है, स्त्रोंतों में संचित रक्त के जमाव को हटाता हुआ स्थान पर रूके एवं प्रतिलोमगति प्राप्त वायु का नि : सरण कर के विविध प्रकार के वात एवं आमवालजनित वेदनाओं में शीघ्र ही शान्ति दिलाता है।

लोकनाथरस

विशुद्ध पारा - विशुद्धगन्धक दोनों समभाग लेकर कज्जली बनायें, कज्जली ठीक बन जाने पर उस में एक भाग अभ्रक की शतपुटी भस्म मिला कर एक दिन और खरल करें, अब पारद से दो गुण शुद्ध लोह की तैयार की हुई भस्म - तथा उतनी ही विशुद्ध ताम्रकी उत्तम भस्म मिलायें इन सब को रगड़ते हुये, इस योग में पारद से त्रिगुण कपर्दिका की भस्म मिला दें, और पान के रस से एक दिन मर्दन कर के टिकिया बना कर लघु पुट दें, स्वांगशीतल होने पर औषधि निकाल कर पीस शीशी में सुरक्षित रखें।

मात्रा आधे से २ रत्ती तक - यथोचित अनुपान के साथ-

इस रस का प्रयोग यकृद्रोगों-गुल्म-उदरविकारों को नष्ट करता है, प्लीहा, शोथादिकों में इस प्रयोग से बहुत लाभ होता है, जीर्णज्वर -पाण्डु-कामला आदि रोगों में अत्यन्त उपयोगी हैं- मन्दाग्नि को नष्ट करता हुआ रसरक्तादि के पाचन में विशेष सहायक है।

उपयोगी जानकारी (आलाभा)

असली और नकली द्रव्यों का परीक्षण

१. केसर

केसर एक मूल्यवान वस्तु है। आजकल बाजार में नकली केसर ही ज्यादा मिलता है। या फिर असली केसर में अन्य फूलों के पराग आदि मिला दिये जाते है।

असली केसर रक्ताभ पीला, सुगंन्धित और वजन में हल्का होता है। इसकी छोटी सी तुरी मुँह में रख लेने से सिर में गर्मी अनुभव होने लगती है। केसर को पानी में भिगोकर किसी सफेद कपड़े पर लगायें। अगर तुरन्त पीला दाग लगजाये तो समझे कि केसर असली है, और यदि लाल रंग का दाग पड़कर कुछ देर बाद पीला हो जाये तो उसे नकली केसर समझना चाहिए। असली केसर स्प्रिट में डालने से स्वभाविक रंग नहीं छोड़ती और स्प्रिट को ही रंगीन बना देती है। किन्तु नकली केसर का सारा रंग स्प्रिट में घुल जायेगा। और मिलावटी चीज का रंग स्पष्ट हो जाता है। या इसके तुर्रियों का रंग फीका या रंगहीन हो जायेगां ।

२. कस्तूरी

केसर की भाँति कस्तूरी भी मिलावटी या कृत्रिम मिलती है। असली कस्तूरी अत्यन्त मूल्यवान वस्तु है। लेकिन सही पहिचान न होने के कारण अक्सर लोग इसे खरीदते समय धोखा खा जाते हैं। मिलावटी कस्तूरी से आपेक्षित लाभ नहीं मिलता अतः इसे खरीदते समय निम्न बातों का ध्यान रखें–

असली कस्तूरी अत्यन्त खुशुबूदार, छूनें में मुलायम और साबुत झिल्ली में लिपटी हुई होती हैं पानी में इसके कण घुलते नहीं हैं,

जैसे हो वैसे ही रहते हैं। एक लाल कोयले पर छोटा टुकड़ा रख देने से वह तेल की तरह बुदबुदाने लगती है। जलने पर इसकी महक दूर दूर तक फैल जाती है। नकली कस्तूरी छूने में सख्त होती हैं। जलते कोयले पर यह राख बन जाती है। जलने पर साथ मिले अन्य द्रव्य की सुगन्ध कस्तूरी जलने के बाद आने लगती हैं ।

३. कपूर

भीम सेनी कपूर शुद्ध होता है। अभाव में यदि साधारण कपूर लेना पड़े तो इस बात का विशेष ध्यान रखें कि कपूर नकली या मिलावटी न हों नकली कपूर में मोम आदि द्रव्य मिले होते हैं।

असली कपूर गर्म रोटी पर रखने से पिघल जाता है। कपूर को हथेली पर घिसकर हाथ की रेखाओं में यदि कपूर दिखाई दे तो कपूर को असली समझे अन्यथा कपूर नकली होगा। चाँदी के वर्क में लपेट कर कपूर जलाने से दीपक की भाँति जलता है। नकली कपूर आवाज करता है और कुछ देर बाद बुझ जाता है।

४. अफीम

अफीम का वजन बढ़ाने के लिए व्यापारी लोग इसमें पोस्त का चूरा, खसखस, रसौंत, गुड़ आदि मिला देते हैं। नकली अफीम बनाने की विधियां भी खोज ली गई हैं। औषधियों के प्रयोगों में अफीम का शुद्ध व असली होना अनिवार्य है अतः निम्न बातों को ध्यान में रखकर अफीम के असली नकली का स्वंय अनुमान लगा सकते हैं। एकदम असली अफीम धूप में रखने से पिघल जाती है। असली अफीम आग के कोयले पर रखने से जल उठती हैं। इसका धुआँ नहीं निकलता और जलने के बाद भी इसकी राख नहीं बचती जलते समय एक स्वच्छ ज्योति की तरह लगती है। इन लक्षणों के सिवा कोई अन्य लक्षण हो तो अफीम नकली समझनी चाहिए।

५. शिलाजीत

आजकल असली सुर्यतापी शुद्ध शिलाजीत दुर्लभ हो गया है। बाजार में बिकने बाला शिलाजीत अधिकतर अग्नितापी, मिलावटी या नकली होता है। लिखित ढ़ग से शिलाजीत की परीक्षा कर वास्तविकता का पता लगाया जाता हैं। शुद्ध शिलाजीत जलत हुए (निर्धूम) कोयले पर रखने पर धुआं नहीं छोड़ती पकते हुए कुछ बुदबुदाती है और फिर लिंगाकार हो जाती है। जबकि नकली शिलाजीत गर्म करने पर तो धुआं छोड़ने लगती है या गर्म कर खींचने से तार बनाती है। ऐसी शिलाजीत में गुड़ आदि मिला होता है। असली शिलाजीत जल में छोड़ने से धागे के समान लम्बे आकार में फैलती है। ऐसी शिलाजीत उत्तम श्रेणी की होती है।

६. बंशलोचन

सिंगापुर का बंशलोचन सर्वोत्तम माना जाता है। लेकिन इसके अभाव में कोई अन्य जाति का बंशलोचन सर्वोत्तम भी लिया जा सकता है। बंशर्ते बंशलोचन की पहिचान होनी चाहिए -

असली बंशलोचन हल्के नीले रंग की झाई लिये हुये सफेद रंग का होता है, इसमें कुछ मटमैलापन सा रहता है किन्तु कृत्रिम (नकली) वंशलोचन एकदम स्वच्छ सफेद होता है। असली बंशलोचन में जल को सोखने का गुण होता है। इसकी डली जीभ पर रखने से यह जीभ पर सटता नहीं है कुछ देर पश्चात पिघल जाता है। नकली में यह लक्षण नहीं होते हैं। असली बंशलोचन को किसी पत्थर आदि पर घिसने पर यह किसी प्रकार का कोई निशान नहीं छोड़ता है। यह सब गुण देखकर ही बंशलोचन खरीदना चाहिए।

७. अकरकरा

अलजेरिया का अकरकरा सर्वोत्तम होता हैं। अरब देशों का अकरकरा भारत में आता है, यही असली अकरकरा होता है। यह वजन में भारी होता है। इसे कही से भी तोड़ो आसानी से टूट जाता है। इसमें एक सुगन्ध होती हैं। अन्दर से कुछ सफेद होता है। इसका टुकड़ा मुंह में रखने से पानी आना शुरू हो जाता है। मुंह में चुनचुनाहट होकर सुन्नता सी आ जाती हैं।

असली अकरकरा (भारतीय) वजन में हल्का होता हैं। इसकों चबाने से चुनचुनाहट तो होती है, लेकिन अपेक्षाकृत कम समय तक रहती है। यह तोड़ने पर भीतर से पीताभ रंग वाला और गन्ध रहित होता है। यह सब लक्षण देखकर ही असली या नकली होने का भेद जाना जा सकता है।

८. शहद (मधु)

आयुर्वेदिक चिकित्सा में शहद को अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। वाजीकरण चिकित्सा में भी इसे सर्वश्रेष्ठ अनुपान माना जाता है। कुछ औषधि निर्माता शुद्ध शहद को शीशियों शीलबन्द करके मार्केट में भेजते है। किसी विश्वसनीय कम्पनी का शहद प्रयोग में लिया जा सकता हैं। खुले शहद का विश्वास नही किया जा सकता है। हो सकता है शहद में खाण्ड की चासनी आदि की मिलावट हो। अतः खुला शहद खरीदते समय परख लेना चाहिए। कि शहद असली हैं या मिलावटी।

रोटी के टुकड़े या ब्रेड पीस आदि चीज को शहद लगाकर कुत्ते के आगे डाल दें। अगर कुत्ता शहद या शहद लगी चीज खा जाये तो शहद नकली समझें, क्योंकि असली शहद को नहीं खाता हैं। असली शहद की में से गिरी हुई मक्खी बाहर निकल आती है जबकि चाशनी या मिलावटी शहद में वहीं लिपटकर मर जाती है। असली शहद की बूंद कांच के पानी भरे हुए गिलास में डालें तो यह लम्बी तार बनाता हुआ तले पर बैठ जायेगा, जबकि नकली शहद तुरन्त पानी में घुल जाता है।

९. देशी घी

देशी घी भी वाजीकरण दवाओं का श्रेष्ठ अनुपान हैं, विशेषकर अश्वगंध, अकरकरा आदि उष्ण वीर्य औषधियां देशी घी में लेने का निर्देश दिया जाता हैं। घी औषधी अनुपान के रूप में लेना हो या आहार के रूप में ,यदि अशुद्ध या मिलावटी हुआ तो लाभ की बजाय हानि ही होगी और आजकल देशी घी में मिलावट होना

आम बात हो गई है। अतः देशी घी को परख लेना चाहिए कि इसमें मिलावट तो नहीं है। यदि खुला देशी घी खरीदना हो तो निम्न ढ़ग से उसकी परीक्षा करें –

एक साफ सफेद रंग की शीशी में थोड़ा देशी घी डाल कर गर्म पानी में शीशी रखकर घी पिघला लें। इस पिघले हुए घी में ३-४ बूंद शोरे का तेजाब डाल दें, यदि घी का रंग जैसा का वैसा ही रहे अर्थात घी में कोई परिवर्तन न हो तो देशी घी को शुद्ध समझें। तेजाब की बूदें डालने पर यदि घी का रंग गहरा पीला हो जाय। तो घी में वनस्पति की मिलावट समझें। और घी में चर्बी हो तो घी का रंग नारंगी हो जायेगा।

जहां तक हो सके घर में देशी घी का निर्माण स्वयं करना चाहिए। दूध को जमाकर मथकर मक्खन निकाल गर्म कर लेने से शुद्ध असली व निर्दोष देशी घी तैयार हो जाता है।

अन्य कुछ जानकारी–

औषधि की भावना देना

औषधि मिश्रण को किसी बड़े खरल में डालकर जिस दृव्य की भावना देनी हो उसका स्वरस निकालकर शुष्क दवा में इतनी मात्रा में डालें कि स्वरस औषधि के ऊपर २-२ अंगुल ज्यादा रहे, फिर इसे जितनी घुटाई करने का निर्देश हो उतने दिन घुटाई करके धूप या छाया में सुखा लेना चाहिए। जब औषधि पूर्ण रूप से सूख जाय तो पुनः नया रस उसी प्रकार बारबार (जितनी भावनाएं देने का विधान उसी अनुसार) डालकर दवा शुष्क करते जाये तो औषधि उसी अवस्था में (स्वरस) के रूप में उपलब्ध न हो तो उस द्रव्य का विधिवत क्वाथ बनाकर भावनाएं दी जा सकती है।

स्वरस निकालना

पत्ते वाली औषधियों का स्वरस निकालना हो तो उन्हें ताजा तोड़कर लायें जल से धोकर पर या पत्थर की कुण्डी में रगड़कर स्वच्छ कपड़े की पोटली बनाकर रस निचोड़ ले। पुदीना, तुलसी,

अदरक आदि का रस इस विधि भली भांति निकाला जा सकता है। कन्द नुमा द्रव्य जैसे प्याज आदि को बिजली वाले जूसर की सहायता से रस निकालकर प्रयोग किया जा सकता है।

पुटपाक विधि द्वारा स्वरस निकालना

अनेकों वाजीकरण औषधियों में से पान के पत्तों का स्वरस की भावनाएं देने का उल्लेख किया गया है। पान के पत्तों को क़ुण्डी या सिल पर पीसने से निचोड़ने से स्वरस नहीं निकलता, इसी प्रकार बेलपत्र, अडूसापत्र, नीम पत्र इत्यादि औषधियों का स्वरस गरम किये बिना ठीक से नहीं निकलता। अतः पुटपाक विधि द्वारा स्वरस निकालने का विधान है।

ताजी वनस्पति को सिल पर पीसकर चटनी जैसी लुगदी बना लें। फिर उस लुगदी को गोला बनाकर बरगद के पत्ते या कमल पत्र में लपेट लें। गेहूँ का गुधा हुआ आटा चारों तरफ लगाकर धूप में सुखा लें। इसे बिना धुऐं वाले कण्डे या कोयले की आग में रखकर खूब लाल होने तक रखा रहने दें। तब गर्म गर्म गोले को ही तोड़कर दवा निकाल हाथ से दबाकर निचोड़ लें। इस विधि से स्वरस आसानी से निकाला जा सकता है। यह 'पुटपाक विधि' है।

क्वाथ बनाना

जिस द्रव्य का क्वाथ बनाना हो उसे जव कुट करके (जौ के समान बारीक)सोलह गुना पानी में भिगो दें। अगले दिन इसे मन्द मन्द आग पर पकायें जब पकते-पकते ८ वाँ भाग शेष रहे , तब इसे स्वच्छ कपड़े द्वारा गर्म-गर्म रहने पर छान लें। यह अष्टमांश क्वाथ है! यदि चतुर्थांश क्वाथ लेने को लिखा हो तो कुल पानी का १/४ भाग शेष रहने तक उबालना चाहिए। क्वाथ पकाते समय बर्तन के ऊपर जालीदार ढ़क्कन देकर रखें ताकि कीड़े मकोड़े या मच्छर, मक्खी दवा के भीतर न जा सके, क्वाथ मिटटी के बर्तन में बनाना चाहिए या फिर कलई किया हुआ ताँबे या पीतल का बर्तन में किया जा सकता है। धातु के बर्तन के नीचे (बाहर से) मिट्टी

का लेप करदेना चाहिए।

घनसत्व निर्माण विधि

जिस द्रव्य का घनसत्व बनाना हो उसे पहले उपरोक्त विधि द्वारा 'अष्टमांश क्वाथ' सिद्ध करें। काढ़ा छानने के बाद पुनः कलई दार बर्तन में डालकर मन्द आग पर पकायें। जब पकते पकते द्रव्य कलछी से चुपकने लगे अर्थात कुछ गाढ़ा हो जाये तब उसमें उसी द्रव्य का चूर्ण (जिसका घनसत्व बनाया जा रहा हो ।) लगभग १/४ भाग मिलाकर थाली में घी का हाथ देकर द्रव्य उसमें निकाल लें। इसे तेज धूप में सुखा लें। यह द्रव्य का घनसत्व है।

बरगद का घनसत्व

बड़ की दाड़ी (बारीक कतरी) और पीले पके हुए पत्ते जल से धोकर एक मिटटी के घड़े में ठूंस ठूंस कर भर दें। ऊपर से जितना पानी भर सके ऊपर तक भर दें। इस घड़े को मन्द आग पर रखकर पकायें। ५-६ घंटे तक अग्नि देकर उतार लें स्वयं शीतल होने पर एक लोहे के बड़े कढ़ाये में सारा मिश्रण निकालकर साफ हाथों से खूब मसलकर कपड़े से निचोड़ लें। इस छने हुए स्वरस को पुनः अग्नि पर चढ़ाकर मन्द आग पर गाढ़ा होने तक पकायें जब अफीम जैसा गाढ़ा द्रव्य बन जायें इसे छाया में या धूप में सुखा लें। यह बरगद का घनसत्व है।

बरगद का दूध

वट वृक्ष का पत्ता या कोपल तोड़ने पर दूध की बूँदें टपकती है। यदि किसी औषधि को बरगद के दूध की भावना देनी हो तो अधिक मात्रा में वट के दूध की आवश्यकता होती हैं। बरगद के वृक्ष की मोटी शाखा के अन्तिम सिरे पर किसी सरीये या कील से सुराक कर दें। कुछ समय बाद दूध टपकना शुरू हो जायेगा। इसे चीनी या कांच के बर्तन में सग्रह कर लें। कुछ ग्रामीण लोग इस वृक्ष की शाखा में जड़ के पास मोटा किल्ला ठोंककर १०-१२ घंटे तक छोड़ देते हैं। तत्पश्चात किल्ला निकाल कर नीचे चीनी

मिटटी का बर्तन रख के दूध इकट्ठा कर लिया जाता हैं। प्रातः सूर्य निकलने से पूर्व बड़ का दूध सही निकलता है। अतः प्रातः मुँह अधेरे जाकर बड़ का दूध एकत्र कर लेना चाहिए।

गिलोय का सत्व

'सत्व गिलोय' आयुर्वेद की महत्वपूर्ण औषधि है। वाजीकरण चिकित्सा में भी इसका विशेष महत्व है। अनेकों औषधि निर्माता गिलोय सत्व का निर्माण करते है। लेकिन अधिकतर गिलोय नकली होती है। मिलावटी भी अधिक मिलती है। अतः किसी विश्वसनीय क० का 'गिलोय सत्व' ही खरीदना चाहिए या फिर स्वंय घर पर गिलोय सत्व का निर्माण कर व्यवहार में लाना चाहिए।

ताजी गिलोय का अंगूठे जितना मोटा (पुष्ट गूदेदार)तना लेकर लकड़ी के ऊखल में डालकर लकड़ी के मोटे मूसल से खूब कूटकर मलीदा बना दें। फिर इसे किसी कलई किये बर्तन में डालकर चौगुना पानी मिलाकर हाथों से खूब खूब मसल मसल कर कपड़े में २-३ बार छान लो इसे ढककर एक रात रखा रहने दें। दूसरे दिन ऊपर का पानी धीरे धीरे किसी दूसरे बर्तन में निथार लें। पात्र के तल में मटमैले रंग का सत्व सा जमा हुआ मिलेगा इसे धूप में सुखा लें। यही असली गिलोय सत्व है।

द्रव्य शोधन विधान

भांग का शोधन

भांग की पत्तियों को कपड़े कों पोटली बनाकर पानी में डाल डाल कर तब तक मसला जाता है, जब तक हरा पानी निकलता रहे। जब पानी में हरापन नहीं रहे, तब भांग को निकालकर सुखा लिया जाता हैं। भांग शोधन की यह विधि मुख्यतः प्रचलित है।

किन्तु वाजीकरण औषधि का प्रयोग हेतु एक विशेष विधि द्वारा भांग का शोधन किया जाता हैं। इससे भांग बहुत प्रभावशाली बनती है और इसके विषाक्त तत्व नष्ट हो जाते है। लगभग १०

ली० पानी में २५० ग्राम नमक मिलाकर एक बड़े पतीले में डालें। इसमें ३ किलो भांग की ताजी पत्तियां डालकर तेज आग पर पकायें। दो - तीन घंटे पश्चात जब पानी गहरे हरे रंग का हो जाये तो उसे निकालकर उतना ही नया पानी डालकर फिर उबालें। दो तीन घंटे बाद पानी बदलते रहें यह किया तब तक दोहरायें जबतक भांग का पानी हरा होता रहे। जब पानी साफ निकलने लगे तो भांग के पत्ते पानी से निकालकर तेज धूप में सुखा लें। इन सूखी पत्तियों को कढ़ाई में सूखा ही थोड़ा सेक कर पीस लें।

इस विधि द्वारा शुद्ध की गई भांग बहुत प्रभावशाली होती है।

अफीम का शोधन

अफीम असली भी हो तो भी उसमें कई अशुद्धियां कूड़ा कचरा रेत आदि उसमें रहते हैं। अतः अभ्यन्तर सेवनार्थ औषधियों में यदि अफीम डालना हो तो पहले उसको शुद्ध कर लेना चाहिए। अफीम को चौगुने पानी में घोलकर कपड़े से छानकर मन्द आग पर पकाकर गाढ़ा कर लें। पश्चात उसको अदरक के ताजे स्वरस की ७ भावनाएं देकर शुष्क करें। यह शुद्ध अफीम है।

धतूरे के बीजों का शोधन

धतूरे के अच्छे पके हुए फलों में से बीज निकालकर पोटली में बांधकर दोलायन्त्र में गाय के दूध में ३-४ घंटे तक मन्द आग पर पकायें। उसके बाद बीज निकालकर गर्म जल में धोकर धूप में सुखा लें, अथवा धतूरे के बीजों को चार प्रहर तक गौमूत्र में भिगोकर निकालकर सुखा लें और ऊपर की भुसी अलग करलें। यह धतूरे के शुद्ध बीज है।

कुचला शोधन

कुचले के मोटे पुष्टबीज लेकर गौमूत्र में एक सप्ताह तक भिगो दें। प्रतिदिन बदलते रहें। आठवें दिन बीजों का छिलका तथा भीतर की जीभी निकालकर फेंक दें तथा बीजों की गिरियों की पोटली बनाकर गाय के दूध में दोलायन्त्र द्वारा पका लें। तत्पश्चात

इन बीजों को गरम जल से धोकर छोटे छोटे टुकड़े करके सुखा लें। कुछ लोग कुचले के शुद्ध बीजों का चूर्ण बनाकर एरण्ड के तेल में भूनकर प्रयोग करते हैं।

भिलावा शोधन

भिलावों की टोपी काटकर ईंट टुकड़े से खूब रगड़कर या ईंट पर भिलावा रगड़कर ईंट के ही चूर्ण में ३ दिन तक दबाकर रख दें। पश्चात निकालकर भिलावे को पानी से धोकर सुखा लें। यह भिलावे की शोधन की प्रचलित विधि है। अन्य विधि इस प्रकार है– अच्छे पुष्ट व पके हुए भिलावे लेकर एक दिन तक गाय के मूत्र में भिगो दें। दूसरे दिन इन्हें पानी में धोकर गाय के दूध में भिगो दें और तीसरे चौथे दिन भी गाय के दूध में ही भिगोये रखें। प्रतिदिन नया दूध डालना चाहिए। तद्पश्चात ईंट के बारीक चूर्ण से भिलावे खूब रगड़कर जल से धो लें। यह शुद्ध भिलावा है।

गुन्जा शोधन

गुन्जा (चिरमिटी) को कपड़े की पोटली में बांध कर कांजी में दोलायन्त्र द्वारा एक प्रहर तक उबालकर धो लें। गुन्जा शुद्ध हो जायेगा।

गन्धक शोधन

गन्धक शोधन की यह विधि – शांर्गधर संहिता नामक ग्रंथ पर आधारित है। एक लोहे की कड़ाही में शुद्ध घृत डालकर समभाग गंधक का दरदरा चूर्ण डालकर पकायें, गंधक के पिघलते ही इसे दूध में डाल दें। उसके बाद दूध से गंधक निकालकर गर्म पानी में धोकर धूप में सुखा लें। यह सब रोगों के लिए उपयोगी शुद्ध गंधक है।

शिलाजीत शोधन

रसतन्त्रसार(प्रथम खण्ड) ग्रंथ में शिलाजीत के शोधन की कुछ एक प्रमाणिक विधियों का वर्णन हुआ हैं। उनमें से एक विधि निम्नानुसार है– आधा सेर त्रिफला को जवकुट करके ३२ सेर जल में पकायें। जब चौथाई भाग शेष रहे तब उतार कर छान लें।

इस छने हुए क्वाथ में ३ पाव शिलाजीत के टुकड़े डालकर २४ घण्टों तक लोहे की कढ़ाही में डालकर मन्द आग पर पकावें। जब पानी रबड़ी जैसा हो जाय तब उतार कर रख दें। यही शुद्ध शिलाजीत है।

संखिया शोधन

संखीया को मल्ल, सोमल आदि नामों से भी जाना जाता है। संखियें को शुद्ध करने की विधि आसान है। इसे छोटे छोटे टुकड़े करके (लगभग चने के आकार के टुकड़े करें) दोलायन्त्र में एक दिन तक बकरे के मूत्र में या चौलाई के ताजे स्वरस में उबाल लेने से संखीया शुद्ध हो जाता है।

हिंगुल शोधन

हिंगुल को कपड़े की पोटली में बांधकर दोलायन्त्र में जम्बीरी नींबू के स्वरस में एक प्रहर तक स्वेदन (भाप से) करने के बाद खरल कर बकरी के दूध की ७ भावनाएं देकर सुखा लेने से हिंगुल शुद्ध हो जाता है। अथवा शिगंरफ को पीसकर अदरक के ताजे स्वरस की ७ भावनाएं देकर सुखा लेने से भी हिंगुल शुद्ध हो जाता है।

शुद्ध शिलाजीत की पहचान

लकड़ी के अंगारे की अग्नि में शिलाजीत थोड़ी मात्रा में रख दें यदि धुँआ नहीं उठे तो समझे कि शुद्ध शिलाजीत है।

शोधन विधि

द्रव्य की शोधन प्रक्रिया के अनुसार ही यन्त्रों का प्रयोग किया जाता है। जैसे स्वेदन के लिए दोलायन्त्र का प्रयोग, मर्दन के लिए खल्वयन्त्र का प्रयोग आदि सामान्यतः द्रव्य शोधन के कुछ निम्न मुख्य यन्त्र है :—

दोलायन्त्र, उर्ध्वपातन यन्त्र, अधः पातन यन्त्र, तिर्यक पातन यन्त्र स्थाली यन्त्र आदि। इन यन्त्रों के द्वारा शास्त्र में वर्णित विधि एवं औषध द्रव्य का प्रयोग करके रसशास्त्रीय सभी द्रव्यों का शोधन

करने के लिए पश्चात् उनका भस्मीकरण कर चिकित्सा में प्रयुक्त किया जाना चाहिए क्योंकि अशोधित द्रव्यों के प्रयोग से लाभ के स्थान पर हानि एवं अपयश प्राप्त होगा।

रसशास्त्र में वर्णित द्रव्य शोधन विधि एवं शोधन में प्रयुक्त द्रव्य को हम निम्न सारणी द्वारा प्रदर्शित कर सकते हैं।

क्र. सं.	रसशास्त्रीय द्रव्य	शोधन विधि	शोधन में प्रयुक्त द्रव्य
१.	अकीक	प्रक्षालन	नींबू स्वरस, उष्णोदक
२.	अभ्रक	निर्वाप	गोमूत्र कांजी
३.	कर्पदक	स्वेदन	कांजी
४.	कासीस	प्रक्षालन	भृङ्गराज स्वरस
५.	कांस्य	निर्वाप	गोमूत्र
६.	कुक्कुटटाण्डत्वक	प्रक्षालन	उष्णोदक, सिरका (अम्ल)
७.	खर्पर	निर्वाप	नरमूत्र
८.	गोदन्ती	स्वेदन	नीबू स्वरस
९.	गोमेद	स्वेदन	नीबू स्वरस
१०.	जहर मोहरा	प्रक्षालन	उष्ण जल
११.	ताम्र	निर्वाप	तैल तक्र गोमूत्र कॉजी कुलत्थ
१२.	तुत्थ	स्वेदन	गोमूत्र
१३.	नाग	निर्वाप	तैल तक्र.. कुलत्थ, निर्गुण्ड़ी स्वरस
१४.	नीलम	स्वेदन	नीली स्वरस
१५.	मरकत	स्नेदन	गोदुग्ध
१६.	पारद	मर्दन	चूना (सुधा) लहसुन, सैन्धवलवण
१७.	पित्तल	निर्वाप	निर्गुण्डी स्वरस (हरिद्रा चूर्ण)

१८.	पेरोजा	स्वेदन	शिरीष स्वरस और आर्द्रक स्वरस
१६.	पुखराज	स्वेदन	कुलत्थ क्वाथ और कान्जी
२०.	प्रवाल	स्वेदन	सज्जीक्षार
२१.	वंग	निर्वाप	तैल-तक्र गोमूत्र काजी निर्गुण्डी स्वरस
२२.	भूनाग	प्रक्षालन	उष्णोदक
२३.	मण्डूर	निर्वाप	गोमूत्र
२४.	मयूरपिच्छ	प्रक्षालन	उष्णजल
२५.	मल्ल	स्वेदन	करेला, चौलाई स्वरस
२६.	माणिक्य	स्वेदन	नीबू स्वरस
२७.	मुक्ता	स्वेदन	जयन्ती स्वरस
२८.	यशद	निर्वाप	निगुण्डी स्वरस, अर्क दुग्ध
२६.	रजत	निर्वाप	अगस्त पत्र स्वरस
३०.	रजतमाक्षिक	स्वेदन	त्रिफला क्वाथ
३१.	राजावर्त	स्वेदन	नींबू स्वरस, गोमूत्र, यवक्षार मिश्रण
३२.	लोहा	निर्वाप	तैल तक्र गोमूत्र कॉजी कुलत्थ क्वाथ त्रिफला क्वाथ
३३.	वर्तलौह	निर्वाप	तैल-कुलत्थ क्वाथ, अजा मूत्र
३४.	विमल	स्वेदन	वासा स्वरस
३५.	वैक्रान्त	स्वेदन	कॉजी, कुलत्थ क्वाथ
३६.	वैदूर्य	स्वेदन	त्रिफला क्वाथ
३७.	शंख	स्वेदन	जयन्ती स्वरस
३८.	श्रृंग	प्रक्षालन	उष्ण जल
३६.	सगेयशव	निर्वाप	अर्जुन क्वाथ
४०.	स्वर्ण	निर्वाप	तैल तक्र गोमूत्र कॉजी,

		कॉचनार
४१. स्वर्णमाक्षिक	भर्जन	नीबू स्वरस
४२. सूर्यकान्त	निर्वाप	आमलकी क्वाथ, कुलत्थ क्वाथ
४३. हरताल	स्वेदन	चूर्णोदक (चूना जल)
४४. हीरक	स्वेदन	कुलत्थ क्वाथ

उपयोगी जानकारी (अन्तरंगा)

रासायनिक परिभाषा –

१. कज्जली– पारद को गन्धक के साथ अथवा प्रथम पारद में सुवर्णादि धातुओं का सूक्ष्म चूर्ण मिलाकर गन्धक के साथ खरल में पीसने से जो काजल जैसा काले रंग का पदार्थ बनता है, उसे कज्जली कहते हैं।

२. रसपाक– कज्जली विधि से बनी हुई कज्जली में द्रव पदार्थ मिलाकर घोंटा जाय तो उसे रसपाक कहते हैं।

३. पिष्टी– २ माशे गन्धक और १२ माशे शुद्ध पारद्र को लेकर खरल में डालकर तेज धूप में घोंटें। घोंटते-घोंटते चूर्ण के चिकने हो जाने पर पिष्टी कहते हैं।

४. पातन पिष्टी– एक भाग शुद्ध पारद को चौथाई भाग सुवर्ण पत्रों (वर्की) के साथ घोंटने से जो कज्जली (पिष्टी) तैयार हो उसे पातन पिष्टी कहते हैं।

५. वरलोह– तीक्ष्ण लोह तथा ताम्र को (अनेक बार) एक साथ ही पिघलावें, फिर गन्धक के चूर्ण को लकुच (बड़हल) के रस में मिलाकर उसमें बुझायें। इस लौह को वरलौह कहते हैं।

६. रेखापूर्ण भस्म– जिस धातु की भस्म तर्जनी (अंगूठे और मध्यमा के बीच के अंगुली) और अंगूठे के बीच में रगड़ने पर अंगूठे और तर्जनी की रेखाओं में प्रवेश कर जाय उसे रेखापूर्ण भस्म कहते हैं।

७. अपुनर्भव भस्म– किसी धातु की भस्म को गुड़, घुघची का चूर्ण

सुहागा, शहद और घृत इनके साथ मिला मूषा में रखकर, अग्नि में फूंकने से यदि भस्म से धातु पृथक न हो तो उसे अपुनर्भव भस्म कहते हैं।

८. वारितर भस्म– धातु की जो भस्म जल में तैर सकती है उसे वारितर भस्म कहते हैं।

६. सत्व– क्षारवर्ग, अम्लवर्ग और द्रावण वर्गी के द्रव्यों के साथ अभ्रक, माक्षिक, खर्पर आदि जिस खनिज द्रव्य का सत्व निकालना हो उसको मर्दन कर गोला बना, सुखा कर बगल में छिद्रयुक्त मूषा में डाल, मुट्ठी में रखकर धौंकनी की सहायता से तीव्र आंच देने से उस खनिज में जो सार रूप द्रव्य प्राप्त होता है उसे सत्व कहते हैं।

१०. ढालन– किसी धातु को अग्नि में द्रवित करके द्रव्य पदार्थ में बुझाने को ढालन कहते हैं।

११. पुट– धातु-उपधातु या रत्न-उपरत्न अथवा रस-उपरस आदि द्रव्यों को वनस्पतियों के स्वरस में घोंट, टिकिया बना, सुखा तथा सम्पुट में रखकर अग्नि में पकाने की क्रिया को पुट कहते हैं।

१२. चारणा (जारणा)– पारद में सुवर्णादि धातु को मिलाकर जीर्ण करा देने की क्रिया को चारणा कहते हैं।

औषध निर्माण परिभाषा

१. चूर्ण– सूखी हुई औषधियों को महीन कूट पीस कर छलनी से छान कर चूर्ण तैयार किया जाता है। उसे चूर्ण कहते हैं।

२. स्वरस– द्रव्य को ताजा उखाड़ कर कूटने के बाद वस्त्र से छानने पर जो निर्यास गिरता है वह स्वरस, सरस या रस कहलाता है।

३. क्वाथ– एक भाग औषधि द्रव्य जौकुट (मोटा चूर्ण) करके जब मिट्टी के पात्र में सोलह भाग पानी में मन्द आंच पर पकाया जाता है और जब चौथाई भाग पानी शेष रहता है तो उसे उतार लिया जाता है। इस प्रकार तैयार औषधि को क्वाथ कहते हैं या काढ़ा भी

कहते हैं। जैसे– महामजिंष्ठादि क्वाथ, दशमूल क्वाथ आदि।

४. आसव– बिना क्वाथ बनाए कच्चे जल में औषधि द्रव्य और गुड़, चीनी, मधु आदि मीठे पदार्थ और धायफूल, महुआ फूल, बबूल छाल आदि द्रव्यों को संधान करके जो औषधि तैयार की जाती है उसे आसव कहते हैं। जैसे– अरविंदासव, कुमारी आसव आदि।

५. अरिष्ट– औषधि द्रव्यों का क्वाथ करके उसमें गुड़, चीनी, शहद आदि मीठे पदार्थ और धायफूल, महुआ फुल, बबूल छाल आदि डालकर संधान करके जो औषधि तैयार की जाती है। उसे अरिष्ट कहते हैं। जैसे– अशोकारिष्ट, कुटजारिष्ट आदि।

६. संधान– गन्ने का रस, क्वाथ आदि द्रव पदार्थ अकेला या औषध द्रव्य, अन्न, गुड़, किण्व आदि के साथ मिलाकर कुछ समय रख दिया जाय तो उसमें एक प्रकार की रासायनिक क्रिया उत्पन्न होती है उसे संधान कहते हैं।

७. माण्ड– चावल को चौदह गुना अधिक जल में पकाएं, जब चावल गल जाए तो रस (माण्ड) अलग कर लें, इसे ही माण्ड कहते हैं।

८. अवलेह– क्वाथ आदि कषायों का पुनः पाक करने से जब उनमें घनत्व आ जाय तो उसे रस क्रिया कहते हैं और यह अवलेह या लेह भी कहलाता है।

९. फाण्ट कषाय– जौ कुट की हुई ४ तोला औषधि को १६ तोला गरम जल में डाल ढककर थोडी देर रहने दें, जब जल ठण्डा हो जाय, तब हाथ से मसल कर कपड़े से छान लें, इसे ही फाण्ट कषाय या चूर्णद्रव कहते हैं।

१०. हिमकषाय– जौ कुट की हुई २ तोला औषधि को १२ तोले ठण्डे जल में डाल मिट्टी या कांच के पात्र में रात भर ढक कर रहने दें। प्रातः हाथ से मसलकर, कपड़े से छान लें। इसे ही हिमकषाय कहते हैं।

आद्यात्=आदिदेव ऋषभात् आयुर्वेद विद्या

जैन धर्म एवं आयुर्वेद :–

जैन परम्परा में आगम साहित्य प्राचीनतम माना गया है। जो परम्परा से चला आ रहा है उसे 'आगम कहते हैं। इस द्वादशांग अर्थात् बारह अंगों में अंतिम अग 'दृष्टिवाद है। दृष्टिवाद के पाँच भेदों में ए भेद पूर्व के अन्तर्गत 'प्राणावाय' (प्राणावाद) है। 'प्राणावाद' में विस्तारपूर्वक अष्टांगायुर्वेद का कथन किया है। आगम प्राकृत भाषा में लिपिबद्ध है। इन आगम ग्रन्थों पर निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीकायें आदि व्याख्याएँ मिलती हैं, जो प्राकृत में हैं।

जैन वाङ्मय में आयुर्वेद का स्वतंत्र स्थान है। बारह अंगों में अंतिम अंग 'दृष्टिवाद' में 'प्राणावाय' एक 'पूर्व' माना गया है, जो वर्तमान में अनुपलब्ध है। स्थानांगसूत्र की 'वृत्ति' में समवायांग और नंदीसूत्र में दृष्टिवाद में दर्शनों व नयों का निरूपण किया गया है। समवायांग और नंदीसूत्र में दृष्टिवाद के पाँच भेद बताये गये हैं– परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्व, चूलिका। इनमें 'पूर्वों' का अधिक महत्त्व है। बारहवाँ 'पूर्व' प्राणावाय में मनुष्य के आभ्यन्तर अर्थात् मानसिक और आध्यात्मिक तथा बाह्य अर्थात् शारीरिक स्वास्थ्य के उपायों जैसे यम, नियम, आहार-विहार व औषधियों का विवेचन है। इसमें दैविक, भौतिक, आधिभौतिक, जनपदोध्वंसी रोगों की चिकित्सा का विस्तार से वर्णन किया गया है। प्राणावाय नामक पूर्व में अष्टांगायुर्वेद का वर्णन है। जैनाचार्यों, विद्वानों, इतिहासवेत्ताओं के अनुसार यही आयुर्वेद का मूल है और इसी के आधार पर परवर्ती आचार्यों ने वैद्यकशास्त्र का निर्माण अथवा आयुर्वेद विषय का प्रतिपादन किया।

सामान्य अर्थ में आयुर्वेद शब्द दो शब्दों से मिलकर बना है। 'आयु' व 'वेद'। आयु का अर्थ है जीवन एवं वेद का अर्थ है ज्ञान। अर्थात् जीवित शरीर के संबंध में समग्र ज्ञान आयुर्वेद से अभिहित किया जाता है। जैन आयुर्वेद साहित्य में चिकित्सा विज्ञान को 'प्राणावाय' कहते हैं। प्राणावाय

नामक यह 'पूर्व' आज उपलब्ध नहीं है। आयुर्वेद के आठ अंग बताये गये हैं यथा – कायचिकित्सा, शल्य चिकित्सा, शालाक्य तंत्र, भूतविद्या कौमारभृत्य अगदतंत्र, रसायनतंत्र वाजीकरण तंत्र। चिकित्सा के समस्त विषयों का समावेश इन आठ अंगों में है। ६ त्रिषष्टिशलाकापुरुशचरित में भी औषधि विज्ञान के रस-वीर्य-विपाक– ज्ञान सहित अष्टांग आयुर्वेद की शिक्षा का उल्लेख है। द्वयाश्रय महाकाव्य में बाल रोगों से संबंधित 'शैशुक्रन्द' नामक आयुर्वेदीय ग्रंथ का उल्लेख मिलता है।

शौरसेनी प्राकृत में निबद्ध ईसा पूर्व के आचार्य गुणधर द्वारा रचित अत्यंत प्राचीन जैनागम 'कषायपाहुड' पर आचार्य वीरसेन ने 'जयधवला' नामक अपूर्ण टीका लिखी। इसको उनके ही शिष्य आचार्य जयसेन ने ई. ८३७ में पूर्ण किया। इस टीका में द्वादशांग श्रुत के अन्तर्गत 'प्राणावाय' पूर्व की व्याख्या करते हुए कहा है कि **''प्राणावाय नामक पूर्व दस प्रकार के प्राणों की हानि और वृद्धि का वर्णन करता है। पाँच इन्द्रिय, तीन बल, आयु और श्वासोच्छ्वास ये दस प्रकार के प्राण हैं। आहारनिषेध आदि कारणों से उत्पन्न हुए कदलीघातमरण के निमित्त से आयु प्राण बल की हानि हो जावे, परन्तु आयु प्राण की वृद्धि नहीं हो सकती, क्योंकि नवीन स्थिति बंध की वृद्धि हुए बिना उत्त्कर्षण के द्वारा केवल सत्ता में स्थित कर्मों की स्थिति, कर्म का बंधन करने वाले जीवों के आयुप्राण की वृद्धि देखी जाती है। यह प्राणावाय अष्टांग आयुर्वेद का कथन करता है।''** कषायपाहुड में आयुर्वेद के आठ अंगों का उल्लेख है।[६] गोम्मटसार जीवकाण्ड की गाथा ३६६ की कर्नाटकवृत्ति में भी इसी प्रकार से प्राणावाय का अर्थ स्पष्ट किया गया है।

श्वेताम्बर परम्परानुसार 'प्राणावाय का अन्य नाम 'प्राणायु' पूर्व भी है। दृष्टिवाद के इस पूर्व की पदसंख्या दिगम्बर मतानुसार १३ करोड़ और श्वेताम्बर मतानुसार १ करोड़ ५६ लाख थी। मुनि-आर्यिका, श्रावक रूपी चतुर्विध जैन संघ के लिये चिकित्सा उपादेय है। आयुर्वेद में 'प्राणावाय'

का विपुल साहित्य प्राचीनकाल में अवश्य रहा होगा। किन्तु अब केवल दिगम्बर जैनाचार्य उग्रादित्य विरचित कल्याणकारक ग्रन्थ ही इस परम्परा के उपलब्ध साहित्य के रूप में है। जैन दृष्टि से आयुर्वेद की उत्पत्ति के संबंध में पं. व्ही.पी. शास्त्री ने उग्रादित्याचार्य कृत कल्याणकारक के सम्पादकीय में लिखा है–

'ग्रन्थ के प्रारम्भ में महर्षि ने 'प्राणावाय' शास्त्र की उत्पत्ति के विषय में प्रामाणिक इतिहास लिखा। ग्रंथ के आदि में श्री आदिनाथ स्वामी को नमस्कार किया गया है। तत्पश्चात् प्राणावाय का अवतरण कैसे हुआ और उसकी स्पष्टतः जनसमाज तक परम्परा कैसे प्रचलित हुई इसका स्पष्ट रूप से वर्णन ग्रंथ के प्रस्ताव अंश में किया जो इस प्रकार है–

श्री ऋषभदेव के समवसरण में भरत चक्रवर्ती आदि भव्यों ने पहुँचकर श्री भगवन्त की सविनय वन्दना की और भगवान से निम्नलिखित प्रकार से पूछने लगे–

''ओ स्वामिन! पहिले भोग के समय मनुष्य कल्पवृक्षों से उत्पन्न अनेक प्रकार के भोगोपभोग सामग्रियों से सुख भोगते थे। वहाँ भी खूब सुख भोगकर तदनन्तर स्वर्ग पहुँचकर वहाँ भी सुख भोगते थे। वहाँ से फिर मनुष्य भव में आकर उसके पुण्यकर्मों को अपने-अपने इष्ट स्थानों को प्राप्त करते थे। भगवन! अब भारतवर्ष को कर्मभूमि का रूप मिला है। जो चरम शरीरी हैं वह उपवाद जन्म लेने वाले हैं उनको तो अब भी अपमरण नहीं है। इनको दीर्घ आयुष्य प्राप्त है। परन्तु ऐसे भी बहुत से मनुष्य पैदा होते हैं जिनकी आयु नहीं रहती और उनको वात्त, पित्त, कफादि दोषों का उद्रेक होता रहता है। उनके द्वारा कभी शीत और कभी उष्ण व कालक्रम में मिथ्या आहार सेवन करने में आता है। जिससे अनेक प्रकार के रोगों से पीड़ित होते हैं। इसलिये उनके स्वास्थ्य रक्षा के लिये योग्य उपाय बतायें। इस प्रकार भरत से प्रार्थना करने पर आदिनाथ भगवान ने दिव्य-ध्वनि के द्वारा पुरुष लक्षण, शरीर, शरीर के भेदों,

दोषोत्पत्ति, चिकित्सा, काल भेद आदि सभी बातों का विस्तार से वर्णन किया।''

इस प्रकार दिव्यवाणी के रूप में प्रकट समस्त परमार्थ को साक्षात् गणधर ने प्राप्त किया। इसके बाद गणधर द्वारा निरूपित शास्त्र को निर्मल बुद्धि वाले मुनियों ने प्राप्त किया। इस प्रकार श्री ऋषभदेव के बाद यह शास्त्र तीर्थंकर महावीर तक चलता रहा।

दिव्यध्वनि प्रकटितं परमार्थजातं साक्षात्तया गणधरोऽधिजगे समस्तम्।
पश्चात् गणाधिप निरूपित वाक्प्रपंचमष्टधा निर्मलधियों मुनयोऽधिजग्मुः।।
एवं जिनांतर निबन्धनसिद्धमार्गादायातमापतमनाकुलमर्थगाढम्।
स्वायंभुवं सकलमेव सनातनं तत् साक्षाच्छुतंश्रुतदलैः श्रुत केवलीभ्यः।।

स्पष्ट है कि तीर्थंकरों ने प्राणावाय परम्परा का ज्ञान प्रतिपादित किया। फिर गणधरों, प्रतिगणधरों श्रुतकेवलियों, मुनियों ने सुनकर प्राप्त किया।

जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित और अन्य प्राणावायावतरण (आयुर्वेदावतरण) की परम्परा आयुर्वेदीय चरक संहिता, सुश्रुत संहिता आदि ग्रन्थों अर्थात् वैदिक साहित्य में वर्णित आयुर्वेद परम्परा से सर्वथा भिन्न व नवीन है।

प्राणावाय परम्परा के अंतिम ग्रंथ कल्याणकारक में प्राणावाय सम्बन्धी पूर्वाचार्यों द्वारा प्रणीत अनेक ग्रन्थों का नामोल्लेख हुआ है। उसमें लिखा है – पूज्यपाद ने शालाक्यतंत्र पर, पात्रस्वामी ने शल्यतंत्र, सिद्धसेन ने विष और उग्र-ग्रह-शमविधिका, दशरथगुरु ने कायचिकित्सा पर, मेघनाथ ने बालरोगों पर, सिंहनाद ने वाजीकरण और रसायन पर वैद्यक-ग्रन्थों की रचना की थी। इसी ग्रन्थ में आगे उल्लेख है कि समन्तभद्र के अष्टांगविवेचनपूर्ण ग्रन्थ के आधार पर ही उग्रादित्य ने संक्षेप में अष्टांगायुर्वेद युक्त कल्याणकारक नामक ग्रंथ की रचना की।

संगीत चिकित्सा

आयुर्वेदविद्या और संगीतचिकित्सा

आद्यात्=शिवात् विद्या=शंकर से निकली संगीत विद्या। क्योंकि जब कोई स्वर व्यंजन नहीं थे तब शंकर ने डमरू बजाकर नृत्य किया तब स्वरोदय हुआ (नृत्तावसाने नटराजराजोनाद ढक्कां नवपंच बारम्) धाराधरा=सरे,ग,म,प, धुनी,सा इस सप्तस्वर धारा को धारण करने वाली भी आयुर्वेद विद्या है वह है संगीतधारा। गावली-संगीत प्रक्रिया का ही नाम है। यह भारत की भारती=सरस्वती वीणावादिनी स्वरूपा है। आयुर्वेद स्वयं माधव है स्वर माधुर्य से भरा है। अमृता=अमृतसमान है। अरूपयात्रिपथगा-अरूप=ध्वनि के यात्री=संगीत के मार्ग पर चलने वाली है या प्रकृति पुरुष के मेल की भाँति शब्दध्वनि की तालस्वर मेल की विद्या संगीत है। अतापं=रोगहरणं चकार-प्रारम्भ से दुःखी लोगों के दुखहरती रही है। यह गंगा, बुद्धि चन्द्रमा के समान अन्तरंगावली (अन्तःकरण को) शीतलता पहुंचाती है। आलाभा=यह लाभ ही लाभ देने वाली है। इसमें संगीत में तांत्रिकभावता=वीणा मृदंग आदिवाद्यतंत्रों की भावना (भावता) जुड़ी हुई है। संगीत का चिकित्सा से सम्बन्ध है।

संगीत, जीवन में आनन्द व स्वास्थ्य तथा प्रसन्नता प्रदान करता है। आयुर्वेदिक मतानुसार संगीत वात, पित्त व कफ में सामंजस्य स्थापित करता है। संगीत से अन्नोत्पादन-वृद्धि में सहायता मिलती है। अब तक विभिन्न देशों में संगीत चिकित्सा के प्रभाव का अध्ययन टायफायड, टी.बी., कोष्ठबद्धता, सिरदर्द, उन्माद, हिस्टिरिया, बेहोशी, धड़कन, हृदयरोग, अनिद्रा, दाँतरोग, वीर्यदोष, नपुंसकता, रक्तचाप, मिरगी, मलेरिया, प्रदर आदि रोगों पर किया जा चुका है। तीव्र एवं नये रोगों में संगीत से शीघ्र लाभ मिला है जबकि जीर्ण रोगों में संतोष व धैर्य के साथ अधिक समय लग जाता है। संगीत चिकित्सा के साथ प्राकृतिक व योग चिकित्सा का समन्वय शीघ्र आरोग्य-लाभ कराता है।

रागों के साथ-साथ तालों का भी पृथक् पृथक् प्रभाव होता है। शहनाई, सांरगी, वायलिन, दिलरूबा, वीणा, सितार आदि वाद्य-यन्त्र संगीत चिकित्सा के लिए उपयोगी हैं। उसी प्रकार पखावज तथा तबला ताल वाद्य यन्त्र का प्रयोग उपयोगी है। कुछ प्रमुख राग इस प्रकार हैं। जो निम्न रोगों में उपयोगी हैं :–

यक्ष्मा (टी.बी.) में रामकली, मुलतानी, तिलंग, विलावल राग, सिरदर्द, दाँतदर्द, अनिद्रा, उच्चरक्तचाप, हृदयरोग आदि उद्दीपन-प्रभावक रोगों में मुलतानी, भैरवी, मालकौंस, तोड़ी, पूर्वी पूरिया, धानी, बिहाग, खमाज आदि रोगों का प्रयोग रोग की स्थिति को देखते हुए निर्धारित करना चाहिए। तालों में चौताल, शूलताल, धमार का सरस वादन पखावज पर करना चाहिए।

खाँसी में भैरव, वात रोग में मेघमल्हार, वीर्य रोग में आसावरी, नपुंसकता, आलस्य व शैथिल्य की स्थिति में कामोद, अड़ाना, सोरठ, मानसिक रोग व उन्माद में बहार व बागेश्री, मिरगी में धानी व बिहाग, हिस्टिरिया में पूरिया, दरबारी कान्हड़ा, खमाज संगीत-शोध विशेषज्ञों के अनुसार लाभदायक माना गया है। तालों में दीपचंदी, रूपक, कहरवा, दादरा तबले पर बजाना इन रोगों में लाभदायक है। राग व ताल सरस व समलय होने पर ही अपना प्रभाव डालते हैं। रोगों के साथ इनका निर्धारण समझ बूझ के साथ करना चाहिए।

जब सुरताल (रिद्म) के साथ संगीत प्रवाहित होता है, तब विशेष आवृति की ध्वनि-तरंगें निकल कर मानव-मस्तिष्क की रासायनिक विद्युतीय संरचना को प्रभावित करती हैं। मस्तिष्क में प्रशामक शान्तिदायक रसायन एंडोरफिन विपुल मात्रा में स्रवित होने लगता है। भावनाओं, सुख-दुःख, उन्माद, क्षोभ का केन्द्र लिम्बिक सिस्टम के न्यूरान एंडोरफिन को संग्रहीत कर लेते हैं, फलतः मानसिक रोग के कारण अव्यवस्थित जैव-विद्युतीय परिपथ (शार्टसर्किट) सामान्य स्थिति में आ जाते हैं। धीरे-धीरे रोग से मुक्त होकर व्यक्ति स्वस्थ होने लगता है।

धाराधरः आयुर्वेदः चुम्बक चिकित्सा

चुम्बक की सहायता से पुराने एवं असाध्य रोग भी कम समय में ठीक किये जा सकते हैं जिन रोगों में अन्य चिकित्सायें विफल होती देखी गयी है, वहां चुम्बक सन्तोषजनक काम करता पाया गया है। चुम्बक के स्वर्णिम प्रभाव को देखते हुए प्रत्येक व्यक्ति को चुम्बक प्रयोग करते ही रहना चाहिये, जो लोग ऐसा करते है। वे हृदय रोग, मधुमेह, पक्षाधात, कैंसर आदि भयानक रोगों से मुक्त रहते हुये जीवन पर्यान्त शक्तिशाली एवं यौवन पूर्ण बने रहते हैं

चुम्बक

प्रत्येक चुम्बक के दो ध्रुव होते हैं, उत्तरी तथा दक्षिणी। उत्तरी ध्रुव (एन-पोल) को धन चिन्ह तथा लाल वर्ण से और दक्षिणी ध्रुव (एस पोल) को ॠण चिन्ह तथा नीले वर्ण से प्रदर्शित करते हैं।

चुम्बक ध्रुवों की पहचान के लिए

एक चुम्बक छड़ को धागे से बांधकर लटका दें। उसका जो सिरा दक्षिण दिशा को संकेत करें, वह उस चुम्बक का, उत्तरी ध्रुव एन पोल है और उसका विपरीत सिर । दक्षिण ध्रुव एस पोल है। यहां हम इसी शुद्ध सिद्धांत को लेकर चले हैं।

चुम्बक कैसे काम करता है

चुम्बक का एक पोल शरीर के एक अंग को तथा दूसरा पोल शरीर के दूसरे अंग को लगा देने से, चुम्बकीय तरंगे लहू को माध्यम बनाकर दोनों अंगो के मध्य, रक्त बाहिनियों में अवरोध समाप्त कर रूधिर संचार को नियमित करती है। अत : पक्षाघात, पोलियो, जोड़ों में दर्द, जकड़न सूजन आदि रोगों में अत्यन्त लाभदायक है।

चुम्बक के दोनों ध्रुवों से ऊर्जा का प्रसार निरन्तर बना रहता है। उत्तरी ध्रुव की ऊर्जा का प्रभाव क्षारीय है, और दक्षिणी ध्रुव की ऊर्जा का प्रभाव अम्लीय है।

समान्य उपचार

चुम्बक चिकित्सा में, सिर, पेटी, गला पेटी, कमर पेटी, घुटना पेटी, चुम्बक कुर्सी आदि उपकरण चमत्कारिक लाभ देते हैं।

जब रोग किसी अंग विशेष में न होकर शरीर के किसी बड़े भाग या पूरे शरीर को प्रभावित करता है, उस समय सामान्य चिकित्सा की जाती है उनके लिये हमें एक ही शक्ति के दो चुम्बकों की आवश्यकता होती है।

विधि इस प्रकार से है -

रोग यदि शरीर में नाभी से ऊपर के भाग में है, यथा स्वास नली, में दर्द, दाह, सोज, दमा, तपेदिक, हाथों कंधों में दर्द, जकड़न सोज आदि कष्टों में, चुम्बक दोनों हाथों में लगाते है, प्राय : एन - पोल पर दांया हाथ रखते हैं और एस पोल पर बायां हाथ रखते हैं।

रोग यदि शरीर में नाभी से नीचे के भाग में है यथा, पोलियो, कमर, घुटनों, टंगों में दर्द जकड़न सोज, पांव में गांठें, पड़ जाना आदि उस समय चुम्बक दोनों पांव में लगाते हैं, एन पोल पर दांया पैर रखते है और एस पोल पर बायां पैर रखते हैं।

शरीर के बायें भाग में पक्षाघात हो जाने पर, एन पोल पर बायां हाथ रखते हैं और एस पोल पर बायां पैर रखते हैं।

पेट के जटिल रोगों में यथाः कोष्ठ बद्धता, अन्तड़ियों में सोज, गैस, दौरे आदि कष्टों में, दायें हाथ को एन पोल पर रखते हैं और बायें पैर को एस पोल पर रखते हैं।

चुम्बक जल

तैयार करने की विधि

चुम्बक उपचार में चुम्बक जल का भी बहुत महत्व है। चुम्बक जल का सेवन करने से रक्त शोधन होता है, तथा मुंह से लेकर मल मूत्र के द्वार तक सभी रोगों, तथा पेट में कीड़े, गैस अपच सभी प्रकार के ज्वर, पथरी, पेशाब में शक्कर आना, ल्युकोरिया, भगन्दर, बवसीर आदि में पूर्ण लाभ देता है। तथा स्थाई निदान प्रदान करता है।

चुम्बकीय तेल सिर में लगाने से सफेद बाल दोबारा काले आने लगते हैं झड़ने बन्द हो जाते हैं, सिकरी नहीं रहती, स्मरण शक्ति में वृद्धि होती है। पोलियो पक्षाघात आदि रोगों में शरीर की मालिश के लिए प्रयोग किया जा सकता है, घावों और जले हुए स्थान पर लगाना भी लाभदायक है।

जल को चुम्बकीय करने की बड़ी सरल विधि है, एक चौकोर बोतल में जल भरकर उसे चुम्बक सेट के दोनों चुम्बकों को बराबर-बराबर रखकर चित्रानुसार एन और एस दोनों पोलों पर रख दें या उन दोनों पोलों पर रख दें या उन दोनों पोलों के मध्य में रख दें जैसा कि चित्र में दर्शाया गया है, 5-7 घंटे के बाद जल प्रयोग में ला सकते हैं।

तेल भी इसी विधि से तैयार किया जा सकता है। हड्डियों में सूजन, दर्द, गठियां, साइट्रिका आदि व्याधियों में तेल मालिश चुम्बक तेल विशेष लाभदायक है।

एडवांस एक्युप्रेशर

सु - जोक एक्युपंचर थ्रू फिंगर प्रेशर

आदि-मानव काल से चली आ रही प्राकृतिक चिकित्सा एक्युप्रेशर है। एक्युप्रेशर-एक्युपंचर के सिद्धांत पर ही सु-जोक एक्युपंचर थ्रू फिंगर प्रेशर वर्तमान में सर्वप्रथम कोरिया के प्रोफेसर डॉ. सर पार्क जी वू (Prof. Dr. Sir Park Zee Woo) के द्वारा गहन अध्ययन और शोध के उपरात वर्ष 1987 में प्रस्तुत किया गया। आज यह पद्धति आधुनिक मानी जा रही है। यह पद्धति सरल होने, सुरक्षित होने तथा प्रभावी होने से अधिक लोकप्रिय हो रही है।

आज यह चिकित्सा पद्धति चीन, श्रीलंका, कोरिया तथा भारत में भी कई शहरों में अपनाई जा रही है। सु-जोक फिंगर प्रेशर तकनीक में सामान्य रूप से प्रत्येक रोग का निदान हाथ पैर में दबाव देकर ही किया जाता है। दबाव हेतु अपने हाथ के अंगूठे तथा अंगुलियाँ ही अच्छे साधन हैं, फिर भी हम नुकीले बीज, पत्थर, नुकीली हड्डी, एक्युप्रेशर के उपकरण जीमी, एनर्जी रोलर, स्टील रिंग आदि का उपयोग कर सकते हैं।

सु-जोक एक कोरियन शब्द है। सु का अर्थ है - हाथ और जोक का अर्थ है- पैर। चीन, श्रीलंका, कोरिया तथा भारत के प्रमुख शहरों में यह पद्धति सु-जोक एक्युपंचर के रूप में प्रचलित है, जिसमें मुख्य उपकरण, जैसे-सूई, मोक्सा स्टीम्चुलेटर, बीज, लेसर द्वारा रोग निदान किया जा रहा है। आज भारतीय चिकित्या पद्धति एक्युप्रेशर को सभी जानने लगे हैं। अत : नवीनतम पद्धति सु-जोक थिरेपी का विकास एक्युपंचर के

सिद्धांत के आधार पर ही किया गया है। सूई के स्थान पर अन्य साधन से अहिंसक दबाव ही रोग निदान में मददगार साबित हुआ है। अतः एक्युप्रेशर के साथ इस नवीनतम पद्धति को समाहित करना आवश्यक है।

यह पद्धति समझने सीखने में बहुत सरल है तथा लाभ की तीव्रता आश्चर्यजनक है। इस पद्धति में कोई भी दुष्टप्रभाव नहीं होने से कोई भी पैरामेडिकल स्टाफ, सामान्य ग्रामीण व्यक्ति, यहाँ तक कि अनपढ़ भी बेहिचक अपना सकता है।

सम्पूर्ण शरीर का प्रतिबिम्ब केन्द्र हाथ ओर पैर में आया है। यह प्रतिबिम्ब केंन्द्र रिमोट कन्ट्रोल के समान है। अतः सरलता से रोगग्रस्त अगं का इलाज किया जा सकता है। तीव्र दर्द वाले प्रतिबिम्ब केन्द्र ही निदान बिन्दु होते हैं।

सु-जोक पद्धति का यह प्रतिबिम्ब केन्द्र प्रत्येक व्यक्ति अपनाकर चमत्कारिक लाभ ले सकता है। सु-जोक फिंगर प्रेशर काफी वृहद तथा एड वांस विषय है, फिर भी प्राथमिक निदान बिंदु भी शरीर के रोग ग्रसित भाग को पहुँचाता है। क्योंकि प्रतिदिन सभी बिंदुओं में दबाव देते रहने से स्वस्थ व्यक्ति में प्रतिरोधक शक्ति भी पैदा होती है तथा बहुत -सी बीमारियों की रोकथाम होती है।

प्राथमिक प्रतिबिम्ब बिन्दु की स्थितियाँ : शरीर पंचभूतात्मक है तथा ये शरीर को संचालित करने के लिये जैव ऊर्जा का प्रवाह निर्बाध रूप से सभी अंगों में प्रवाहित होना चाहिये। ये सभी अंग हाथ और पैर में निम्नानुसार हैं।

सु-जोक पद्धति में अंगूठे को सिर की उपमा दी गई है। जिस प्रकार अंगूठे के बिना हाथ की कार्यप्रणाली असंभव है, उसी तरह मस्तिष्क की कल्पना अंगूठे से की है तथा सिर में स्थित क्रमानुसार अंग, क्रमानुसार अंगूठे में स्थित हैं। यदि अंगूठे को 140 (एक सौ चालीस अंश) से घुमा दिया जावे, तो चित्रानुसार शरीर के अंगों की कल्पना कर सकते हैं। इसी तरह तर्जनी-कनिष्ठा, दोनों हाथ तथा मध्यमा-अनामिका दोनों पैर के प्रतिबिम्ब केंन्द्र को दर्शाते हैं। शरीर की स्थिति को अच्छी तरह चित्रानुसार यहाँ दर्शाया गया है।

हम देखते हैं कि अंगूठे का सामने का हिस्सा, चेहरे का सामने वाला भाग तथा पीछे का हिस्सा सिर के पीछे का भाग दर्शाता है। जिस प्रकार हमारे सिर में गर्दन के दो जोड़ हैं - एक सिर से तथा दूसरा धड़ से, उसी प्रकार अंगूठे में दो ही आड़ी रेखाएँ हैं।

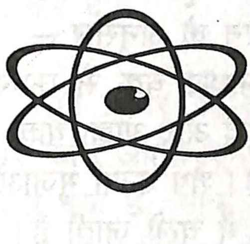
हमारे हाथ में तीन भाग है - बाँह, कुहनी तथा कलाई। इसी प्रकार तर्जनी-कनिष्टा में भी तीन आड़ी लाइन हैं। मध्यमा -अनामिका में भी, जो कि दोनों पैर के प्रतिबिम्ब केंन्द्र को दर्शाती हैं, तीन आड़ी लाइन हैं। शरीर के सामने के अंग हाथ में सामने तथा पैर नीचे की ओर तलवे में स्थित हैं। शरीर के पीछे का अंग हथेली के पृष्ठ भाग तथा पैर के ऊपरी भाग में स्थित है।

इस प्रकार शरीर के सभी अंग हमारे हाथ पैर से पूर्णरूप से संबंध रखते हैं। संबंधित अंगों में रोग का निदान सहने योग्य दबाव देकर किया जा सकता है।

सावधनियाँ :- (1) भूखे रहने पर दबाव न दें। (2) गर्भावस्था में जहाँ तक हो सके, दबाव न दें। (3) दबाव और खाने में एक घण्टे का अन्तर रखें अर्थात् दबाव के तुरंन्त बाद खाना नहीं खायें या खाने के तुरंन्त बाद दबाव न दें। (4) पानी का अधिकाधिक सेवन करें। (5) आहार सात्विक हो तथा खुली हवा का अधिक सेवन करें। (6) दबाव 20 सेकेण्ड से 2 मिनट तक ही दें तथा व्यक्ति सहन कर सकें, इतना ही दबाव दिया जावे।

नोट :—रेकी, एक्यूप्रेसर, एक्यूपंचर, चुम्बक आदि सभी चिकित्साधाराओं का आधार आयुर्वेद है। इसीलिए आयुर्वेद धाराधर है।





रेकी है मंत्र विज्ञान तथा शक्तिपात जैसी प्रक्रिया

(संकलन)

रेकी का अर्थ –

रेकी जापानी शब्द है। इसमें रे का अर्थ है, 'सर्वज्ञान सम्पन्न ईश्वरीय चेतना' जापानी चित्राक्षर कांजी के अनुसार रे का तात्पर्य है– 'सार्वभौमपारलौकिक ज्ञान।' इसे आध्यात्मिक चेतना भी कहा जा सकता है। 'की' का तात्पर्य जीवनी शक्ति या जैव ऊर्जा है। इसे ओजमयी शक्ति या सार्वभौमिक जीवनी शक्ति भी कहा जाता है। यह ऊर्जा हम सबमें है। बस, हमें इस ऊर्जा का विधिवत प्रयोग करना आना चाहिए। रेकी प्रशिक्षण प्राप्त कोई भी व्यक्ति अपने हाथ से दूसरों को स्पर्श द्वारा चुंबकीय ऊर्जा को अंतरित कर उपचार प्रक्रिया में तीव्रता ला सकता है।

पॉल हॉरेनि लिखती हैं कि –

रेकी ऊर्जा संप्रेषित नहीं की जाती, वरन् ऊर्जा धारा से खींची जाती है। जैसे उपचार के लिए उपचार कर्ता के हाथ बढ़ने पर कष्ट पीड़ित व्यक्ति अपने शरीर के कष्ट पीड़ित व्यक्ति दोनों को ही रेकी ऊर्जाएं जरूरत के अनुसार मिलती रहती है।

रेकी और शरीर स्थिति चक्र –

रेकी उपचार में भारतीय योग पद्धति में वर्णित शरीर में स्थित विभिन्न चक्रों का बेहद महत्व है। यह सभी को विदित है कि साधना द्वारा ये चक्र जागृत किये जा सकते हैं।

पॉला हॉरेन के अनुसार –

ऊर्जा मूलाधार चक्र से ऊपर उठती हुई स्वाधिष्ठान, मणिपुर, अनाहत, विशुद्ध और आज्ञा चक्रों से होती हुई सहस्रार तक प्रवाहित होती रहती है। शेष ऊर्जा भुजाओं और करतल के माध्यम से कष्ट पीड़ित शरीर में चली जाती है। ऊर्जा का भंड़ार असीमित है अतः रेकी उपचार कर्ता की ऊर्जा कभी भी पूर्णतः समाप्त नहीं होती ।

अतः जो लोग साधना की दिशा में अग्रसर हैं, वे रेकी प्रशिक्षण के लिए पॉला हॉरेन के सिद्धान्त और अभ्यास निर्धारित किये हैं। वे भी हमारी ध्यान पद्धति से काफी कुछ समय रखते हैं।

रेकी के पांच सिद्धान्त

पॉला हॉरेन ने रेकी के पांच सिद्धान्तों की भी चर्चा की है। उनमें पहला सिद्धान्त है– अनुग्रहीत भाव में जीवन बिताना। जब हम स्वयं को प्राप्त सारी वस्तुओं के प्रति, ईश्वर के प्रति कृतज्ञता का अनुभव करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं तो हम एक चुंबकीय शक्ति से और अधिक प्रचुरता और समृद्धि को आकृष्ट करते हैं। अनुग्रहीत होने का भाव का तात्पर्य यह है कि आप अंतरात्मा से स्वीकार करते हैं कि सब कुछ एक है। पृथकता मात्र भ्रम, एक छलावा है। अवचेतन में व्याप्त हीनता का बोध कि हम प्रचुरता और समृद्धि के अयोग्य हैं, प्रचुरता के प्रवाह में बाधक बनता है। यदि हम सार्वभौम जीवन ऊर्जा के संपर्क में आने और अनुभव करने बाद कि ऊर्जा समस्त शरीर में प्रवाहित हो रही है, इस भावना का ध्यान करें कि आप सफल हो रहे हैं। समृद्ध हो रहे हो और आपका जीवन समस्त दृष्टि से समुन्नत हो रहा है। उस अवस्था में जीवन–ऊर्जा आपकी अंतरात्मा के सभी द्वारों को सबल बना देगी और सार्वभौम जीवन ऊर्जा में अंत प्रवाह के मार्ग खुल जायेंगे। वह ऊर्जा अपनी चुंबकीय शक्ति के द्वारा उन सभी वस्तुओं से संबंध स्थापित कर लेगी, जिन्हें आप जीवन में पाना चाहते हैं। इसके बाद अगला कदम आपके जीवन के लिए यह होगा कि आप अपने लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए रचनात्मक प्रयास करना शुरू कर दें।

चिन्ताएं त्यागिये

रेकी का दूसरा सिद्धान्त है – सभी प्रकार की चिन्ताओं का त्याग। चिंता त्यागकर दिन के सारे कार्य अपनी पूर्ण क्षमता और कुशलता से संपादित कीजिए। चिंता क्या है? मात्र असंगत और तर्कहीन विचारों का परिणाम, जो आपको बंदी बना देता है।

क्रोध को तिलांजलि

तीसरा सिद्धान्त है क्रोध त्याग। यह सच है कि क्रोध पर नियंत्रण कठिन है। लेकिन हम क्रोध लाने वाली परिस्थितियों में भी संयम बरतें, शालीनता से काम लें, प्रेम से मुस्कराते रहें तो शरीर में अनेक रोगों को जन्म देने वाली क्रोधरूपी अत्यंत बिसंगतपूर्ण ऊर्जा से बच सकते हैं।

ईमानदारी जरूरी

चौथा सिद्धान्त है– स्वयं के प्रति सदैव ईमानदार रहने का भाव। अपने प्रति प्रेम सत्य निष्ठा और औरों के प्रति ईमानदार होने के लिए प्रेरित करती है।

सबके प्रति प्रेम और आदर

पांचवा सिद्धान्त है – प्रत्येक प्राणी के प्रति प्रेम एवं आदर भाव की अभिव्यक्ति।

रेकी उपचार में निष्णात होने के लिए प्रतिदिन उपर्युक्त पांचों सिद्धान्तों का पालन आवश्यक है।

सुसंगता-केन्द्रीय तत्व

रेकी उपचार का मूलभूत केन्द्रीय तत्व है– विविध स्तरों की सुसंगता अर्थात सामंजस्य। अग्रेजी में इसे 'एट्यूनमेंट' कहा गया है। इस प्रक्रिया में रेकी मास्टर तिब्बती तंत्र विद्या के प्रयोग द्वारा प्रशिक्षणार्थी की ऊर्जा को जागृत कर, एक विशिष्ट स्थिति में लाने के लिए अपनी ऊर्जा का संप्रेषण करता है। उद्‌देश्य यह है कि उसके ऊर्जा प्रवाह के द्वार खुल जाएं और सहस्रार चक्र से आध्यात्म ऊर्जा उसके शरीर में प्रवेश कर सके, ताकि वह भविष्य मे इस ऊर्जा का उपचार के लिए प्रयोग कर सके।

तीन चरण

सुसंगता लाने के लिए तीन चरण निर्धारित किये गये हैं। इसमें से पहले चरण में भौतिक शरीर के ऊर्जा प्रवाहक मार्ग को खोलने पर ध्यान केन्द्रित किया जाता है। दूसरे चरण में तीन प्रतीकों का प्रयोग सिखाया जाता है। तीसरा चरण पूर्ण दक्षता प्राप्त करता है।

इसमें आत्म स्फुरण का स्तर और उठता है और केन्द्रीय प्रतीक को सक्रिय भी करता है, ताकि अन्य लोगों की आत्मवृद्धि में सहायता की जा सके।

अन्य साधनों का उपयोग

आजकल रेकी उपचार के साथ कुछ अन्य साधन भी प्रयुक्त किये जाने लगे हैं, जैसे रंगों और ध्वनियों तथा स्फटिकों का प्रयोग। एक अन्य सशक्त माध्यम है—उपवास। रेकी ऊर्जा का उपयोग कर अन्य चिकित्साएं, जैसे प्राकृतिक चिकित्सा, आयुर्वेद चिकित्सा एवं होम्योपैथी चिकित्सा और अधिक प्रभावपूर्ण हो जाती है।

रसस्रावी ग्रन्थियां और सात चक्र

हमारे शरीर में रसस्रावी ग्रन्थियां हैं इनके नाम है— पीनियल, पिट्यूटरी, थायराइड, पैराथारायड, थायमस, लीवर, एन्ड्रीनल्स, पेंक्रियाज, डिंब ग्रन्थि (महिलाओं में), अंड कोष (पुरुषों में)। ये ग्रन्थियां शरीर कबे हार्मोनों का नियंत्रण करती हैं। प्राचीन चिकित्सा पद्धति में चेतना के माध्यम से इन ग्रंथियों को सकिय किया जाता है। भारतीय योग पद्धति में वर्णित शरीर के सातों चक इन्हीं रसस्रावी ग्रंथियों से जुड़े होते हैं। इन चकों से उनके आसपास के अंग और नाड़ी तंत्र की कुछ क्रियाएं भी प्रभावित होती हैं। किसी भी चक्र के असंतुलन उससे संबंधित कार्यों को भी गड़गड़ा देता है। यही नहीं शेष चक भी असंतुलित हो उठते हैं। रेकी उपचार द्वारा चकों में संतुलन स्थापित होता है और सभी स्तरों पर कष्टों का निवारण भी। पॉला हॉरेन शरीर के भावना केन्द्रों की जागृति पर सुगमता से चित्त के केन्द्रीयकरण के लिए एक सरल प्रक्रिया सिखाती है। यह पद्धति हमारे किया योग से बहुत मिलती जुलती है। पॉला हॉरेन का कहना है कि जब हम चीनियों द्वारा वर्णन भावनात्मक/संभोगवृति के केन्द्रों 'टी' (स्वाधिष्ठान चक्र) पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तो उसके विपरीत स्थिति वाला आज्ञाचक्र भी संतुलित हो जाता है और अंतर्ज्ञान संबंधी क्षमताओं का भी उद्घाटन हो जाता है। ☯

धाराधरः नाड़ी विज्ञान

जब पूर्वकाल में किसी प्रकार के आधुनिक परीक्षण यन्त्र नहीं थे जब भारत के धन्वन्तरि समान वैद्यगण नाड़ी (नब्ज) देखकर समस्त रोगों का निदान समझ जाते थे। क्योंकि नाड़ी की गति वातपित्त कफ की मन्द तीव्र सम के भेद खोल देती है। आज भी पारंगत वैद्य हाथ की नब्ज देखकर रोगों का ज्ञान कर लेते हैं। धारा=नाड़ी की गति को, धरः=पकड़ने वाले सभी वैद्य धाराधरः होते थे। आयुर्वेद धाराधरः है अर्थात् नाड़ी की धारा गति से रोगविज्ञान कह देता है। साधारणतया यदि नाड़ी की धारा गति मन्द हो जाती है कि तो निश्चित २० प्रकार के कफ रोगों में कोई रोग हैं। यदि नाड़ी तीव्र हो तो निश्चित पित्त के ४० रोगों में से कोई रोग है। यदि नाड़ी तीव्र भी हो विषम चलती हो तो निश्चित ८० प्रकार के वात रोगों में से कोई रोग है। नाड़ी की गति से हृदय की गति, रक्तचाप, ज्वरमाप समझना तो आसान है ही। नाड़ी विज्ञान में नाड़ियों की सर्प, मंडूक, हंस, मयूर, आदि गतियों से रोग ज्ञान वर्णन किया जाता है। एकदोषज, द्विदोषज, सन्निपातज रोगों का ज्ञान नाड़ी की गति से ही ज्ञान होता है। नाड़ी से यह भी ज्ञान हो जाता है। कि रोगी किस प्रकार का भोजन करके आया है। यह अनुभव और अभ्यास की निरन्तरता से ज्ञातव्य है। जैसे वीणा के तार से विभिन्न राग निकलते हैं उसी प्रकार नाड़ी की गति से रोगज्ञान होता है।

आयुर्वेद तथा शल्य

रणमता=शल्यक्रिया भी आयुर्वेद में है। सुश्रुत में शल्य क्रिया यन्त्रनिर्माण की प्रक्रिया है। वस्तुतः आयुर्वेद शास्त्री शल्य की स्थिति आने ही नहीं देते थे औषाधियों द्वारा ही रोग शमन करने के पक्ष में थे। परन्तु बुद्ध के शिष्य के मस्तिष्क का आप्रेशन, गणेश का शिर प्रत्यारोपण, जरासन्ध के शरीर के दो भागों का जोड़ना। अश्वत्थामा के मस्तिष्क से मणि निकालना, सूचिका भरणरस, रक्त मोक्षण विधान, शूर्पणखा के नाक की प्लास्टिक सर्जरी, च्यवन ऋषि के

आंख का आप्रेशन, दक्ष प्रजापति का शिर प्रत्यारोपण, हनुमान जी द्वारा हृदय खोलकर राम का दर्शन कराना फिर यथावत कर लेना। चित्रलेखा द्वारा सम्पूर्ण शरीर का चित्र खींचना। आदि से ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में उत्युच्च शल्यक्रिया विशेषज्ञ भी थे।

(यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति नतत् क्वचित)

आयुर्वेद तथा ज्योतिष

आयुर्वेद जीवनविज्ञान है। तथा दीर्घायु अल्पायु का ज्ञान तथा नक्षत्रों ग्रहों एवं हस्तरेखाज्ञान भी मानव के चिकित्सक को थोड़ा ज्योतिष का ज्ञान रहे तो दैविक एवं प्रज्ञापराधजन्य रोगों की चिकित्सा में तथा नक्षत्रानुसार औषधि प्रदान में सहायता मिल सकती है।

आयुर्वेद पद्धति –साभा है। आ= समन्तात् भैः = ग्रहनक्षेत्रैः सहिता = साभा – ग्रहनक्षत्रों के प्रभाव एवं कालचक्र जानने के लिए ज्योतिष से भी संबंध रखती है।

आयुर्वेद आभ्यन्तर प्रदूषण तथा बाह्य प्रदूषण दोनों से उत्पन्न रोगों तथा विकारों की शमन चिकित्सा करती है। इसके लिए– आध्यात्म, ज्योतिष, मनोविज्ञान, आदि से संबंध है। पर्यावरण प्रदूषण से किस प्रकार जनपदध्वंस होता है चरक ने इसके लिए जनपथध्वंस एक अध्याय ही लिखा है। तथा सदाचार रसायन की भी महत्ता सिद्ध की है। आगे थोड़ा ज्योतिष और विकारों का दिग्दर्शन कराते हैं।

Astrological Dictionary
ज्योतिष शब्दकोष

Planet	ग्रह	Sign	राशि
1-Sun	सूर्य	Aries	मेष
2-Moon	चन्द्र	Taurus	वृष
3-Mars	मंगल	Gemini	मिथुन
4-Mercury	बुध	Cancer	कर्क
5-Jupiter	गुरू	Leo	सिंह
6-Venus	शुक	Virgo	कन्या
7-Starun	शनि	Libra	तुला
8-Rahu	राहू	Scorpio	वृश्चिक
9-Ketu	केतू	Sagittarius	धनु
10-Uranus	प्रजापति	Capricorn	मकर
11-Neptune	वरूण	Aquarious	कुम्भ
12-Pluto	यम	Pisces	मीन

Constellaion	नक्षत्र	*Miscellaneous*	विविध
1-Asvini	अश्विनी	Ascendent	लग्न
2-Bharani	भरणी	descendent	सप्तम भाव
3-Krittika	कृत्तिका	Mid Heaven	दशमभाव
4-Rohini	रोहिणी	latitude	अक्षांश
5-Mrigsira	मृगशिरा	longitude	रेखांश
6-Ardra	आर्द्रा	Zone	मध्य रेखा
7-Punervasu	पुनर्वसु	Local Time	स्थानिकसमय
8-pushya	पुष्य	Standerd Time	मानकसमय
9-Aselesa	आश्लेषा	Sidereal Time	साम्पतिकसमय
10-Magha	मघा	Restrograde	वकी

11-P.Phalguni	पू.फाल्गुनी	Direct	मार्गी
12-U.Phalguni	उ.फाल्गुनी	Combost	अस्त
13-Hasta	हस्त	Exalted	उच्च
14-Chitra	चित्रा	Debilitated	नीच
15-Svati	स्वाती	Own House	स्वग्रही
16-Vishakha	विशाखा	Friendly	मित्र
17-Anuradha	अनुराधा	Neutral	सम
18-Jyeshtra	ज्येष्ठा	Inimical	शत्रु
19-Moola	मूल	Lord	स्वामी
20-Purvasadha	पूर्वाषाढ़ा	Cusp	यूरेपियनभावसंधि
21-U.shadha	उत्तराषाढ़ा	Bhava Start	हिन्दूभावसंधि
22-Sravana	श्रवण	Bhava middle	भाव मध्य
23-Dhanishtra	धनिष्ठा	BalanceofDasa	भोग्य दशा
24-Satabhista	शतभिषा	Major Period	महा दशा
25-P.Bhadrapad	पू.भाद्रपद	Sub Period	अन्तर दशा
26-U.Bhadrapad	उत्तरा भाद्रपद	Sub Sub period	प्रत्यन्तर दशा
27-Revati	रेवती	Sub Sub SubPeriod	सूक्ष्म दशा

ग्रह पीड़ा निवारण, औषधियों के तंत्र प्रयोग

मानव किसी न किसी पीड़ा से अवश्य ही ग्रस्त होगा, आज की दुनियां में कोई भी सुखी नहीं, और इसका कारण हम ग्रह दोष मानते है। अतः जिस किसी ग्रह की दशा ठीक न हो, उसकी शांन्ति के लिए निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग उत्तम माना गया है।

औषधियों (वृक्षों) को प्रयोग में लाने के पूर्व उसे धारण करने की विधि जानना बहुत आवश्यक है। इसे शास्त्र में मूलिका ग्रहण विधि कहते हैं। यह विधि निम्नानुसार शास्त्रों ने बताई है –

शनिवार या किसी पर्व दिन के पहले जिस वृक्ष जड़ लानी हो

उसके वहां पवित्रता पूर्वक सांयकाल को जाए तथा "मम कार्यं कुरू कुरू स्वाहा" इस मंत्र का दो बार जाप करके अक्षत (चावल) चढ़ाए तथा मै कल प्रातः आपको लेने आऊंगा आप अपनी शक्ति सहित तैयार रहें, यह कहते हुए प्रणाम करें और आमंत्रण देकर चले आये। आते जाते पीछे की ओर न देखे न रास्तें में कोई टोके इस बात का ध्यान रहे।

दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय पूर्व उठकर स्नानादि से निवृत होकर भगवान शिव की पूजा करें, फिर उस आमंत्रित वृक्ष के पास जाकर और नीचे लिखे मंत्र का अभिमंत्रण करें –

ओउम् वेतालाश्च पिशाचाश्च राक्षसाश्च सरीसृपा।
अपसर्पन्तु ते सर्वे वृक्षादस्माच्छिवाज्ञया।।१।।
ओउम् नमस्तेऽमृत सम्भूते बलवीर्य-विवर्धिनि।
बलमायुश्च में देहि पापान् मां त्राहि दूरतः।।२।।
ओउम् येन त्वां खनते ब्रह्मा , येन त्वां खनते भृगुः
येन हीन्द्रोऽथ वरूणो, येन त्वामपचक्रमे।।३।।
तेनाहं खनयिष्यामि, मन्त्रापूतेन पाणिना।
मा पातेमानि पतिते, मा ते तेजोऽन्यथा भवेत्।।४।।
अत्रैव तिष्ठ कल्याणि, मम कार्यकरी भव,
मम कार्ये कृते सिद्धे, ततः स्वर्गं गमिष्यसि।।५।।

अर्थात् जो बेताल, पिशाच, राक्षस सर्प आदि इस वृक्ष से सम्बद्ध हो, वे भगवान शिव की आज्ञा से दूर चले जावें। अमृत से उत्पन्न बल और बीर्य को बढ़ाने वाली औषधि मुझे बल और आरोग्य प्रदान करो तथा दूर से तथा हाथ से मुझे पापों से बचाओ। जिस मंत्र द्वारा पवित्र हाथ से तुझे ब्रह्माजी खोदते है, जिससे भृगु ऋषि खोदते है, जिस विधि से इन्द्र और वरूण तुझे मूल से अलग करते है, उसी

विधि से मै भी तुझे खोदूंगा–निकालूंगा। अतः तुम स्वयं गिरो नहीं और तुम्हारा तेज तुमसे पृथक न हो। हे, कल्याणी तुम यही निवास करो। मेरे स्वार्थ मेरे कार्य की सिद्धी हो जाने पर स्वर्ग में जाना (इससे स्पष्ट है कि वृक्ष को उखाड़ने पर उसका सिद्ध तत्व उसके अभिमंन्त्रण के बिना उसमें से निकल जाता है।)।

फिर ओउम ह्रीं चण्डे हुं फट् स्वाहां यह मंत्र बोलते हुए पौधे को उखाड़ें। ओउम् क्षौं फट् स्वाहा, इस मंत्र से उसके ऊपर का अनुपयोगी भाग काटे, और ओउम् बनदण्डे महादण्डाय स्वाहा, इसका सात बार जप करके उसे घर ले आएं। घर लाकर उसे किसी ऊंचे स्थान पर रखें, जमीन पर न रखें, फिर पंचागव्य (गोबर, गौमूत्र, गौमूत्र, गौदुग्ध, गौदधि तथा गौघृत) से स्नान कराए और गौ के घृत से धूप देकर रेशमी वस्त्र अथवा काले और गौ के घृत से धूप देकर रेशमी वस्त्र वस्त्र अथवा काले या लाल डोरे में लपेट कर धारण करें। इस प्रकार धारण करने से इच्छित कार्य की सिद्धि होती है। प्रत्येक गृह की दशा ठीक न होने पर उसकी शांति के लिए निम्नलिखित औषधियों का प्रयोग उत्तंम माना गया है।

१. सूर्य की शांति के लिए बिल्बपत्र की जड़ को रविवार को विधिपूर्वक लाकर गुलाबी डोरे लपेट कर धारण करे।

२. चन्द्र की शांति के लिए खिरनी की जड़ सोमवार को सफेद ऊन में डोरे में लपेटकर धारण करें।

३. मंगल की शांति के लिए अनन्तमूल की जड़ मंगलवार को लाल ऊन में डोरे में लेपेटकर धारण करें।

४. बुध की शांति के लिए त्रिधारा की जड़ बुधवार को हरे ऊन में डोरे में लपेटकर धारण करें।

५. गुरू की शांति के लिए भारंगी या केले की जड़ गुरुवार को पीले में डोरे में लेपेटकर धारण करें।

६. शुक्र की शांति के लिए सरपौंखा की जड़ शुक्रवार को सफेद डोरे में डोरे में लेपेटकर धारण करें।

७. शनि की शांति के लिए बिच्छू की जड़ शनिवार को काले में डोरे में लेपेटकर धारण करें।

८. राहु की शांति के लिए सफेद चन्दन की जड़ बुधवार को नीले में डोरे में लेपेटकर धारण करें।

९. केतु की शांति के लिए असगंध की जड़ गुरूवार को पीले डोरे में लपेटकर धारण करें।

इन जड़ों को लाने और धारण करने की विधि उपरोक्तानुसार ही है।

४. एकान्तरा अर्थात् एक दिन बीच में छोड़कर आने वाले ज्वर को नष्ट करने के लिए – जिस रविवार को पुष्य नक्षत्र हो, उसके एक दिन पहले अर्थात् शनिवार को सायंकाल सूर्यास्त से पहले ''अपामार्ग'' वनस्पति के पास जाकर उसे जल से स्नान करावें, फिर रोरी, कुकुम आदि चढ़ावें, तदनन्तर जौ तिल–चावल चढ़ावें। इसके बाद उसकी जड़ में रंगे सूत (नाल) लक्ष्छा का लम्बा रक्षा सूत्र बांध दें और यह निवेदन करके निमंत्रण देकर लौट आवें कि ''मैं अपने कार्य की सिद्धि के लिए कल रविवार को पुष्य नक्षत्र की बेला में आपको लेने आउंगा।'' दूसरे दिन प्रातःकाल सूर्योदय के समय जाकर जड़ को ले आवें और साथ ही उसमें बांधा हुआ रक्षासूत्र भी ले आपें। यह ध्यान रहे, लाते समय कोई टोकाटाकी न करे कि ''तुम यह क्या कर रहे?

इस विधि से लाई हुई ''अपामार्ग की जड़'' को घर में सुरक्षित रक्खें और जब भी जरूरत हो, उसका उपयोग करें। इस प्रकार एक बार लाई हुई जड़ वर्षों तक काम दे सकती है। पर यह काम किसी लोभ–लालच से न करें। विशुद्ध सेवाभाव से ही करें। यह

एकान्तरा ज्वर की रामवाण दवा है।

रोगी को जिस दिन जिस समय ज्वर आने की पारी हो, उस दिन उस समय से एक दो घंटे पहले थोड़ी सी जड़ उसी रक्षासूत्र से बांधकर सात गठानें लगा दें और फिर गुग्गल या गौघृत की धूप देकर रोगी के दक्षिण हाथ में स्त्री हो तो बांये हाथ में या कण्ठ में बांध देवें। उसी दिन आराम हो जाएगा। कदाचित् उस दिन ज्वर बन्द न हुआ तो बहुत जोर से आवेगा, इससे घबरायें नहीं। दूसरी पारी से ज्वर बिल्कुल नहीं आयेगा।

रोगोत्पत्ति कुयोग

१. रोग के शुरू दिन में जन्मराशि नक्षत्र लग्न में या राशि वलग्न से आठवें चन्द्र या यमघंट कुयोग हो।

२. सूर्यवार को मघा, द्वादशी या भरणी अनुराधा नक्षत्र हो।

३. सोमवार को आर्द्रा या उत्तरषाढ़ा नक्षत्र हो।

४. मंगलवार को कृ. मघा व शतभिषा या नन्दा (१।६।११) हो।

५. बुधवार को अश्विनी व विशाखा या भद्रा (२।७।१२) आश्लेषा हो।

६. गुरुवार छठ व शतभिषा या ज्येष्ठा व मृग या जया (३।८।१३) आद्रा या धनिष्ठाहो।

७. शुक्रवार को नवमी व पू.षा. या हस्त व पू.भा. (५।१०।१५) व भरणी हो।

८. शनिवार को नवमी व पूं.षा.या हस्त व पू.भा. पूंर्णा (५।१०।१५) व भरणी हो।

६. सूर्य मंगल शनिवारों को ४।६।६।१२।१४।३० तिथि, भरणी, कृति, आर्द्रा, आश्लेषा, पूर्वा ३, विशा, ज्ये, धनि, शत, नक्षत्र हो तो मृत्युतुल्य कष्ट होता है।

परन्तु जन्मपत्र में मारकेश का और भी विचार कर लेना चाहिए। हां, ऐसे योग में कष्ट जरूर मृत्युतुल्य होता है। उपरोक्त योगों में

से किसी भी रोगारम्भ होते ही तुला दान, गोदान तथा मृत्युञ्जय जप कल्याणप्रद है।

कालांग चक्र

भाव	१	२	३	४	५	६	७	८	९	१०	११	१२
अंश	सिर	मुख	भुजाएं	हृदय	उदर	कटिभाग	बस्तिमूत्रा.	लिंगगुदा	जघाएं	घुटने	पिण्डलियां	पाद–युगल

अथ रोगत्रिनाड़ी चक्रम्

आर्द्रा	पू.फा.	उ.फा.	उ.फा.	ज्ये.	धनि.	शत.	भर.	कृ.	प्रथमा
पुन.	मघा	हस्त	विशा	मूल	श्रवण	पू.भा.	अश्वि	रा.	मध्या
पुष्य	आश्रे	चित्रा	स्वा.	पू.षा	उ.षा	उ.भा.	रेव.	मू.	अन्त्या

सूर्य नक्षत्र, दिन नक्षत्र और जन्म नक्षत्र व नाम नक्षत्र रोगत्रिनाड़ी चक्र में एक ही नाड़ी पर हों तो असाध्य रोगी का मरण होता है। मरने को हो तो प्रतिदिन देखने से जिस दिन योग मिले उसी दिन निः सन्देह रोगी मृत्यु कहे।

कालस्य मुखदंष्ट्रा ज्ञानम्

दिन नक्षत्र से नाम नक्षत्र ५।१३।२३ संख्या का हो तो काल का मुख होता है औ उसी प्रकार १०।१८ वां, नक्षत्र दंष्ट्रा (दाढ़) होती है। काल के मुख में दाढ़ में जिस दिन गोचर में नक्षत्र प्राप्त हो उस दिन अत्यन्त रोगग्रस्त पुरूष की मृत्यु समान हालत होती है। रोग पर सर्पादि दर्शन पर, विग्रह–युद्ध में जाने पर काल के मुख दंष्ट्रा में नक्षत्र हो तो अशुभ होता है।

कालांग चक में शुभाशुभ ज्ञान

यदि किसी व्यक्ति के अंग विशेष में पीड़ा, कष्ट, घाव, फोड़ा आदि चर्म विकार किंवा वायु–विकारादिजन्य कोई कष्ट हो तो तात्कालिक प्रश्नकुण्डली लगा कर निम्नलिखित कालांग चक में दिये भावों के अनुसार उस पीड़ित भाव को देखें। यदि उस भाव में

कोई अशुभ ग्रह हो, किंवा वह भाव खलदृष्ट, अस्त, नीच तथा शुभग्रह की दृष्टि से रहित हो तो समझें, कि उस अवयव में और विशेष कष्ट की संभावना है। शांति के लिए उस ग्रह की शांति करावें। यदि प्रश्नकुण्डली में पीड़ित–भाव शुभ ग्रह से युक्त किंवा शुभग्रह दृष्ट हो तो रोग (कष्ट) शीघ्र निवृत्त हो जाएगा।

हाथ की रेखाएं

हाथ की टेड़ी–मेड़ी रेखाओं को सही अर्थों में मनुष्य के भाग्य और मस्तिष्क का नक्शा कहा जा सकता है। हाथ में सात मुख्य और कुछ गौण सहायक रेखाएं होती हैं। मुख्य रेखाएं इस प्रकार हैं–

१. जीवन रेखा – बृहस्पति क्षेत्र के नीचे निकलकर शुक्र के क्षेत्र को चारों ओर से घेरती है।

२. मस्तिष्क रेखा – वह आड़ी रेखा है जो हथेली के मध्य में एक सिरे से दूसरे सिरे की ओर जाती है। यह रेखा (१) जीवन रेखा के अन्दर अथवा (२) जीवन रेखा से जुड़कर अथवा (३) जीवन रेखा से बाहर निकलती है।

३. हृदय रेखा – अंगुलियों के नीचे मस्तिष्क रेखा के समान्तर चलती है। यह (१) बृहस्पति क्षेत्र से बाहर, अथवा (२) बृहस्पति क्षेत्र के मध्य से अथवा (३) पहली और दूसरी अंगुलियों के मध्य से अथवा (४) शनि के क्षेत्र से, अथवा (५) शनि क्षेत्र के तनिक नीचे से निकलती है।

४. भाग्य रेखा – हाथ के मध्य में नीचे से शनि क्षेत्र की ओर चलती है। यह रेखा (१) जीवन रेखा से, अथवा (२) मणिबंध से अथवा (३) चन्द्र क्षेत्र से, अथवा (४) हथेली के मध्य से निकलती है।

५. सूर्य रेखा – (सफलता रेखा) नीचे से ऊपर को तीसरी अंगुली की ओर चलती है। सूर्य रेखा (१) जीवन रेखा से अथवा (२) भाग्य रेखा से अथवा (३) मंगल के मैदान से (४) चन्द्र क्षेत्र से

अथवा (५) मस्तिष्क रेखा से, अथवा (६) हृदय रेखा से निकलती है।

६. स्वास्थ्य रेखा – यह बुध के क्षेत्र से निकलकर नीचे की ओर चलती है। इसलिए इसे बुध रेखा भी कहते हैं।

७. विवाह रेखा – बुध क्षेत्र में बगल से आने वाली सीधी रेखा विवाह रेखा होती है।

नीचे लिखी चार रेखाएं गौण रेखाएं कही जाती हैं–

१. मंगल रेखा – अंगूठे की ओर से मंगल क्षेत्र पर उत्पन्न होती है और जीवन रेखा के अन्दर इसके सामानान्तर चलती है। जीवन रेखा के अन्दर प्रायः और भी कई पतली रेखाएं इसके अन्दर समान्तर चलती है। परन्तु वास्तविक मंगल रेखा उतनी ही स्पष्ट होती है जितनी जीवन रेखा।

२. वासना रेखा – स्वास्थ्य रेखा की सहायक बनकर उसके समानान्तर चलती है। यदि इसका एक सिरा शुक्र क्षेत्र तक चला जाए तो दुर्भाग्यपूर्ण होता है।

३. अतीन्द्रिय ज्ञान रेखा – चन्द्रमा के क्षेत्र से बुध के क्षेत्र तक अर्द्धचन्द्र के रूप में जाती है। जिन हाथों में यह रेखा पाई जाती है। उन्हें भविष्य में घटने वाली घटनाओं का पता पहले से ही लग जाता है।

४. शुक्र मेखला – हृदय रेखा के ऊपर सूर्य और शनि क्षेत्र को घेरती हुई अर्द्धचन्द्राकार होती है। इस रेखा की उपस्थिति से यह संकेत मिलता है कि जातक अत्यन्त कामुक प्रवृत्तियों का दास है।

रेखाओं की अनुपस्थिति

यद्यपि उपरोक्त सात प्रमुख रेखाएं प्रत्येक हाथ में होती है परन्तु कभी–कभी इनमें से कोई रेखा हाथ में अनुपस्थित भी पाई जाती है। साधारणतः ऐसा होता है कि कोई रेखा हाथ में अनुपस्थित होती है तो दूसरे हाथ में वह पूरी या आंशिक रूप से मौजूद होती है। इस संबंध में उल्लेखनीय तथ्य यह हैं–

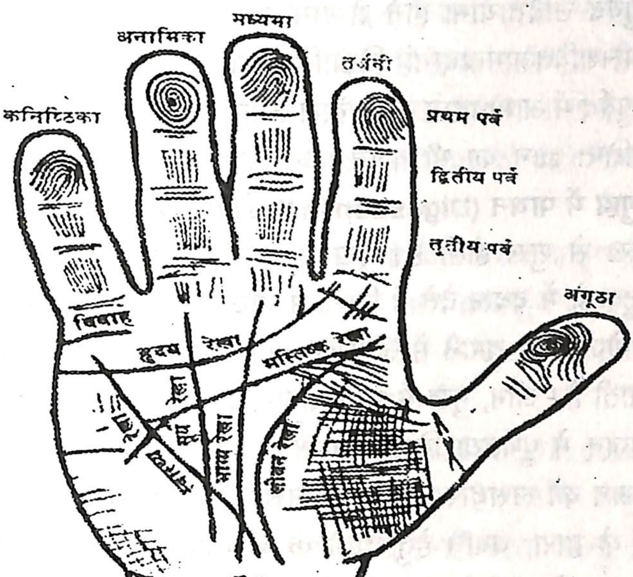
जीवन रेखा प्रत्येक हाथ में अवश्य होती है।

मस्तिष्क रेखा किसी–किसी विरले हाथ में नहीं होती।

हृदय रेखा कदाचित किसी विरले में हाथ नहीं पाई जाती। अनुपस्थिति से एक बड़ा अपशकुन है।

भाग्य रेखा और सूर्य रेखा बहुत से हाथों में नहीं देखी जाती। वास्तव में ये दोनों एक दूसरे की सहायक रेखाएं हैं अतः यदि हाथ में इनमें से एक रेखा भी हो तो दूसरी की कमी बड़े सन्तोषजनक ढ़ग से पूरी कर देती है।

स्वास्थ्य रेखा बहुत अधिक हाथों में अनुपस्थित होती है। अधिकांश हस्त रेखा शास्त्रियों के मत से इसका नहीं होना ही जातक के स्वास्थ्य के लिए अच्छा है।



आयुर्वेद की अन्तरंगावली (रचना तथा क्रिया)

नवी मानव संहिता– पाचन संस्थान (आधुनिक)

हृदय मस्तिष्क, श्वास संस्थान, पाचन संस्थान, आशयों का आवश्यक ज्ञान (आधुनिक दृष्टिकोण)

या विद्यात् (सा) दृक् = जो किसी विज्ञान प्रणाली को समझे वही नेत्र नेत्र हैं। विज्ञान समस्त मानवता की संहिता (मानवी) होता है। आयुर्वेद विद्या= पथगा = इड़ा पिंगला सुषुम्ना जो मस्तिष्क से निकलती या गमन करती हैं इसी प्रकार धमनी शिराएं भी हृदय पथग= हृदय गामिनी है यही दोनों आयुर्वेद में ज्ञातव्य हैं आयुर्वेद विद्या पथगाधारा है। हृदय मस्तिष्क जीवन के आधार हैं। इनके साथ अन्तरंगावली-आमाशय, यकृत, श्वाससंस्थान, पाचन संस्थान, आन्त्रसंस्थान, आशय वृक्क आदि हैं उनका ज्ञान आयुर्वेद अन्तरंगावली है। यही नहीं यह आयुर्वेद अवली=मोक्ष का द्वार भी है। आयुर्वेद उदितायामा होने से सभी तत्वज्ञान को ग्रहण करता है। भारतानां=बलशक्तिआभाप्रदानां विटाामिन, प्रोटीन, लवणादि पदार्थानां भारती। आयुर्वेद में आभाप्रदान करने वाले तमाम पदार्थों का ज्ञान आवश्यक है। उस संक्षिप्त ज्ञान का भी वर्णन किया जा रहा है।

१. मुखगुहा में पाचन (Digestion in the Mouth) – पाचन क्रिया की शुरूआत मुख से शुरू होती है। मुख में आये भोजन को दाँत (Teeth) छोटे-छोटे टुकड़ो में बदल देते हैं जिस से भोजन सरलता से चबता जाता हैं दाँतों से भोजन को चबाने में जीभ (Tongue) तथा लार (Saliva) मुख्य भूमिका निभाती है। जीभ, मुख में आये भोजन का स्वाद पता करती है तथा लार को भोजन में पूर्णतया मिला देती है।

लार भोजन को लसदार बनाती है जिससे भोजन चिकना हो जाता है और जिव्हा के द्वारा, चबाने हेतु दाँतों के बीच आसानी से आ जाता है। लार का स्रावण, तीन जोड़ी लार ग्रंथियों द्वारा होता है। लार प्रायज अम्लीय (P^H=6.8) होती है जिसमें 99-5% जल तथा बाकी श्लेष्म होता है। भोजन के लसदार बनने से, भोजन का निवाला आसानी से मुखगुहा से निगलद्वार (Gullet) में होता हुआ ग्रासनली (Oesophagus) में पहुँच जाता है।

ग्रासनली में कोई भी पाचनक्रिया नहीं होती अतः ग्रासनली में से भोजन आमाशय में पहुँचता है।

२. आमाशय में भोजन का पाचन (Digestion in the stomach) ग्रासनली से आमाशय में आकर भोजन काफी देर रुकता है। भोजन के आमाशय में पहुँचने के तुरन्त बाद ही आमाशय की दीवार में क्रमाकुंचन तरंगें शुरू हो जाती हैं जो आमाशय की दीवार में उपस्थित जठर ग्रन्थियों (Gastric glands) द्वारा स्रावित जठर रस (Gastric Juice) को भोजन में अच्छी तरह मिला देती है जिसके परिणामस्वरूप भोजन अच्छी तरह पिस कर एक गाढ़ी एवं सफेद लुगदी के रूप में परिवर्तित हो जाता है। भोजन का यह रूप काइम (Chyme) कहलाता है।

इसी दौरान जठर रस में उपस्थित हाइड्रोक्लोरिक अम्ल (HCL) भोजन के साथ आये हुए जीवाणुओं को नष्ट करता है, टायलिन की क्रिया को समाप्त कर देता है, भोजन को सड़ने से रोकता है, निष्क्रिय प्रोएन्जाइम पेप्सिनोजन को सक्रिय पेप्सिन में बदल देता है तथा भोजन के हड्डी तथा अन्य कैल्शियम युक्त भागों को घुला देता है तथा जठर रस में उपस्थित एन्जाइम पेप्सिन, प्रोटीन अणुओं को प्रोटीओजेज तथा पेप्टोन्स में तथा रेनिन नामक एन्जाइम दूध के उचित पाचन के लिये दूध को दही में बदल देता है।

आमाशय की दीवार में क्रमाकुंचन होने के फलस्वरूप काइम (Chyme) धीरे-धीरे पाइलेरिक छिद्र की ओर बढ़ता है तथा क्रमाकुंचन तरंग के साथ ही काइम की थोड़ी-थोड़ी मात्रा पाइलेरिक छिद्र के खुलने पर ग्रहणी अथवा ड्यूओडिनम (Duodenum) में पहुँचती रहती है।

३. ग्रहणी में भोजन का पाचन (Digestion of Food in duodenum) – भोजन का सबसे अधिक पाचन ग्रहणी में ही होता है हालांकि ड्यूओडिनाम की दीवार से किसी भी पाचक रस का स्रावण नहीं होता परन्तु अग्न्याशय रस एवं पित्तरस ग्रहणी की गुहा में आकर भोजन में मिल जाते हैं।

जैसे ही जठर रस में सना हुआ काइम (Chyme) ग्रहणी में पहुँचता है काइम में उपस्थित HCl ग्रहणी की दीवार को उत्तेजित करता है जिसके

फलस्वरूप दीवार की ग्रंथियों से कुछ हारमोन्स स्रावित होते हैं जिसमें कोलीसिस्टोकाइनिन, पित्ताशय की दीवार को संकुचन के लिये प्रेरित करता है जिससे पित्त, ग्रहणी में पहुँचता है।

एण्टीरोकाइनिन – आँत की दीवार में उपस्थित आंत्रीय ग्रंथियों को आंत्रीय रस, स्रावित करने के लिये उत्तेजित करता है।

सेक्रेटिन – अग्न्याशय की अग्न्याशय रस, स्रावित करने को उत्तेजित करता है तथा एंटरोग्रैस्टोन–यह HCl के स्रावण को बन्द करता है।

पित्ताशय के संकुचन द्वारा ड्यूओडिनम में पहुँचा पित्त रस पाचन क्रिया के लिये बेहद महत्त्वपूर्ण है। पित्त रस के निम्न कार्य हैं –

- यह विषैले पदार्थो, धातुओं आदि के उत्सर्जन में सहायता प्रदान करता है।
- यह काइम (Chyme) को क्षारीय बनाता है।
- यह क्रमाकुंचन (Peristalsis) की दर को बढ़ाने में सहायक होता है जिससे पाचक रस काइम में अच्छी तरह मिल जाते हैं।
- इसके कार्बनिक लवण, वसा का इमल्सीकरण कर देते हैं।
- पित्त रस के आकर्बनिक लवण काइम के हानिकारक जीवाणुओं को नष्ट कर देते हैं।
- इसके लवण, वसा के अवशोषण में सहायक होते है। तथा
- अग्न्याशय रस में उपस्थित स्टिऐप्सिन को भी क्रियाशील बना देता है।

सेक्रोटिन नामक हारमोन जब अग्न्याशय को अग्न्याशय रस स्रावित करने को उत्तेजित करता है तब जठर अग्न्याशय रस (Pancreatic Juice) ग्रहणी में पहुँच जाता है। इसके ग्रहणी में पहुँचते ही काइम के जठर रस का पेप्सिन अब निष्क्रिय हो जाता है। अम्न्याशयी रस में कई पाचक एन्जाइम होते है जो वसा, प्रोटीन एवं कार्बोहाइड्रेटस को पूर्णतया पचा देते है अतः अम्न्याशयी रस को पूर्ण पाचक रस कहा जाता है।

१. स्टिएप्सिन (Steapsin) – भोजन में उपिस्थत वसा के अणुओं को ग्लिसरॉल एवं वसा अम्लों में तोड़ देता है।

२. एमिलोप्सिन (Amylopsion) – काइम (Chyme) की मण्ड को ओर

ग्लाइकोजन को माल्टोज में बदल देता है।

इस तरह भोजन अब और अधिक सूक्ष्म रूप में हो जाता है तथा क्रमाकुंचन के द्वारा क्षुद्रांत्र (Small Intestine) में पहुँचता है।

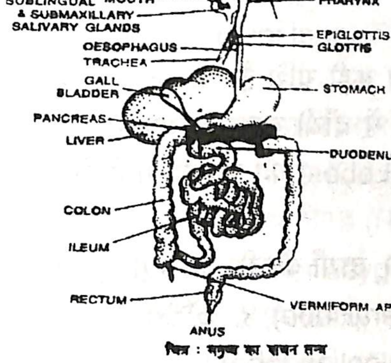
४. क्षुद्रांत्र में भोजन का पाचन (Digestion of Food in Smal Intestine) – क्षुद्रांत्र की दीवार में लिवर कुहन की प्रगुहिकाये (Crypts of Leiberkuhn) नामक पाचन ग्रंथियाँ होती हैं जो पाचक रस को स्रावित करती हैं जो आंत्रीय रस कहलाता है। इसमें महत्त्वपूर्ण एन्जाइम्स होते हैं जो पाचन में सहयोग देते है।

- **लाइपेज** (Lipase) – शेष वसाओं का इमल्सीकरण करता है।
- **इरेप्सिन** (Erepsin) – यह पोलीपेप्टाइड्स एवं ट्राईपेप्टाइड्स को अमीनो अम्लों में तोड़ कर प्रोटीन-पाचन को पूरा कर देता है।

एण्टेरोकाइनेज (Enterokinase) – निष्क्रिय ट्रिप्सिनोजन को सक्रिय ट्रिप्सिन में बदल देता है।

इनके अतिरिक्त आंत्रीय रस में उपस्थित लैक्टेज, सुक्रोज तथा माल्टेज नामक एन्जाइम्स काइम के लैक्टोज को ग्लूकोज एवं ग्लूक्टोज में, माल्टोज को ग्लूकोज में तथा सुक्रोज को फ्रक्टोज में बदलता है।

क्षुद्रांत्र में भी क्रमाकुंचन तरगें उठती रहती है और भोजन आगे बढता रहता है इस प्रकार क्षुद्रांत्र (Small Interstine) में भोजन के पाचन की क्रिया पूर्ण हो जाती है।



चित्र : मनुष्य का पाचन तन्त्र

चित्र : मनुष्य का पाचन तन्त्र

२ आमाशय (Stomach) – आमाशय, डायफ्राम के पीछे, बाँयी ओर स्थित अण्डाकार और एक लचीली थैलीनुमा सा हाता है। ग्रासनली इसके मध्य खुलती है जिसके कारण यह द्विपालित थैली (Bilobed) जैसा दिखाई देता है। इसका बाँया पिंड गोल तथा दाहिने पिंड से बड़ा होता है। आमाशय का दायाँ पिंड काफी संकरा होता है। इसका बाँया भाग, उठरागमी भाग या कार्डियक आमाशय तथा दायाँ पिंड जठरनिर्गनी भाग या पाइलोरिक आमाशय (Pyloric Part of Pyloric Stomach) कहलाता है।

क्षुद्रांत्र (Small Intestine) – यह आमाशय के पीछे लम्बी और कुण्डलित नलिका के रूप में होती है तथा दो भागों की बनी हुई होती है'

१. ग्रहणी (Duodenum)

२. मध्यान्त्र तथा शेषान्त्र (Jejunum and Ileum)

१. ग्रहणी या ड्यूओडिनम (Duodenum) – यह क्षुद्रांत्र का लगभग ६-१४ सेमी. लम्बा प्रारम्भिक भाग होता है जो कि अंग्रेजी वर्णमाला के अक्षर 'U' के आकार का होता है और आमाशय के पाइलोरिक भाग में शुरू होता है। इसकी 'U' आकार की भुजाओं के बीच हल्के गुलाबी रंग का अग्न्याशय (Pancreas) होता है जो मीसेन्ट्री द्वारा सधा रहता है।

यकृत एवं अग्न्याशय मुख्य पाचक ग्रंथियाँ हैं। जो इन ग्रंथियों में कोई भी पाचन क्रिया नहीं होती परन्तु इनमें स्रावित पाचक रस, ड्यूओडिनम में पहुँचकर पाचन में सहायता प्रदान करते है। यकृत से पित्तरस तथा अग्न्याशय से अग्न्याशय रस का स्राव होता है।

१. यकृत (Liver)

यह शरीर की सबसे बड़ी ग्रंथि है। यकृत कत्थई अथवा लाल रंग का होता है तथा उदरगुहा में दाँयी तरफ डायफ्राम के पीछे स्थित होता है। यह छोटे-छोटे पिंडकों (Lobes) का बना होता है जिनकी संख्या पाँच होती है।

यह निम्न होते हैं– १. दायाँ केन्द्रीय पिंड (Left central lobe) ३. बायाँ पार्श्वीय पिंड (Left lateral lobe) ४. कॉडेट पिंड (Caudate lobe) एवं स्पीजोलियन पिंड (Spigelian lobe)।

यकृत के दाहिने केन्द्रीय पिंड के ऊपर एक थेलेनुमा संरचना पाई जाती है जिसे पित्ताशय (Gall bladder) कहते हैं। पित्ताशय से एक पित्त वाहिनी (Cystic duct) निकलती है जिसके द्वारा यकृत कोशिकाओं द्वारा निर्मित पित्तरस ड्यूओडिनम में पहुँचता है।

२. अग्न्याशयं (Pancreas)

यह लम्बी, चपटी तथा अनियमित आकार की पाचक ग्रंथि है। इसका रंग हल्का पीला या गुलाबी होता है तथा यह ड्यूओडिनम 'U' के बीच में स्थित होती है। यह अपने स्थान पर मेसेंटरी (Mesentry) द्वारा सधी रहती है।

१. अग्नाशयी रस का निर्माण (Formation of Pancreatic Juice) अम्न्याशय रस में पाचक एन्जाइम्स होते हैं जिसमें ट्रिप्सिन प्रोटीन और पैप्टोन्स एवं ट्राइपिटाइड्स में विघटित कर देते हैं।

एमाइलेप्सिन नामक एंजाइम्स मण्ड को शर्करा में बदल देता है तथा लाइपेज, वसा को ग्लिसरोल और वसा कार्बोहाइड्रेट मेटाबोलिज्म का नियंत्रण करती है। इसकी कमी से मनुष्य में डायबिटीज नामक रोग हो जाता है।

३. ग्लूकैगॉन का स्राव (Secretion of glucagon) – यह ग्लाइकोजन को ग्लूकोज में परिवर्तित कर देने में सहायता प्रदान करता है।

फेफड़े (Lungs) – फेफड़े प्रमुख श्वासन अंग होते है। शरीर में दो फेफड़े होते हैं। यह शरीर के वक्ष भाग में प्लूरल गुहाओं (Pleural cavity) में स्थित होते है। यह गुलाबी, कोमल तथा लचीले होते हैं। दाहिना तथा बायां फेफड़ा पिंडो में बँटा रहता है। बाँया फेफड़ा दो पिण्डो में बँटा होता है–१. बाँया आग्रस्थ पिण्ड (Left anterior lobe) तथा २. बाँया पश्च पिण्ड (Left postcrior lobe)

दाहिने फेफड़े में चार पिण्ड (Lobes) पाये जाते है – १. अग्र एजाइगॅस (Anterior Azygos) यह सबसे छोटा पिण्ड (Lobe) होता है। २. दाहिना अग्रस्थ (Right anterior) ३. दाहिना पश्च पिण्ड (Right posterior lobe) ४. तथा पश्च एजाइगॅस पिण्ड (Posterior azygos lobe)।

प्रत्येक पिण्ड में असंख्य कूपिकाएँ (Alveoli) पाई जाती है। कूपिका की दीवार में शल्की एपीथीलियम (Squamous Epithelium) का भीतरी

तथा महीन संयोजी ऊतक (Connective Tissues) का बाहरी स्तर होता है। जिससे फेफड़ा लचीला (Spongy) होता है।

हृदय की स्थिति एवं बाह्य संरचना
(Position and External Structure of Heart)

हृदय, वक्ष गुहा (Thoracic Cavity) में, दोनों फेफड़ो के बीच तथा बाँयी दिशा की ओर स्थित होता है। यह दोहरी झिल्ली से बनी एक गुहा में बन्द रहता है जिसे पेरीकार्डियल (Pericardium) कहते हैं। इसकी भीतरी झिल्ली एपिकार्डियल (Epicardial) तथा बाहरी झिल्ली पेरीकार्डियल (Pericaridal Membrane) कहलाती है।

हृदय शंक्वाकार, गुलाबी तथा एक पेशीय रचना है। हृदय का आगे का भाग चौड़ा तथा पिछला भाग कुछ नुकीला होता है। हृदय में चार कक्ष (Chamber) होते हैं– दो अलिन्द (Auricle) जो कि हृदय का अग्रिम भाग बनाते हैं तथा दो निलय (Ventricles)। यह हृदय का पिछला भाग बनाते हैं। जो दोनों अलिन्द (Auricles) एक-दूसरे से अलग होते है। निलय बड़ा तथा रंग में हल्का होता है। दाँया निलय, बाँये निलय से छोटा होता है। बाँया निलय ही रुधिर को रुधिर वाहिनियों (Blood Vessels) में पम्प करता है जो रुधिर को पूरे शरीर में ली जाती है। पल्मोनरी शिरा (Pulmonary Veins) द्वारा लाया गया शुद्ध रक्त फेफड़ों से सीधे बाँये अलिन्द (Left Auricle) में आता है तथा अग्र एवं पश्च महाशिराओं (Precanal and Post Canals) द्वारा इक्ट्ठा किया अशुद्ध रक्त, शरीर के विभिन्न भागों से सीधे दाहिने अलिन्द (Right Auricle) में आता है।

हृदय की आन्तरिक संरचना
(Internal Structure of Heart)

हृदय की क्षैतिज अनुलम्ब काट (Horizontal Longitudinal) का अध्ययन करने पर हम देखते है कि हृदय की दीवार मुख्यतः हृदय पेशियों (Cardic Muscles) की बनी हुई होती हैं, जोकि शाखान्वित और रेखित होती है। यह हृदय का मध्य स्तर बनती है। यह स्तर मायोकार्डियम (Myocardium) कहलाता है। अलिन्द को दाहिने एवं बाँये अलिन्दों में

विभक्त करने वाली अन्तरा-अलिन्द पट (Inter Auricular Septum) के पिछले भाग में फोसा ओवेलिस (Fossa Ovalis) नामक एक छोटा व अण्डाकार गड्डा होता है।

दाँये अलिन्द (Right Auricle) में तीन महाशिराएँ हैं। (Vena Caval) में पृथक छिद्रों द्वारा खुलती हैं। दाहिनी अग्र महाशिरा का छिद्र अलिन्द के अगले भाग में तथा बाँयी अग्र महाशिरा इसके पिछले भाग में खुलती है। पश्च महाशिरा का छिद्र, बाहर की ओर स्थित होता है। पश्च महाशिरा (Posterior Vanae Cava) के छिद्र से फोसा ओवेलिस तक एक डिल्लीनुमा वलय होता है या यूस्टेकिअन कपाट (Eustachian valver) कहलाता है। बाँयी अग्र महाशिरा के छिद्र पर थिबेसियन कपाट (Thebasian valve) उपस्थित होता है। बाँयी अग्र महाशिरा के छिद्र के समीप ह्दय की दीवार से अशुद्ध रक्त लाने वाले कोरोनरी साइनस (Coronary sinus) का छ़िद्र होता है। फेफड़ो से शुद्ध रुधिर लाने वाले फुफ्फुसीय शिरायें बाँये अलिन्द से खुलती है।

वृक्क के मुख्य कार्य

वृक्क के मुख्य कार्य निम्नांकित हैं–

(१) **वृक्क** नाइट्रोजनीय पदार्थो को मूत्र के रूप में शरीर से बाहर निकाल देते है।

(२) **रक्त** में उपस्थित उत्सर्जी विषैले पदार्थो को छान कर पृथक कर देते है।

(३) **शरीर में** O_2 की कमी को दूर करते है।

(४) यह जल, ग्लूकोज, सोडियम कार्बोनेट आदि अन्य उपयोगी लवणों का अवशोषण करते है।

(५) **रक्त** के $_pH$ को सामान्य बनाये रखते है।

(६) रक्त दाब तथा ऊतक द्रव्यों (Tissue Fluid) की परासरणीयता (Osmality) को नियन्त्रित करते है।

हार्मोन्स (HORMONES)

१. पीयूष ग्रन्थि २. थायरॉइड ग्रन्थि ३. एड्रीनल ग्रन्थि ४. थायमास ग्रन्थि ५. पैराथारॉइड ग्रन्थि ६. अग्न्याशय ग्रन्थि ७. जनन ग्रन्थियाँ

१. पीयूष ग्रन्थि (Pitutary gland) – यह मस्तिष्क के अधरतल पर

स्थित होती है।

२. थॉयराइड ग्रन्थि (Thyroid gland) – यह श्वांसनाल के अगले भाग पर स्थित होती है। शरीर की सबसे बड़ी अन्तःस्रावी ग्रन्थि थॉयराइड ही होती है।

३. एड्रीनल या अधिवृक्क ग्रन्थि (Adrenal gland) – यह वृक्कों के ऊपर स्थित होती है तथा टोपी के आकार की होती है।

४. थॉयमस ग्रन्थि (Thymus gland) – यह द्रव्य के ठीक आगे ट्रेकिया के इधर-उधर स्थित होती है।

५. पैराथॉयराइड ग्रन्थि (Parathyroid gland) – यह थॉयराइड ग्रन्थि के पृष्ठ सतह में धँसी हुई होती है।

६. अग्न्याशय ग्रन्थि (Pancreas gland) यह आमाशय के पीछे स्थित होती है। इसकी पालियों (Lobes) के ऊतकों में लैंगहैन्स की द्वीपिकायें (Islets of Langerhans) स्थित होती है।

७. जनन ग्रन्थियाँ (Gonads) – यह मादा के अण्डाशय (Ovaries) तथा नर (Male) के वृषण (Testes) में होती है।

पिट्यूटरी ग्रन्थि (Pituitary Gland)

पीयूष ग्रन्थि तन्त्रकीय एवं अन्तःस्रावी तन्त्रों के बीच संरचनात्मक एवं कार्यात्मक संयोजन स्थापित करती है। पीयूष ग्रन्थि से निकलने वाले हार्मोन शरीर की वृद्धि लैगिक लक्षणों, उपापचयी क्रियाओं तथा जनदों के विकास को ही केवल प्रभावित नहीं करते वरन् थाइराइड ग्रन्थि, ऐड्रीनल ग्रन्थि तथा जनपदों से निकलने वाले हार्मोन के स्रावण पर भी नियन्त्रण रखते है। इसलिए पीयूष ग्रन्थि "मास्टर ग्रन्थि कहलाती है।

रोग (Disease)	**अन्तःस्रावी ग्रन्थि (Endocrine Gland)**
१. कुशिंग रोग	१. एड्रीनल कार्टेक्स
२. हाशीमीटो रोग	२. थॉइराइड ग्रन्थि
३. मधुमेह	३. अग्न्याशय ग्रन्थि
४. ओस्टिओपोरोसिस	४. पैराथॉइराइड ग्रन्थि

मस्तिष्क तथा मेरुरज्जु (Spinal Gord) तीन झिल्लियों क्रमशः

ड्यूरामेटर, जालतानिका तथा पायामेटर द्वारा घिरे रहते है। यह तीनों झिल्लियों मस्तिष्कावरण या मेनिनजीस (Meninges) कहलाती है।

१. मस्तिष्क (Brain) – मस्तिष्क की रचना काफी जटिल होती है। इसके तीन मुख्य भाग होते हैं। (१) अग्रमस्तिष्क (Fore brain), (२) मध्य मस्तिष्क (Mid brian), (३) पश्च मस्तिष्क (Hind brain), । अग्र मस्तिष्क या प्रोसेनसेफेलॉन में घ्राण पिण्ड (Olfactory Lobes), प्रमस्तिष्क गोलार्द्ध (Cerebral Hemispheres) व अग्र मस्तिष्क पश्च (Diencephalon) आते है। मध्य मस्तिष्क या मीसेनसेफेलॉन, ऑष्टिक पिण्ड (Opic lobes) तथा पश्च सेरेब्री (Crura Cerebri) दो भागों का बना हुआ होता है तथा पश्च मस्तिष्क या रोम्बेन सेफेलॉन, में माइलेन सेफैलॉन सम्मिलित होते है।

(२) मेरुरज्जु (Spinal Cord) – यह मेरुदण्ड (Vertebral Column) की न्यूरल कनाल में स्थित होता है यह मस्तिष्क के मैड्यूला ऑब्लागेटा (Medula Oblangata) का ही एक भाग होता है। यह प्रथम कशेरुक से प्रारम्भ होकर तथाा खोपड़ी (Skull) के महाछिद्र (Forman Magnum) से निकल कर यूरोस्टाइल (Urostyle) में समाप्त हो जाता है। यह एक लम्बी एवं बेलनाकर रचना होती है। जिसका अन्तिम सिरा फाइलम टर्मिनल कहलाता है, परन्तु अनुप्रस्थ काट में यह गोलाकार दिखाई देती है।

मेरुरज्जु के दो कार्य है– (१) यह मस्तिष्क से प्रेरणाओं को शरीर के विभिन्न भागों में पहुँचाता है, तथा शरीर के विभिन्न भागों से प्रेरणाओं को मस्तिष्क में लाता है, यह इसका दूसरा मुख्य कार्य है।

बैक्टीरिया से होने वाले रोग (Diseases Caused by Bacteria) -

निम्न कुछ रोग हैं, जो बैक्टीरिया द्वारा मानव शरीर में उत्पन्न होते हैं :

१. तपेदिक रोग :-

रोग के लक्षण :– हल्का बुखार, वजन में कमी, कमजोरी का अनुभव होता है।

निदान :– निम्न छः कारकों पर अमल कर तपेदिक को नियन्त्रण में किया जा सकता है : १. भोज़न की मात्रा, २. सन्तुलित आहार, ३. शल्य

चिकित्सा, ४. उचित दवाइँया ५. शुद्ध वायु में रोगी को रखना, ६. B.C.G. का वैक्सीन सही समय पर लगवाना

मुख्य औषधियाँ : (a.) स्ट्रैप्टोमाइसिन (Streptomycin) (b.) PAS (Para Amino Salycylic Acid)

२. निमोनिया रोग :-

रोग के लक्षण :– फेफड़ो को प्रभावित करते है। जिससे तेज ज्वर, व साँस लेने में कठिनाई होती है।

निदान :– एन्टीबायोटिक व सल्फर ड्रग द्वारा निदान।

३. डिप्थीरिया रोग :-

रोग के लक्षण :– बच्चों के गले की झिल्ली में सूजन, अधिक सूजन होने पर घांटी द्वार बन्द होकर साँस लेने में परेशानी उत्पन्न करता है।

निदान – इसके निदान हेतु घोड़े के सीरम (Serum) से बना वैक्सीन प्रयोग में लाया जाता है।

४. टायफाइड रोग :-

रोग के लक्षण – रोगी को निरन्तर १०१°F से 103°F तक ज्वर, कमजोर, मल त्याग में परेशानी।

निदान :– क्लोरोमाइसिटिन नामक औषधि, रोगी का बिस्तर स्वच्छ होना चाहिए, स्वच्छ जल।

५. हैजा रोग :-

रोग के लक्षण – दस्त होना, कै भी हो सकती है। ज्वर १०१–१०५°F पसीना अधिक आता है, शरीर ठण्डा पड़ जाता है, प्यास अधिक लगती है। पेट में ऐंठन आदि।

निदान :– सड़े गले भोजन से बचना चाहिये, पानी उबाल कर पीना चाहिये। भोजन गर्म व ताजा खाना चाहिये तथा वैक्सीन लगवाने चाहिये।

६. कुष्ठरोग :-

रोग के लक्षण :– त्वचा पर सफेद धब्बे व गाँठें बन जाती हैं। धीरे-धीरे अँगुलियाँ कमजोर होकर अक्रियाशील हो जाती हैं।

निदान :– यह रोग सम्पर्क में आने से बढ़ता है अतः अस्पताल में रोगी को दिखाकर पूर्ण रूप से इसका निदान करना चाहिए।

७. प्लेग रोग :-

रोग के लक्षण :– तेज ज्वर, १०४-१०७°F आँख लाल, प्यास अधिक, गाँठें हो जाती हैं।

निदान :– प्लेग से बचने के लिये टीके लगवाने चाहिये। मरे हुए चूहों को मिट्टी के तेल से जला देना चाहिये।

विषाणु से होने वाले रोग
(Diseases Caused by Virus)

१. चेचक रोग :-

रोग के लक्षण :– आरम्भ में तीव्र बुखार दूसरे व तीसरे दिन पूरे शरीर पर लाल दाने पैदा हो जाते हैं जो धीरे-धीरे फुन्सियों में परिवर्तित हो जाते हैं। कुछ दिन बाद फुन्सियों में पस पड़ जाता है।

निदान व बचने के उपाय :– इस रोग से बचने के लिये सही समय पर टीके लगवाने चाहिये। रोगी को तुरन्त अलग कर देना चाहिये, फुन्सियों पर बनी पपड़ियों के हटते ही शरीर पर वैसलीन में काबोनिक अम्ल मिलाकर लगाना चाहिये।

२. इन्फ्लूइन्जा रोग (Influenza) :-

रोग के लक्षण :– रोगी की पीठ, बाँह, पैर तथा सिर में दर्द होता है तथा ज्वर आता है। साँस नली में सूजन आ जाती है। छींक आती है व आँख से पानी बहता है।

निदान व बचने के उपाय :– इसके निदान हेतु औषधि टैट्राक्लोरो माइसिटीन का प्रयोग किया जाता है। अधिक धूप व सर्दी से बचाव करना चाहिये।

३. मम्पस रोग (Mumps) :-

रोग के लक्षण :– गले में अवरोध उत्पन्न होता है व खाने-पीने की वस्तुओं को निगलने में परेशानी होती है।

निदान व बचने के उपाय :– आमाहल्दी अथवा गेरू को गर्म करके गले पर लेप लगाने से फायदा होता है। खाने-पीने की वस्तुयें गरम ही लेनी चाहिये।

४. पोलियो रोग (Polio) :-

रोग के लक्षण :– इस रोग के कारण रोगी में सन्तुलन नहीं रहता।

पैर अथवा हाथ धड़, गति करने में प्रेरक तन्त्रिकाओं (Motor-nerves) द्वारा असमर्थ-सा प्रतीत होता है शरीर कभी-कभी एकदम सुन्न हो जाता है।

निदान व बचने के उपाय :– गॉमा ग्लोब्यूलिन (G.G) का उपाय करना चाहिये। **सॉक्स वैक्सीन** (Sach's Vaccine) लगवाना चाहिये। **ट्रिपिल वैक्सीन** लगवा लेना चहिये।

५. खसरा रोग (Measles) :-

रोग के लक्षण :– बच्चों में त्वचा पर छोटे-छोटे दाने निकलते है, बुखार आ जाता है। नाक व मुँह के स्राव से फैलता है।

निदान व बचने के उपाय :– इस रोग से बचने के लिये रोगी को ठण्ड से बचाना चाहिये तथा सही समय से टीके लगवाने चाहिये।

६. रैबीज रोग (Hydrophobia) :-

रोग के लक्षण :– रोगी को प्यास बहुत तेज लगती है तथा पानी के लिये बहुत बैचेन हो जाता है। गले में रूँधन (Throat Paralysis) होती है एवं ऐंठन उत्पन्न होती है।

निदान व बचने के उपाय :– तुरन्त रैबीज वैक्सीन की सुई लगवानी चाहिये। रोगी को पानी नहीं देना चाहिये। पागल कुत्ते को तुरन्त मारकर आबादी से दूर फिंकवा देना चाहिये।

प्रोटोजोआ द्वारा फैलने वाले संक्रामक रोग

(Infectious Diseases Caused by Protozoa)

१. रोग पेचिस (Decentry) :-

रोग के लक्षण :– रोगी के पेट में मरोड़ ऐंठन से पीड़ा होती है तथा मल में आँव का स्रावण होता है। अधिक गम्भीर स्थिति में खून भी जाने लगता है जिससे रोगी अधिक कमजोर तथा पाचन करने में असमर्थ हो जाता है। यह **एन्टअमीबा हिस्टोलिटका** नामक प्रोटोजोआ के संक्रमण से होता है।

बचने के उपाय व निदान :– संक्रमण से बचने के लिये व्यक्तिगत स्वास्थ्य व स्वच्छता सबसे अधिक आवश्यकता है। खाद्य वस्तुओं व बर्तनों की सफाई, नाखून काटना, भोजन से पहले हाथ धोना व खाद्य पदार्थों को मक्खी से बचाकर ढक कर रखना। इसके उपचार हेतु एमेटिन (Emetin) के इन्जेक्शन लगाये जाते हैं। कुछ एन्टीबायोटिक जैसे–**फ्यूमैजिलिन,**

एरिथ्रोमाइसिन, टेरामाइनि, ओरियोमाइसिन, ह्ययूमेटिन आदि।

२. **रोग मलेरिया** (Malaria) :-

रोग के लक्षण :– यह **प्लाज्मोडियम** नामक रोगजनक परजीवी से प्रोटोजोआ से मनुष्य में फैलता है।

तीव्र बुखार चढ़ने से पूर्व भूख समाप्त हो जाती है। कब्ज हो जाता है, मुँह सूखने लगता है तथा सिर, पेशियों और जोड़ो में दर्द होने लगता है। बुखार से पूर्व रोगी को तीव्र ठण्ड लगती है। जोकि रक्त में हीमोग्लोविन एवं अन्य विषैले पदार्थो के मुक्त होने से होती है। कभी-कभी रोगी को उल्टियाँ भी होने लगती है। कुछ घण्टे पश्चात् शरीर से पसीना निकलता है और ताप कम हो जाता है व रोगी थकावट के अलावा स्वस्थ अनुभव करने लगता है। निश्चित समय बाद पुनः बुखार चढ़ना आरम्भ हो जाता है।

बचने के उपाय व निदान :– मलेरिया के उपचार हेतु **कुनैन** एक परम्परागत औषधि है। इससे समानता रखती है अन्य औषधियाँ, जैसे–**ऐटीब्रिन, कामोक्विन, क्लोरोक्विन** आदि इनके अतिरिक्त **पेल्यूड्रिन, पैन्टाक्विन, डैराप्रिम एवं प्लाज्मोचिन** आदि रोगी के यकृत में उपस्थित प्लाज्मोडियम की प्रावस्थाओं को भी नष्ट कर देती हैं। रोग से बचने के लिये मच्छरों को समाप्त करना आवश्यक है इसके लिये घर के आस-पास सफाई रखनी चाहिये।

३. **रोग पायरिया** (Pyorrhoea) :-

रोग के लक्षण :– यह सम्भवतः **एन्टअमीबा जिन्जिवेलिस** की विभिन्न जातियों के संक्रमण से होता है। इस रोग में मनुष्य के मसूडे व दाँतो की जड़ें फूल जाती हैं तथा मुँह से तीव्र बदबू आती है व खून भी रिसने लगता है।

बचने के उपाय, निदान :– कुछ आधुनिक माउथवाश जैसे पाइरोडिन हाइड्रोजन परॉक्साइड आदि के इस्तेमाल से यह समाप्त हो सकता है तथा चुम्बन से बचना चाहिये क्योंकि इसी के द्वारा यह फैलता है।

विटामिनों की कमी से होने वाले रोग

१. विटामिन A की कमी के कारण :

विटामिन A की कमी से दो मुख्य रोग जीरोपथैलमिआ व नाइट ब्लाइन्डनैस होते है :

(a) **जीरोपथैलमिया** – इस रोग में आँख की कॉनिया की कोशाये सूख जाती है और शल्की वन (Keratinization) हो जाता है तथा अश्रुग्रन्थियों (Tear Glands) का काम करना बन्द हो जाता है और गुर्दो में पथरी पड़ जाती है। क्षीण (Weak) एपीथीलियनी स्तरों पर जीवाणुओं का आसानी से संक्रमण हो जाता है।

(b) **रतौंधी** (Night Blindness) – इस रोग में कम प्रकाश में दिखायी नहीं देता।

१. शुष्क तथा शल्की (Scaly) त्वचा

२. देह गुहा (Body Cavity) के आन्तरंगों (Internal Organs) का एपीथीलियल स्तर (Epithelial Lining) पर जगह-जगह पर घाव हो जाते है।

इस रोग के निदान के लिये विटामिन A युक्त भोज्य पदार्थ घी, दूध, मक्खन कुछ सब्जियाँ जैसे टमाटर, गाजर, पीले फल, अण्डा तथा मछली का तेल लेना चाहिये।

विटामिन B की कमी के कारण :

विटामिन B १२ प्रकार के होते हैं। अतः इनका सामूहिक रूप **विटामिन** B कॉम्पलैक्स कहलाता है।

(a) **विटामिन B_1 अथवा थायमीन की कमी से** – इसकी कमी से तन्त्रिका तन्त्र (Nervous System) बिगड़ जाता है जिससे लकवे (Paralysis) का खतरा रहता है। हृदय पेशियाँ (Cardiac Muscles) कमजोर होने से दिल को धड़कन बन्द हो सकती है। अपच व कब्ज हो जाती है। यह **बेरी-बेरी** रोग है।

यह विटामिन अनाज के छिलकों, यीस्ट, मुंगफली, कुछ दालों, माँस आदि में पाया जाता है। अतः प्रत्येक वयस्क को अपने भोजन में विटामिन B_1 की लगभग 1-2 mg मात्रा ग्रहण करनी चाहिये।

(b) **विटामिन B_2 की कमी से** – इसे राइबोफ्लैविन (Riboflavin) भी कहते हैं **कीलोसिस** नामक बीमारी हो जाती है।

लक्षण – मुँह के कोण फट जाते है, पाचन शक्ति कमजोर, त्वचा व आँखों में जलन, सिरदर्द दिमागी थकावट, कमजोर स्मृति, नाक की त्वचा पर पपड़ी पड़ने लगती है।

यह दूध, दूध द्वारा बने पदार्थो में हरी सब्जियों में, यीस्ट व अण्डे में पाया जाता है। अतः इस रोग से बचाव के लिये इस विटामिन का 1.5 mg प्रतिदिन लेना चाहिये।

(c) **विटामिन B_5 अथवा निकोटिनिक अम्ल की कमी से** – विटामिन B_5 की कमी से **पेलाग्रा** नामक रोग हो जाता है। जिसके लक्षण निम्न हैं :

लक्षण : जीभ चिकनी व लाल, पाचन मानसिक गड़बड़ियाँ, जीभ व त्वचा दानेदार हो जाती है।

यह विटामिन अनाज, दाल, पत्तीदार सब्जियों में, टमाटर, माँस आदि में पाया जाता है। वयस्को को यह विटामिन प्रतिदिन लगभग 10 mg लेना चाहिये।

(d) **विटामिन B_6 या पाइरिडॉक्सीन की कमी से** – उक्त विटामिन की कमी से होने वाले रोग हैं। **रक्तक्षीणता,** (Anaemia), **चर्मरोग** (Dermatitis), **पेशीय ऐंठन** (Convulsions) आदि हैं। यह हरी सब्जियों, माँस मछली, जिगर, यीस्ट आदि में पाया जाता है।

(e) **विटामिन B_3 अथवा पैन्टोथीनिक अम्ल की कमी से** – विटामिन B_3 की कमी से चर्म रोग, मन्द बुद्धि बालों का सफेद होना व प्रजनन क्षमता में कमी आदि हैं। यह विटामिन सभी खाद्य पदार्थो में पाया जाता है।

(f) **विटामिन H या बायोटीन की कमी से** – त्वचा रोग, बालों का झड़ना आदि बायोटीन की कमी से होता है। यह विटामिन यीस्ट, फलों, सब्जियों, गेहूँ, अंडो, मूंगफली आदि में पाया जाता है तथा कुछ आँत के बैक्टीरिया से भी प्राप्त होता है।

(g) **फोलिक अम्ल** (Folic acid) **की कमी से** – रक्त अल्पता (Anamia), कम वृद्धि इस विटामिन की कमी से होता है। ये हरी पत्तियों (पालक) सोयाबीन, जिगर, गुर्दो आदि में पाया जाता है।

(h) **विटामिन B_{12} या सायनोकोबालैमीन की कमी से रक्तक्षीणता** (Anaemia) हो जाती है। यह विटामिन, माँस, मछली, जिगर, अण्डों, दूध आदि में मिलता है।

(i) **विटामिन C या ऐस्कोर्बिक अम्ल की क्रमी से होने वाले रोग** – एस्कोर्बिक अम्ल (Ascorbic acid) की कमी से **स्कर्वी** रोग हो जाता है जिसके लक्षण निम्न हैं, कहीं भी चोट लग जाये तो घाव भरने (Healing) में काफी समय लग जाता है। रुधिर कोशिकाओं की दीवार कमजोर होकर प्रतिरक्षा क्षमता (Immunity) कम हो जाती है। पेशियाँ फटने लगती हैं, खून की उल्टी, तीव्र बुखार हो जाता है।

इस रोग से मुक्ति पाने के लिये विटामिन C की कमी को पूरा करना चाहिये जो विभिन्न भोज्य पदार्थो से दूर की जा सकती है क्योंकि यह नीबू, सन्तरे, मौसमी, टमाटर, हरी सब्जियों, आलू व अनेक फलों में मिलता है।

(j) **विटामिन D की कमी से होने वाले रोग – रिकेट्स** नामक बीमारी इसकी कमी से होती है। इस रोग से ग्रस्त रोगी की हड्डियाँ कमजोर व टेढ़ी होने लगती है, दाँतों का ठीक से विकास नहीं हो पाता। यह मुख्यतः सूर्य के प्रकाश से प्राप्त होता है इसके अतिरिक्त मक्खन, जिगर, अण्डे की जर्दी व मछली का तेल इसके प्राप्ति के साधन है।

(k) **लवणों की कमी से होने वाले रोग** – विभिन्न लवणों मुख्यतः कैल्शियम (Ca) की कमी से हड्डियाँ कमजोर, पेशियों का कमजोर होना व दाँतों का झड़ना आरम्भ हो जाता है। प्रतिदिन अपने भोजन में कैल्शियम की मात्रा 1gm होनी चाहिये। यह दूध द्वारा निर्मित पदार्थों में हरी तरकारियों व दालों से प्राप्त होता है।

आयुर्वेद मांसाहार के विरुद्ध है अंडे मछली आदि के स्थान में हरी सब्जियों बादाम, च्यवनप्राश सिद्ध मकरध्वज जैसे रसायनों का एवं गोदुग्ध का सेवन किया जा सकता हैं। विटामिन एवं लवण, फलाहारों में पर्याप्त मिल जाता है।

(आयुर्वेद शाखा पूर्ण)

भाग २

ज्ञानकल्पवृक्ष की योगविज्ञान (शाखा)

अष्टांग आयुर्वेद तथा अष्टांग योग दोनों ही मानवजीवन विज्ञान हैं। योग विशेषकर मानसिक रोगो पर तो चमत्कारी प्रभाव दिखाता है। मन को तनाव मुक्त शरीर को सुदृढ़ करता है शारीरिक मानसिक स्वास्थ्य की तरंगों द्वारा अन्तंरगावली-जीवात्मा परमात्मा मिलन तक ले जाता है। आयुर्वेद स्वीकार करता है चरक वचन-योगे मोक्षेच सर्वासां वेदनानामवर्तनम्। योग और मोक्ष ही ऐसे हैं जो समस्त वेदना निवृत्ति कर सकते हैं– योगो मोक्ष प्रवर्तकः होने से निःश्रेयस आन्तरिक सुख का द्योतक है इसलिए हम योग को आयुर्वेद से समन्वित कर एक साथ स्थापित कर रहे हैं।

(योग विज्ञान पक्षे व्याख्या)

विद्याद्यादृगरूपया त्रिपथगा धाराधरो माधवः
योगंगान्धियमातचन्द्र महिमालाभान्तरंगावली
वेदान्तांत्रिक भावतारणमता पंचामृताराधिका
साभाभारत भारतीय मुदिता यामानवी संहिता।

योग विद्या ज्ञान सत्ताविचार लाभार्थे प्रयुक्त विद्धातो श्चतुरंगिणी। योगेन ज्ञानं सत्ता विचारः लाभःसर्वमपि सिध्यति अतः विद्या। आद्यात्= कृष्णात् शिवात् पातंजलि महर्षि, वशिष्ठादिभिः समायाता। साक्षात् परमेश्वरत एव प्राप्ता। आदृक्= विराट् विद्या आत्म शरीर मनोदर्शिनी। अरूपयात्रिणोः=जीवात्म परमात्मनोः पथगा मार्गगामिनी विद्या, जीव परमात्म मेलनी विद्या। द्वयोर्योगमपि मनश्शुद्धया करोति। परम्परागता गीतायामपि श्री कृष्णेन, भगवता श्री कपिलेन योगानां वर्णनं कृतम्। आधुनानेक प्रेक्षाविपश्यना सहज भावातीत योगाः प्रचलन्ति तस्मात् धाराधरो योगः सः साक्षात् माधवः=कृष्ण उमाधवः=शिवः। गंगाइव पावनी शरीर मनः शुद्धिकरी त्रिपथगा प्रचलति। गां=इंन्द्रियसमूहं धियं= वुद्धिं अपि प्रभावयति। चन्द्रमइव सुधावर्षिणी शीतला हिमा। योगविद्यया शरीरस्य वास्तविक तरंगावली जागर्ति। एषाविद्या अंगावली अष्टांग योग संख्यावली अस्ति। एषा अराधरा=अराणि=षट्चक्राणि मर्माणि धारयति आलाभा=सर्वतोमुखीलाभो

भवति। अस्यां तांत्रिक भावता=चमत्कारी प्रभावः भावतारणमता=वास्तविक स्वास्थ्याभा वतरणंसंजायते। अराधिका (अर-चक) अष्टचक्रज्ञानयता आंत्रिकभावता-आन्त्रशोधकारिणी अरणमता-अहिंसात्मिका। पंचामृता=पंचकोषेषु, पंच पंचक-इन्द्रियाधिष्ठानेषु अमृतं स्थापयति। आराधिका=सत्यतःजन स्वास्थ्य सेविका विद्या राधिकाइव। इयंसाभा= आभासहिता भारत भारतीय मुदिता=आल्हादिनी, उदिता=उदयस्वरूपा मानवी संहिता अस्ति। भारत भारतीय हितैषिणी अस्ति। आमानवी=विश्वमानवताहितकारिणी संहिता अस्ति। वेद वेदान्तयोरपि विद्यमाना अद्वितीया विद्या वेदान्ता। एषा विद्या तरंगावली (आनन्द तरंग प्रदा) अन्तरंगावली (शरीरान्तर्गत अंगप्रत्यंग स्वास्थ्य शालिनी) विद्या। आयुर्वेदस्य यथा अंगावली अष्टांग आयुर्वेद स्तथैव अष्टांग योग इति। आयुर्वेदयौगौ उभौ मानवजीवन हितकरौ अत एवं मानवसंहिता। स्वास्थ्य रंगावली, आनन्दतरंगावली अपि विद्येते।

त्रिपथगा योग विद्या

१. क्रियायोग-स्वाध्याय, तप, ईश्वरप्रणिधान

२. अन्तरंग साधन– ध्यान धारणा समाधि

३. त्रिविधमनोमल-मल, विक्षेप, आवरण

४. योग के उद्देश्य– मन की शान्ति २ प्राणस्पन्दना निरोध ३ एकतत्वमें दृढ़ता (योगवशिष्ठ)

५. त्रिविध नरकद्वार (त्याग)– काम, क्रोध, लोभ

६. अन्त करण ज्ञान – मन, वुद्धि, इन्द्रियगण

७. तीन स्तम्म – मन, आत्मा, शरीर

८. तीन सद् गुण – भक्ति, ज्ञान, वैराग्य

९. तीन योग – भक्तियोग, ज्ञानयोग, कर्मयोग

१०. तीन अयोग – अयोग, अतियोग, मिथ्यायोग (काल कर्म इन्द्रियों के)

११. त्रिगुण– सत्व, रज, तम (इनका प्रभाव और नियंत्रण)

१२. पावन कर्म – यज्ञ, दान, तप

पंचामृता योग विद्या

१. पंच शरीर तप – १ देवद्विजगुरुप्राज्ञपूजन २ शौच, ३ आर्जव, ४ ब्रहमचर्य ५ अहिंसा।

२. पंचवाणीतप – अनुद्वेग करवाक्य; सत्यवाक् प्रियहितवाक्, स्वाध्याय, अभ्यास

३. पंचमानसतप– १. प्रसन्नता २. सौम्यता ३, मौन ४ आत्मविनिग्रह ५ भावसंशुद्धि (गीता)

४. वहिरंग साधन– यम, नियम, आसन, प्राणायाम प्रत्याहार

५. पंचसिद्धि– जन्म, औषधि, मंत्र, तप, समाधि

६. पंचक्लेश– अविद्या, अस्मिता राग, द्वेष अभिनिवेश

७. इन्द्रियों के ५ रूप – ग्रहण, स्वरूप, अस्मिता, अन्वय, अर्थवत्व

८. वर्तमान प्रचलित योग – पातंजल योग २ भावातीत ३ प्रेक्षाध्यान योग ४ विपश्यना योग ५ सहजराज योग

९. पंचयौगिक कर्म – धौती, वस्ति, नेति, नौली, त्राटक

१०. पंचयम – अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह

११. पंचनियम – शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान

१२. पंचसंयम – चिन्तवृत्ति निरोध २ आत्मविश्वास ३ दोष निरोध ४ प्रसाद ५ गुरुपरम्परा निष्ठा

१३. पंच मनोवृत्ति – प्रमाण, विपर्यय, विकल्प निद्रा, स्मृति

१४. वर्ग पंचक – पाँच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय, पंचमहाभूत, पंचतन्मात्रा, पंचविषय

१५. पंचवायु–प्राण, अपान, समान उदान व्यान

अराधरा=अर=चक्रों की आधरा) इसमें सर्वप्रथम ८ चक्र तदनन्तर आसन विज्ञान, इन्द्रियविज्ञान (स्वप्न विज्ञान) का वर्णन है–

उमाधवः= शंकरः माधवः= कृष्णः, योगीश्वरः योगेश्वरश्च योगं=योग विज्ञानं आतःप्राप गां=इन्द्रिय समूहं मनश्च (योगश्चित्तवृत्ति निरोधः)

धियं= ज्ञानं आत। एषाविद्या यमैः अततीति अथवा सूर्यचन्द्रानुसारिणी प्रकाशशीला विद्या। धाराधरा= परम्परागता अस्ति। चन्द्रास्त्रयः चन्द्रमौलिः कृष्णचन्द्रः रामचन्द्रः (रामचन्द्रोपि वशिष्ठात् योगवशिष्ठमधीतवान् आद्यात्=शिवात्एषा विद्या आदृक् आ=सर्वात्मना पश्यतिसा शरीरस्य मनसः स्वास्थ्य कारिणी अरूपयात्रिपथगा= जीवात्मपरमात्म पथगामिनी, त्रिपथगा ज्ञानयोग कर्मयोग भक्तियोग स्वरूपा, प्रत्यक्षानुमानागमैः त्रिपथगा योग विद्या तपः स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधान रूपा। पंचामृता-अहिंसा-सत्य–

अस्तेय-ब्रह्मचर्य-अपरिग्रहामृतस्वरूपा यम पूर्विका। शौच संतोष तपः स्वाध्यायेश्वर प्रणिधान नियमसहिंता प्रमाणविपर्यय, विकल्प निद्रास्मृति चित्तवृत्ति निरोध भूता। एषा भारतभारतीय मुदिता भारतस्य भारतीयानां कृते मोददायिनी आभा=छविरास्ते प्राणायामाः आसनानि कतिसंख्याका सन्ति। एषा अपि मानवसंहिता विद्याद्या। पातंजलिमारम्य वर्तमान सहज भावातीत-प्रेक्षा विपश्यनादि धाराधरा अस्ति योगविद्या ।

अर्थ – सर्वप्रथम लोक में शिव, कपिल, कृष्ण ने योग विद्या का विस्तार किया। यह सूर्यचन्द्र महिमामयी है इन्द्रियसमूह बुद्धि तक प्रभाव करती है। तंत्र मंत्र में योग विद्या का भी महत्व है। ५ नियमों के अमृत विद्यमान है भक्तिज्ञानकर्मयोग रूप से त्रिपथगा है। प्रत्यक्ष अनुमान आगे तीन प्रमाणों से चलती हैं। इसके आचार्य शिव तथा कृष्ण है यह अवतार थे। योग विद्या जो भारत की भारती उदीयमान है तथा उसमें प्राणविद्या अष्टचक्र ज्ञान प्रमुख है। तथा प्राणापान समानोदान व्यान पंच वायुज्ञान की आवश्यकता है। योग विद्या का शरीर-मन-आत्मा पर प्रभाव पड़ता है। आयुर्वेद तथा योग से संबंध है. इसीलिए चरक ने लिखा है

"सत्वमात्मा शरीरचं त्रयमेतत् त्रिदंडवत्
लोकस्तिष्ठति संयोगात्तत्र सर्व प्रतिष्ठितम्"

मन आत्मा शरीर यही जीवन के तीन स्तम्भ है। सुख दुख के यही कारण है। "योगे मोक्षेचसर्वासां वेदनानामवर्तनम् योग और मोक्ष ही दो ऐसे है जिससे दुख निवृति हो जाती हैं अब हम प्रथम आठ चक्रों का विवरण प्रस्तुत करते है।

चक्रंज्ञान-

१. सहस्रार चक्र (शिवधाम) अर+अधिका

आज्ञा चक्र के ऊपर के सर्वोच्च स्थान मस्तिष्क पर यह चक्र कार्यशील है। इसी स्थान में विवरसमेत सुषुम्ना का मूलारम्भ होता है। जिसकी अंतिम सीमा मूलाधार स्थित योनिमण्डल है। सहस्रदल कमल शुभ्रवर्ण है। अ से क्ष तक सविन्दु ५० वर्ण है यह ब्रहमरन्ध्र है। कुछ लोग कहते हैं सहस्रदल कमल में द्वादशदल कमल है इस कमल में १२ दलों में ह. स. क्ष. म. ल. व र. य. ह. स. ख. फ. यह १२ बीज लिखे है अधरों

के मण्डप में ॐ लिखा है इस द्वादशदल कमल को ललनाचक्र कहते है इसका वर्णन विस्तार विश्वसारतंत्र तथा कंपालमालिनी तंत्रो में लिखा है। सहस्रदल कमल में चन्द्र मण्डल है उसकी गोद में निर्वाण शक्तिरूपा मूल प्रकृतिबिन्दु और शिवा शक्ति के साथ परम शिव वेस्टन किए हुए है। ग्रह-शानि/देवता-कामेश्वरी जप संख्या १०००/ इसका अधिष्ठाता ग्रह सूर्य बताते हैं योगी लोग कहते हैं कि आज्ञाचक्र के उपर सहस्रार चक्र के नीचे बिन्दु पीठ नादपीठ, शक्तिपीठ कपोल देश में होते है। शक्तिपीठ का अर्थ ब्रहमबीज ओंकार। ओंकार के नीचे निरालम्बपुरी तथा उसके नीचे एक गुप्त षोडशदल युक्त सोमचक्र है। इन दलों को चन्द्र की १६ कलाएं कहते है उसके नीचे एक गुप्त षडदल पक्ष्म है। उसे ज्ञान चक्र (मनश्चक्र) भी कहते है इसके एक एक दल से रूप रस गंध स्पर्श शब्द तथा स्वप्न ज्ञान उत्पन्न होता है इसके नीचे आज्ञाचक्र का स्थान है। ब्रह्मानन्द अनुभूति का स्थान इसे शिवधाम प्रकृति पुरुष का निवास कहते है।

२. आज्ञाचक्र (अग्निधाम)

इस चक्र को योगशास्त्र में अग्निचक्र या शिव तृतीयनेत्र कहते है आधुनिक चिकित्साज्ञान में चक्राकार अस्थि उसमें पीयूष ग्रन्थि (पिटयूटरी ग्लैन्ड) रहती है जिसका कार्य जीवन का विकास है इसी स्थान को तिलक बिन्दु कहते है प्राचीन काल से यहीं तिलक लगाया जाता है यहीं दोनों भौंह मध्य ध्यान लगाते है। जब हम कुछ भूल जाते है तो इसी के पास हाथ से ललाट मलना प्रारम्भ कर देते हैं ताकि स्मृति जागरण हो। इसी के बल पर अनेक सिद्धियां प्राप्त की जाती है। जब कुंडलिनी आज्ञाचक्र को जगाती है तब यह तीसरा नेत्र खुल जाता है जब दिव्यदृष्टि मिलती है यहां का ग्रह गुरु है। इस स्थान में हंस पुरुष परमशिव उसकी देवी सिद्धकाली है। शिवलिंग समान बिन्दु है। महाकाल नामक यंत्र। बीजाक्षर -ल- है। सत्य असत्य वाणी का प्रभाव आज्ञाचक्र पर निर्भर करता है मन की स्थिरता, निर्भयता, निर्णय, शक्ति, चिन्तन शक्ति में यहां से सफलता मिल जाती है जप संख्या १०००

३. विशुद्धचक्र (चन्द्रधाम)

स्थान कंठ/कमलवर्ण /दल-१६/दलों में अ से अः तक स्वर है।/चक्र

का यंत्र पूर्ण चन्द्राकार/आकाशतत्व/बीज हं है। जप संख्या १०००/देवशक्ति-पंचवक्त्र सदाशिव/ज्ञानेन्द्रियकर्ण/देवता-शिव/उदानवायु/ मायानन्द दर्शन का स्थान/ चन्द्र ग्रह है। इसको पूर्ण गिरिपीठ भी कहते हैं शिव के ललाट पर उल्टा चन्द्रमा अस्थिपंजर शोभनी बैठा है।

४. अनाहत चक्र (मंगलधाम) अधिपति भैरव

स्थान हृदय/अरूणवर्ण द्वादशदल/ दल के अक्षर कं से टं तक/ यंत्र षटकोण धूम्रवर्ण (वायुतत्व दल के नीचे कल्पवृक्ष) **(स्वर्गधाम)**।

५. मणिपूरक चक्र ध्वज से सुशोभित/ डाकिनी आसीन वरमुद्रा अभयमुद्रा धारण किए स्थान नाभि/दशदल/वर्णनी/ लोक-स्वर्लोक/ तत्व अग्नि/ दल के धिर उं से फं तक/ ज्ञानेन्द्रिय चक्षु कर्मेन्द्रिय चरण/यंत्र-त्रिकोण/ स्वस्तिक आकार/ जप-६०००/ इस पर भी मंगलग्रह/ प्राणवायु/ कामयोगानन्द का अनुभव/द्वितीयस्थान/वृषारूढ रक्तवर्णरुद्र आसीन/ अग्निवीज/ लाकिनी देवी।

६. स्वाधिष्ठानचक्र (विष्णुधाम)

स्थान वस्ति/वर्ण सिन्दूर/दल-षटदल/दलों के अक्षर बं मं यं रं लं/ देवता विष्णु/ जप ६०००/ जल तत्व/ यंत्र अर्द्धचन्द्राकार/ज्ञानेन्द्रिय रसना/शुक्र ग्रह का प्रभाव चतुर्भुजा शाकिनी विराजमान/ वह त्रिनेत्रा कुटिलदंष्ट्रा है। नासिका से रक्तप्रवाह।

७. मूलाधार (ब्रह्मधाम)

चार पटलों का पदम/ रंग लाल/ वं शं षं कमशः वर्ण। ऐरावत हाथी पर आरूढ़ वज्रधारी है ब्रह्मा। दंड कमडंल माला धारण अभय मुद्रा/ डाकिनीशक्ति/कामवीजक्लीं/इसके उपर श्यामवर्ण का स्वयम्भूलिंग जिसे साढ़े तीन फेरे में लपेटे कुडंलिनी शक्ति सुप्त है। स्वयम्भूलिंग में हीं मायाबीज है। हकार विश्वरूप रकार अग्निरूप ईकारप्रज्ञारूप है।

८. कुंडलिनी शक्ति (शक्तिधाम)

कुंडलिनी मूलाधारचक्र में विराजमान है। मूलाधार चक्र से २ अंगुली ऊपर है। तंत्र शास्त्र में लिखा है कि यह कुंडलिनी षटचक्रों का और ३ ग्रन्थियों का भेदन कर ब्रह्म रन्ध्र में चढ़ती है कुछ लोग मूलाधार के नीचे स्थान भी बताते हैं। सिद्धासन में वामपाद के एड़ी से योनिस्थान वहीं

कुंडलिनी स्थान है कुंडलिनी एक तेज है सुश्रुततथा वाग्मट ग्रंथ में नाभिस्थान चार अंगुल विस्तार का कन्द है। उसके नीचे वस्ति है गुदा के ऊपर २ अंगुल शिश्न के नीचे २ अंगुल कुंडलिनी स्थान है इसलिए प्रमाणों से मूलाधार के नीचे कुंडलिनी मेरुदंड में से चढ़ती है और षट चक्रभेदन करती है। यह भेदन सुषुम्ना से आने जाने वाली नाड़ियो द्वारा सम्भव है यहां निजानन्द का दर्शन होता है।

चक्र तथा कोष

१. मूलाधार से लेकर स्वाधिष्ठान तक– अन्नमयकोष

२. स्वाधिष्ठान से मणिपूर तक– मनोमय कोष

३. मणिपुर से अनाहत चक्र तक– प्राणमय कोष

४. अनाहत से विशुद्ध चक्र तक– विज्ञानमय कोष

५. विशुद्ध से आज्ञाचक्र तक– आनन्दमय कोष

षट्चक्र और आयुर्वेद

आयुर्वेद शास्त्र के अन्तर्गत वर्णित षट्चक्रको का वर्णन वर्तमान में उपलब्ध आयुर्वेदीय ग्रंथो में नाम-मात्र का ही दृष्टिगोचर होता है। इनका वर्णन एवं उल्लेख भारतीय दर्शन-शास्त्र के ग्रन्थों में उपलब्ध है। योग एवं तंत्र पर आधारित ग्रंथो यथा-योगकुण्डल्युप निषद् महानिर्वाण तंत्र षटचक्र निरुपणम्, ध्यानबिन्दु उपनिषद् योगार्णव तंत्र कुलार्णवतंत्र, शारदातिलक में भारतीय दर्शनकारों ऋषिगणों ने कुंण्डलिनी-इड़ा, पिंगला, मेरुदंण्ड एवं मूलाधार सहस्रार रूपी दो केन्द्रों संबंधी विस्तृत विवेचन किया है।

योगाचार्यो ने चक्रकों को "कमल" नाम से भी सम्बोधित किया है यथा-हृदय-कमल, नाभिकमल, सहस्रार कमल इत्यादि। अंग्रेजी में इन्हें प्लेकसस और जापानी जैन धर्म की व्याख्यानुसार "क्यूसोस" कहा गया है। चीन की ताओं प्रणाली में चक्रकों को विश्व ब्रह्माण्ड में बिखरे हुए नर और नारी-योगं और चित् "शक्तियों के एकत्री करण सम्मिलन का केन्द्र बताया गया है। आयुर्वेदीय शरीर शास्त्र एवं शरीर क्रिया विज्ञान की दृष्टि से इन षटचक्रको का अध्ययन नितांत आवश्यक है आधुनिक चिकित्सा विज्ञान से तुलनात्मक अध्ययन करते हुए हम कई नर्व्स को एक साथ मिलकर बनाये गये गुच्छक को ही चक्र कहते है एवं उनका अलग -२ स्थान पर अलग-२ नाम है। इन चक्रकों की संख्या छः है वैसे योग शास्त्र

में सातवें चक्र सहस्रार की भी गणना की गई है, जिसे सहस्र दल कमल कहा जाता है। इसकी गणना आयुर्वेदज्ञों ने नहीं की है आयुर्वेद-शास्त्र के शरीर शास्त्र की दृष्टि से महत्वपूर्ण छः चक्रको का नाम निम्नलिखित है–

१. मूलाधार चक्र
२. स्वाधिष्ठान चक्र
३. मणिपुर चक्र
४. अनाहत चक्र
५. विशुद्धि चक्र
६. आज्ञा चक्र

१. मूलाधार चक्र

सुषुम्ना स्पाइनल कार्ड की मध्य केनाल, के निचले सिरे पर मेरुदण्ड काक्सीजियल क्षेत्र पेरीनिया में गुदा व जननेन्द्रिय के मध्य स्थित होता है यहां यह काड़ा इन्चाइना से निकली सर्कल नर्वरूटस कई गुच्छक बनाकर सर्कल एवं पेरिनियल प्लेक्सस बनाती है। इन नाड़ी गुच्छकों में प्रवाहित विद्युत प्रवाह को मूलाधार शक्ति कहते है, जिसका मूल कार्य है उत्पादन प्रजनन। कुंण्डलिनी महाशक्ति साढ़े तीन कुंण्डलिनी में लिपटी यहां पड़ी रहती है यहां स्थित प्रवाह को चार पंखुडियों वाले कमल के रूप में योगिजन देखते हैं एवं इन्हे चार वृत्तियों-परमानन्द, सहजानन्द योगानन्द वीरानन्द का प्रतीक बताते है इस चक्र की तन्मात्रा गन्ध तत्व (महाभूत) पृथ्वी है।

२. स्वाधिष्ठान चक्र

मूलाधार-चक्र से ऊपर की ओर चार अंगुल की दूरी पर हाईपोगोस्ट्रियम के स्थान पर स्वाधिष्ठान चक्र अवस्थित है यहीं पर स्थित प्लेक्सस सुषुम्ना के दोनों ओर स्थित सिम्पेथेटिक गैंगलिया तथा सुषुम्ना की नाड़ी गुच्छकों के मिलने से स्वाधिष्ठान चक्र का निर्माण हुआ है। इससे जुड़ा आंतरिक अंग एडरिनल ग्रन्थि है, जो एक अंतः स्रावी ग्रन्थि है। एवं जिससे एडरीनेलीन नामक हार्मोन का स्राव होता है तनाव से जूझने एवं प्रतिकूलताओं से मोर्चा लेने की क्षमता इसी की सक्रियता से आती है उत्सर्जन विसर्जन इसका मूल कार्य है। किन्तु इसके जागृत होने पर बलिष्ठता एवं स्फूर्ति बढ़ती है। आलस्य प्रमाद अवज्ञा अविश्वास आदि

दुर्गुण मिटते हैं यहां स्थित कमल की छः पंखुडिया मानी गई है। इस चक्र की तन्मात्रा रस एवं महाभूत जल है। मूलाधार एवं स्वाधिष्ठान दोनों ही एक समूह में आते है एवं इनका मिलन बिन्दु रूद्रग्रन्थि कहलाता है।

३. मणिपूर चक्र

शरीर रचना की दृष्टि से मणिपुर चक्र नाभिस्थान में मेरुदण्ड के लम्बर रीजन में होता है यही पर सोजर प्लेक्सस होता है जो सिम्पेथेटिक गैग्लियान एवं वेगस नर्व के नाड़ी गुच्छकों से मिलकर बनता है इससे जुड़ी ग्रन्थि पैंक्रियाज है, जो इन्सुलिन नामक हार्मोन एवं पैक्रियेटिक जूस द्वारा नामक इन्जाइन्स बनाती है इस चक्र के जागरण से संकल्प बल एवं पराक्रम बढ़ता है पाचन-क्रिया में सहायता इसका मूल कार्य है नाभिस्थ यह कमल दस दल वाला माना गया है मणिपुर चक्र की तन्मात्रा रुप एवं महाभूत अग्नि है। इसके जागरण से शरीर की तीनों अग्निंयाँ जागृत होती है एवं उर्ध्वगमन में सहायक होती है इस चक्र से उदभूत ऊर्जा को अपनी चक्रा मशीन से जापान के डा० हिरोशिकामोटोपामा ने मापा व ग्राफ पर अंकित भी किया है तिब्बती इसे मणिपद्म कहते है।

४. अनाहत चक्र

अनाहत चक्र हृदय के पीछे कार्डियल प्लेक्सस के स्थान पर अवस्थित रहता है यहां सिम्पेथेटिक गैंगालियान चेन तथा सुषुम्ना और वेगस के नर्वतन्तु मिलकर एक जाल बनाते हैं तथा पूरे हृदय क्षेत्र को ऊर्जा देने की भूमिका निभाते हैं योगिजन इसे बारह पंखुडियो वाला कमल मानते हैं पेसेनेकर का ऊर्जा स्रोत यही है इसे भाव संस्थान भी माना गया है। कलात्मक उमंगे रसानुभूति एवं कोमल संवेदनाओं का उत्पादक स्रोत यही चक्र है। इसके जागरण से उदार सहकारिता, परमार्थ, परायणता (वसुधैवकुटुम्बकम्) के भाव उभरते है। थाइमस इससे जुड़ी ग्रन्थि है। प्राण धारण एवं उसका सुनियोजन इसका मूल कार्य है इस चक्र की तन्मात्रा स्पर्श एवं महाभूत वायु है।

५. विशुद्धि चक्र

विशुद्धि चक्र का स्थान कण्ठ है। थायरायड ग्रन्थि तथा उसके पीछे स्थित फरेनिजयन प्लेक्सस इससे संबंधित है इस चक्र के जागरण से अतीन्द्रिय क्षमता के प्रस्तुत वीजाङ्कुर फूटते है यह चक्र सीधे अचेतन

मन तथा चित्त संस्थान को प्रभावित कर दाये मस्तिष्क के साइलेण्ट एरिया को जगाता है इस चक्र की तन्मात्रा शब्द तथा महाभूत आकाश है।

६. आज्ञाचक्र

आज्ञाचक्र छठा एवं अंतिम चक्र है, जो विशुद्धि के साथ मिलकर चन्द्र समूह तथा ब्रह्म ग्रन्थि बनाता है। इसे द्विदलीय कहा गया है, जो पीनियल तथा पिटुटरी ग्रन्थि से मिलकर बनते है भूमध्य की सीध में ये दोनों ग्रन्थियां है। जो पूरे शरीर की गतिविधियो का संचालन करती है।

अष्टाचक्रा नवद्वारा, देवानां पूरयोध्या

तस्यां हिरण्मयः कोषः स्वर्गो ज्योतिषावृतः (अथर्ववेद)

मूलाधार से कुंडलिनी तक वेदने ८ चक्र बतलाए है परन्तु आयुर्वेद तथा योगशास्त्र में ६ चक्र माने जाते है कुंडलिनी तथा सहस्रारचक्र गणना से अलग रखे गए है।

चक्र का नाम	***चक्र जगाने का फल***	***देवता***	***ग्रह***
१. मूलाधार	मोक्षमार्ग की प्रवृत्ति	गणेश	बुध-राहु
२. स्वाधिष्ठान	कामवासना विनाश	विष्णु	शुक्र
३. मणिपुर	आत्मसाक्षात्कार	रूद्र	सूर्य
४. अनाहत	आशानिवृत्ति	भैरव	मंगल/नेपच्यून
५. विशुद्ध	मायानिराकरण	भैरव	चन्द्र
६. आज्ञा	सद्गुरु सत्यप्राप्ति	भैरव	गुरु
७. सहस्रारचक्र	शिवसाक्षात्कार	भैरव	शनि
८. कुंडलिनी	सिद्धि	महाशक्ति	राहुपथ

क्रमशः कुंण्डलिनी मूलाधारचक्र को जगाती हुई अंत में सहस्रार चक्र में पहुंचती है। वेद ने इस शरीर को अयोध्या कुण्डलिनी को हिरण्मय कोष (सुनहला खजाना) सहस्रारचक्र को ज्योतिर्मय स्वर्गधाम माना है। इस नगरी रूपी शरीर की स्थिति जो चलती है आत्मा की यात्रा तथा निवास का स्थान है उसके ८ पहिए। (चक्ररूपी) है। तथा ६ दरवाजे (छिद्र) है यह देवताओं की पुरी है इसमें देवता निवास करते है। दिव्य शक्ति (डिवाइन पावर) रहती है। दैवी सम्पदा प्राप्त करने का साधन है। ''यथपिण्डे तथा ब्रह्माण्डे'' जो कुछ बाहरी ब्रह्माण्ड में दृष्टि गोचर होता

है वही इस शरीर में विद्यमान है। इड़ा पिंगला सुषुम्ना ही यमुना सरस्वती गंगा है मस्तिष्क हरिद्वार (स्वर्गधाम) आज्ञाचक्र = द्वारिका मन = वृन्दावन, हृदय = अयोध्या दोनों फुफ्फुस = सूर्यचन्द्र, पंच महाभूत प्रतिनिधि इन्द्रियाँ (तीर्थ) चेतना ही आत्मा परमात्मा शुभकर्म ही दैवी सम्पदाएं हैं। नाभि सागर/ अहंकार = शत्रु/आशय = आमाशय पक्वाशय आदि सात = सप्तद्वीप, धमनियां = नक्षत्र नाड़ी जाल = रत्न समूह मस्तिष्क आदि में ब्रह्मा विष्णु महेश का निवास जो उत्पत्ति स्थिति प्रलय की लीला करते है जो इस शरीर को समझ लेता है वह संसार को समझ सकता है''

आत्मानं प्रथमं विद्धि''

अष्टांगयोग (मानवी संहिता)

भारतीय ऋषि मुनियों ने योग के द्वारा शरीर, मन और प्राण की शुद्धि तथा परमात्मा की प्राप्ति के लिए आठ प्रकार के साधन बतलाए है, जिसे अष्टांग योग कहते है। ये हैं– यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि।

यम

यम का अर्थ हैं चित को धर्म में स्थित रखने के साधन। यम पांच होते है।

१. अहिंसाः मन, वचन, कर्म, द्वारा किसी भी प्राणी को किसी तरह का कष्ट न पहुंचाने की भावना।

२. अस्तेयः मन, वचन, कर्म से चोरी न करना : दूसरे के धन का लालच न करना।

४. ब्रह्मचर्य : अन्य समस्त इंद्रियों सहित गुप्तेन्द्रियों का संयम करना, खासकर मनवाणी और शरीर से यौनिक सुख प्राप्त न करना ब्रह्मचर्य है।

५. अपरिग्रह : स्वार्थ के लिए धन, सम्पत्ति तथा अन्य भोंग सामग्रियों का संचय परिग्रह है। और अभाव उसका अपरिग्रह है।

नियम - ५

१. शौच :

शरीर मन की पवित्रता शौच है। शरीर के स्नान, सात्विक भोजन षट्क्रिया आदि से शुद्ध रखा जा सकता है। मन की अंत : शुद्धि, राग द्वेष आदि को त्याग कर मन की वृत्तियों को निर्मल करने से होती है।

२. संतोष

अपने कर्त्तव्य का पालन करते हुए जो प्राप्त हो उसी से संतुष्ट रहना या परमात्मा की कृपा से जो मिल जाय उसे ही प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करना संतोष है। (मा गृधः कस्यस्वित् धनम्)

३. तप

सुख दुख सर्दी गर्मी, भूख प्यास आदि द्वन्द्वों को सहन करते हुए मन वाणी और शरीर की साधना तप है।

४. स्वाध्यायः

विचार शुद्धि और ज्ञान प्राप्ति के लिए अभ्यास, धर्मशास्त्रों का अध्ययन सत्संग और विचारों का आदान-प्रदान स्वाध्याय है।

५. ईश्वर प्रणिधान

मन, वाणी, कर्म से ईश्वर की भक्ति से और उसके नाम रूप गुण लीला आदि का श्रवण, कीर्तन, मनन तथा समस्त कर्मो में ईश्वरीयार्पण ईश्वर प्रणिधान है। सर्मपण भावना।

आसन

उच्च प्रकार की शक्ति प्राप्त होने तक नित्यप्रति शारीरिक और मानसिक आसन करने पड़ते हैं योगियों ने इस प्रकार के आसन प्राणायाम आदि का वर्णन किया है जिनके करने से शरीर एवं मन पर संयम आता है।'' स्थिरम् सुखमासनम्'' (यो.सू.) शरीर स्थिर रहे और मन को सुख प्राप्त हो, इस प्रकार की स्थिति आसन है। लौकिक कार्यो में शरीर को अधिक कसने का काम प्रयत्न है। इन कार्यो में शरीर को अधिक न थकाना प्रंयत्न की शिथिलता, यानी सामान्य निवृत्ति विश्राम, शरीर को सामान्य आराम देने के कारण और परमात्मा का ध्यान करने से आसन की सिद्धि होती है।

आसन की सिद्धि से नाड़ियों की शुद्धि आरोग्य की वृद्धि एवं स्फूर्ति प्राप्त होती है आसन दो प्रकार के हैं :— १. ध्यान आदि के लिए जैसे—पद्मासन, सिद्धासन स्वस्तिकासन २. आरोग्यार्थ जैसे—शीर्षासन सर्वागासन, भुजंगासन, चक्रासन आदि से अवयव और अंतःग्रंथियों की कार्यक्षमता बढ़ती है और शरीर का सर्वांगीण विकास होता है।

प्राणायाम

प्राणायाम के संबंध में विशेष व्याख्या प्राणायाम प्रकरण में की गई हैं यहां उसका संक्षेप में उल्लेख करते है

महर्षि पतंजलि ने कहा है–

श्वासप्रश्वासयोः गतिविच्छेदः प्राणायामः (यो.सू.२/६)

यानी प्राण की स्वाभाविक गति श्वास-प्रश्वास को रोकना प्राणायाम है। प्राणायाम से पाप-संस्कार आदि दोष एवं इंद्रियों की विषयासक्ति निवृत्ति होने से ज्ञान का प्रकाश होता है। "ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्" (योग दर्शन /२/५२) ज्ञान के ढ़कने वाले अज्ञान का नाश होता है " धारणात् च योग्यता मनसः" मन धारण के योग्य होता है। मनु भगवान ने भी प्राणायामैर्दहेत् दोषान् जैसे विधान से प्राणायाम के द्वारा दोष के दहन पर जोर दिया है। प्राणायाम के अभ्यास से सुषुम्ना नाड़ी प्रभावित होती है। और नाड़ी चक्रकों में चेतना आती है और अनेक प्रकार की शक्तियां विकसित होती है, जिन्हें सिद्धियां भी कहते हैं और जो योग के चमत्कार के रुप में प्रसिद्ध हैं। योगविद्या अर + चक्र-धरा (अराधरा) है।

प्रत्याहार

जबं इन्द्रियां अपने बाह्य विषयों से मुड़कर अंतर्मुखी होती हैं, तब उस अवस्था को प्रत्याहार कहते हैं। सामान्यतः इन्द्रियों की स्वेच्छाचारिता प्रबल होती है। प्रत्याहार की सिद्धि से इंद्रियों पर अधिकार, मन की निर्मलता, तप की वृद्धि दीनता का क्षय, शारीरिक आरोग्य एवं समाधि में प्रवेश करने की क्षमता प्राप्त होती है। यम नियम आसन, प्राणायाम के अभ्यास से साधक का शरीर शुद्ध और स्वस्थ हो जाता है। मन और इंद्रियां शांत हो जाती है और उनमें एकाग्रता आ जाती है। प्रभु की असीम शक्ति का भास होता है और साधक अपने को प्रभु में लीन रखने लगता है। इस प्रकार प्रत्याहार के लिए भूमिका तैयार हो जाती है। इस प्रकार इंद्रियों का अपने आहार रूपी विषयों के साथ सम्बन्ध न जोड़ना ज्ञानेन्द्रियों को अपने-अपने ज्ञान को ग्रहण न करना तथा कर्मेन्द्रियों का अपने कर्म व्यापारों से निवृत हो जाना तथा शांत मन और बुद्धि के समान शांत हो जाना प्रत्याहार हैं इस प्रकार योग दर्शनकार ने साधारण रूप से बाह्य स्थूल इंद्रियों के व्यापार को ध्यान में रखते हुए प्रत्याहार की गणना भी यम नियम आ़सन प्राणायाम की तरह योग के बाह्य अंगों में कर दी

है इसलिए यम नियम आसन प्राणायाम और प्रत्याहार को बहिरंग योग और धारणा ध्यान तथा समाधि को अंतरंग योग कहते है।

धारणा :-

स्थूल वासूक्ष्म किसी भी विषय में अर्थात् हृदय, भृकुटि जिह्वा नासिका आदि आध्यात्मिक प्रदेश तथा इष्ट देवता की मूर्ति आदि बाहय विषयों में चित्त को लगा देने को धारणा कहते हैं। यम नियम आसन प्राणायाम आदि के उचित अभ्यास के पश्चात यह कार्य सरलता से होता है। प्राणायाम से प्राण वायु और प्रत्याहार से इन्द्रियों के वश में होने से चित में विक्षेप नहीं रहता जिससे शांत चित्त किसी एक स्थान में सफलता पूर्वक लगाया जा सकता हैं विवेक चूड़ामणि में कहा गया है कि जैसे क्षार में डाला गया स्वर्ण अपना खोट छोड़ शुद्ध और उज्जवल गुण प्राप्त कर लेता है, ठीक उसी प्रकार ध्यान रूपी क्षार से मन का राजस, तामस मैल धुल जाता है और उसमें सत्वगुण का प्रकाश होता है।

समाधि

विक्षेप हटाकर चित्त का एकाग्र होना ही समाधि है। ध्यान में जब चित्त ध्यानाकार को छोड़कर केवल ध्येय वस्तु के आकार को ग्रहण करता है तब उसे समाधि कहते है। समाधि ध्यान की चरम सीमा है। जब ध्यान की अतिशयता ध्यान की पक्वावस्था होती है तब चित्त से ध्येय का द्वैत और तत्संबंधी वृत्ति का भान चला जाता है। ध्यान में ध्येयकार वृत्ति का प्रवाह समाप्त हो जाता हैं उसके समाप्त होते ही समाधि प्राप्त होती हैं ध्यानावस्था में ध्यान ध्येयवस्तु एवं ध्याता तीनों एक रूप हो जाते है ध्यान में त्रिपुटी का ज्ञान होता है और समाधि में केवल ध्येय का ही होता है।

योगासनों का महत्व (अन्तरंगावली में तरंगावली)

योगासन अन्दर के शरीर को स्वस्थ रखने की क्रियाएं हैं। जो शरीर बाहर से दिखाई देता है, वह केवल अस्थिपिंजर है और उसे रूप देने के लिए ऊपर मांस है शरीर रचना के प्रकरण में आपको थोडी सी जानकारी अन्दर के शरीर की दी गई है। जब तक हमारा अन्दर का शरीर स्वस्थ न होगा उसका कार्य ठीक न होगा हम स्वस्थ नहीं रह सकते हम देखते हैं कि हृदय को २४ घंटे काम करना पड़ता है एक क्षण का भी आराम नहीं। हृदय को आराम तभी मिल सकता है जब रक्त को ले जाने और

विकार रहित वापस लाने वाले मार्ग बिल्कुल साफ हों थोड़ी सी रूकावट रोग का कारण बन सकती है। हमारे फेफड़े पूरी तरह काम करें और अधिक से अधिक ओषजन वायु ग्रहण कर रक्त को शुद्ध कर सके। भोजन को पचाने के लिए आमाशय यकृत क्लोम तथा अन्य ग्रंथियां अपने पूरे रस दें ताकि पाचन क्रिया सुचारू रूप से हो, अंतड़ियां भोजन में से पूरे तत्व निकालें। रस रक्त मांस, मेदा मज्जा, हड्डी वीर्य इत्यादि शरीर की आवश्यकतानुसार बने हमारा नाड़ीसंस्थान पुष्ट हो ताकि शरीर के हर कार्य का संचालन सुचारू रूप से हो विकार अंदर रूकने नहीं पाए हमारी पकड़ बढ़ जाए। शरीर के अन्दर होने वाले हर कार्य की सूचना हमें तुरंत मिले शरीर सब कुछ बताता है, हमें भूख लगती है खाते है प्यास लगती है पानी पीते हैं थकते हैं तो आराम करते है, नींद आती है। शरीर जब भोजन ग्रहण नहीं करता केवल उसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है, उसकी आवाज को सुनना है उसे क्रियाशील करना है। जब उसकी और ध्यान नहीं देते, तब विकार रोग का रूप धारण करता है और हम भागते है दवाइयों की ओर, और दवाई क्या करती है दवाई रोग की सूचना देने वाले नाडी सूत्रों को सुला देती है जिससे रोग का प्रभाव दब जाता है। और हम मान लेते है कि हम स्वस्थ हो गए। योगासनों का विशेष प्रभाव स्नायुमण्डल पर पड़ता है। स्नायु मण्डल, जिसका कंट्रोल मस्तिष्क द्वारा होता है। जितना वह शान्त व शक्तिशाली होगा, उतना मन आपका स्वस्थ होगा। आपकी कार्यक्षमता बढ़ जाने से आप अपने कार्य को सुचारू रूप से करने लग जाएगे। आपके सोचने विचारने का ढ़ंग ही बदल जायेगा नकारात्मक की सकारात्मक से सोचने की प्रवृत्ति पैदा होगी जिससे आपका हर कार्य कुशलता पूर्वक सम्पन्न होगा आप उचित व ठीक निर्णय करने की स्थिति में आ जायेंगे।

स्वास्थ्य विशेषज्ञों का कहना है कि व्यायाम न करने से शरीर की मांसपेशियां नसों तथा अन्य भागों में एक प्रकार की मैल, खड़िया मिट्टी सी जम जाती है, जिसमें लाइमफास्फेट मैग्नेशियम आदि पदार्थ होते है। मनुष्य शरीर के लिए यह मैल विष तुल्य होता है। आयु के अनुपात से यह मैल बढ़ती है और शरीर के यंत्रों को बिगाड़ देती है। इस मैल के जमने से नसें व रक्त नलिकाएं मोटी होकर सिकुड जाती हैं, मस्तिष्क

का रक्त संचार धीमा हो जाता है, स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है और भ्रम, चिंता चिडचिडापन आदि विकार उत्पन्न हो जाते है व्यायाम द्वारा इस मल को साफ रखकर ही हम शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य तथा लम्बी आयु प्राप्त कर सकते है। शरीर में इन बिजातीय द्रव्यों की मात्रा बढ़ने से निर्जीवता व निर्बलता बढ़ने लगती हैं योगासन करने से ये विकार दूर हो जाते है शरीर स्वस्थ होता है, अतंड़ियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है जिससे पेट की अपच गैस, कब्ज सड़न आदि रोग नष्ट हो जाते है योगासन करने से चेहरे पर कांति, शरीर में बल मन में उत्साह और बुद्धि में शक्ति का विकास होता है यौगिक क्रियाओं द्वारा चितवृतियों का निरोध होकर समाधि की प्राप्ति होती है। यह स्थिति को प्राप्त कर सुख व शांति का अनुभव करता है। उसके सभी दुःख सदा के लिए दूर हो जाते है।

कई व्यक्ति प्रश्न करते हैं कि अन्य व्यायाम जैसे सैर, दंण्ड बैठक, मुग्दर, मल्ल-युद्ध पश्चिमी देशों के खेलों आदि में क्या दोष है और योगासनों में ऐसी क्या विशेषता है, जो उसे ही जीवन का अंग बनाया जाए इसका उत्तर निम्नलिखित है—

१. अन्य जितने भी व्यायाम हैं, वे मुख्यतः मांसपेशियों पर ही प्रभाव डालते हैं, जिससे बाहरी शरीर ही बलिष्ठ दिखाई देता है, अन्दर काम करने वाले यंत्रों पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जिससे व्यक्ति अधिक देर तक स्वस्थ नहीं रह पाता जबकि योगासनों से व्यक्ति की लम्बी आयु होती है। विकारों को शरीर से बाहर करने की अद्भुत शक्ति प्राप्त होती है और शरीर के सेल बनते अधिक व टूटते कम है।

२. अन्य व्यायाम व खेलों के लिए स्थान व साधनों की आवश्यकता पड़ती है खेल तो साथियों के बिना खेले ही नहीं जा सकते, जबकि योगासन अकेले ही दरी व चादर पर किए जा सकते है।

३. दूसरे व्यायामों का प्रभाव मन और इन्द्रियों पर बहुत कम पड़ता है जबकि योगासनों से मानसिक शक्ति बढ़ती है और इंद्रियों को वंश में करने की शक्ति आती है।

४. दूसरे व्यायामों में अधिक खुराक की आवश्यकता पड़ती है, जिसके लिए अधिक खर्च करना पड़ता है जब कि योगासनो में बहुत कम भोजन

की आवश्यकता पड़ती है।

५. योगासनों से शरीर की रोगनाशक शक्ति का विकास होता है, जिससे शरीर किसी विजातीय द्रव्य को अन्दर रूकने नहीं देता, तुंरत बाहर निकालने का प्रयत्न करता है, जिससे आप की ज्ञानेन्द्रियाँ रोगमुक्त होती हैं।

६. योगासनों से शरीर में लचक पैदा होती है, जिससे व्यक्ति फुर्तीला रहता है शरीर के हर अंग में रक्त का संचार ठीक होता है, अधिक आयु में भी युवा लगता है। और काम करने की शक्ति बनी रहती है। अन्य व्यायामों से मांसपेशियों में कड़ा पन आ जाता है, शरीर कठोर हो जाता है और बुढापा जल्दी आता है।

७. जिस प्रकार नाली की गंदगी को झाडूलगाकर पानी फेंफकर साफ करते है उसी प्रकार अलग-अलग आसनों से रक्त की नलिकाओं को साफ करते हैं, ताकि उनमें रवानगी रहे और शरीर रोगमुक्त हो। यह केवल योगासन क्रियाओं से ही हो सकता है, अन्य व्यायामों से नहीं। अन्य व्यायामों से तो हृदय की गति तेज हो जाती है और रक्त पूरी तरह शुद्ध नहीं हो पाता।

८. फेंफड़ों के द्वारा हमारे रक्त की शुद्धि होती है योगासनों वे प्राणायाम द्वारा हम अपने फेफड़ों की शक्ति को बढाते हैं जिससे अधिक से अधिक ओषजनक प्राणवायु फेफड़ों में भर सकें और रक्त की शुद्धि कर सके। दूसरे व्यायामों में फेफड़े जल्दी-जल्दी श्वास लेते है जिससे प्राण वायु फेफड़ों के अंतिम छोर तक नहीं पहुंच पाती जिसका परिणाम होता है विकार।

९. वर्तमान समय में गलत रहन-सहन व अप्राकृतिक भोजन के कारण पाचन संस्थान के यंत्रों का कार्य सुचारू रूप से नहीं चल पाता। उन्हें क्रियाशील रखने में योगासन बहुत सहायक सिद्ध होते है, जबकि दूसरे व्यायामों में पाचन क्रिया बिगड जाती है।

१०. मेरुदण्ड पर हमारा यौवन निर्भर करता है। सारा रक्त संचार व नाड़ी संचालन उसी से होकर शरीर में फैलता है जितनी लचक रीढ़ की हडडी में रहेगी उतना ही शरीर स्वस्थ होगा आयु लम्बी होगी मानसिक संतुलन बना रहेगा यह केवल योगासनों से ही सम्भव है।

११. दूसरे व्यायामों से आपको थकावट आएगी बहुत अधिक शक्ति खर्च करनी पड़ेगी जबकि योगासनों से तनावमुक्त शक्ति प्राप्त की जाती है क्योंकि योगासन धीरे-धीरे और आराम से किए जाते हैं, इन्हे अहिंसक और शांतिप्रिय क्रियाएं कहा जाता है।

१२. अन्य व्यायामों से मनुष्य के चरित्र पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता योगासन स्वास्थ्य के साथ-साथ चरित्रवान भी बनाते है यौगिक क्रियाओं से मानसिक व नैतिक शक्ति का विकास होता है, मन स्थिर रहता है। मन के स्थिर रहने से बुद्धि का विकास होता है सत्वगुण की प्रधानता होती है, और सत्वगुण से मानसिक शक्ति का विकास होता है ये सब लाभ केवल योगासन और प्राणायाम से ही प्राप्त किये जा सकते है।

१३. हमारे शरीर में अनेक ग्रंथिया हैं, जो हमें स्वस्थ व निरोग रखने में महत्व पूर्ण कार्य करती हैं। इन ग्रंथियों का रस रक्त में मिल जाता है। जिससे मनुष्य स्वभावतः व शक्तिशाली बनता है। गले की थाइराइड व पैराथाइराइड ग्रंथियों से निकलने वाले रस पर्याप्त मात्रा में न होने से बालकों का पूर्ण विकास नहीं हो पाता और युवकों के असमय में ही बाल गिरने लगते है तथा शरीर में प्रसन्नता नहीं रहती। शरीर की विभिन्न ग्रंथियों को सजंग करके पर्याप्त मात्रा में रस देने की योग्य बनाने के लिए योगासन पद्धति बड़ी कारगर है। अन्य व्यायामों का प्रभाव इस दिशा में नगण्य है।

१४. शरीर के रोगों को दूर करने में प्राणायाम और षट्कर्म राम-बाण का काम करते है। जब विजातीय द्रव्यों के बढ़ जाने से शरीर के अंग उन्हें बाहर निकाल पाने में समर्थ नहीं होते, तो रोग का आरम्भ होता है इन विजातीय द्रव्यों को बाहर निकालने के लिए इन क्रियाओं का सहारा लिया जा सकता है और अपने आपको स्वस्थ तथा शक्तिशाली बनाया जा सकता है।

१५. शारीरिक मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक विकास के लिए योग पद्धति सर्वोत्तम पद्धति हैं इसका मुकाबला और कोई पद्धति नहीं कर सकती।

ध्वनि योग

स्थितिः पद्मासन या सिद्धासन लगाकर ज्ञान मुद्रा की स्थिति में बैठें। सिर का पिछला भाग गर्दन और रीढ़ की हडडी एक सीध में हों। कोहनियां थोड़ी मुडी हुई आखों को बंद, चेहरे पर प्रसन्नता।

विधिः– पहले कुछ क्षणश्वास को शांत कर स्वाभाविक स्थिति में लाए मन व चित को एकाग्र करें। लम्बा गहरा श्वास भरे। श्वास को सहस्रार चक्र से भर मूलाधार चक्र तक ले जाए ओम् के उच्चारण को दो भागों में बाटना है। दोनों भागों में लय एक ही रहे ध्यान को पूर्णतया अपनी ध्वनि पर केन्द्रित करें। अब स्वर में मधुरता लाते हुए आगे भाग में ओ की ध्वनि मूलाधार चक्र से सुषुम्ना नाड़ी में छोड़ते हुए अनाहत चक्र तक काल्पनिक तार बनाते हुए आएं यहां मुख को बंद कर "म" की ध्वनि भ्रमर की तरह करते हुए सहस्रार चक्र तक ले जाकर पूरा श्वास छोड़ दे इस ध्वनिको अधिक से अधिक लम्बा करने का अभ्यास करें।

लाभः– यह नादयोग है, जो मन व नाड़ी संस्थान को शांत करता है एकाग्रता आती है। और सुषुम्ना नाड़ी को प्रभावित करती है। आज्ञाचक्र को जागृत करने में सहायता करता है।

प्राणायाम

जैसे अग्नि से धोकर स्वर्ण आदि धातुओं के मल नष्ट हो जाते है उसी प्रकार प्राणायाम करने से इन्द्रियों के मल नष्ट होते हैं।

पंच प्राण-यद्यपि प्राण एक है मानव शरीर में स्थान और क्रिया भेद के आधार पर इसे पांच उपभागों में विभाजित किया जाता है। ये निम्नलिखित है–

१. प्राणः यह कंठ से हृदय तक व्याप्त है। यह प्राण शक्ति सांस को नीचे खीचने में सहायक होती है।

२. अपानः यह मूलाधार चक्र के पास स्थित है। यह वायु बड़ी आंत को बल देती है और मल-मूत्र के निष्कासन में सहायक होती हैं।

३. समानः नाभि से हृदय तक रहने वाली वायु को समान कहते है यह प्राण शक्ति पाचन संस्थान तथा उनसे निकलने वाले रसों को उत्प्रेरित और नियंत्रित करती है।

४. उदान : कंठ से मस्तिष्क तक रहने वाले वायु को उदान कहते हैं। इस प्राण शक्ति द्वारा कंठ के उपर के अंगों, आंख कान नाक मस्तिष्क

आदि का नियंत्रण होता है। इसके अभाव में हमारा मस्तिष्क ठीक से काम नहीं कर सकेगा और बाह्य जगत के प्रति हमारी चेतना नष्ट हो जायेगी।

५. ब्यान– यह वह प्राण शक्ति है, जो सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त है। इसका मुख्य स्थान स्वाधिष्ठान चक्र है यह शरीर की अन्य शक्तियों और प्राण वायु में सहयोग स्थापित करती है और सारे शरीर की गतिविधियों का नियमन और नियंत्रण करती है। प्राणायाम की कुछ आवश्यक बातें हमें समझ लेनी चाहिए हम नाक के बाये और दायें छिद्रों द्वारा श्वास-प्रश्वास की क्रियाएं करते है यह क्रिया दो भागों के द्वारा होती है। दाहिने नथुने का प्राण प्रवाह सूर्य नाड़ी द्वारा और बायें नथुने का प्राण प्रवाह चन्द्र नाड़ी द्वारा होता है ये दोनों प्राण प्रवाह अन्दर मिल कर जो तीसरा प्राण बनाते है और जो दोनों नथुनी से प्रवाहित होता है, उसे सुषुम्ना नाड़ी कहते है।

बंधः इस प्रकरण में तीन बंधो का वर्णन है–

जालन्धर बंध– ठोडी को हृदय से चार अंगुल ऊपर कण्ठकूप में दबाने से लगता है।

उडिडयान बंधः – श्वास को बहार निकल कर पेट को अन्दर खीचने से लगता है।

मूल बन्ध : – गुदा को ऊपर की और खीचकर आकुंचन करने से लगता है।

नाडी : - हमारे शरीर में तीन नाड़िया है–

१. इड़ा या चन्द्र नाड़ी– यह ठंडी नाड़ी है और शरीर के बाये भाग का और मानव के विचारों का नियत्रण करती है। यह तम प्रधान है।

२. पिंगला या सूर्य नाड़ी : यह शरीर के दायें भाग का नियंत्रण करती है, शरीर को गर्मी देती है। तथा मानव में प्राणशक्ति का नियंत्रण करती है यह रज : प्रधान है।

३. सुषुम्ना नाड़ी : यह मध्य नाड़ी है न गर्म, न ठण्ड़ी, परन्तु दोनों के संतुलन में सहायक है। प्रकाश तथा ज्ञान देती है। इसके सरस्वती और शांति नाड़ी भी कहते है। यह सत्व प्रधान है। प्राणायाम का उद्देश्य इड़ा तथा पिंगला में ठीक संतुलन करके सुषुम्ना के द्वारा प्रकाश तथा ज्ञान

प्राप्त कराकर आध्यात्मिक उन्नति करना है। शारीरिक दृष्टि से प्राणायाम इन तीनों नाड़ियों में ठीक-ठीक संतुलन कर के आरोग्य बल शांति तथा लम्बी आयु प्रदान करता है।

प्राणायाम का विधि - विधान

१. स्थान : प्राणायाम का स्थान समतल शुद्ध शांत व हवादार होना चाहिए अच्छा है किसी बगीचे में आसन बिछाकर प्राणायाम किया जाए। जहां सीधी और तेज हवा लगती हो वहां प्राणायाम नहीं करना चाहिए तेज पंखे के नीचे प्राणायाम न करें। भीड-भाड वाली जगह जहां शोर हो वहां भी प्रणायाम न करें।

२. समय – प्राणायाम के अभ्यास का सबसे अच्छा समय प्रातः काल की ब्रह्म-वेला है, क्योंकि उस समय वायुमण्डल शांत होता है, प्रदूषण गर्दोगुबार नहीं होता और वायु शुद्ध होती है। प्रातः शरीर शुद्धि के बाद निश्चित आसन पर बैठकर प्राणायाम का अभ्यास करना चाहिए। शुरू में ५-१० मिनट अभ्यास करें फिर धीरे-धीरे समय बढ़ाकर आधा या एक घण्टा तक भी कर सकते हैं। जितने समय भी करे वह अपनी सुविधानुसार निश्चित करके ही करें। कभी कम समय कभी अधिक देर प्राणायाम करना ठीक नहीं है।

३. आसन मुद्रा– प्रायः सभी प्रकार के प्राणायाम सिद्धासन या पद्मासन में बैठकर शरीर को बिल्कुल सीधा रखकर तनाव रहित सहज व सुखदायक स्थिति में करने चाहिए। इसीलिए प्राणायाम के इच्छुक को पहले अपने शरीर तथा मन की तैयारी आसनों के अभ्यास द्वारा कर लेनी आवश्यक है। इसके अतिरिक्त षष्ट् क्रियाओं द्वारा शरीर की शुद्धि भी कर लेनी चहिए। प्राणायाम करते समय शरीर का कोई भी अंग नहीं हिलना चाहिए। शरीर के किसी हिस्से में तनाव भी नहीं रहना चाहिए। दोनों हाथ दोनों घुटनो पर ज्ञान मुद्रा की स्थिति में रखने चाहिए। आंखे धीरे से बंद रखनी चाहिए।

प्राणायाम प्रारम्भ करने से पहले थोड़ी देर श्वास को स्वाभाविक रूप से लेकर सम व शांत करें। शरीर को ढीला कर लें तथा चारों तरफ से विचारों को हटाकर मन को एकाग्र कर लें।

४. प्राणायाम केवल साधारण श्वास लेने और छोड़ने की क्रिया नही

है। प्राणायाम करते हुए अपना ध्यान पूर्ण रूप से श्वास पर रखना चाहिए। प्राणायाम करते समय श्वास लेने और छोड़ने की गति बड़ी धीमी तथा नियंत्रित रहनी चाहिए प्राणायाम शक्ति के अनुसार ही करना चाहिए। अधिक तथा अनियमित रूप से नहीं। जैसे-जैसे शक्ति तथा अभ्यास बढे उसी के अनुसार आगे बढ़ना चाहिए। प्राणायाम करते समय नाक के दायें-बायें छिद्रों को बंद करने की आवश्यकता होती है यह काम दाहिने हाथ के अंगूठे तथा अनामिका के द्वारा किया जाता है पहली और दूसरी अंगुली हथेली की और थोड़ी मुडी रहेगी नासिका के बाये छिद्र को बंद करना हो तो अंगूठे का इस्तेमाल करना चाहिए और जब दोनों को बंद करना हो तो अनामिका तथा अंगूठे दोनों का उपयोग करें।

जब प्राणायाम में नाक पकड़ने की आवश्यकता न हो तो दोनों हाथ आराम से घुटने पर रहने चाहिए।

प्राणायाम में श्वास की तीन क्रियाएं की जाती है। पूरक अर्थात श्वास को अन्दर लेना २. रेचक अर्थात् श्वास को बाहर निकालना तथा ३. कुम्भक, श्वास को अन्दर या बाहर रोकना अंदर श्वास भर कर रोकने को आंतरिक कुम्भक और श्वास बाहर निकाल कर रोकने को बाहय कुम्भक कहते है।

मुख्य प्राणायाम ये हैं –

१. नाड़ी शोधन, २. कपालभांति, ३. भस्त्रिका ४. उज्जायी ५. भ्रामरी ६. शीतली ७. शीतकारी ८. सूर्य भेदन।

युक्ताहार विहारस्य, युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य, योगो भवति दुःखहा।।

(गीता)

आहार–विहार (भोजन–योगव्यायाम) उचित सन्तुलित होवें। कर्म में उचित चेष्टा (श्रम–व्यर्थतनाव न हो) सोने जागने का एक नियम हो ऐसे व्यक्ति द्वारा जो योग=आसन, प्राणायाम, ध्यान आदि क्रियाऐं समस्त दुःखों का नाश करती हैं।

प्राणायाम से रोग निवारण

प्राणायाम का मुख्य अर्थ है प्राण+आयाम, अर्थात् प्राणों का नियन्त्रण। प्राणायाम तीन प्रकार होता है –

१. रेचक २. पूरक ३. कुम्भक

अन्दर से बलपूर्वक वमन के समान प्राण को बहार निकालना रेचक बाहर से शनैः-शनैः प्राण को अन्दर लेना पूरक तथा बाहर निकाल कर या अन्दर प्राण को यथा शक्ति रोक लेना कुम्भक प्राणायाम कहलाता है। इन तीनों प्रकार के प्राणायामों से शरीर के अन्दर से दूषित प्राणों के साथ रोगों के मूल कारण तत्वों का निष्कासन हो जाता है। कुम्भक प्राणायाम में प्राण के ठहरने से उष्मा (गर्मी) पैदा हो जाती है। जैसे अग्नि धातुओं के मलों को जलाकर भस्म कर देती है उसी प्रकार उष्मा इन्द्रियों के दोषों को दूर करके सब प्रकार से स्वस्थ बना देती है। जैसा कि मनु जी महाराज ने उस की पुष्टि की है।

दह्यन्ते ध्मायमानानां धातूनां हि यथां मलाः ।
तथेन्द्रियाणां दह्यन्ते दोषाः प्राणस्य निग्रहात् ।।

अचिन्त्य प्रभाव उपाय :

सिर दर्द होने पर दोनों हाथ की कोहनी पर धोती की किनारी अथवा रस्सी से कसकर बांध देना चाहिए। इससे ५-७ मिनट में ही सिर दर्द जाता रहेगा कोहनी पर इतने जोर से बांधना चाहिए कि रोगी के हाथ में अत्यन्त दर्द मालूम हो। सिर दर्द अच्छा होते ही बंध खोल देना चाहिए।

उदरामय, अजीर्ण आदि

हमारे दो नासिका रन्ध्र हैं जो कि सूर्य तथा चन्द्रमा के नाम से भी प्रचलित हैं। दाहिना रन्ध्र हैं जो कि सूर्य का तथा बांया रन्ध्र चन्द्रमा का प्रतीक है। भोजन पचाने के लिए जठराग्नि तीव्र होनी चाहिए जो कि दांया रन्ध्र चलते समय तीव्र होती है। बांया रन्ध्र चलते समय शीतलता प्राप्त होती है जो पेय पदार्थो के लेते समय लाभप्रद है। अतः जलपान भोजन आदि जब जो कुछ लेना हो, वह दाहिनी नासिका रन्ध्र के श्वास चलते समय करना चाहिए।

दन्तरोगः-

प्रतिदिन जितनी बार मल मूत्र का त्याग करें उतनी ही बार दांतो की दोनों पंक्तियों को मिलाकर जरा जोर से दबायें रखें। जब तक मल मूत्र निकलते रहें, दांतो से दांत मिलाकर इस प्रकार दबाये रखना चाहिए तथा इसके बाद कुल्ला अवश्य करना चाहिए चाहे एक चुल्लू करें। ४-६ दिन ऐसा करने से दांत दृढ हो जायेंगे और दीर्घ काल तक आपकी सेवा करते रहेंगे।

स्नायविक वेदना –

छाती पीठ या बगल में, चाहे जिस स्थान में स्नायविक वेदना या अन्य किसी प्रकार की वेदना हो वेदना मालूम होते ही जिस नासिका रन्ध्र से श्वास चलता हो उसे बन्द कर देना चाहिए। २-४ मिनट के बाद अवश्य वेदना शान्त होगी।

दमा या श्वास रोग –

जब दमा का तीव्र दौरा हो तब जिस नासिका रन्ध्र से श्वास चलता हो उसे बन्द करके दूसरे नासिका रन्ध्र से श्वास चला देना चाहिए। १०-१५ मिनट में जोर कम हो जायेगा प्रतिदिन इस प्रकार करने से महीने भर में पीड़ा शांत हो जायेगी।

बाल (केश) रोग –

प्रतिदिन भोजन के बाद कंघी से सिर कंघना चाहिए। कंघी इस प्रकार चलानी चाहिए कि उसके कांटे सिर को स्पर्श करें तदुपरांत वीरासन लगाकर दोनों पैर पीछे की ओर मोड़कर उनके ऊपर दबाकर १५ मिनट तक बैठना चाहिए। प्रतिदिन भोजनोपरांत इस प्रकार बैठने से कितना ही बाल विकृत क्यों न हों, निश्चय ही अच्छा हो जायेगा। यदि स्वस्थ व्यक्ति इस नियम का पालन करे तो उसके बात रोग होने की कोई आशंका नहीं रहेगी। इसमें रबड़ की कंघी का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

नेत्र रोग –

प्रतिदिन प्रातः शैया से उठते ही सर्वप्रथम मुंह में जितना पानी भरा जा सके उतना भरकर दूसरे जल से आखों को कम से कम २० बार छीटें मारकर धोना चाहिए। प्रतिदिन दोनों समय भोजन के बाद मुंह धोते समय कम से कम २० बार आंखो में जल के छींटे मारने चाहिए। जितनी

बार मुंह में जल डाले उतनी ही बार आंख और मुंह धोना ना भूले।

प्रतिदिन स्नान के समय तेल मालिश करते समय सर्वप्रथम दोनों पैर अंगूठे के नखों में तेल भर देना चाहिए। और फिर तेल लगाना चाहिए।

ये नियम नेत्र के लिए विशेष लाभदायक हैं। इससे दृष्टि शक्ति तेज होती है। आंखे स्निग्ध रहती है और आंखो में कोई बीमारी होने की संभावना नहीं रहती है। नेत्र मानव जीवन का परम धन है। अतएव नेत्रों की रक्षा के लिए इस नियम का पालन करना चाहिए।

उदर संबंधित ज्ञान

शरीर के सभी अंगों के भिन्न-भिन्न देवता माने गये है जैसे हाथ के देवता इन्द्र तथा पैर के देवता विष्णु हैं, उसी प्रकार पेट के देवता यम है पेट की शक्ति जितनी अधिक होती है मृत्यु उतनी ही उस से दूर रहती है। जब तक पेट शक्तिशाली बना रहेगा तब तक उस पर मृत्यु का वार नहीं होगा मृत्यु को जीतने के लिए पेट को बलवान बनाना चाहिए। उसके लिए आवश्यक है कि पेट के सभी अंगों को ठीक रखा जाये। जो इनको निर्मल, स्वस्थ और शाक्तिमान रखता है, वह मृत्युन्जय होता है।

यौगिक मालिश के विशेष लाभ (धाराधरा-अरणमता)

१. नाड़ी संस्थान को उत्तेजना मिलती है, जिनसे शरीर की अन्य क्रियाएं भी ठीक तरह से होती है।

२. रक्त संचालन समान रूप से होता है, जिससे शरीर के विकार शरीर में इकट्ठे न होकर श्वास पाखाने पसीना और मूत्र द्वारा शरीर से बाहर निकल जाते है।

३. मालिश से शरीर का विकार निकालने वाले अंगो को जैसे फेफड़ो बड़ी आतं गुर्दे त्वचा आदि को बल मिलता है, जिससे विकार तेजी से बाहर निकलते है।

४. पाचन – यंत्रो यकृत (लीवर) छोटी आंतों तथा अन्य ग्रंथियों को उत्तेजना मिलती है जिससे वह अपना काम सुचारू रूप से कर सके।

५. चर्बी को गलाने में बड़ी सहायता मिलती है।

६. शरीर के अनेक रोग जैसे गठिया, अधरंग, बच्चों का लकवा, मांस-पेशियां, तथा स्नायु रोग, तपेदिक, पागलपन, सिर-दर्द मोच आना इत्यादि में मालिश से बहुत लाभ लिया जा सकता है।

७. मालिश से त्वचा के रोमकूप विकसित होते है।

८. इससे मांस पेशियां शिथिल होती है और समस्त शरीर में चपलता आ जाती है।

६. जब रोग पुराना हो जाता है तो त्वचा बिल्कुल काम नहीं करती इसलिए पुराने रोगों को ठीक करने में मालिश काफी मदद देती है।

१०. शरीर के अंग मजबूत तथा तेलयुक्त बनते हैं और शरीर विकसित होता है।

११. जो व्यक्ति व्यायाम नहीं कर सकते या जिन रोगियों को व्यायाम नहीं कराया जा सकता, उन्हे मालिश द्वारा व्यायाम का लाभ दिया जा सकता है क्योंकि व्यायाम रक्त संचार तेज करके शरीर के विकार को बहा ले जाता है वही काम मालिश भी करती है।

मालिश द्वारा कायाकल्प

आयुर्वेद में कहा गया है– 'घृतादष्ट गुणं तैलम् मर्दनात् न तु भक्षणात्' अर्थात् घी खाने की अपेक्षा तेल मालिश द्वारा शरीर को आठ गुणा शक्ति मिलती है। काया उजली चिकनी स्वस्थ तो होती ही है, शरीर के भीतर के अंग भी सुचारू रूप से सक्रिय हो उठते हैं।

मालिश द्वारा भी कायाकल्प हो सकता है? आश्चर्य की बात है। मालिश से शरीर द्वारा आक्सीजन उपभोग तथा कार्बन डायऑक्साइड निष्कासन में २५ से ३० प्रतिशत की वृद्धि होती है। त्वचा की प्रतिरोधक क्षमता, सक्रियता, स्वच्छता, रोम-रोम को खोलकर रुखेपन को मिटाकर स्निग्धता बढ़ाती है। यकृत सक्रिय होते हैं। आंते मल विसर्जन के लिए तत्पर हो उठती हैं। रक्त के विषैले तत्व नष्ट होते हैं, दोनों गुर्दे अपना कार्य सुचारू रूप से करने लगते हैं। चयापचय क्रिया बढ़ती है। पाचन शक्ति भी बढ़ने लगती है। स्वास्थ्य सुधरने लगता है, तब विश्वास होता है कि मालिश द्वारा भी कायाकल्प किया जा सकता हैं। शरीर के बाह्य अंगों को तथा भीतरी यंत्रों को सुदृढ़ता, सुव्यवस्था मिलती है।

हाथ की हथेलियों में, पैरों में, तलवो में तथा सिर और टांगों में तेल मालिश करने से अत्यन्त गुणकारी लाभ प्राप्त होते हैं। इसकी पुष्टि में शास्त्रों में 'एक श्लोक भी प्रचलित है:–

अभ्यंगमाचरेन्नित्यं सर्वांगेषु पुष्टिदम्।
शिरः श्रवणपादेषुतं विशेषेण शीलयेत्।।

अर्थात् दो किलो बादाम की शक्ति से भी बढ़कर ५० ग्राम तेल शरीर के रोम छिद्रों से मालिश के द्वारा शरीर में पहुंचने से प्राप्त होती है। मालिश के लिए तेल हम सरसों, तिल, नारियल, अरंडी, मुगफली, बादाम, जैतून (आलीवायल) का प्रयोग कर सकते हैं। गठिया, लकवा जैसे रोगों में लाल रंग, चर्म रोगों हरे रंग, सिरदर्द, उन्माद, चिड़रूचिड़ेपन में नीले रंग की बोतल में रखकर सूर्य किरणों में एक मास तक तप्त तेल का प्रयोग निर्विष औषधि बन जाता है तो रोग मुक्ति शीघ्र हो जाती है। कफ प्रवृत्ति वाले शरीर के लिए बादाम, तिल, नारियल लाभकारी होता है। पित्त प्रवृत्ति में जैतूल नारियल, अखरोट, तिल का तथा वात प्रवृत्ति वाले सरसों, कोडलीवर ऑयल प्रयोग कर सकते है।

प्राकृतिक चिकित्सा में शरीर मर्दन (मालिश) करते समय मालिश करने वाले का व्यायाम तथा हाथों के स्विच प्वाइन्ट्स स्वतः सुचालित हो जाते हैं। मालिश करने वाले को स्वास्थ्य लाभ मिलता है। क्योंकि हाथों से मालिश कई प्रकार से की जाती है।

सक्रिय संचालन में अंगों की रचनानुसार मांसपेशियों को तेज घर्षण देना।

दलन मसलना, बेलना, मोडना। दबाना, निचोड़ना, चिऊंटी भरना झकोरना शामिल है। जंघा, छाती, पैर, पीठ, नितम्बो और रीढ़ अंगों पर यह सम्भव है। मृदु संचालन के अन्तर्गत धीमी गति से कम्पन दलन मजबूत थपकी अंगुलियों द्वारा कम्पन गतिमय कम्पन्न कटोरी थाप संधि चालन सहलाना, ताल देना, अंगूठों से दबाकर अंगुलियों से मृदु दबाव हल्की मुक्की थपकी रिफ्लैक्शन-डिफ्लैक्शन रोटेशन आदि वैज्ञानिक क्रियाओं से काया पुष्टि की जाती है। शरीर की बनावट, गठाव के अुरूप मालिश करना, मालिश के बाद थोड़ा टहलना और भी लाभदायक होता है ताकि रोम-रोम तेल को जब्त करले इसे प्रतिरोधक संचालन कहते हैं।

मालिश के एक अंग (हाथ की हथेलियों तथा पैरों के तलवों में उपचार तथा पैरों के तलवों में उपचार बिन्दु) को एक्यूप्रैशर चिकित्सा कहकर चीनी

पद्धति कहकर बाजार में उतारा गया है। वास्तव में भारतीय चिकित्सा पद्धति में यह मर्दन, मालिश तथा अभ्यंग कही जाती रही है। हथेलियों तथा तलवों में स्विच प्वाइन्ट्स होते हैं, जो शरीर के विभिन्न अंगों के केन्द्र बिन्दु हैं। इन्हें मालिश करते समय अंगुली-अंगूठों के द्वारा मालिश करने की विविध संचालनों से या लकड़ी की बनी से बेलकर, चिऊंटी उठाकर, रगड़ या दबाकर प्रयुक्त किया जाता है। मालिश करने वाला भी स्वयं इन बिन्दुओं को ध्यान में रखकर प्रयोग कर सकता हैं।

मालिश पोलियो, गठिया स्पॉण्डेलाइटिस (रीढ़ के किसी भाग की पीड़ा) अनिद्रा, पागलपन-चिड़चिड़ापन, मांस पेशियों का क्षय होना तथा मानसिक कोशिकाओं की कमजोरी, मंदाग्नि, मोटापा (सुखी या पाउडर मालिश) बड़ा हुआ यकृत गैस, यक्षमा,य साइटिका, सूखा रोग, स्नायुकम्पन या शूल में चमत्कारिक लाभ होता है रजस्वला अथवा गर्भवती महिलाओं के पेट, पेडू को छोड़कर सर्वांग मालिश दी जा सकती है। गर्भस्थ शिशु तथा माँ का कुपोषण भी दूर होता है। स्वयं मालिश द्वारा शरीर चालन से और भी लाभ होता है, मालिश से जवानी में भरपूर शक्ति मिलती है। बचपन/किशोरावस्था में विकास प्रशस्त होता हैं वृद्धावस्था रूक जाती है। स्निग्धता निरन्तर बढती जाती है। काया का कल्प होता है। त्वचा की सुन्दरता, स्वच्छता, सेहत वृद्धि होती है। तन-मन प्रसन्न होता है। उमंग से अंग-अंग भरा-भरा लगता है। यही है सच्चा कायाकल्प।

तालबद्ध रगड़न तेल के सुख जाने तक पूर्ण दबाव के साथ तेल को रोम-रोम में मृदुता के साथ उतारना होता है। गर्मियों में तेल ठण्डा रहे, शीतकाल में गुनगुना। मालिश पैरों से शुरू कर नाभि की ओर, हाथों से कन्धों की ओर, पीठ से वक्ष की ओर, सिर गर्दन से नीचे की ओर यानि मालिश का प्रवाह हृदय की ओर रहे यही वैज्ञानिक मालिश का मर्म है। मालिश करते समय या कराते समय मेरे शरीर में नव स्फूर्ति, नव-चेतना का संचार, शक्ति का उदय हो रहा है, ऐसा चिन्तन में रहना चाहिए। सप्ताह में चार दिन मालिश कार्यक्रम रहे। किन्तु दोपहर में १२ बजे से पूर्व ही मालिश का उत्तम समय है। मालिश द्वारा त्वचा को आराम, शरीर को बाहर-भीतर से सुव्यवस्था तो मिलती ही है—स्वस्थ शरीर का सौन्दर्य बढ़

जाता है। काया का स्वभाविक स्वरूप सुगंधित होता है। इसलिए कायाकल्प के लिए मालिश महत्त्वपूर्ण साधन है। जच्चा बच्चा को स्वाभाविक स्वास्थ्य और विकास देकर पुष्टता, शरीर सौष्ठवता प्रदान करने के लिए भारत में मालिश का प्रचलन बहुत पुराना है। स्वस्थ को सदैव स्वस्थ रखने के लिए तथा रोगी को निरोगी करने के लिए साथ ही भोगी को योगी बनाने के लिए मालिश की भूमिका बड़ी मूल्यवान, महत्वपूर्ण और आवश्यक है।

योगासन तथा प्रभाव

आत्मा तथा शरीर के मध्य मन ही एक कड़ी है जो आत्मा को परमात्मा से जोड सकता है। तथा मन की स्वस्थता से इन्द्रिय समूह शरीर भी स्वस्थ रहता है। इन्द्रियों को बुद्धि आत्मा से जोड़े रखता है। इसीलिए योग को मन के यौग के लिए प्रधान चुना है तथा मन की चित्त वृत्ति निरोध प्रक्रिया का उपदेश दिया। आध्यात्मिक पक्ष में' मन एवं मनुष्याणां कारणं बन्ध मोक्षयो : मन को ही बन्धन मोक्ष का कारण माना है। ''उभयात्मकं मन'' ५ कर्म इन्द्रियों के साथ रहने से कर्मेन्द्रिय भी है बुद्धि आत्मा के साथ रहने से ज्ञानेन्द्रिय भी कहा जाता है। योग-यम नियम, आसन प्राणायाम प्रत्याहार ध्यान धारणा समाधि ८ प्रकार का है। इसे अष्टांगयोग कहते है। इनमें से यम नियम भूमिका है। समाधि (सम्प्रज्ञात असम्प्रज्ञात) अंतिम योग की स्थिति है योग में सफलता के लिए यम नियम का पालन आवश्यक है यम-अहिंसा, सत्य अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह (५) है। नियम शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वर प्रणिधान ५ है, (मन को एकाग्र करने के लिए यम नियम पर चलना आवश्यक है। आसन शरीर के लिए अमृत तुल्य हैं। कुछ प्रमुख आसनों का लाभ यहां दे रहे हैं। आसनों के विधान के लिए प्रत्यक्षयोगाभ्यास का ठीक अध्ययन करें हम आसनों के प्रकार नहीं दे रहे है अपितु कतिपय उनके लाभ बता रहे है। ''स्थिरसुखंआसनम्'' जिस तरह आप आसानी से बैठ उठ सके गीता में भी कहा है कि ''किमासीत ब्रजेत किम्'' कैसे बैठे कैसे चले ''यह भी जानना जरूरी है। धेरण्ड संहिता में लिखा है। ''आसनानि समस्तानि याबन्तो जीव जन्तवः'' जितने जीव जंतु (कुकुट, मत्स्य, सिंह आदि) है सभी के नाम पर उसी प्रकार के आसन हैं। योगाचरण लोकव्यवहार के लिए भी उपयोगी है परमार्थ का साधन तो है

ही। आधार्मिक धार्मिक बनते है रोगी निरोगी, स्वार्थी परमार्थी, आलसी-उत्साही, दुराचारी सदाचारी, क्रूर प्रेमी, हिंसक अहिंसक रागी अनुरागी, मन्दबुद्धि तीव्रबुद्धि कुमार्गी सन्मार्गी निर्बल बलवान बन जाते है। आसन अनन्त है तथापि ८४ आसन बताए गए हैं उनमें भी १६ आसन विशेष उपयोगी है। उनमें से ४ इस प्रकार है– १. सिद्धासन २. स्वस्तिकासन ३. शीर्षासन ४. पद्मासन दैविक, तथा सुगम है। ध्यान-जप-उपासना में इनका सरलता से उपयोग किया जाता है। सिद्धासन-पदमासन दो आसन प्रायः करणीय ही हैं।

आसन

१. सिद्धासन–बाएं पैर को घुटने से मोड़कर गुदा अंडकोश के बीच स्थापित करें फिर दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसके ऊपरी भाग को पिंडलियों पर रखें मेरुदण्ड को सीधा रखे। इस आसन से जप-साधना करने से सिद्धि प्राप्त होती है।

२. स्वस्तिकासन–दोनों पैरों के तलुओं को दोनों जानुओं की बगल में लगाकर पैर के ऊपर भाग को पिंडलियों से ढक दें। सीधे बैठें इसका दूसरानाम सुखासन भी है। पठन पाठन, सत्संग आदि में बैठने से आलस्य नहीं आता तथा मन लगता है।

३. शवासन–भूमि पर शव की तरह निचेष्ट होकर सीधे उतान लेटना चाहिए। शान्तभाव से बिना तनाव के रहना चाहिए। थकान दूर होती हैं शांति मिलती है। शीर्षासन करने वालों को बाद में यह अवश्य करना चाहिए। निद्रा आती है क्रोध कम होता है।

४. एक पाद उत्थान पादासन– जमीन पर स्वच्छ चटाई या मोटा वस्त्र विछा कर चित्त लेट जाएं। हाथों को कमर के अगल बगल रखे सांस को फेफड़ो में भरकर दाहिने पैर को जमीन से ऊपर उठाएं लगभग २ फुट ऊपर ले जाएं दोनों पैर के घुटने न मुड़ने पाए सांस रोके रहें फिर पैर को नीचे लाएं फिर सांस धीरे-धीरे छोड़े इसी प्रकार बाएं पैर की क्रिया करें। अथवा पैर ऊपर उठ जाए तो सांस को ५-६ बार खींचे छोडें यह तो आप के दम पर निर्भर है। पैर की सूजन कम होगी तथा रक्त परिभ्रमण पैरों में ठीक होने लगेगा। कब्ज की शिकायत दूर होगी।

५. द्विपाद उत्थान पादासन–इसमें दोनों पैर उठाए जाते हैं तथा

नीचे रखे जाते हैं सांस उठाने मे खीची रखने पर धीरे-धीरे छोड़िए। हिचकी, जानुपीड़ा डकार, गैस में लाभदायक।

६. वज्रासन – दोनों जानुओं और पिंडलियों को पास लाएं तलुओं को गुदा के नीचे रखकर बैठ जाए। यह हनुमान जी का साधारण बैठने का आसन है इसी से वजरंगबली उन्हें कहा जाता है। अशक्ति, मन्दाग्नि, शिरोवेदना, आलस्य, प्रमाद, शिश्नशिथिलता मूत्ररोग समाप्त होते है। साहस निर्भयता का संचार होता है। गुर्दा भी मजबूत होते है। गठियाबात में लाभकारी है।

७. एक पाद पवनमुक्तासन – जमीन पर सीधे लेंटे बाएं पैर को सीधा फैला दें दाहिने पैर को घुटने से मोड़कर उसे पेट और छाती पर दोनों हाथों से दबाकर रखें फिर शिर को जमीन से उठाकर घुटने से मुंह लगावे। श्वासप्रश्वास चालू रखें। चर्बी कम होगी, खून के क्लोरोस्टोल दूर होंगे। दाह शूल शोथ, मूर्च्छा, कफावरोध में लाभदायक

८. द्विपादपवन मुक्तासन – इसमें दोनों पैरों को घुटनों से मोड़कर पेट और छाती पर लगाकर हाथों से दबाकर रखते हैं। दोनों घुटनों के बीच मुंह को रखे। यदि पेट बड़ा हो तो श्वास बाहर निकालने का अभ्यास करें अन्यथा श्वास भरकर घुटनों को पैर और छाती के पास लगते समय ५ बार श्वास खीचे तथा निकाले। चर्बी की कमी, अपान, उदान वायु को ठीक करता है फेफड़ो में शक्ति संचार होता है ह्रदय मजबूत होता है।

८(अ) वीरासन – वामपाद को घुटने से मोड़कर उसकी एड़ी को बाएं कूल्हे के नीचे रखें बैठने में पैर की अंगुलियों का ही आधार रहे पंजे को उपर उठाकर रखें बाएं हाथ को बाएं घुटने पर रखें। दाहिने पैर का घुटना ऊपर की ओर रहे दाहिने हाथ को दाहिने घुटने पर रखे। छाती को फुलाकर रखे। श्वास-प्रश्वास चालू रखें पेट को सामान्य दबाकर रखें। निर्भीकता, दृढ़ता, धीरता गुणों का समावेश होता है। निर्णयबुद्धि बनती है। मानसिक शक्ति बढ़ती है।

६. त्रिकोणासन – जमीन पर सीधे खड़े हो जाएं एक पैर को दूसरे पेर के अन्तर रखें। दाहिने पैर की ओर झुककर दाहिने हाथ से दाहिने पैर के अंगूठे को पकड़ रखो बाएं हाथ को ऊपर उठाएं बगल में ऊपर

की और ताने रहें। इसी तरह दूसरी तरफ से अभ्यास करें। उदर शूल, कमर शूल दूर होते है पेशाब ठीक उतरता है। वीर्य की कमजोरी दूर होती हैं मूत्र कृच्छ रोग, पथरी रोग दूर होते है या होने नहीं पाते।

नोट– आसन करने की दृष्टि से तीन प्रकार के होते है यह आसन क्रिया भी त्रिपथगा है। तथा यम नियम के कारण पंचामृता है। १. अल्पश्रम साध्य २. श्रमसाध्य ३. अधिक श्रमसाध्य। ऊपर के आसन अल्पश्रमसाध्य है।

१०. धनुरासन – एक पैर को फैलाए रखकर दूसरे पैर के अंगूठे को हाथ से पकड़कर कान तक खीच ले जाएं यही क्रिया दूसरे पैर से भी इसी तरह करें। सन्धि की जकड़न गले से ऊपर की जकड़न दूर होती है।

११. शीर्षासन – शिर के नीचे मुलायम वस्त्र रखें और दोनों पैर ऊपर कुछ लोग दोनों पैरों को पैर के जानुओं में पल्थी लगा लेते है। पहले दीवार का सहारा लेना चाहिए। अनिद्रा दूर होती है स्फुर्ति आती है। मस्तिष्क में रक्त संचार ठीक होने लगता है। मस्तिष्क में स्मृति के शक्ति उत्पन्न होती है शीर्षासन के बाद शवासन अवश्य करें।

१२. पदमासन – बाएं पैर को दाहिनी जानुपर और दाहिने पैर को बाई जानुपर स्थापित करें दोनों पैरों की एड़ियों को नाभि के नीचले भाग में दबाएं रखे। दोनों हाथों को दोनों घुटनौ पर रखे मेरुदण्ड को सीधा रखें पदमासन पर बैठते ही सुषुम्ना नाड़ी में गति होगी। मन को शांति, मिलती हैं। अनेकों आसन इस आसन की भूमिका से आगे चले हैं।

१३. भुजंगासन – जमीन पर पेट के बल सीधे लेट जाएं पैरों की अंगुलियों को जमीन पर पीछे की ओर खीच रखें। दोनों हाथों को छाती के अगल-बगल स्थापित करें ठुढी से जमीन का स्पर्श करें। इससे आखों की ज्योति बढ़ती है। वाहुबल बढ़ता है। कण्ठमाला गुल्मरोग कर्णस्राव आदि व्याधियां ठीक होती है।

१४. मत्स्यासन – पदमासन लगाकर बैठने के उपरांत पीठ की ओर जमीन पर लेट जाएं लेटते समय हाथों का सहारा ले लें लेटकर कमर पीठ घुटनों और शिर के भाग को भूमि से टिका दें। दाहिने पैर की अंगुलियों को बाए हाथ से बांए पैर की अंगुलियों को दाहिने हाथ की

अंगुलियों से पकड़े नर्वससिस्टम ठीक काम करने लगता है नाड़ी मण्डल को शक्ति मिलती है कमर वृद्धावस्था में नहीं झुकती।

१५. कूर्मासन – दोनों पैरों को घुटनो से कुछ मोड़कर रखें दाहिने पैर का घुटना बाएं कन्धे के पास बाहर की ओर रहे दाहिने हाथ को दाहिने पैर के नीचे से लेकर दाहिने पैर के पंजे के पास रखें इसी प्रकार बाए हाथ को बाएं पैर की पिंडली के नीचे से बाहर ले जाकर पैर पंजे के पास रखें।

लाभ– शरीर को लचीला बनाता है। शरीर में पड़ी गांठो को ठीक करता है। शरीर पर नियंत्रण प्राप्त होता है।

१६. सर्वांगासन (हलासन) जमीन पर चित लेट जाएं दोनों पैरों को हाथों के बल पर उठाकर पीछे की और ले जाएं पैर सीधे रहें घुटनों से मुडने नहीं पाएं ढुडडी को कण्ठ कूप में लगाएं रखें पाडुरोग, शोथ, गुदारोग उदररोग में लाभदायक है।

आवश्यक आसनों का प्रयोग तथा लाभ बतलाया गया है। जितने आसन आज तक मिलते हैं अन्य आसनों की भी रचना की जा सकती है। शरीर को निरंतर क्रिया में रखना उद्देश्य है। अभिप्रत्यंग का व्यायाम होता रहे, रक्त परिभ्रमण ठीक हो, पेशी-स्नायु-कंडराओं में शिथिलता चर्बी न आने पाए सन्धियों में जकड़न दूर रहे यही आसनो का उद्देश्य है। यदि आपको हृदय, दमा, गर्भस्थिति रक्तचाप रोग है तो आप योगी, वैद्य से सलाह लेकर ही आसन करें (अन्यथा नहीं) अष्टांग योग में– प्राणायाम प्रत्येक को कुम्भक-पूरक रेचक विधि से (कुम्भक=वायु खीचना, पूरक=वायु को भरे रहना, रेचक=श्वास को छोड़ना) करना चाहिए स्थान स्वच्छ, शुद्ध वायु, सुन्दर होना चाहिए, प्राणायाम से हृदय ठीक रहता है। ध्यान और समाधि का उपयोग साधना द्वारा धीरे-धीरे करना चाहिए। ध्यान से मन एकाग्र होता है, चिंताएं दूर होती है तथा बुद्धि तीव्र हो जाती है। मन का तनाव कम होकर प्रसन्नता बढ़ती है।

योग की षट्कर्म क्रियायें

शारीरिक तथा मानसिक शुद्धिकरण की दृष्टि से षट्कर्म क्रियाओं का विशेष महत्व है।

षट्कर्म क्रियाऐं :- प्रतिदिन ५ बजे प्रातः काल षट्कर्म क्रियायें कराई

जाती हैं।

कुंजल क्रिया :- ६ ग्लास पानी कागासन (उकड़ूँ) बैठ कर पियें। पुनः ६० डिग्री से झुक कर अनामिका, माध्यमा तर्जनी अंगुली को मुँह के अन्दर ले जाकर तथा दाहिने हाथ से पेट (नाभि) को दबाकर उल्टी करें। तत्पश्चात ५ मिनट विश्राम करें यह क्रिया सूर्योदय से पूर्व करें। २० दिन तक लगातार करने के बाद सप्ताह में एक दिन करना चाहिए।

जलनेति : उबले पानी को थोड़ा ठंडा कर नमक डाल कर उसे नलीदार लोटे में भरें। जिस तरफ की नासिका चलती है उस तरफ के हाथ पर लोटा रखें तथा नली को उस नासिका में लगा दें। सिर को सामने विपरीत दिशा में घुमा दें। पानी दूसरी नासिका से गिरने लगेगा। श्वास मुँह से लें। नाक से श्वास लेने पर यानी सिर में चला जायेगा जिससे सिरदर्द हो सकता है। इस क्रिया को पुनः नासिका से करें। जलनेति के पश्चात् दोनों हाथों को कमर पर रखें। ६० डिग्री से झुके। ऊपर, नीचे, दाएँ, बाएँ २५-२५ बार श्वास फेंक कर भस्त्रिका प्राणायाम करें।

बैठ कर कपालभाति क्रिया अथवा भस्त्रिका प्राणायामः साधन व विधि : सुविधानुसार पद्मासन, सुखासन या सिद्धासन में रीढ़ को सीधी रखते हुए बैठ जायें। बाँयी हथेली को नाभि की सीध में रखें। दाहिने हाथ की अनामिका और मध्यमा अँगुलियों से बाँये नासिका-रन्ध्र को बंद कर दाहिने नासिका रन्ध्र से तीव्रता से श्वास बाहर निकालें (रेचक) फिर उसी रन्ध्र से तीव्रता से श्वास लें (पूरक)। फिर इस रन्ध्र को अंगूठे से बन्द करके बाँये नासिका-रन्ध्र द्वारा तीव्रता से श्वास निकाल दें (रेचक)। बाँयी नासिका के छिद्र से पूरक करें और दाहिनी से रेचक करें। इस तरह तथा क्रम से १०० से १५० तक लोहार की धोंकनी की तरह तीव्र गति से पूरक-रेचक्र क्रम से भस्त्रिका करें।

सूत्र नेति या कैथेटर से नेति : ४ नं. का कैथेटर या सूत्र नेति लेकर जिस नासिका से श्वास चलता हो, उस नासिका में कैथेटर का अग्र भाग अथवा सूत्र नेति का अग्र भाग मोड़ कर धीरे-धीरे घुसा कर दाहिने हाथ के अंगूठे, अनामिका व मध्यमा को मुँह के अन्दर ले जाकर कैथेटर को पकड़ लें। अब दोनों हाथों से धीरे-धीरे आगे पीछे घर्षण करें। पुनः दूसरी नाक से करें। कैथेटर के पश्चात् सूत्र नेति का प्रयोग करना चाहिए।

लाभ : साइनोसाइटिस, रिनाइटिस, हड्डी बढ़ जाने पर एलर्जिक जुकाम, नासिक-प्रदाह, नकसीर, नाक से बदबूदार स्राव, किसी भी प्रकार का दृष्टिदोष, सिरदर्द, स्नायु-विकृति में विशेष लाभदायक। सूत्र कैथेटर नेति के पश्चात् गोघृत दोनों नासिका में ५-५ बूँद डाल कर घृत नेति अवश्य करनी चाहिए, अन्यथा भंयकर दर्द हो सकता है।

शंखप्रलाक्षन क्रिया : गरम पानी में सेंधा नमक डाल कर धोल बनाएें। कागासन में (उकड़ूँ) बैठ कर दो गिलास या एक लीटर पानी पियें। इसके बाद क्रम से निम्न योगासन करने से शंख की तरह आँतों की सफाई हो जाती है।

(१) सर्पासन : पेट के बल लेट जाएें। हाथ पर बल देकर सिर से कमर तक का भाग ऊपर व दृष्टि सामने रखें। कंधों के ऊपर से सिर को मोड़ कर क्रम से ४ बार दाँयी तथा बाँयी तरफ मिली हुई ऐड़ियों को देखें। एड़ियाँ मिला कर कर रखें।

(२) उर्ध्वहस्त तानासन : पैर मिला कर सीधे खड़े हो जायें। दोनों हाथों की अँगुलियों को फँसा कर ऊपर ले जायें। मिले हुए कर पृष्ठ सिर के ऊपर रहें। क्रम से चार बार दाँऐ बाँयें कमर से ऊपर का भाग मोड़ें।

(३) कटिचक्रासन : पैरों के बीच डेढ़ फीट का फासला रखते हुए सीधे खड़े हो जाएें। दोनों हाथों को कंधों की सीध में आगे फैला दें। बताई विधि अनुसार क्रम से ४ बार दाँऐ कमर से ऊपर तक का हिस्सा मोड़ें। जिस तरफ मुड़ें, दृष्टि उस हाथ की हथेली की ओर रहे।

(४) उदरकर्षासन : कागासन में बैठें। दोनों हथेलियों को घुटनों पर रख कर बाँऐ घुटने को नीचे की ओर मोड़ कर दाहिने पैर के पंजों पर रखें। कमर को दाहिनी तरफ मोड़ कर पीछे देखें। इस क्रिया को दूसरे पैर से करें। क्रम ४ बार।

उपर्युक्त चारों क्रियाऐं करने के बाद पाखाना नहीं लगे तो पुनः दो ग्लास नमकीन पानी पीकर क्रमशः उपर्युक्त क्रियाऐं दोहराऐं। पुरानी कब्ज की स्थिति में तीन चार चक्र के बाद हाजत होगा। क्रिया के दौरान वमन या अन्य शिकायत होने पर धैर्य रखें। ऐसी स्थिति में टहलें। सर्वप्रथम इस क्रिया में मल निकलता है। फिर मल-मिश्रित जल, पीला पानी तथा अन्त में जैसा पानी पिया जायेगा, वैसा पानी निकलेगा। दो तीन चक्र स्वच्छ

जल निकलने के बाद क्रिया बन्द करें। अन्त में सादे पानी की कुंजर-क्रिया करें। एक घन्टे बाद ६५:६५ ग्राम चाँवल व धुली मूँग की दाल को सिर्फ खिचड़ी ५० ग्राम शुद्ध गोघृत के साथ लें। खिचड़ी में हल्दी नमक के सिवाय कोई मसाला व सब्जी न लें। पूर्ण विश्राम करें। दोपहर के पश्चात् गुनगुने पानी से स्नान करें। दोपहर में रसदार फल व रात्रि के भोजन में उबली सब्जी व रोटी लेनी चाहिए। शंखप्रक्षालन की पूर्व संध्या को दूध या फल के सिवाय कुछ न लें। शंखप्रलक्षालन के दिन दूध तथा दूध से बने तथा अन्य गरिष्ठ खाद्य पदार्थ नहीं लें।

लाभ : आमाशय व आँत के समस्त रोग, मधुमेह, गैस्ट्रिक ट्रबल, दमा, स्त्री रोग एवं समस्त रोगों में शरीर से विषाक्त पदार्थ निकालने की अद्भुत प्रक्रिया है। शरीर के शुद्धिकरण द्वारा समस्त रोगों से मुक्ति मिलती है।

निषेध :- उच्च रक्तचाप, हृदय रोग, अल्सर, एपेण्डिसाइटिस व टी.बी. रोग में शंख-प्रलाक्षन अथवा कोई यौगिक क्रिया नहीं करनी चाहिए। किसी योग्य योग विशेषज्ञ के निर्देशन में सीखें।

वस्त्रधौति : १८ से २४ फीट लम्बे, ३ इन्च चौड़े मलमल के मुलायम कपड़े को अच्छी तरह साबुन तथा उबले पानी से साफ कर लेना चाहिए। कागासन में बैठ कर धोती के किनारे को आगे से थोड़ा मोड़ कर दाहिने हाथ की अनामिका व मध्यमा से पकड़ कर गले के पास रखें। जिस प्रकार रोटी निगलते हैं, उसी प्रकार धोती को खाते हुए निगलें। धोती को दाँतों से न चबाएें। पहले उबकाई आती है, धीरे-धीरे अभ्यास से धोती निगलने में आती है। सारी धोती नहीं निगलना चाहिए। हमेशा ३-४ फीट धोती मुँह से बाहर रखें। सारी धोती खाने के पश्चात् भंयकर व घातक दुष्परिणाम हो सकते हैं। धोती निकालने के पश्चात् नौलि क्रिया करनी चाहिए तत्पश्चात् कागासन में बैठ कर धोती को धीरे-धीरे निकालें। धोती अटक जाय, उस स्थिति में धोती को थोड़ी खाकर अथवा ३-४ घूंट पीकर पुनः धीरे-धीरे धोती को निकालें। हमेशा एक ग्लास पानी अपने पास रखें। किसी प्रकार की कठिनाई होने पर पानी पियें।

प्रभाव : धोती तथा कुजंर क्रिया का परावर्ती प्रभाव फेफड़े पर होता है जिससे फेफड़ो में से बहुत सारा कफ निकलता है। इसलिये यह दमा के रोगियों के लिए अति उत्तम यौगिक क्रिया है। इसका प्रभाव आमाशय,

यकृत्, आँतों व गुर्दे पर होता है। हाइपएसीडिटी, गैस्ट्रिक ट्रबल तथा उदर संबंधी अन्य बीमारियों में, पित्त-प्रकोप, अर्थराइटिस आदि वायु विकार, मुख में छाले पड़ना, अजीर्ण, गले संबंधी बीमारियों के लिए कोष्ठबद्धता में अति उपयोगी क्रिया है। धोति क्रिया तथा अन्य षट्कर्म क्रिया का आरम्भिक अभ्यास किसी विशेषज्ञ के संरक्षण में करें।

आसनों द्वारा रोगों की चिकित्सा

१. *बदहजमी व गैस के रोग :* पश्चिमोत्तान, वज्रासन, पवनमुक्त, हलासन मयूर, उडियान बंध, कपाल भांति, नौलि।

२. *पुरानी कब्ज :* मकर, उत्तानपाद, सर्वाग, कपाल भांति, सहज नाड़ी शोधन, अनीमा।

३. *बवासीर :* सर्वांग, मत्स्य, शलभ, धनुरासन, मकर, मूलबंध उज्जायी, नाड़ी शोधन अनीमा।

४. *मधुमेह :* हल, पश्चिमोत्तान, चक्र, अर्धमत्स्येन्द्र, सर्वांग, शीर्ष, जानुसिर, सुप्तवज्र, मयूर, उडियान बंध, नाड़ी शोधन आंतरिक कुम्भक।

५. *मोटापा :* पश्चिमोत्तान, अर्धमत्स्येन्द्र, सर्वांग, मयूर, धनुर, सुप्तवज्र, उडियान बाहय कुम्भक, नौलि, कपालभांति।

६. *वीर्य संबंधी :* पश्चिमोत्तान, जानुसिर धनुर, शीर्ष अर्धमत्स्येन्द्र, सिंह, मूल बंध, नाड़ी शोधन, आंतरिक कुम्भक, सिद्ध, बद्धपदम, गोरक्ष ध्यान।

७. *उच्च रक्तचाप :* सुप्तवज्र सिद्ध, पदम, हल, मत्स्य, शिथिल, पश्चिमोत्तान, नाड़ी शोधन (कुम्भक के बिना) ध्यान उज्जायी, शव, भ्रामरी।

८. *निम्न रक्तचाप :* सर्वाग, हल, कर्णपीड़, पश्चिमोत्तान, वज्र, पदम, सिद्ध, नाडी शोधन कपालभांति।

९. *दमा :* मत्स्य, सुप्तवज्र, भुजंग, शलभ, उष्ट्र, कोण उज्जायी, सहज नाड़ी शोधन, नेति कुंजल।

१०. *गले के रोग :* जलनेति सूत्रनेति, मत्स्य, सुप्तवज्र सिंह, सर्वांग, जालंधर बंध, उज्जायी, शीतली, शीतकारी नेति

११. *नाक, कान, गला :* जलनेति, सूत्रनेति, घृतनेति, मस्य, शीतली,

शीतकारी, सर्वाग जालंधर बंध, उज्जायी भ्रामरी

१२. *धरण (नाभिचक्र) :* हस्तपादोत्तान, धनुर चक्र, गर्भ; नाड़ी शोधन

१३. *यकृत :* उष्ट्र कूर्मचक्र हल, गर्भ, मयूर, सर्वाग, उडिडयान नाडी शोधन योगमुद्रा, कुंजलनौलि,

१४. *सिर दर्द :* पश्चिमोत्तान, हल सर्वाग, शव, सहज, नाड़ी शोधन

१५. *हर्निया (नाभि) :* सुप्तवज्र, मत्स्य हस्तपादोत्तान, पश्चिमोत्तान सर्वांग, उडिडयान बंध, कपाल भांति।

१६. *हर्निया (मसाना) :* मत्स्य, हस्तपादोत्तान, सर्वाग, उड्डियान, कपालभांति

१७. *जोड़ों का दर्द:* पद्म, बज्र, पश्चिमोत्तान, आकर्ण धनुर, अर्धमत्स्येन्द्र, सर्वांग, उज्जायी, भस्त्रिका, सूर्यभेदी

१८. *हृदय रोग :* उज्जायी, सहज नाड़ी शोधन (कुम्भक नही) ध्यान शव आसन।

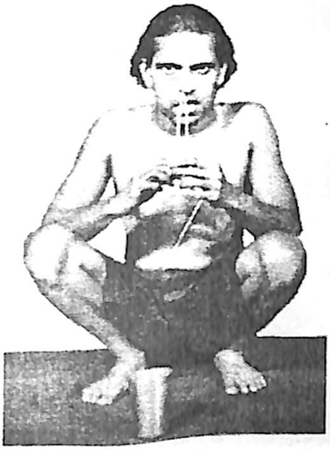
१९. *अनिद्रा :* जानुसिर, पश्चिम सूर्य नमस्कार, सर्वांगासन, शव, भस्त्रिका, नाड़ी शोधन ध्यान।

२०. *गुर्दे का दर्द :* शलम, धनुर, जानुसिर, मयूर, मत्स्य, अधर्ममत्स्येन्द्र, नौलि, मूलाधार उडिडयान, कपालभांति, नाड़ी शोधन योगमुद्रा कुंजल

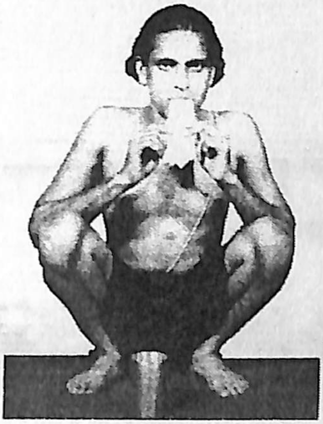
२१. *फेफड़े :* मत्स्य, सुप्तवज्र सर्वांग, पश्चिमोत्तान, उज्जायी, शीतली, शीतकारी (कुम्भक नहीं) नेति

२२. *मासिक धर्म आदि :* धनुर मत्स्य, सुप्तवज्र पश्चिमोत्तान, गर्भासन उडिडयान, कपालभांति सहज नाड़ी शोधन योगमुद्रा,

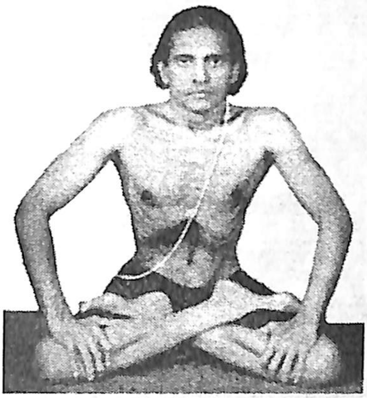
२३. *शिथिलता (स्नायु की) :* पश्चिमोत्तान, मकर, हल, सर्वांग, पद्म, गर्भ, नाड़ी शोधन, भ्रामरी, कपालभांति, ध्यान।००



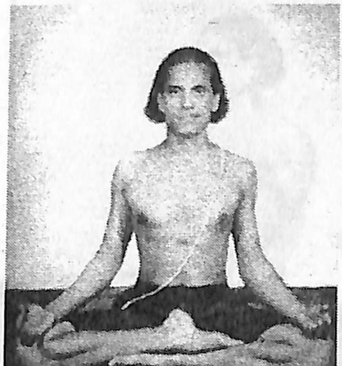
चित्र— सूत्रनेति सम्पूर्ण
Sutra Neti



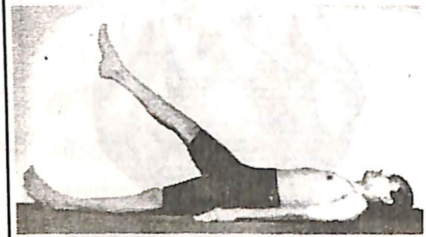
चित्र— धौतिकर्म—सम्पूर्ण
Dhauti Karma-Part Two



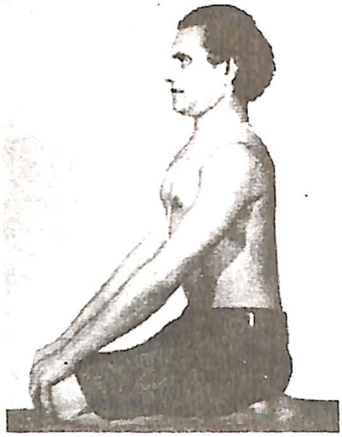
चित्र— वाम नवलि (बैठकर)
Vama Nauli (Squatting Pose)



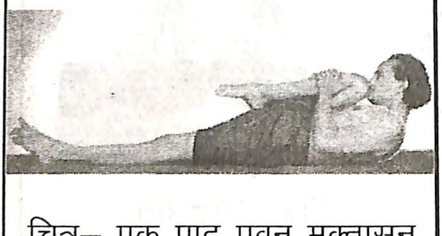
चित्र— सिद्धासन
Sidhasana



चित्र– एक पाद उत्थान पादासन
Eka Pada Utthan Padasana



चित्र– वज्रासन (पहला प्रकार)
Vajrasana (First Part)



चित्र– एक पाद पवन मुक्तासन
Eka Pada Pavana Muktasana



चित्र– वीरासन
Veerasana



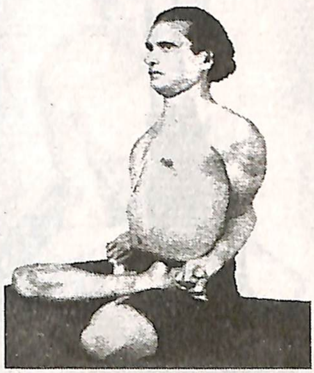
चित्र– त्रिकोणासन
Trikonasana



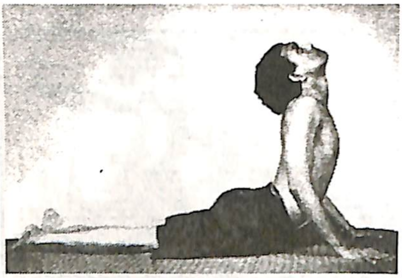
चित्र– धनुरासन
Dhanurasana



चित्र– पद्मासन
Padamasana



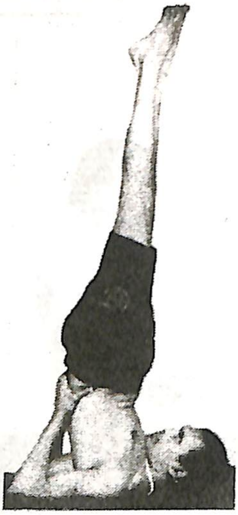
चित्र– बद्धपद्मासन
(दूसरा प्रकार)
Baddha Padmsana (S. Part)



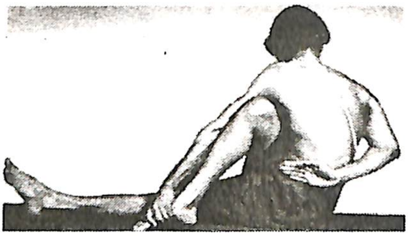
चित्र– भुजंगासन
Bhujangasana



चित्र– गोमुखासन
Gomukhasana



चित्र– विपरीत करणी
(उर्ध्व सर्वांगासन
Vipariti Karani (Urdhwa Sarvangasana)



चित्र– अर्ध मत्स्येंन्द्रासन
Ardha Matsyendrasana



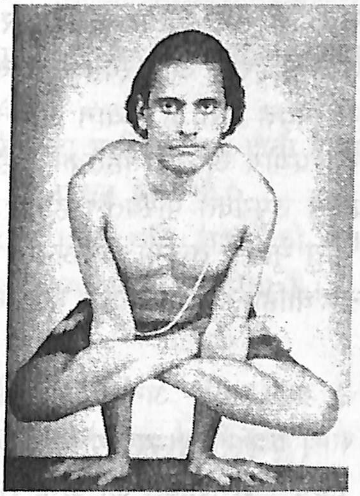
चित्र– पूर्ण मत्स्येंन्द्रासन
(दाहिने अंग का अभ्यास)
Ardha Matsyendrasana
(Right Side)



चित्र– पश्चिमोत्तानासन
Paschimottanasana



चित्र– गरूडासन
Garudasana



चित्र– कुक्कुटासन
Kukkatasana

पंचतत्व चिकित्सा (मुद्राविज्ञान)

पंच तत्वों का संयोग विभिन्न मुद्राओं के द्वारा प्रकट किया जाता है हाथों की अंगुलियों के मेल से निर्मित मुद्राये शारीरिक तथा मानसिक स्थिरता लाती है एवं अनेक व्याधियों को दूर करती हैं। हाथ का अंगूठा और अंगुलियां विभिन्न पंचतत्वों के द्योतक हैं जैसे –

अंगुष्ठ – अग्नि तत्व का बोधक है।

तर्जनी – वायु तत्व का प्रतीक है।

मध्यमा – आकाश तत्व की प्रतीक है।

अनामिका – जल तत्व का बोधक है।

कनिष्ठिका – पृथ्वी तत्व का प्रतीक है।

अंगूठे तथा अंगुलियों के मेल से विभिन्न मुद्राओं का लाभ प्राप्त करना चाहिए।

१. ज्ञान मुद्रा– तर्जनी तथा अंगुष्ठ को ऊपर के मिलाने पर ज्ञान मुद्रा बनती है।

लाभ – यह मुद्रा विशेष रूप से आध्यात्मिक विकास में लाभकारी है मस्तिष्क के सभी प्रकार के विकार इस मुद्रा के नियमित अभ्यास से दूर हो जाते है इसके अतिरिक्त नींद न आना तथा अनियमित निद्रा का होना इससे निवृत्त होता है। ध्यान लगाने में तथा स्मरण शक्ति के बढ़ाने में भी इसका प्रयोग अत्यन्त हितकारी है। एक घण्टे के अभ्यास से शारीरिक तत्वों में उपुर्यक्त परिवर्तन होकर शरीर स्वस्थता को प्राप्त होता है।

वायु मुद्रा– तर्जनी को अंनुष्ठ मूल में लगाकर हल्का दबाव डालकर बैठना चाहिए– इससे वायु मुद्रा बनती है। लाभ होता है। वात विकारों में।

३. प्राण मुद्रा– अनामिका और कनिष्ठिका (चौथी अंगुली) को अंगुष्ठ के साथ मिलाने से वरूण मुद्रा बनती है।

लाभ– प्राणशक्ति की कमी से होने वाले रोगों का शमन इस मुद्रा से होता है निरन्तर अभ्यास से नेत्रों में तेजस्विता आकर्षण ज्योति का वर्धन होकर नेत्र विकार दूर होते है।

४. वरूण मुद्रा अनामिका (चतुर्थ अंगुली) को अंगुष्ट के साथ मिलाने

से वरूण मुद्रा बनती है।

लाभ – इस मुद्रा के निरंतर अभ्यास से शरीर में जलीय तत्व की कमी से उत्पन होने वाले रोगों का शमन होता है।

५. लिंग मुद्रा – दोनों हाथों की अंगुलियो को आपस में फंसाकर बांये अंगुष्ठ की सीधा खड़ा रखने से लिंगमुद्रा बनती है।

लाभ – इससे शरीर में अग्नि तत्व की वृद्धि होती है। सर्दी कफ आदि विकारों से मुक्ति हो जाती है।

६. पृथ्वी मुद्रा – कनिष्ठिका तथा अंगुष्ठ को ऊपर से मिलाकर दबाने से पृथ्वी मुद्रा बनती है।

लाभ – निरन्तर प्रयोग से शरीर का पतलापन दूर होकर शरीर पुष्ट होता है। पृथ्वी तत्व की पूर्ति होती है तथा यह क्रिया सभी विटाामिनों की कमी को पूरा करती है।

७. शून्य मुद्रा–मध्यमा (तीसरी अंगुली) अंगुष्ठ की गददी पर लगाकर ऊपर से अंगुष्ठ का दबाब रखें तो शून्य मुद्रा बनती है।

लाभ – यदि कान में दर्द हो जाये तो इस मुद्रा से पांच मिनट में दर्द कम हो जाता है।

८. सूर्य मुद्रा – अनामिका को अंगुष्ठ की जड़ में लगाकर अंगुष्ठ से दबाने पर सूर्य मुद्रा बन जाती है।

लाभ– इस मुद्रा के अभ्यास से शरीर का भारीपन कम होता है शरीर कान्तिमय बनता है एवं विशेष विद्युत का प्रवाह होता है।

इन मुद्राओं को लगाते समय प्रयोग कर्ता यदि लाभों को मन में विचार कर नित्य अभ्यास करें तो बहुत चमत्कारी लाभ होता है।ₒₒ

अन्तरंगा

चमत्कारी कुण्डलिनी (यमातचन्द्रमहिमा)

कुण्डलिनी को सर्पाकार या वलयाकार शक्ति कही गई है, क्योंकि इसकी गति वलयाकर सर्प की सी है योगाभ्यासी व्यक्ति के शरीर में चक्राकार चलती है और उसमें शक्ति बढाती है। यह एक विद्युत अग्निमय गुप्त शक्ति है इस कुंण्डलिनी की गति प्रकाश की गति से भी ज्यादा तेज

है। ''मैडस ब्लेवेटस्की'' ने कहा है – प्रकाश– १,८५,००० मील/ प्रति सैकेण्ड़ की गति से चलता है और कुण्डलिनी ३,४५,००० मील/प्रति सैकेण्ड़ की चाल से चलती है।

इसे पश्चिमी लोग सर्पेन्ट फायर या विश्वव्यापिनी विद्युत शक्ति भी कहते है। यह प्रचण्ड शक्ति मूलाधार में स्थित चक्र में सोयी रहती है। कुण्डलिनी जागरण के बाद चार प्रकार की वाणी १. बैखरी-शब्दोच्चारण होना २. परा-विचार प्रगट होना ३. मध्यमा-वाक को जीभ तक आने की क्रिया ४. पश्यन्ती-नेत्रो को दिखाई देने वाली वाणी, का मनुष्य को ज्ञान होकर तत्त्व ज्ञान हो जाता है। जिससे दूसरे व्यक्ति को अपने बारे में सुनने के बाद कुण्डलिनी जागरण वाला व्यक्ति चमत्कारी लगने लगता है।

हमारे ब्रह्माण्ड में जो कुछ भी विद्यमान है वही हमारे शरीर में भी स्थित है विष्णु पुराण के अनुसार सुमरू पर्वत के ऊपर क्रमशः भूलोक, विष्णुलोक, रूद्रलोक, महालोक जनलोक तपोलोक एवं सत्यलोक तथा मेरू पर्वत से नीचे अतल लोक वितल लोक, नितल लोक गभस्तिमान लोक महातल लोक, सुतल लोक एवं पाताल लोग विद्यमान है।

जिस प्रकार भूमण्डल का आधार मेरू पर्वत वर्णित है उसी प्रकार शरीर का आधार मेरुदण्ड है। मेरुदण्ड ३३ अस्थियों (प्रजापति, इन्द्र, अष्टबसु, द्वादश, आदित्य, एकादश रूद्र से है) के जुडने से बना है भीतर से खोखला है, इसके नीचे का भाग नुकीला ओर छोटा होता है इस नुकीले भाग के आसपास का स्थान कन्द कहलाता है और इसी कन्द में जगदाधार महाशक्ति की प्रतिमूर्ति कुण्डलिनी का निवास माना गया है। इस शरीर में तीन लाख पचास हजार नाड़ियो की स्थिति है। इनमें से १४ नाड़िया मुख्य है– सुषुम्ना, इडा, पिंगला, गांधारी, हस्तिजिहवा, कुहू, सरस्वती, पूषा, शंखिनी, पयस्विनी, वारणी, अलम्बुजा, विश्वोदरी ओर यशस्विनी।

हमारे शरीर में ५ ज्ञानेन्द्रियां ५ कर्मेन्द्रियां तथा ४ अन्तःकरण है। जिनके देवता-चक्षु, सूर्य, प्राण, अश्विनी, कुमार, श्रोत्र-दिक्पाल, जिहवा-वरुण, त्वचा वायु, हाथ-इन्द्र, चरण-विष्णु वाणी-सरस्वती, उपस्थ-प्रजापति, गुदा-मित्र, बुद्धि-ब्रह्मा, मन-चन्द्रमा अहंकार-रूद्र चित्त सच्चिदानन्द है।

कुण्डलिनी जागरण प्रक्रिया

योगाष्टांगैरिमान् जित्वा योगिनोयोगमाप्नुयुः यमनिममासन प्राणायामाः ततः परम् प्रत्याहांर ध्यानं सार्धं समाधिना।

बलादाहरणं तेभ्यः प्रत्याहारो विधीयते।
अङ्गुष्ठगुल्फजानूरुसीवनीलिङ्गनाभिषु ।।५४।।

हृद्ग्रीवाकण्ठदेशेषु लम्बिकायां ततो नसि।
भ्रूमध्ये मस्तके मूर्ध्नि द्वादशान्ते यथाविधि ।।५५।।

धारणं प्राणमरुतो धारणेति निगद्यते।
समाहितेन मनसा चैतन्यान्तरवर्तिना ।।५६।।

आत्मन्यभीष्टदेवस्य ध्यानं ध्यानमिहोच्यते।
समत्वभावना नित्यं देहात्मपरमात्मनोः ।।५७।।

समाधिमाहुर्मुनयः प्रोक्तमष्टाङ्गलक्षणम्।
युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु ।।५८।।

युक्तस्वप्नावबोधस्य योगोभवति दुःखहा।
प्राणायामं समारभ्य विशुद्धान्तरनाडिकः ।।५९।।

आसने साधको दक्षपादपार्ष्णिम् निवेशयेत्।
गुदमार्गे तथा लिङ्गे वामपार्ष्णिम् न्यसेत् सदा ।।६०।।

निवर्तयेदिन्द्रियाणि विषयेभ्यः समाहितः।
ऋजुकायशिरोग्रीवः काकचञ्चुयुतक्रमात् ।।६१।।

समाहृत्यजगत्प्राणमुदरं परिपूरयेत्।
अङ्गुष्ठाभ्यामथो कर्णौ तर्जनीभ्यां तु लोचने ।।६२।।

नासारन्ध्रे मध्यमाभ्यामवशिष्टाभिराननम्।
अङ्गुलीभिर्नातिदृढमवरुध्य स्वकं गनः ।।६३।।

मूलाधारे स्थिरीकृत्य यथाश्वो गुदपद्धतिम्।
संकोचयति संत्यज्य पुरीषन्तु पुनः पुनः ।।६४।।

तथा संकौचयेदेनमङ्गलग्नकरस्ततः।
भूयो भूयो हूँकृतेनोच्चारयेद्गुदमारुतम् ।।६५।।

उन्मीलयति सुषुम्ना सुखमभ्यसतः क्रमात्।
वायुस्तत्र प्रविश्याजग्रन्थिं भित्वाजपङ्कजम् ।।६६।।

करोत्यूर्ध्वमुखंतस्मिन् प्रविष्टेऽन्तरथोध्वनिः।
क्रमान्मेघनिनादाभो जायते तेन बुध्यते ।।६७।।

सुप्रसुप्ता कुण्डलिनी ततो योन्यन्तके स्मरन्।
भ्रमन्तं विकसद्बन्धुजीवपुष्पाभमुज्ज्वलम् ।।६८।।

शिवस्वरूपं संचिन्त्य हंसरूपं विचिन्तयेत्।
तयैकीकृतमात्मानं योगी कुण्डलिनीं ततः ।।६९।।

विधाय चित्कलायुक्तां हंसेन सहितां नयेत्।
एतामूर्ध्वं चित्रनाड्या सहस्रदलपङ्कजम् ।।७०।।

चक्राणि षट् च लिङ्गानि त्रीणि भित्वा पृथक् पृथक्।
गत्वा तत्कणिकासंस्थशिवसायुज्यमाप्नुयात् ।।७१।।

सहस्रारोर्ध्वस्वर्गायस्थानस्थितसुधाकरात्।
निपत (न्तीं) मन्त्रमयीं लोहितामृतविश्रु तिम् ।।७२।।

पीत्वा तेनैव मार्गेण तास्ताः षट्चक्रदेवताः।
(परा) वृत्य प्रीणयन्तो स्वस्थानमधिगच्छति ।।७३।।

इत्थं गतागतं योगी भूयो भूयः समाचरन्
मन्त्रजापविधानेन दोषान् छिन्नादिकान् हरेत् ।।७४।।

अभ्यसेद्योनुदिवसं योगमेनं समाहितः।
जित्वा दुरितरोगादीन् चिरंजीवेत्स्मरात्मकः ।।७५।।

साधयेत्सकलान्मन्त्रान्मौनी नीलशिरोरुहः।
गुदध्वजान्तरे पद्मं ब्रह्मणो भूषितं दलैः ।।७६।।

चतुर्भिर्हेमसंकाशैर्वादिमान्तैर्विभूषितैः।
सबिन्दुभिरिमं प्राहुर्मूलाधारं तु योगिनः ।।७७।।

ध्वजमूले रसदलैर्बादिलान्तैः सबिन्दुभिः।
वर्णैर्युतं शिवस्थानं स्वाधिष्ठानसमाह्वयम् ।।७८।।

नीलाञ्जनाभैर्दशभिर्युक्तैर्डाद्यैः सबिन्दुभिः।
दशाक्षरैर्दलैर्युक्तं नाभिस्थं मणिपूरकम् ।।७९।।

हृदीन्द्रगोपसन्ध्याम्बुवाहसिन्दूरदीधितिः।
दलैरादित्यसंख्याभिः कादिवर्णैर्विभूषितैः ।।८०।।

सदन्तैः कमलं प्राहुरनाहतमिदं बुधाः।
विशुद्धाख्यं तु नलिनं कण्ठेऽलिरुचिभिर्युतम् ।।८१।

दलैः षोडशभिर्युक्तं स्वरैर्भगवतीगृहम्।
शरच्चन्द्रमयूखाभमाज्ञानामसरोरुहम् ।।८२।।

भ्रूमध्ये द्विदलं सेन्दुवर्णान्तद्वयभूषितम्!।
षट्चक्रकमिदं प्रोक्तं योगशास्त्रविशारदैः ।।८३।।

ब्रह्मा शिवो गदापाणिर्हंसोभगवती तथा।
बिन्दुः क्रमेण चक्रेशाः षडत्र परिकीर्तिताः।।८४।।

ब्रह्माविष्णुस्तथारुद्र ईश्वरोऽथ सदाशिवः।
बिन्दुः क्रमेण चक्रेशाः क्वचिदेवमुदीरिताः ।।८५।।

डाकिनी राकिनी चैब लाकिनी काकिनी तथा
शाकिनी हाकिनी चेति क्रमात् षट्चक्रदेवताः ।।८६।।

स्वयम्भुना स्वयं लिङ्गं योनिमध्यविलान्तरे।
हृदिबालद्वयं लिङ्गमितेनार्चा न्तरालके ।।८७।।

सर्गाधो रक्तकिञ्जल्कसहस्रदलपङ्कजम्।
निष्कलङ्कंस्फुरद्रश्मि त्रिशृङ्ग हिमरश्मिकम् ।।८८।।

गुदध्वजान्तरे लिङ्गमुत्सेधाद्व्यङ्गुलं विदुः।
तस्य द्विगुणविस्तारवृत्तरूपेण वेष्टितम् ।।८९।।

नाड्यस्तत्र समुत्पन्ना मुख्यास्तिस्रः प्रकीर्तिताः।
इडा नाडी श्रिताभागं तनोर्वामं तु दक्षिणम् ।।९०।।

पिङ्गलाथ तनोर्मध्ये पृष्ठवंशसमाश्रिता।
सुषुम्ना ब्रह्मरन्ध्रं चित्रा नाडी तदन्तरे ।।९१।।

पञ्चवर्णोज्ज्वला सूक्ष्मा देवैर्युक्ताथ पञ्चभिः।
ब्रह्मा जनार्दनो रुद्रः शिवरुद्राख्यकावपि ।।९२।।

चित्राख्यनाड्यन्तरस्थाः पञ्चभावाधिदेवताः।
कन्दमध्य त्रिकोणेस्ति योनिर्लोहितदीधितिः ।।९३।।

बालार्ककोटिकिरणशम्पेव चपलद्युतिः।
कामः परिश्रमस्तत्र चिन्तनीयस्तडिन्निभः ।।९४।।

अतिसूक्ष्माभमूर्ध्वे स्याच्छक्तिर्दीपशिखाकृतिः।
पारिस्फुरन्ती तन्मध्ये शिवशक्तिस्वरूपिणी ।।९५।।

योग और प्राकृतिक चिकित्सा आहार-विहार एकश्लोकी की व्याख्या

प्राकृतिक चिकित्सा पर आयुर्वेद की आद्यादृक् है प्रथम दृष्टि है क्योंकि आयुर्वेद और योग दोनों प्रकृतिविज्ञान पर जोर देता है। आयुर्वेद पांच भौतिक आहार विहार युक्ताहार विहार सत्व रजतम पर आधारित खाद्य रस-दोषचर्या के आधार पर हितभुक् मितभुक् नीति के अनुसार पथ्य और सन्तुलित भोजन का पक्षधर है। अरूपयात्रिपथगा=प्रकृतिपुरुष (आध्यात्म) पर आधारित है। इस चिकित्सा की अपनी धारा है। यह भारत की भारती अपनी ही है। यह मानवी मानवमात्र की हितकारिणी है। गंगा की भांति पावन निर्मल है। यह अमृत की आराधिका तथा आपंच=पांचमहाभूतों की प्रक्रिया पर चलती है। यह भी अतापा=दुखनाश करती है। यह भी वेदान्ता=वेदसम्मत है। यह आंत्रिकभावता=अन्तकरण की शुद्धि करती है तथा तरंगावली=आनन्ददायिका, अन्तरंगावली=अन्तरंग तक पहुँचने वाली सरल निजगृहस्था है। यह पंचामृता पांचभौतिकी है। अमृता अतापं (चकार)=सृष्टि के आदि से सब को अमृतवत् ताप रहित करती रही है। यह आराधिका=जनसेवा का सरल साधन है।

प्राकृतिक चिकित्सा

आद्या=प्रकृति उसकी विद्या, आदृक्=समदर्शी परमात्मा और अरूप=आत्मा इन परमात्मा और आत्मा रूपी यात्रियों की पथगा=पथ पर चलने वाली (आदृगरूपयात्रिपथगा) विद्या प्राकृतिक चिकित्सा है। आधार पंचमहाभूत पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश को धारण करने वाली इन्ही आधारों पर चलने वाली विद्या (आधाराधरा) यह उमा=शिव शक्तिस्वरूपा है। आधुनोति=इसका प्रभाव बाहर भीतर स्पन्दन उत्पन्न करना है (आधवः=प्रभाव)। यह विद्या योग=अष्टांग योग (या+उ+गंगाम्) गंगा की तरह जगपावनी, धियम्=बुद्धि की शुद्धता को आत=अतसातत्यगमने भूतकाल क्रिया अर्थात् प्राप्त किया स्वीकार किया है। चन्द्रम्=अन्धकार में चन्द्र ज्योति सुधांशु को भी धारण कर लिया है। यह विद्या चन्द्रमौलि शंकर की भांति, योग, गंगा, चन्द्रमा को धारण कर जीवन कल्याणमय बनाती है। आलाभा=इस विद्या

में लाभ ही लाभ है। अन्तरंगा=अन्दरूनी विद्या है तरंगावली=सूर्य जल वायु की तरंगों से प्रभावित करती है। रंगावली=सूर्य के ७ रंगों के आधार पर सूर्यचिकित्सा इसमें है। अवली=सभी चिकित्सा ओं की देहली द्वार है। यह वेदान्ता प्रकृतिज्ञान की वेदान्त है अद्वितीया चिकित्सा है। आन्त्रिक भावता=प्राणायाम, नियमित आहार विहार एवं जलचिकित्सा, नेति नौली एनीमा आदि से आतों का शुद्ध करती है। यह अरणमता=रोगों से रण युद्ध नही करती इसका मत अहिंसा है। शान्तिपूर्वक दोषों का विकारों का शमन करती है। आपंच+अमृता यह पंचमहाभूतों से लेकर आत्मा तक अमृत का (अमरता का) बोध कराती है। अमृता=अमृततुल्या विद्या है। साभा=इस चिकित्सा क्रिया से आभा=क्रान्ति बढ़ती है यह भारत की भारती अपनी चिकित्सा है। यह उदित उदीयमान, अनेकों आयाम वाली मानवी संहिता मानव मात्र की हित कारिणी या हितकारी शास्त्र (सहिंता) है।

यौगिक आहार

कब्जः सारे रोगों की जननी है। इसमें सब्जी तथा फलों को मूल स्वरूप में खायें। गाजर, पालक, टमाटर, आँवला, लौकी, ककड़ी, ६ घंटे पूर्व भीगा हुआ किशमिश, मुनक्का, अंजीर, गेहूँ-पौधे, करेला, पपीता, संतरा, आलू, नाशपाती, सेव तथा बिल्व का रस लें।

अजीर्ण व अपचन : भोजन के आधे घंटे पूर्व आधी चम्मच अदरक का रस। अनान्नास, ककड़ी, संतरा, गाजर, चुकन्दर का रस।

वमन व मिचली : नीबू, अनार, अनानास, टमाटर, संतरा का रस।

डिहाईड्रेशन (निर्जलीकरण): एक नीबू का रस + एक ग्लास पानी +५ ग्राम नमक + तीन चम्मच शहद, गाजर का रस व सूप, संतरा, मौसम्मी, तरबूजा, कच्चा नारियल, नीरा, खीरा, ककड़ी आदि का रस, साबुत चावल का मांड।

कोलाइटिस : दही गाजर, पत्तागोभी, ककड़ी, सेब, चुकन्दर, संतरा, बिल्वफल, चित्तीदार केला, पपीतादि का रस।

संग्रहणी : अनार, जामुन, अमरूद, बिल्व का रस, ताजा छॉछ।

एसीडिटी : पत्ता गोभी + गाजर का रस, ककड़ी, लौकी, सेब मौसम्मी, तरबूजा, पेठे का रस, चित्तीदार केला, आलू, पपीता।

एक्यूट एसीडीटी व गैस्ट्राइटिस : ठण्डा दूध, गाजर का रस।

अल्सर : सम मात्रा में ठण्डा पानी + पत्ता गोभी का रस, गाजर, लौकी का रस, ठण्डा दूध, बर्फ चूसना।

अल्सेरेटिव कोलाइटिस (आँतो का घाव) : पत्ता गोभी का रस, ककड़ी, पपीता, आलू, गाजर का रस।

बार-बार दस्त आना : बिल्व फल का रस, लौकी, ककड़ी, गाजर का रस + डेढ़ चम्मच ईसबगोल की भूसी, छाछ + ईसबगोल की भूसी।

पीलिया : करेला, संतरा, मौसमी, गन्ना, अनानास, चकोतरा का रस, पपीता, कच्ची हल्दी, शहद, मूली के पत्ते, पालक तथा मूली का रस।

प्लीहा वृद्धि : जामुन, पपीता, नीबू, कच्ची हल्दी, लहसुन, प्याज व गाजर का रस।

यकृत वृद्धि : मूली तथा मूली के पत्तों का रस, संतरा, चकोतरा, तरबूजा, नीबू का रस।

मधूमेह : जामुन, टमाटर, करेला, विल्बपत्र, नीम के पत्ते, गाजर + पालक + अनानास, अंगूरादि खट्टे फलों के रस, इमली, टमाटर।

पथरी : सेब, मूली व पालक का पत्ता, गाजर, इमली, टमाटर का रस लें। फल एवं सब्जियों के नन्हे-नन्हे बीज न लें।

खांसी : गर्म पानी, एक नीबू रस + शहद, गाजर रस, लहसुन, अदरक, प्याज, तुलसी का रस मात्र ५० सी.सी. लें।

गले के रोग : गर्म पानी, +एक नीबू + शहद, अनानास, गाजर + चुकन्दर + पालक का रस, अमरूद + प्याज + लहसुन का रस।

चर्म रोग : गाजर + पालक + टमाटर, आलू, ककड़ी, चुकन्दर, टमाटर, तरबूजा, अमरूद, सेब, नारंगी व मौसम्मी का रस।

ज्वर : अनार, संतरा, मौसम्मी, दूर्वा, अंगूर, भीगा किशमिश का रस गर्म पानी + लहसुन रस + प्याज रस + शहद।

न्यूमोनिया : गर्म पानी + अदरक रस + एक नीबू + शहद, वाष्पित मौसम्मी रस, संतरा, तुलसी पत्र रस, गाजर + टमाटर का रस।

अनिद्रा : सेब अमरूद, लौकी, आलू, गाजर + पालक, सलाद के पत्ते, प्याज का रस।

माइग्रेन : नीबू + पानी, अदरक, सलाद के पत्ते तथा मीठे फलों का

रस।

मुहाँसे : गाजर + पालक, आलू + गाजर + चुकन्दर + अंगूर, पालक + टमाटर, ककड़ी का रस।

नेत्र रोग : पपीता, गाजर, टमाटर, पालक, शलगम, मूली के पत्ते, आम, आँवला व संतरें का रस।

टायफायड : अनार, संतरा, भीगा अंजीर, किशमिश, मुनक्का, प्याज, लहसुन का रस, नारियल का पानी।

इनफ्ल्यूएन्जा : गर्म पानी + लहसुन + प्याज + नीबू रस, गाजर, संतरा, मौसमी का रस।

रक्तहीनता : पालकादि पत्ते वाली सब्जियों, टमाटर, आँवला, चुकन्दर, दूर्वा, पत्ता गोभी, करेला, अंगूर, खुरबानी, भीगा किशमिश मुनक्के का रस।

हृद्रोग : अनार, अनानास, आंवला, प्याज, लहसुन, संतरा, मौसम्मी, फालसा, चकोतरा का रस, नारियल का पानी, नीबू+पानी+शहद।

गर्भावस्था : गाजर, टमाटर, सेब, ककड़ी, अंगूर, अंजीर, चुकन्दर, दूर्वा, पालकादि पत्ते वाली सब्जियों का रस।

महिला सम्बन्धी रोग : गाजर, पपीता, अनानास, अंगूर, पत्तों का रस।

मुंह के छाले : चौलाई, पत्ता गोभी, पालक, टमाटर, ककड़ी व गाजर का रस।

आन्तरिक रक्तस्राव : सेब, नींबू, आँवला, नाशपाती व सन्तरे का रस।

बन्ध्यत्व : अंकुरित गेहूं, गाजर, पालक, सेब, टमाटर का रस।

वजन कम करने के लिए : तरबूज, ककड़ी, लौकी, पालक, पेठा, टमाटर, खीरादि कम कैलोरी वाली सब्जियों का रस।

वजन वृद्धि हेतु : अनानास, पपीता, केला, दूध, संतरा, आम आदि अधिक कैलोरी वाले मीठे फलों का रस।

उच्च रक्तचाप : प्याज, ककड़ी, संतरा, लौकी, सोयाबीन का दही, गाय की छाछ, गाजर व मौसमी का रस।

हाइपर कॉलेस्टरॉलीमिया : प्याज, लहसुन, आंवला, नीबू, नारंगी, तुलसी का रस, सोयाबीन की छाछ।

संधिवात व गठिया : आलू, अंगूर, संतरा, गाजर, ककड़ी, पत्ता गोभी, करेला, सेब, नारियल का रस।

कैंसर : गाजर, गेहूं के पौधे का रस, तुलसी के पत्ते का रस, अकुंरित गेहूं चनादि, अंगूर अंजीर, पत्ता गोभी, आलू, किशमिश, खुरबानी, अनानास, शहद, संतरा, मौसमी, पतीता, आँवला आदि खट्टे फलों का रस।

मिट्टी तथा जल चिकित्सा का आकस्मिक प्रयोग : (१) तीव्र वेदना अंगों में किसी प्रकार की तीव्र स्थानीय वेदना होने पर गरम ठण्डी मिट्टी की पट्टी (५:५ मिनट) अथवा गरम ठण्डा सेक (३:२ मिनट) तीन बार क्रम से देने पर शीघ्र आराम मिलता है।

(२) नवजात फोड़े की स्थिति में क्रम से तीन बार ठण्डी मिट्टी का सेक अथवा गरम ठण्डे पानी का सेक शीघ्र आराम करता है।

(३) जल जाय, कट जाय तथा मोच आने पर उस समय शीघ्र स्वच्छ मिट्टी का लेप बार बार करने अथवा स्थानीय अंग पर शीतल जल की पट्टी अथवा अंग को शीतल जल से डुबो कर रखने से शीघ्र आराम मिलता है।

(४) खांसी की स्थिति में छाती पर गरम मिट्टी की पट्टी तथा शीतल जल के घर्षण से आराम मिलता है। किसी प्रकार की खाँसी की स्थिति में स्नान करने के तुरन्त बाद कपड़े पहन कर तथा सिर के बालों को पोंछ कर तेजी से टहलने से शीघ्र आराम मिलता है।

(५) तीव्र खांसी की स्थिति में रीढ़ एवं छाती का ठण्डे पानी से खूब घर्षण करें, तत्पश्चात् कपड़े पहन कर टहलें। उपर्युक्त सभी प्रकार के उपचार में हवा के झोंके से बचना चाहिए।

योग विज्ञान शाखा में प्राकृतिक जलादि चिकित्सा

जल चिकित्सा : (आन्त्रिकभावता)

जल का उपयोग चिकित्सा के रूप में कब से होता आ रहा है, यह कहना मुश्किल है। फिर भी पाया जाता है कि मिश्र, चीन, यूनान तथा भारत वर्ष में ईसा से कई सौ वर्ष पूर्व भी जल का उपयोग रोग निवारण एवं स्वास्थ्य संवर्धन में लोग करते थे। इसका अकाट्य प्रमाण विश्व के सबसे पुराने ग्रन्थ वेदों में मिलता है। निम्न मंत्र इसका साक्षी है :–

आपः इद्वा उभेषजीरापो अमीव चातनीः।
आपस सर्वस्व भेषजो स्तास्तु कृण्वन्तु भेषजः ।। (ऋग्वेद)

अर्थ :–

जल ही औषधि है। जल में रोग नाशक एवं अमर बना देने की अभूतपूर्व शक्ति छिपी है।

आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीव चातनीः ।

आपो विश्वस्य भेषजीस्तास्त्वा मुञ्चन्तु क्षेत्रियात् ।।

(अथर्ववेद,३/२/७/५)

जल ही परम औषधि है। रोगों को नाश करने वाला जल ही है। अतएव यह जल तुम्हारा भी असाध्य रोग दूर करे।

''अमृतं वै आप'' –:

अर्थात अमृत नाम वाला जल ही है। सचमुच में जल (ज= जन्म, + ल =लय) का संबंध जीवन के प्रार्दुभाव से लेकर अन्त (लय) तक होता है।

जल चिकित्सा के रूप में विभिन्न देशों में विभिन्न स्थानों का सदियों से प्रयोग होता आ रहा है। जिसमें सावन बाथ, रोमन बाथ, टर्किश बाथ, रशियन बाथ, इत्यादि विभिन्न स्टीम बाथ के रूप प्रसिद्ध है। सावन बाथ तो फिनलैंड में इतना प्रचलित है कि यहां ८० प्रतिशत ग्रामवासियों का अपना 'सावना' है। अरब देशों में भी जल चिकित्सा विभिन्न प्रकार के ज्वर को दूर करने में एवं चेचक रोग में विशेष रूप से की जाती है। औषधि जगत के जनक हिपोकेट्स भी जल चिकित्सा के प्रयोग पर बल देते थे। आज भी उनके कितने ही अनुयायी जल चिकित्सा के विभिन्न रूपों जैसे स्पंज बाथ, बर्फ की थैली, सेंक इत्यादि के रूप में प्रयोग करते हैं।

एनिमा के आवश्यक उपकरण :-

मेडिकल स्टोर से एनिमा उपकरण खरीदते समय निम्न उपकरणों को ध्यान में रखना चाहिए–

१. एनिमा पॉट – ४ पिन्ट अर्थात १ १/२ से २ लीटर क्षमता का।

२. रबर की नली – चार फीट लम्बी।

३. कैथेटर – दो ६ नम्बर तथा १२ नम्बर का ' ६ नम्बर बच्चों के लिए तथा १२ नम्बर वयस्कों के लिए।

४. टोंटीदार गुदा नॉजल

५. योनी बस्ति नॉजल

एनिमा देने के लिये एक तख़्त होना चाहिए जो पैरों के तरफ ४ इंच उठा हो।

एनिमा कभी भी बैठकर नहीं लेना चाहिये।

एनिमा द्रव :-

विभिन्न रोगों में विभिन्न प्रकार के एनिमा द्रव प्रयोग में लाये जाते है।

मल निष्कासण एवं आँत पोषक एनिमा द्रव (Eliminating and healing enema) –

(अ) छाछ का एनिमा –

डिसेन्ट्री, पतला दस्त, मरोड़ आंत्र-प्रदाह, आंत्र शोध एवं एमॅबॉओसिस, मधुमेह, लीवर सम्बन्धी रोग, एवं समस्त पेट सम्बन्धी रोगों में। इससे आंतों एवं शरीर को पोषण मिलता है। २५० मि. लीटर से लेकर ५०० मि० लीटर तक छाछ का एनिमा ले सकते हैं। इसके प्रभाव से आंतों के ब्रण भर जाते है यानि healing effect होता है।

(ब) शहद का एनिमा

जब मल काफी खुश्क हो तथा रोगी काफी कमजोर हो तथा खाना नहीं खा सकता हो, वैसी स्थिति में आधी लीटर में ३ बड़े चम्मच शहद मिला कर एनिमा देने से रोगी को शक्ति मिलती है, कब्ज तथा खुश्की दूर होती है।

पोषक एनिमा (Retentive nutrient enema-liquied)

इस प्रकार के रोगी को दिया जाता है जिन्हे भोजन करने तथा पानी पीने में कठिनाई होती है। पोषक एनिमा देने से पूर्व सादा पानी का एनिमा अवश्य देना चाहिये। पोषक एनिमा का उपयोग दिन में २-३ बार किया जा सकता है। पोषक एनिमा बून्द-बून्द करके धीरे-धीरे देना चाहिये।

(अ) गेहूं के पत्ते के रस का एनिमा :–

स्वच्छ जगह जन्तुज खाद से उगाया गया सात दिन के गेहूं के पत्ते का रस ५० से १०० सी.सी. निकाल कर इसका एनिमा लेने से शरीर एवं आंतो को पोषण मिलता है। यह एनिमा विजातीय द्रव्य को निष्कासित कर शरीर को सबल एवं स्वस्थ बनाता है। यह दिन में २-३ बार ४ घण्टे के अन्तराल में सादे पानी का एनिमा लेने के बाद दें सकते है। डा. एन.विगमोर के अनुसार यह आंतो में संचित विष को उदासीन (freshens the blood

steam) तथा कब्ज दूर करता है।

कीटाणुनाशक एनिमा द्रव : (Antisceptic enema liquied)

(अ) नीम के पानी का एनिमा –

नीम के पत्तों को पानी में उबाल कर तैयार किये गये पानी का एनिमा सभी प्रकार के चर्म रोग, आंत की कृमि तथा घाव में उपयोगी है। नीम के पानी का एनिमा रोगाणुनाशक (एण्टीसेप्टिक) होता है।

लहसुन का रस + पानी का एनिमा :–

करीब ४-५ पुष्ट लहसुन की कली का रस करीब एक लीटर पानी में अच्छी तरह घोलकर एनिमा लेना चाहिये। ४-५ कली से अधिक लहसुन नहीं लेना चाहिये नहीं तो आंतो में जलन, आंतों की रुक्षता तथा शरीर की उष्णता बढ़ जाती है। दुनिया का सबसे प्रबल कीटाणुशासक कच्चा लहसुन होता है, ऐसा वैज्ञानिकों ने सिद्ध कर रखा है। यह आंतों के रोगाणु को समाप्त करता है साथ-साथ आंतों के लिए उपकारी जीवाणुओं को बढ़ाता है। यह लहसुन का विशिष्ट गुण है।

मल निष्कासक एनिमा द्रव :–

(१) नीबू का रस + पानी का एनिमा –

एक नींबू को सवा लीटर पानी में निचोड़ कर एनिमा लिया जाता है। यह आंतों से पुराने मल के निष्कासन में काफी सहायता करता है।

(२) नमक+पानी का एनिमा :–

एक लीटर पानी में १५ ग्राम नमक मिलाकर इस घोल का एनिमा लिया जाता है। यह आंत में चिपके मल को छुड़ाकर बाहर निकालता है। नमक के पानी का उत्तेजनात्मक प्रभाव आंतों की दीवारों पर होता है, जिससे मल का निष्कासन होता है।

(३) सादा पानी का एनिमा –

स्वस्थ व्यक्ति सिर्फ मलाशय से मल को निकालने के लिये सादा पानी का एनिमा ले सकता है। इससे मलाशय उत्तेजित होकर मल को बाहर फैकता है। पोषक एनिमा देने से पहले सादा पानी का एनिमा देना चाहिए।

एनिमा का वर्गीकरण (Classification of Enema)

(अ) क्लीजिग एनिमा (Cleansing enema) –

इसमें एक पिंट गरम पानी एक नींबू रस के साथ मिलाकर देते है।

इससे गुदा द्वार में जमा तथा आंतो में चिपका मल बाहर निकल जाता है।

(आ) शक्तिदायी एनिमा (Tonic enema) –

४०० से ५०० मि.ली. सामान्य ठंडा पानी (60°से 95°F) का एनिमा लेकर १५ से २५ मिनिट तक रोकना शक्तिदायी एनिमा कहलाता है। एनिमा लेते वक्त श्वास निकाल लें। कब्ज, आंतों की खुश्की तथा गरमी को दूर कर आँतों को सबल व सशक्त बनाता है।

(इ) ठण्डा पानी का एनिमा (Cold water enema) –

जब पानी (70° फा० हा० से 85° फा० हा०) का एनिमा उपयोगी होता है।

उपयोग–

तीव्र बुखार, गुदा से तीव्र रक्त श्राव, रक्र्ताश इत्यादि।

(ई) **अल्पोष्ण एनिमा** (Luke warm water-enema) –

थकान, अनिद्रा एवं कब्ज की स्थिति में अल्पोषण पानी का एनिमा देना चाहिये। पानी का तापक्रम 98° फा० हा० से 100° फा हा० होना चाहिये।

-यमातचन्द्रमहिमा=(उष्णशीत)

(१) सिर पर गीली पट्टी :– सिर पर गीली पट्टी लेकर सूखे तौलिये से ढक दें। १० मिनट बाद बदलकर दूसरी गीली पट्टी रखें।

समय १५ से २५ मिनट।

लाभ और उपयोग :–

१. सिर दर्द, २ उल्टी, ३ चक्कर आना, ४ तीव्र बुखार (पट्टी सिर एवं पेट की), ५ डिप्रेशन, ६ अनिद्रा, ७ मूर्च्छा ८ मानसिक तनाव ६. सिर की चोट, १० सिर के रक्तश्राव, ११ स्नायविक विकार, १२ उच्च रक्तचाप, १३ प्रलाप इत्यादि स्थिति में।

(२) छाती की गीली पट्टी :–

छाती को सूखे तौलिये से एक मिनट घर्षण करके गीली पट्टी रखें। सूखे तौलिये को ढक दें। समय ५ से १० मिनट।

विशेष सूचना :-

१० मिनट से अधिक समय तक लगातार छाती पर गीली पट्टी का प्रयोग न करें अन्यथा प्रतिक्रिया स्वरूप हृदय की गति बढ़ जायेगी। ४५ मिनट

से ५५ मिनट बाद आवश्यकतानुसार पुनः छाती पर पट्टी १० मिनट के लिये रखी जा सकती है।

उपयोग :–

(१) हृदय की कार्यक्षमता बढ़ाने में।

(२) फेफड़ों की कार्यक्षमता बढ़ाने में।

(३) वायु प्रकोप से हृदय गति बढ़ जाने पर।

(४) अन्य हृदय सम्बन्धी बीमारियों में।

पेट पर गीली पट्टी :-

सूखे तौलिये से पेट पर घर्षण कर गरम करलें। अब २-३ तह की हुई गीली पट्टी पेट पर रखकर सूखे तौलिये से ढक दें। बीच-बीच पट्टी बदलते रहें। समय ५ से २५ मिनट।

प्रभाव :-

इसका प्रभाव सभी परिपाक यन्त्रों पर बलदायक अर्थात् टॉनिक होता है। रक्त संचार की क्रिया तीव्र होती है। इसका प्रभाव विशेषकर प्लीहा, यकृत आमाशय, क्लोम ग्रन्थि एवं आंतों पर होता है। विद्युत चुम्बकीय शक्ति बढ़ जाती है। ठण्डे कटि स्नान के अभाव मे गीली पेट की पट्टी ली जा सकती है।

लाभ :– १. तीव्र बुखार, २. कोष्ठ बद्धता, ३. पेशाब की रुकावट, ४. तीव्र बुखार की बेचैनी में पेट एवं सिर की पट्टी, ५. प्रलाप, ६. अलीर्ण, ७. हैजा, ८. उदर शूल, ९. पेट की जलन, १०. गैस्ट्रिक ट्रबल, ११. तीव्र गैस्ट्रिआइटिस, १२. पेप्टिक तथा ड्यूडिनल अल्सर का दर्द, १३. अति मासिक स्राव, १४. स्वप्न दोष, १५. यकृत प्लीहा आमाशय, गुर्दा, छोटी आँत सम्बन्धी उपद्रवों में, १६. उल्टी, १७. तीव्र डिसेन्ट्री।

जलनेती (Nasal-washing) :

साधन और विधि :

पानी को उबालकर पुनः उसका तापक्रम 100°F से 102° पर लायें। जलनेति के लिये प्रयुक्त विशिष्ट प्रकार के नलीदार लोटे में उक्त पानी लेकर १० से १५ ग्राम पीसा हुआ सेंधा नमक डालकर चम्मच द्वारा असंतृप्त घोल बनालें। अब उकडू (कागासन में) बैठ जाएं। बायें हाथ की हथेली पर लोटा को रखें। सिर को सामने व थोड़ी दायीं तरफ झुकालें। लोटे

की नलिका को बायीं नासिका रन्ध्र में प्रविष्ट करें। दाहिनी नासिका रन्ध्र से पानी की पतली धारा प्रवाहित होने लगेगी। मुंह थोड़ा खुला रक्खें। श्वांस मुंह से लें, नाक से श्वांस लेने पर पानी सिर के तरफ चला जायेगा जिससे सिर दर्द , जुकाम इत्यादि उपद्रव हो सकते है। पुनः इसी क्रिया को दाहिना नासिका रन्ध्र से करें। इसके बाद कपालभाति क्रिया करें।

कपालभाति क्रिया (Brightness-clears up-the forehead) :

जलनेति करने के बाद कपालभाति क्रिया करनी चाहिये, क्योंकि इसके द्वारा नासिका में अवरुद्ध पानी तथा विजातीय पदार्थ (water and congested materials) निकल जाता है। दोनों हाथ को कमर पर रखें, बायें से दाहिने हाथ की कलाई को पकड़ लें, दाहिने हाथ की मुठ्ठी अंगुठा अन्दर रख कर बन्धी होनी चाहिये। ६० डिग्री कोण से आगे झुक जायें। गर्दन को बायें-दायें, ऊपर-नीचे लेजाकर तेजी के साथ श्वांस निकालें। २५ बार श्वांस क्रिया करने के बाद कमर पर रखें हाथ की मुठ्ठी बदलकर २५ बार पुनः करें।

बैठकर कपालभाति क्रिया अथवा भस्त्रिका प्राणायाम

साधन और विधि :

सुविधानुसार पद्मासन, सुखासन या सिद्धासन में रीढ को सीधा रखते हुये जायें, बायें हथेली को नाभि के सीध में सीधा रखें। दाहिने हाथ के अनामिका और मध्यमा अंगुलियो से बाई नासिका रन्ध्र को बन्द कर दाहिनी नासिका रन्ध्र द्वारा तीव्रता से श्वांस बाहर निकालें (रेचक) फिर उसी रन्ध्र से तीव्रता से श्वांस लेकर (पूरक); फिर इस रन्ध्र को अंगूठे से बन्द करके बाई नासिका रन्ध्र द्वारा तीव्रता से श्वास तीव्रता से श्वांस निकाल दें (रेचक)। फिर बाएं नासिका छिद्र से पूरक करें और दाहिनी से रेचक करें। इस तरह यथाक्रम से १०० से १५० तक लोहार की धोंकनी की तरह तीव्र गति से पूरक-रेचक क्रम से भस्त्रिका करें।

सूर्य किरण जल चिकित्सा (सा+आभा+भा) उदिता

भारतीय संस्कृति के प्राचीन आदि-इतिहास का अवलोकन करने से पता चलता है कि सूर्य की किरणों का उपयोग रोग निवारणार्थ वैदिक युग के सुसंस्कृत सुसभ्य वैज्ञानिक मानव करते थे।

ऋग्वेद तथा अथर्व वेद में मिलता जुलता एक सूत्र है—

"अनु सूर्यमुदयतां हृद्द्योतो हरिमा चते।

गो रोहितस्य वर्णान् तेन त्वा परि दध्मसि।।" अथर्व वेद१/५/२२/१

अर्थात् :– हे रोगग्रस्त मनुष्य तेरा सर्व हृदय रोग (हृदय की धड़कन तथा हृत-दाह आदि) और पीलक रोग सूर्योदय के समय ही नष्ट हो जायगा।

एक अन्य श्लोक है :–

"हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय

नमः सूर्याय शांताय सर्व रोग विनाशिने

आयुः आरोग्यमैश्वर्यं देहि देव नमोऽस्तुते।"

अर्थात :– हे सूर्य नारायण ! मेरे हृदय रोग का नाश करो। सर्व रोगों का विनाश कर शान्ति प्रदान करने वाले हे सूर्य देव, आपको शत्-शत् नमस्कार है। हे सूर्य भगवान ! आप हमें आयु, अरोग्य एवं ऐश्वर्य दें। आपको नमस्कार है। सूर्य-किरण चिकित्सा का वैज्ञानिक विश्लेषण अथर्ववेद के निम्न श्लोकों में देखिये –

"उद्यन्नादित्यः रश्मिभिः शीर्ष्णो रोग मनीनशत्:

"सूर्यातपः स्वेदघ्नं सर्वरोगविनाशक

भेदच्छेदकरश्चैव बलोत्साह विवर्धकः "

प्रातः काल की सूर्य किरणों से अनेक रोग दूर होते हैं। सूर्य किरणों द्वारा विजातीय विषाक्त द्रव्य पसीने के रूप में शरीर से बाहर निकलता है, फलतः विभिन्न रोगों का विनाश होता है। वे शरीर की चर्बी कोकंम कर शक्ति, उत्साह और आनन्द प्रदान करती हैं।

सूर्य किरणों से अनेक रोगों के निर्मूल होने का विधिवत वर्णन भी शास्त्रों में आया है, देखिये :–

"कफ पित्तोद्भवान् रोगान् वात रोगांस्तथैव च

तत्सेवनान्नरोजित्वा जीवेच्च्व शरदांशतम्।।"

दद्रु विस्फोट कुष्ठध्नः कामलाशोथनाशकः

ज्वरातिसारशूलानां हारको नात्र संशयः।।

अर्थात् आदित्य किरणों के नियमित प्रयोग से मनुष्य कफ, पित्त तथा वायु (वात) के असामंजस्य से उत्पन्न सभी रोगों से निर्मुक्त होकर सौ वर्ष जीवित रह सकता है।

दाद, कष्ट पूर्ण फुन्सियाँ, कोढ़, जल, शोथ, कामला, ज्वर, अतिसार तथा

उदरशूल आदि रोग सूर्य की किरणों से नष्ट होते है, इसमें लेश मात्र भी संदेह नहीं है।

अथर्ववेद में कहा गया है –

सं ते शीर्ष्णः कपालानि हृदयस्य च यो विधुः
उद्यन्नादित्य रश्मिभिः शीर्ष्णों रोगमनीनशोऽङ्गभेदमशीनशत्ः

अथर्ववेद ६/४/८/२२

अर्थात– हे आदित्य भगवान ! उदय होते ही तुम्हारी किरणों से शिर के समस्त रोग, तथा हृदय शूल का नाश हो गया और शरीर की तीव्र वेदना शान्त हो गयी। (सूर्य किरण चिकित्सा के विषय में विशेष जानकारी के लिए अथर्व वेद का अध्ययन अवश्य करें जिसमें सैंकड़ो मन्त्र इससे सम्बन्धित हैं।

आद्यात् = सूर्यविद्या

सूर्य की किरणों से जल तैयार करने की विधि :–

जिस रंग का पानी तैयार करना हो, उस रंग की बोतल को अच्छी तरह साफ कर लें। कुएं, नल अथवा झरने के साफ पानी को कपड़े से छानकर साफ की गयी बोतल में इस प्रकार भरें कि ऊपर से एक इंच अथवा चार अंगुली खाली रहे। झरने का जल अधिक गुणकारी होता है। जिस रंग की बोतल हो उसी रंग के कांच का ढक्कन होना चाहिये। कांच के ढक्कन के अभाव में लकड़ी के डाट उपयोग में लायें। डाट के नीचे साफ कॉटन लगाकर बोतल को इस प्रकार बंद करें कि वह वायुरुद्ध हो जाए। अब बोतल के चारों तरफ कपड़े से पोंछ लें।

बोतल को धूप में कैसे रखें ?

अब बोतल को धूप में जमीन या छत के सीधे सम्पर्क में न रखकर लकड़ी का चौखूंटा, तिपाई, टेबल अथवा पटिया पर रखें। जमीन, पत्थर या छत के सीधे सम्पर्क में न रखें क्योंकि जमीन विद्युत का सुचालक होने के कारण सूर्य किरण द्वारा जल में विद्युतीय गुण स्थिर नहीं हो पायेग। वह भूमिगत हो जायेगा यानि जल पूर्ण आवेशित नहीं हो सकेगा।

धूप कहां रखें ?

जल तैयार करने वाली बोतलों को घास, फूस, नाले, जमा हुआ पानी गड्ढे, कूडा-करकट से दूर स्वच्छ जगह खुली हवा में, जहां सूर्य की किरणें

बिना किसी रुकावट के सीधे आती हों, वहां रखनी चाहिये। जगह ऐसी होनी चाहिये जहां साढ़ें नौ बजे से लेकर शाम ५ बजे तक सूर्य की किरणें बराबर आती रहें।

धूप में रखने का समय :–

जल तैयार करने के लिये उपयुक्त समय १० बजे से लेकर ५ बजे तक माना जाता है। आकस्मिक आवश्यकता होने पर किसी समय साढ़े नौ से साढ़े पांच बजे तक के बीच में धूप में जल भरी बोतल ४ घंटा रखकर पानी उपयोग में लाया जा सकता है।

कैसे समझें जल तैयार हो गया :–

सूर्य की किरणों में रखी बोतलों के ऊपरी हिस्से के खाली भाग में जब वाष्प की नन्ही-नन्हीं बून्दे दीखने लगें तो समझना चाहिये कि जल तैयार हो गया। तैयार जल की अवश्यकता होने पर वाष्प की बूंदे दिखते ही बोतल हटाकर पानी को प्रयोग में लाना चाहिये।

विभिन्न रंगों वाली बोतलों में तैयार किये गये जल का प्रभाव तथा उपयोग (रंगावली):

लाल बोतल में तैयार किया गया जल :– लाल रंग की बोतल बहुत कम मिलती है, यदि मिल जाय तो बहुत अच्छा, नहीं तो सफेद बोतल पर लाल पारदर्शी कागज चिपका कर काम चलाया जा सकता है। लाल बोतल में पानी उपर्युक्त विधि से सावधानी पूर्वक जल तैयार करें।

प्रभाव :– इसका प्रभाव शरीर पर उष्ण होता है। स्नायु संस्थान को उत्तेजित करता है इसका प्रभाव विशेषकर अनुसंवेदी स्नायु संस्थान पर होता है। शरीर पर इसका बलदायक तथा विद्युतीय प्रभाव होने से शरीर में शक्ति आती है।

लाभ तथा उपयोग :

१. सभी प्रकार वातज व्याधि (Rheumatoid arthritis, Osteo arthritis, Non-articular, Gout, Ankylosing spondylitis, Acuteheumatism, Non-articular rheumatism) २. सभी प्रकार के सर्दी जुकाम जन्य रोग, ३. श्वांस कष्ट, ४. मोच, ५.उत्तकों का अपक्षय ६. पोलियोमायलाइटिस की तीव्र अवस्था, ७. सूखा तथा गीला एक्जिमा, ८. क्षय रोग (रक्त श्राव नहीं होता हो तब) इत्यादि में लाल रंग वाली बोतल

आवेशित जल का लपेट तथा पट्टी देनी चाहिये।

सावधानी :–

सिर्फ लाल रंग का पानी कभी भी पीना नहीं चाहिये, नहीं तो पीने से शरीर की गर्मी बढ़ जाती है तथा खून का दस्त भी आने लगता है। लाल रंग का पानी आंख में गिर जाने से आदमी अन्धा हो सकता है। लाल रंग के जल को अन्य रंगों के साथ मिश्रित कर पीने उपयोग में लाया जाता है।

नारंगी रंग की बोतल में आवेशित जल :–

उपर्युक्त विधि से सावधानी पूर्वक जल तैयार किया जाता है।

प्रभाव :– नारंगी रंग के जल का प्रभाव शरीर पर ताप उत्पादक होता है। रक्त वाहिनियों को उत्तेजित कर विस्फारित तथा संकुचित करता है। स्नायु संस्थान में चैतन्य निर्माण करता है। सहानुसंवेदी स्नायु संस्थान को उद्दीप्त करता है।

लाभ तथा उपयोग (आलाभा):–

नारंगी रंग के जल का उपयोग पीने, लपेट तथा पट्टी के रूप में किया जाता है। यह निम्न रोगों में उपयोगी होता है:–

१. वातज व्याधि (Rheumatoid arthritis, Osteo arthritis, Non-articular, Gout, Ankylosing spondylitis, Acuteheumatism, Non-articular rheumatism) २. सभी प्रकार के सर्दी जुकाम जन्य रोगों में, ३. दमा ४. शारीरिक शैथिल्य ५. हृदय की जलन।

सूचना :–

नारंगी रंग में आवेशित जल का उपयोग पीने में अधिक नहीं करें नहीं तो विभिन्न उपद्रव उत्पन्न हो सकते हैं। दिन भर में ३ से ४ बार लेना चाहिये। लाल रंग के अभाव में नारंगी रंग में आवेशित जल उपयोग किया जा सकता है।

पीले रंग की बोतल में तैयार किया गया जल :– शुद्ध पीले रंग की बोतल मिलना बहुत ही मुश्किल है, इसमें तीन प्रकार की बोतलें प्रायः मिलती है–१. लाली लिये हुए मिश्रित रंग वाली नारंगी रंग की, २. सुनहरे पीले रंग की, ३. फीके पीले रंग की। इन बोतलों में से किसी प्रकार के बोतल में सावधानी पूर्वक जल तैयार कर उपयोग में लाया जाता है। यह रंग

देखने में काफी लुभावना तथा प्रसन्नता दायक होता है।

प्रभाव :– इसका प्रभाव मस्तिष्क, हृदय, यकृत तथा प्लीहा पर विशेषकर होता है। पीले रंग के पानी का प्रभाव विरेचक तथा मूत्रवर्द्धक होता है। शिथिल स्नायु संस्थान तथा यकृत को चैतन्य बनाता है। शरीर में गर्मी उत्पन्न करता है।

उपयोग तथा लाभ :–

१. कब्ज, २. गैस्ट्रिक ट्रबल, ३. लीवर की खराबी, ४.विभिन्न प्रकार की मस्तिष्क विकृति, ५. पेट का दर्द, ६.प्लीहा का बढ़ जाना, ७. सूखी खांसी, ८. लकवा, ६. विषाद् रोग, १०. रति रोग, ११. नेत्र रोगों में, १२. पसली का दर्द, १३. दमा, १४ अन्य श्वास कष्ट, १५. बवासीर (मस्से पर पट्टी), १६. सारे शरीर का दर्द व सूजन, १७. स्नायु दौर्बल्य, १८. नपुंसकता, १६. मोटापा, २०. योनि शूल (डूस तथा पट्टी), २१. उपर्युक्त रोगों में आवश्यकतानुसार पट्टी, लपेट तथा पीने के रूप में आवेशित पीले जल का उपयोग किया जाता है।

निषेध :

अधिक मात्रा में पीने से पेट की गर्मी बढ़ जाती है तथा निम्न उपद्रव होते हैं :–

१. हृदय की तीव्र धड़कन
२. स्नायु संस्थान की तीव्र उत्तेजना
३. अतिसार
४. आक्षेप
५. सन्निपात प्रलाप
६. तंत्रिकावसाद
७. अन्य प्रदाहात्मक तथा उत्तेजक स्थिति में

हरे रंग की बोतल में तैयार किया गया जल :–

हरे रंग को सब रंगों का राजा माना गया है। यह नीले तथा पीले रंग के मिश्रण से बनता है। हरा रंग न अधिक गर्म होता है, न अधिक ठंडा होता है। यह गर्मी तथा सर्दी को सन्तुलित करता है। लाल तथा नारंगी रंग गरम होते हैं, नीला, हल्का नीला, बैगनी रंग खूब ठण्डे होते हैं जबकि हरा रंग मध्यम गुण वाला होता है। उपर्युक्त विधि से सावधानी पूर्वक हरे

रंग की बोतल में जल को आवेशित करें। आवेशित जल का उपयोग आन्तरिक तथा बाह्य दोनों ही प्रकार से किया जाता हैं। हरे रंग की बोतल भी तीन प्रकार की मिलती है– १. गहरे हरे रंग की, २. मध्यम हरे रंग की, तथा ३. हल्के हरे रंग की। ये तीनों रंग उपयोगी होते है। सुविधानुसार जो भी रंग मिले उसमें पानी तैयार करना चाहिये।

प्रभाव :– इसका प्रभाव शरीर पर मृदु उपशामक होता है। हरे रंग का जल रक्तशोधक होता है। शरीर में एकत्रित विजातीय पदार्थ को पेशाब, पाखाने तथा पसीने द्वारा बाहर निकालने में सहायक होता है। इसका प्रभाव नेत्र ज्योतिवर्द्धक, ज्वरहरण, रोगाणुनाशक तथा यौन शक्तिवर्द्धक होता है।

लाभ तथा उपयोग :- हरे रंग से आवेशित जल का उपयोग आवश्यकतानुसार पट्टी लपेट, प्रक्षालन, तथा मुख्यतः पीने में किया जाता है। यह निम्न रोगों में उपयोगी होता है:–

१. मूत्र संस्थान का प्रदाह, २. नाक से रक्त स्राव (सिर पर पट्टी),३. अनैच्छिक शुक्र स्राव, ४. खुजली, ५. सभी प्रकार की आंख की बीमारी, ६. हैजा, ७. डायरिया, ८. गला बैठना, ६. पेशाब रुकना, १०. कान बहना (पिचकारी से प्रक्षालित करें), ११. सभी प्रकार का सिर दर्द, १२. खूनी बवासीर, १३. कृमि रोग १४. पेशाब में जलन, १५. शरीर पर चकते होना, १६. चेचक, १७. रक्त प्रदाह, १८. पकने, सड़ने तथा बहने वाले दुर्गन्ध युक्त घाव, १६. किसी प्रकार का बुखार, २०. टाइफाइड, २१. खुला जख्म, २२. नासूर, २३. कैन्सर, २४. बहता एक्जिमा, २५. गर्भपात, २६. सिर का गंजापन, २७. घाव भरने के लिये हरे रंग की पट्टी विभिन्न नेत्र रोग में आवेशित जल से नेत्र को धोना चाहिये तथा बूंद-बूंद कर डालें।

नीले रंग की बोतल में आवेशित जल :– नीले रंग की बोतल जो उपचार के लिये प्रयोग में लायी जाती है, वह भी तीन प्रकार की होती हैं–१. गहरे नीले रंग की २. मध्यम नीले रंग की तथा ३. हल्के नीले रंग की उपर्युक्त विधि से सावधानी पूर्वक किसी प्रकार के नीले रंग की बोतल में जल तैयार करें।

प्रभाव :– नीले रंग के जल के प्रभाव से शरीर में विद्युत चुम्बकीय शक्ति की वृद्धि होती है। इसका प्रभाव दर्दनाशक ज्वरध्न, क्षुधा तृप्तिकारक, हरे रंग से अधिक उपशामक होता है। चयापचय क्रिया को समंजित करता

है। यह कीटाणुनाशक रक्त स्तम्भक प्रदाह अवरोधक शक्ति वर्द्धक तथा कब्जहारक होता है।

लाभ तथा उपयोग :- रोगी के आवश्यकतानुसार आवेशित गहरे नीले जल का उपयोग पीने, पट्टी, लपेट, प्रक्षालन तथा मालिश के रूप में किया जाता है। यह निम्न रोगों में रामबाण का काम करता है।

१. सभी प्रकार के चर्म रोग, २. जीर्ण अल्सर, ३. दांत तथा मसूढ़ों की पीड़ा, ४. मंदाग्नि, ५. कुपोषण, ६. बदहजमी, ७. सभी प्रकार के ज्वर, ८. निद्रा दोष ६. स्वप्न दोष, ११. तीव्र जुकाम, १२. कमजोरी, १३. क्षय, १४. सिर दर्द, १५. स्नायु दौर्बल्य, १६. तन्त्रिा अवसाद, १७. किसी अंग पर चोट लगना, १८. अधिक मासिक श्राव, १६. मिर्गी, २०. कर्ण रोग, २१. टायफाइड, २२. चेहरे पर मुँहासे, २३. फोड़े फुन्सी, २४. मुंह में छाले पड़ना, २५. अनियमित मासिक स्राव, २६. मच्छर तथा ततैया के काटने पर, २८. डिसेन्ट्री तथा २६. हिचकी इत्यादि।

निषेध :– वातज व्याधि, २. लकवा, ३. गठिया, ४. कफ तथा ठण्ड जन्य रोग, ५. सुप्तावस्था, ६. कोष्ठ बद्धता।

आसमानी रंग के बोतल से आवेशित जल :–

उपर्युक्त विधि से आसमानी (फीका नीला) रंग के बोतल से आवेशित जल विभिन्न रोगों के उपचारार्थ प्रयोग में लाया जाता है। आसमानी रंग की बोतल से आवेशित जल के प्रयोग से उपचार के दौरान कुछ उभार आते हैं, अतः ऐसी परिस्थिति में धैर्य रखना चाहिये।

प्रभाव : – आसमानी रंग का प्रभाव शरीर पर मृदु होता है। इस रंग में लाल रंग का उष्ण गुण तथा नीले रंग के शीतल गुण का सम्मिश्रित प्रभाव होता है। इसका प्रभाव कीटाणु नाशक तथा प्रदाह अवरोधक होता है। यह जैविक रासायनिक प्रभाव डालने वाला होता है। लाल रक्त कोशिकाओं की वृद्धि करता है तथा शिरीय रक्त कोशिकाओं को आवेशित कर, उनमें जीवन संचार करता है।

लाभ तथा उपयोग :– आसमानी (फीका नीला) रंग के बोतल से आवेशित जल का प्रयोग, पीने, लपेट, पट्टी तथा प्रक्षालन के रूप में आवश्यकतानुसार किया जाता है। यह निम्न रोगों में उपयोगी होता है :–

१. स्नायु जन्य अनिद्रा, २. अतिसार तथा अतिसार जन्य ज्वर, ३. मूर्च्छा,

४. वमन, ५. हैजा, ६.डीसेन्ट्री, ७. धातु दौर्बल्य, ८. रक्तार्श, ६. स्नायु दौर्बल्य, १०. पीलिया, ११. कुष्ठ रोग, १२. उन्माद, १३. अग्निमंदता, १४. दिल की धड़कन तेज होने पर, १५. गर्मी से आंख आने पर, १६. यकृत की सूजन, १७. सिर दर्द, १८. अधिक मासिक श्राव, १६. गले तथा मुंह के छाले, २०. विभिन्न प्रकार के घाव में, २१. कैंसर २२. यक्ष्मा इत्यादि।

नीला लोहित जामुनी तथा बैगनी रंग के बोतल से आवेशित जलः-

उपर्युक्त विधि से बैगनी रंग की बोतल में जल को आवेशित करें। अब आवेशित जल का बाह्य तथा आन्तरिक प्रयोग करें :–

प्रभाव :– शरीर पर बैगनी रंग आवेशित जल का प्रभाव जैविक रासायनिक होता है। इसका विशिष्ट प्रभाव अन्त स्रावी ग्रन्थियों पर होता है। अन्तः स्रावी ग्रन्थियां उद्दीप्त होकर हर्मोन स्राव में वृद्धि करती है। कैलसियम तथा फास्फोरस के चयापचय क्रिया में भी यह महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। अर्थात् शरीर में इसका अवशोषण बढ़ जाता है। शरीर की प्रतिशोधात्मक शक्ति बढ़ जाती है। ल्यूकोइट्श नामक श्वेत रक्तकण के बढ़ जाने से बाह्य इन्फेक्शन का प्रभाव कम हो जाता है। शरीर की बाह्य रक्तवाहिनियों को विस्फारित करता है। फलतः आन्तरिक अवरोध दूर होता है। सुपररिनल नामक अन्तः श्रावी ग्रन्थि पर इसके अवसादक प्रभाव से थायरायड ग्लैण्ड उत्तेजित होता है। फलतः उच्च रक्त चाप कम हो जाता है। रक्त शर्करा की प्रतिशत मात्रा में कमी आती है। इसका प्रभाव त्वचा उत्तकों अर्थात त्वगरक्तिम पर होता है। फलतः त्वचा को स्वाभाविक रंग का बनाये रखता है। इसके प्रभाव से रक्त संचार की क्रिया तीव्र होती है फलतः लसिका सम्बन्धी अवरोध दूर होता है। शरीर पर इसका प्रभाव उष्ण होता है लेकिन प्रदीपक प्रभाव होता है।

उपयोग तथा लाभ :– इसका उपयोग पीने, लपेट तथा पट्टी में किया जाता है। यह निम्न रोगों में उपयोगी है :–

१. स्नायु सम्बन्धी अनिद्रा, २. क्षय ३. रोगाणु जन्य बीमारियों में, ४. कुष्ट, ५. श्वेत कुष्ट, ६. चर्म रोग, ७. त्वचा दाग, ८. उन्माद, ६. मूर्च्छा, १०. उच्च रक्तचाप, ११. हृदय रोग, १२. हाइपोथायरायडिज्म, १३. मोटापा, १४. मधुमेह, १५. फोडे फुन्सी में १६. गैग्रीन, १७. कर्कटार्बुद, १८. तंत्रिका अर्बुद, १६. तंत्रिका सम्बन्धी रोगादि में हो सकता है।

उदितायामा – आमुख-त्रयी व पंचकोश

१. स्थूल शरीर – 'जीवात्मा' के समीप तक जाने के लिए मुख्य द्वार वा सिंह द्वार रूप सदृश पाञ्चभौतिक प्रत्यक्ष दीखने वाला यह 'स्थूल शरीर' है। इसके 'काया', 'देह', 'शरीर' आदि अनेक नाम हैं; किन्तु इस 'काया' के भी दो भाग हैं। उनमें से स्थूल भाग का नाम 'अन्नमय कोश' तथा दूसरे भाग का नाम 'प्राणमय कोश' है। यह दोनों मिलकर इस दुर्ग के स्वामी 'जीवात्मा' की मोटी-मोटी स्थूल सेवा करते हैं। इस 'काया' में 'जीवात्मा' की सेवा करने की अपनी शक्ति विद्यमान नहीं है। वह 'शक्ति' इसमें बसे एक और 'शरीर' की है, और उसका नाम है 'सूक्ष्म शरीर'।

२. सूक्ष्म शरीर – नस नाड़ी, मांस अस्थि रहित, वाष्प जैसे अत्यन्त चमकीले तत्त्व से बना, प्रत्यंगों से रहित, काया में व्यापक तत्त्व है; यही स्थूल देह का संचालक है। अर्थात् यह 'काया' जो कुछ कार्य करती है वह सब क्रियामात्र इसी सूक्ष्म शरीर की प्रेरणा व शक्ति द्वारा करती है; किन्तु इस प्रेरणा में 'ज्ञान' तथा 'क्रिया' ये दो शक्तियाँ मिली रहती हैं। इन दोनों शक्त्यिों के मिल जाने से जो शक्ति उत्पन्न होती है उस शक्ति का नाम 'जीवन' है। इसी जीवन से यह 'स्थूल शरीर' जीवित रहकर सब कार्यकलाप करता है। इस 'सूक्ष्म शरीर' के भी दो भाग हैं :–

१. क्रियाप्रधान भाग, जिसका नाम 'मनोमय कोश' है।

२. ज्ञानप्रधान भाग, जिसका नाम 'विज्ञानमय कोश' है।

आश्चर्य यह है कि यह 'जीवनी शक्ति' सूक्ष्म शरीर की भी अपनी नहीं है। इसे भी यह 'जीवनी शक्ति' प्रदान करने वाला, इसमें व्यापक वा वास करने वाला एक अन्य शरीर प्राकृत शरीर है, जिसका नाम 'कारण शरीर' है।

३. कारण शरीर – इसके लिंग शरीर, अव्यक्त शरीर आदि नाम हैं। यह 'कारण शरीर' 'सूक्ष्म शरीर' से भी अति सूक्ष्म है, इसे शक्ति देने वाला होकर भी वह रहता पृथक् है। इसका नाम 'आनन्दमय कोश' भी है। यह स्वयं प्रकाश का पुंज होकर भी 'जड़' है। इसमें भी जीवन प्रदान करने की अपनी कोई शक्ति नहीं है।

सुषुम्ना – सम्पूर्ण देह में मस्तिष्क द्वारा प्रसारित ज्ञान तथा क्रिया एवं आज्ञाओं के जाने का 'सुषुम्ना' ही मुख्य मार्ग है। कपाल की पश्चादस्थि

चक्रविवरण

नाम चक्र	स्थान	दल	दल-अक्षर	तत्त्व	तत्त्व बीज	बीज वाहन	देवता	लोक	गुण	देवशक्ति	यंत्र	ज्ञानेन्द्रिय	कर्मेन्द्रिय	ध्यान का फल
मूलाधार	गुदा व योनी	४	वं,शं,षं,सं	पृथ्वी	लं	ऐरावत हस्ती	ब्रह्मा	भूः	गन्ध	डाकिनी	ग	नासिका	गुदा	विद्या,आरोग्य प्राप्ति
स्वाधिष्ठान	पेडू	६	वं से लं तक	जल	वं	मकर	विष्णु	भुवः	रस	राकिनी	चन्द्राकार अर्द्ध	रसना	शिश्न	काव्य,योग प्राप्ति
मणिपूर	नाभि	१०	डं से फं तक	अग्नि	रं	मेष	वृद्ध रुद्र	स्वः	रूप	लाकिनी	त्रिकोण	नेत्र	चरण	विद्या, सामर्थ्य
अनाहत	हृदय	१२	कं से ठं तक	वायु	यं	मृग	ईशान रुद्र	महः	स्पर्श	काकिनी	षट्कोण	त्वचा	हस्त	ईशत्व, विवेक प्राप्ति
विशुद्ध	कण्ठ	१६	अं से अः तक	आकाश	·	हस्ती	पच वक्त्र	जनः	शब्द	शाकिनी	गोल	कर्ण	वाक्	वक्तृत्व, ज्ञान
आज्ञाचक्र	भ्रू-मध्य	२	हं, क्षं	महतत्त्व	ओ३म्	नाद	लिंग	तपः	×	हाकिनी	अण्डाकार लिंगाकार	×	×	वाक्यसिद्धि
सहस्रार	मस्तिष्क	सहस्र	अं से क्षं तक	तत्त्वातीत	विसर्ग (परम शिव)	बिन्दु	परब्रह्म	सत्यं	×	महाशक्ति	निराकार पूर्णचन्द्र	×	×	मुक्ति

में स्थित लघु मस्तिष्क के मध्य भाग के ही सम्मुख चतुर्थ कोष्ठ तथा सेतु के निम्न भाग से सुषुम्ना का निकास होता है; और इसका निवास मेरुदण्डनालिका में है। पश्चादस्थि के निम्न भाग से निकलकर मेरुदण्ड की ग्रीवा के प्रथम-कशेरु के बीच से होती हुई सुषुम्ना, ग्रीवा, पृष्ठवंश के कशेरुओं में से गुजरती हुई कटि प्रदेश के प्रथम-द्वितीय कशेरु के सम्मुख 'शंकु' के आकार की हो जाती है, यही 'शंकु-शिखर' है। यहाँ से आगे इसी शंकु की नोक से एक पतला श्वेत सूत्र निकलकर ७-८ इंच नीचे जाकर गुदास्थि से जा लगा है। यह सुषुम्ना का 'मध्य बन्धन' कहलाता है; यहाँ के प्रारम्भिक भाग में थोड़ा 'वात-तन्तु' और शेष भाग में 'सौत्रिक तन्तु' होता हैं। सुषुम्ना की लम्बाई १८ इंच, लगभग, मोटांई ग्रीवा में ३ इंच, कशेरु से वक्ष के प्रथम कशेरु तक के भाग का घेरा १/२ इंच, वक्ष के ६ वें से १२वें कशेरु के मध्य में सुषुम्ना की मोटाई एक इंच के लगभग होती है; शेष तो पूर्वोक्त श्वेत-सूत्र ही नीचे तक होता है। सुषुम्ना के सम्मुखी-भाग में एक सीधी घाई पड़ी है जो स्थूल-भाग तक ही रहती है। इसकी गहराई ७/८ इंच होती है। इस घाई के दाएं-बाएं पार्श्व समान होते हैं। दो कशेरुओं के संयोग से दाएं बाएं पार्श्व में एक नालिका बन जाती है। कशेरुकान्तरों से – सुषुम्ना के दाएं बाएं पार्श्वों में से नाड़ियों के ३१ युगल निकले हैं, जो वातसूत्र निर्मित हैं। सुषुम्ना के साथ जुड़ी प्रत्येक नाड़ी दो भागों में विभक्त हुई है। नाड़ी के अग्रिम भाग को 'पूर्वमूल' और पिछले भाग को 'पाश्चात्य मूल' कहते हैं। दोनों मूलों के मेल से ही पूरी नाड़ी बनती है। दोनों मूलों से सूत्र निकलकर, पाश्चात्यमूल के सूत्र सुषुम्ना में से भीतर घुसकर, फिर ऊपर को चढ़ते हैं, औरपूर्वमूल के सूत्र सुषुम्ना में से बाहर आकर शरीर में फैल जाते हैं। पूर्वमूल के श्वेतसूत्रों का सम्बन्ध पेशियों की गति से है और पाश्चात्यमूल के धूसर-सूत्र, जो सुषुम्ना में घुसे थे, पृष्ठवंश के अन्दर जाकर कशेरु, कशेरु बन्धन, सुषुम्ना-आवरण को चले जाते हैं। ये साम्वेदनिक तार अधिक पतले होते हैं और शिर, ग्रीवा वक्ष तथा उदर के पिछले भागों में चले गये हैं। पूर्वमूल से निकले श्वेत गति सूत्र ग्रीवा, वक्ष और उदर के पिछले भागों में चले गये हैं। आगे प्रथम और दूसरे कटि-कशेरुकान्तरों से इक्कीसवीं नाड़ी निकलती हैं; शेष १० नाड़ियां सुषुम्ना मे से तो निकल चुकी हैं परन्तु अभी कशेरु की नालिका के भीतर

ही हैं। इन सबके एकत्रित हो जाने से यहाँ कटि-प्रदेश में सुषुम्ना 'अश्व पुच्छ' के समान दीखती है। अतः इस नाड़ी समूह को ही 'अश्व पुच्छ' कहते हैं। फिर धीरे-धीरे इन नाड़ियों के बाहर निकल जाने से यह 'पुच्छ' आगे को पतली पड़ती जाती हैं। कटिप्रदेश में तो पूर्व और पाश्चात्य मूल की शाखाएं, कटि-कशेरु कान्तरों में से बाहर आती हैः किन्तु 'त्रिकदेश' की नाड़ियां, त्रिकास्थि के अन्दर, पूर्व और पाश्चात्य शाखाओं में विभक्त हो जाती हैं। पूर्वशाखाएं त्रिक' के अगले छिद्रों में से होकर वस्तिगह्वर में आ जाती है और पाश्चात्य-शाखाएं पिछले छिद्रों से निकल कर कटि प्रदेश में घुस जाती हैं। ग्रीवा में तीसरे कशेरु से लेकर वक्ष के प्रथम कशेरु तक के भाग से 'बाहुशाखा-सम्बन्धी' नाड़ियां निकलती हैं, और वक्ष वा पृष्ठ के नवें से बारहवें कशेरु के मध्य से टाँगों से सम्बद्ध नाड़ियां निकलती हैं। इस प्रकार यह सुषुम्ना-गति तथा ज्ञान बाहक सूत्रों से बना अध्यात्म विज्ञान का एक महान् सत् पथ है।

चक्र वर्णन

चक्रों के मूल केन्द्र कहां हैं, यह दर्शाते हैं। प्रत्येक चक्र का 'मूल' तथा 'शक्ति केन्द्र' उस सुषुम्ना काण्ड में है, मेरुदण्ड वा ब्रह्म दण्ड में स्थिति–यह ध्यान दृष्टि से देखा गया है। किन्तु चक्रों का प्रत्यक्ष दीखने वाला स्वरूप, मेरुदण्ड के बाहर निकले ज्ञानसूत्रों के गुच्छकों में, सम्मुख भासता है; ठीक ऐसे ही जैसे कि दर्पण की दूरी के अनुसार वस्तु का प्रतिबिम्ब दूर वा समीप दीखता है। साधकयोगियों को भी ये चक्र तथा सुषुम्नागत वज्रा-चित्रा आदि सूक्ष्मतम-नाड़ियां भी योगज-दृष्टि द्वारा प्रत्यक्ष होती हैं। और चक्रों के ये नाम ज्ञानवाहक तथा गतिवाहक सूत्रों से बनी नाड़ियों के हैं। प्रत्येक प्राथमिक साधक को यह चक्र बड़े स्थूल से सदा ही एक से न दीखने वाले, विभिन्न आकार प्रकार के दीखा करते हैं। किन्तु धारणा और ध्यान की दृढ़ता के साथ-साथ ये अधिकाधिक स्पष्ट एवं स्वाभाविक दशा में, सूक्ष्मताओं सहित दीखने लगते हैं। फिर भी यहां की सूक्ष्म गतिविधियां तथा अन्य सूक्ष्म विज्ञान तो 'संयम जय की अवस्था प्राप्त होने पर ही पूर्णतया तथा निश्चयात्मक रूप से प्राप्त विज्ञान द्वारा हो सकते हैं। यहां पर इन चक्रों के विषय में जो कुछ साक्षात् किया गया है उसका ही वर्णन होगा; अन्य ग्रथों को लेख

जो अनुभव में नहीं आया है उसका उसी रूप में संकेत भर कर दिया है।

इस विज्ञान का प्रयोजन-प्रकृति की रची इस अपूर्व महिमा को देखकर, चक्रों में उपयोगी विज्ञान को समझकर इस अन्नमयकोश में बनी आसक्ति को त्यागकर आत्म साक्षात्कार करके बन्धन मुक्त हो जाना ही इस विज्ञान का प्रयोजन है।

कुण्डलिनी वर्णन – प्रायः समस्त योगी समाज ही कुण्डलिनी का अस्तित्व स्वीकार करता है, और इसके जागरण से समस्त विज्ञान की क्रमिक प्राप्ति में विश्वास रखता है।

अर्वाचीनों की मान्यता – हठयोग–प्रतिपादक ग्रन्थों तथा तंत्रों के आधार पर इसका निवास स्थान आधार चक्र (मूलाधार) को ही माना है। यहाँ पर योनि स्थान में एक त्रिकोणात्मक 'अग्नि कोण' भी है। इस त्रिकोण योनि मण्डल के मध्यगत 'ब्रह्म-नाड़ी' के मुख में एक तेजोमय स्वयंभू-लिंग (पिण्ड) है। तथा ऊपर से सहस्रार में स्थित 'शिव लोक' में पहुंचने की प्रतीक्षा में यह 'आद्याशक्ति' इस पिण्ड पर लिपटी सर्पाकारा ३।। वलय-युक्त प्रसुप्त दशा में शंखाकारा प्रतीत होती है। इस त्रिकोण का सम्बन्ध सुषुम्ना से है और सुषुम्ना के मध्य से 'वज्रा' एवं वज्रा में 'चित्रा' और चित्रा के मध्यगत 'ब्रह्म नाड़ी का आवास माना जाता है। ये तीनों नाड़ियों 'शब्द-ब्रह्म' की प्रतीक हैं, ऐसा विश्वास किया जाता है, क्योंकि जागरित होने पर यह कुण्डलिनी ऊर्ध्वगा होकर, इन तीनों नाड़ियों को स्पर्श करती हुई चलती है। कोई तो चित्रा को ही 'ब्रह्म नाड़ी' कहते हैं, कोई दोनों का पृथक-पृथक अस्तित्व मानते है। 'ब्रह्म द्वार' इस नाड़ी का निचला सिरा ही है जो अवरुद्ध है। कुण्डलिनी के महत्त्पूवर्ण जागरण पर साधक की साधना बिना प्रयास ही आगे बढ़ती जाती है, ऐसी श्रद्धा भी लोग रखते हैं। किन्तु गुरु के शक्ति पात वा 'शक्ति प्रयोग' के बिना इसके जागरण को सम्भव नहीं माना है।

राजयोग की दृष्टि से और अनुभूति के आधार पर – कुण्डलिनी के विषय में ऐसा कहना उचित है कि मूलाधार में स्थित 'अपान प्राण' के साथ मनोबल के द्वारा जब 'ब्रह्मरन्ध्र' का सम्बन्ध स्थापित किया जाता है तब दोनों के संयोग से 'सुषुम्ना दण्ड' में उत्पन्न होने वाला प्रकाश ही कुण्डलिनी है; क्योंकि जिस समय यह प्रकाश अपने पूर्ण रूप में प्रकट होता है उस समय तो सुषुम्ना पथ सहित शरीर के विभिन्न भागों को भी अपनी दीप्ति

से, यथावत् रूप से दर्शाता हुआ फिर 'ब्रह्मरन्ध्र' में जा पहुंचता है; तथा ऐसी ही मान्यता 'कुण्डलिनी जागरण' से सम्बन्धित ग्रंथों में भी पायी जाती है। किन्तु यह आद्या 'ब्राह्मी शक्ति' का स्वरूप है, यदि इसे ऐसा मान भी लिया जाये तो सृष्टि उत्पत्ति के क्रमिक प्रकरण में किसी दार्शनिक ग्रंथ में इसकी उत्पत्ति का वर्णन नहीं मिलता, और सर्वमान्य 'पातंजल योग' जैसे प्रसिद्ध ग्रंथ में, तथा इस पर लिखे भाष्यों और टीका-टिप्पणियों में कहीं भी तो इसकी इस स्थिति का निर्देश नहीं मिलता। यद्यपि 'कुण्डलिनी' तथा 'चक्र' आदि के नाम भाष्य आदि में देखने में आये हैं। अन्य अनेक आलंकारिक वर्णनों के समान कुण्डलिनी महत्ता सूचक ही वे कथन हैं।

सुषुम्ना का 'शिरा' तो लघु मस्तिष्क के सामने ही कुछ ऊपर की ओर है और वहां से प्रारम्भ होकर यह सुषुम्ना, पृष्ठवंश में से होती हुई, नीचे पुच्छस्थित से संयुक्त हो गयी है, और एक रबड़ की नालिका के समान अन्दर से पोली है। ऊपर से लेकर नीचे तक एक दृष्टि से देखने पर यह आकार एक 'सर्प' से मिलता जुलता है; संभवतः इसी कारण, इसमें स्थित अन्य कई भास्वर नाड़ियों के दीखने पर, उस अतिसूक्ष्म नाड़ी-समूह को 'कुण्डलिनी' का आलंकारिक नाम दे दिया गया हो। अब सुषुम्ना के दाएं पार्श्वगत नाड़ी को 'दक्षिण-नाड़ी', 'सूर्य नाड़ी' 'पिगला' 'यमुना' भी कहते हैं; और वाम भाग नाड़ी 'इड़ा' है, जिसे वाम नाड़ी' 'चन्द्र नाड़ी' एवं 'गंगा' भी कहते हैं; सुषम्ना को सरस्वती भी कहते हैं। ये तीनों नाड़ियां मूलाधार से प्रारम्भ होकर मेरुदण्ड के मध्य में से होती हुई, सुषुम्ना और कशेरुकाओं के पार्श्ववर्ती दाई और के छिद्र से पिगला और बांई ओर के छिद्र से इड़ा ऊपर को चली गयी हैं और भ्रू मध्य के अन्दर जाकर तीनों मिल गयी हैं। इसके संगम स्थल को 'मुक्तत्रिवेणी' भी कहते हैं। अब आलंकारिक भाषा में कहा जा सकता है कि यह सब चक्र सुषुम्ना के साथ लगे ऐसे प्रतीत होते है जैसे गुलाब की लतिका में गुलाब की मुकुलित कलियां लगी हों, अथवा कमल नाल में लगी कमल कलिकाएं झूल रही हो। ये कुण्डलिनी जागरण रूप रवि रश्मियोंके संस्पर्श से खिल उठती हें। यह सत्य है कि 'ब्रह्म नाड़ी' जिसे कुण्डलिनी कह लो, विद्युन्मयी सूक्ष्मता नाड़ी की ज्योति से ये चक्र ऐसे ही भासते हे जैसे विभिन्न रत्नों की कणिकाएं किसी स्वर्णमयी जगमगाती तार में टंगी हों।(तान्त्रिकाभावता)–

कुण्डलिनी और इसका जागरण – कुण्डलिनी क्या है ? इसे वैज्ञानिक ढंग से इस प्रकार समझिये कि हमारे पृष्ठवंश के निम्नतम स्थान 'पुच्छास्थि' से ऊपरी अस्थि और 'त्रिकास्थि' की निचली अस्थि के संयोग पर वंश मूल (बांस की जड़) के समान एक समान एक नाड़ी गुच्छक है; यही स्थान 'मूलाधार' वा 'आधारचक्र' का है। स्पष्ट ही मल मूत्र की नालियों से घिरा होने के कारण देह का सबसे निकृष्ट, मलिन दूषित स्थान यही है। मूलाधार चक्र का आकार प्रकार, स्थिति तथा अन्य ज्ञातव्य बातें चित्र संख्या ६ से स्पष्ट हो जाती हैं। इस नाड़ी गुच्छक के मध्य में एक अति छोटे 'लाटू' वा काले अंगूर के समान त्रिकोणाकार उभार है। इस स्थान में इधर-उधर से आकर अनेक ज्ञानतन्तु तथा गतिवाहक सूत्र मिलते हैं। इस कारण यह स्थान एक त्रिकोण मण्डल के समान दीखता है इस त्रिकोण के एक कोण (संख्या १) से इड़ा (२) से पिंगला (३) से सुषुम्ना निकलकर पूर्वकथित प्रकार से मेरुदण्ड के (सामने से देखने पर) बाएं दाएं और मध्य में से जा रही हैं। इस त्रिकोण में बने बिन्दु के स्थान में स्थित, सूक्ष्म अण्डाकृति एक मांस पिण्ड से मकड़ी के जाले के तार के समान अति सूक्ष्म, तथा छोटी सी नाड़ी लिपटी है; इसी को हठयोगीगण 'कुण्डलिनी' कहते हैं। शेष वज्रा आदि नाड़ियों भी साम्वेदनिक सूक्ष्म नाड़ियां हैं। इस प्रकार ये सब 'चक्र' स्थूल देह गत मकड़ी के सूक्ष्म तन्तुओं के समान महीन ज्ञानवाहक सूत्रों के गुच्छे ही हैं, जो 'विज्ञानमयकोश' की आभा से सदा भास्वर रहते हैं। किन्तु देह के मलाक्रान्त रहने से ये चक्र साधारण अवस्था में नहीं दीखते। तभी योगदर्शन में कहा है–

ततः क्षीयते प्रकाशावरणम्। (योग०पा० २। सू०५२)

अर्थात् प्रकाश को रोकने वाले तमोगुण के नष्ट हो जाने पर यह आन्तरिक सर्वदर्शन सम्भव हो जाता है।





कुण्डलिनी जागरण – कुण्डलिनी जागरण का स्वरूप तो ऐसा है जैसे सब प्रकार की सज्जा से सुसज्जित कमरे में, जहाँ विद्युत तारों के साथ विभिन्न आकृति के रंग बिरंगे बल्ब, ग्लोब, झाड़फानूस, पंखे आदि लगे हों, किन्तु वहाँ अंधकार का राज्य हो तो कुछ भी दिखायी नहीं देता, किन्तु बटन (स्विच) दबते ही वहाँ पर जहाँ तहाँ लगे प्रकाश के केंद्रों द्वारा प्रकाश फैल जाता है, पंखे चलने लगते हैं, जिधर दृष्टि जाती है वहाँ पर रखे पदार्थ यथावत् दीख पड़ते हैं। ऐसे ही तपस्वी साधक की निष्ठा के साथ भक्तवत्सल भगवान की प्रेरणा से निःस्वार्थी योगपारंगत आचार्य का स्नेहस्रोत मिल जाता है, तब पूर्वोक्त 'दिव्यज्योति' प्रकट होकर क्रियाशील हो जाती है। तब मानो देहगत स्विच दबा दिया जाता है, इस स्विच के दबते ही सुषुम्नागत तारपुंज में 'मानस विद्युत' के संचार से स्थूल देह सहित अन्तःशरीर प्रदीप्त हो उठता है और 'चित्त' का सम्बन्ध देहाध्यास से छूट कर, अन्तर्मुख होकर आन्तर जगत् से आबद्ध हो जाता है–जा जुड़ता है। तब यह 'दिव्यज्योति' सुषुम्ना में प्रविष्ट होकर इसे प्रदीप्त करती हुई, सौषुम्न-नलिका में प्राण का संचार करती, स्थान स्थान पर मकड़ी के जाले के समान सूक्ष्म-स्नायुजाल से बने चक्रों को फुलाती, अपनी दिव्यता से उन्हें दमकाती, खिलती, ज्ञान और क्रिया के आवागमन की बाधा को हटाती, वहा की क्रियाओं का यथावत् साक्षात्कार कराती, देह के अस्थिपंजर सहित नस नाड़ियों को दर्शाती सहस्रार तक चली जाती है। इस अवस्था में तो मूलाधार, हृदय, आज्ञाचक्र तथा लघुमस्तिष्क आदि ६-७ स्थानों में विशेषरूप से सम्बद्ध 'सुषुम्ना' के इन केन्द्रो से टार्च की प्रकाशमयी बद्ध धारा के समान ही 'ज्योति धारा' निकला करती है। इस धारा को यदि देह के आन्तरिक किसी भाग से अथवा देह के बाहर 'समष्टि जगत्' के किसी भाग के साथ भी जोड़ दिया जाये तो वहाँ का समस्त विज्ञान करतलधृत आंवले के समान साक्षात् हो जाता है। इसमें संदेह नहीं है। वस्तुतः यह 'सम्प्रज्ञात समाधि की ही एक विशेष उच्चतर अवस्था वा भूमिका प्रकट हो जाती है। यदि ऐसी दिव्य अवस्था प्रकट हो जाये तो साधक को अपने किन्हीं अदृष्ट पुण्य पुञ्ज का सुफल मिला समझना चाहिए। कुशाग्र-बुद्धि साधक तो इस अवस्था में ब्रह्मरन्ध्रगत 'विज्ञानमयकोश' का तथा हृदयगत 'आनन्दमयकोशवर्त्ती आत्मविज्ञान को दिगदर्शन कर सकता है निश्चत ही। इस समय सत्त्वगुण

का अधिकार होने से, कांच के बने देह के समान साधक का देह भीतर बाहर से जगमगा रहा होता है और इस समय वर्षों का कार्य कुछ घण्टों में हो जाता है, एवं योग का मार्ग अति छोटा और सुगम हो जाता है। यद्यपि विज्ञान में विशेष प्रगति तथा प्रवीणता प्राप्त करने के लिए लगातार समाधि साधना चलती रहती है, किन्तु शुष्क और कठिन मार्ग से साधक पार निकल जाता है, और इस अपूर्व दिव्य दर्शन से साधक की जो आनन्दमयी अवस्था प्रकट होती है वह अकल्पनीय के साथ अवर्णवनीय भी है। साधक का अन्तःकरण सत्त्वोद्रेक से इतना भर जाता है कि वह इस समय अपने सर्वस्व को एक तृण के समान गुरुदक्षिणा के रूप में भेंट कर सकता है।



२. ज्ञान नेत्र अथवा 'तृतीय नेत्र' कहलाने वाले आज्ञाचक्र में ऐसी क्या विशेषता है जिसके कारण इसे 'ज्ञान नेत्र' आदि नाम दे दिये गये हैं। इस विषय में यह है कि प्रसिद्ध कपाल प्रदेश के भीतर मध्य मस्तिष्क में 'ब्रह्मरन्ध्र' वा 'सहस्रार' में ही मनुष्य का सूक्ष्मशरीर रहता है। यहीं पर मनोमय तथा विज्ञानमय कोशों के साथ इनके अध्यक्ष 'मन' तथा 'बुद्धि' का निवास भी है। ये दोनों मिलकर इन्द्रियों के द्वारा ज्ञानोपलब्धि करने में समर्थ बनते हैं। किन्तु जब किसी अतीन्द्रिय, दूरस्थ, वा कहीं पर छिपे पदार्थ-विषयक विज्ञान की प्राप्ति के लिए 'चित्तमण्डल' से उठकर 'बुद्धिमण्डल' में आंत्मसंकल्प प्रस्फुटित होता है तब यह 'दिव्यदृष्टि' कभी सीधी ही और कभी आज्ञाचक्र के मार्ग से बाहर को फैल जाती है और विश्वब्रह्माण्ड में अपनी रश्मियों द्वारा कहीं पर भी स्थित उस पदार्थ से संयुक्त होकर

तद्-विषयक सब निर्णय करा के अहंकार के द्वारा हृदयगत 'आत्मा' के समीप चित्त में भेज देती है। यद्यपि 'आज्ञाचक्र' में अपना प्रकाश भी उत्पन्न होता है, तथापि 'दिव्यचक्षु, का प्रकाश मनोबल की सहायता पाकर दिव्य एवं अति दूरगामी बनकर कार्य करता है, मनो 'नेत्र' पर दिव्य 'दूरवीक्षण' लगा दिया गया हो। इसी प्रकार 'दिव्य नेत्र' वत् दूसरी इन्द्रियां मनोबल से असाधारण शक्ति से युक्त होकर अतीन्द्रिय पदार्थों का रूपवत् शब्द और स्पर्शात्मक विज्ञान कराने में समर्थ हो जाने पर अपनी सीमा तथा शक्ति से अधिक कार्य कर जाती हैं। जैसे हमारे स्थूलदेह में विभिन्न पदार्थों के ग्रहण तथा निस्सरण के लिए भिन्न-भिन्न 'पथ' बने हुए हैं, वैसे ही इस 'दिव्यनेत्र' की रश्मियाँ 'प्रकाशधारा' 'आज्ञाचक्र' के पथ से तथा सीधी भी आती जाती हैं। अर्थात् 'दिव्यदृष्टि' की इन संगठित सी रश्मियों को यह 'आज्ञाचक्र' बाहर फेंकता है– प्रतिक्षिप्त करता है। सहस्त्रार के समीप ही 'आज्ञाचक्र' की स्थिति या रचना यह सिद्ध करती है कि संकल्प के साथ ही 'दिव्यनेत्र, की रश्मियाँ झट बाहर निकल 'जीवात्मा' की आज्ञा का तुरन्त पालन करती हैं। प्रायः 'आज्ञाचक्र' के द्वार से यह बौद्धिक संकल्प बाहर जाकर कार्य करता है। जाग्रतकाल में हमें इस तथ्य का भान नहीं होता है। कथा में जो 'मदन दाह' का दृश्य चित्रित किया गया है वह इसी तथ्य का पोषक है कि भगवान् 'रुद्र' ने अपना संकल्प इसी अभ्यस्त 'आज्ञाचक्र' के मार्ग से भेजा था। 'शंकर' जैसे दिव्य, सिद्ध पुरुष इसी द्वार से 'शाप' और 'वरदान' के द्वारा किसी को 'अपकृत' तथा 'उपकृत' कर देते थे, और यह ठीक है कि योगपथ में प्रवेश किये बिना सर्वसाधारण पर यह रहस्य नहीं खुलता, क्योंकि यह भी अतीन्द्रियज्ञान है। इस प्रकार यह एकदेशी 'जीव' इस स्थूलदेह में आबद्ध हुआ भी 'आज्ञाचक्र' के दिव्यद्वार से झांक कर सम्पूर्ण सृष्टि का अवलोकन, उपकार अपकार भी कर सकता है। संयमजयी 'सिद्धपुरुष' तो सीधे अपनी प्रतिभा के द्वारा ही सब विज्ञानों की प्राप्ति में सफल हो जाते हैं।

सूक्ष्म शरीर के दर्शन का दूसरा प्रकार – योगी को अपने सूक्ष्मशरीर का इस प्रकार से भी यदा कदा दर्शन हुआ करता है :– ध्यान में स्थित हो जाने पर सर्व संकल्प-विकल्पों का अभाव होने के पश्चात् जब ध्यान द्वारा अपनी योगी समाधि में प्रवेश करता है, उस समय मध्यमसा प्रकाश उदित होता है और वह फैलने लगता है। उसमें साधक को भान होने लगता

है कि 'मैं ध्यानस्थ होकर इस प्रकाश में बैठा हूँ और कुछ देर के पश्चात् चन्द्रिका के समान धवलप्रकाश –टार्च की धारावत् की धारावत् बंधा-दक्षिण पार्श्व से आता है। उस प्रकाश में 'मैं नाभि के ऊपर हृदय में ही कुछ दूरी पर तीन चार इंच की लम्बाई-चौड़ाई में ध्यानस्थ हूँ। इसके चतुर्दिक् शुभ्र आभायुक्त सूक्ष्मप्रकाश का एक मण्डल है। पुनः यह भी भान होने लगता है कि स्थूलदेह धूमिल वर्ण का है और इसमें बैठे हुए अपने सूक्ष्म शुभ्र देह को भी देख रहा हूं। इसके कुछ ही क्षण पश्चात् उस लघु सी काया या शरीर में एक रुपये से सदृश आकृति वाला एक तीसरा दिव्य तेजोमय शरीर-ध्यानावस्था में अवस्थित प्रकट होता है। ध्यान की स्थिर तीव्र दृष्टि से देखने पर समीपस्थ दोनों देह तेजोयुक्त प्रतीत होते हैं, और इस तेजयुक्त पारदर्शक देह के हृदय प्रदेश में दीप्तिमान् शुभ्र छोटा सा एक तेजोमय पिंड वर्तमान होता है। एक क्षण पश्चात् ही ऐसा अनुभव होने लगता है कि 'मैं इस लघु देह में स्थित हूं। इस लघु देह में बैठा इस लघु काया के हृदय प्रदेश में विराजमान तेजःपुञ्ज से भास्वर हो उठा हूं। फिर लघु सी काया लुप्त या अदृश्य होने लगती है; परन्तु शेष दोनों देह पूर्वावस्था में ही स्थित होते हैं। इस समय योगी को ऐसा लगता है मानो इसी तेजःपुञ्ज की ज्योति में 'मैं स्थित हूं।' इस तेजःपुञ्ज के अतिरिक्त अन्य कोई भी आकृति प्रतीत नहीं होती। इस तेजःपुञ्ज से मानो आस-पास का समस्त प्रदेश प्राकाशित होने लगता है। जहां तक ध्यान की दिव्यदृष्टि जाती है सर्वत्र प्रकाश ही प्रकाश प्रतीत होने लगता है। इस स्थिति में योगी को देश, काल, दिशा आदि का कुछ भी भान नहीं रहता। इस ध्यान की सूक्ष्म अवस्था में उपर्युक्त दृश्य या विज्ञान के अतिरिक्त और कुछ भी भान नहीं हुआ करता। योगी उपरिलिखित स्थिति में स्थूल देह से अपने सूक्ष्म शरीर में और फिर कारण शरीर में दिव्य तेजोमय प्रशान्त आत्मा को चित के अन्दर चित्त सहित देखता है। इस आत्म दर्शन के आगे निर्विकल्प या स्वरूप स्थिति की अवस्था होती है, जहां केवल दिव्य प्रकाश और आनन्द के सिवा कुछ भी नहीं होता, क्योंकि उस समय ज्ञान एवं ज्ञान के कारणों या साधनों का और स्मृति-वृत्ति का अभाव हो जाता है। उस समय आत्मा की स्वरूप में स्थिति हो जाती है। इसके पश्चात् व्युत्थान होने पर उस अन्तिम अवर्णनीय स्थिति अर्थात् स्वरूप स्थिति की कुछ भी स्मृति नहीं रहती है,

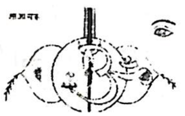
क्योंकि सब कारणों का अभाव हो चुका होता है।

व्यष्टि बन्धन – चारों कोशों का अतिक्रमण करता हुआ योगी कुछ ही काल के पश्चात् अपने आपको एक इंच मोटे और दो इंच लम्बे अण्डाकार जाज्वल्यमान पिण्ड में देखने तथा अनुभव करने लगता है, और उसे ज्ञान होने लगता है कि 'मेरे सम्मुख आकाश में जहां तक दृष्टि जाती है वहां तक इस ज्योतिर्मय पिण्ड से निर्झरित प्रकाश निकलकर फैल रहा है और मुझे इस सीमा में बांधे हुए है। मैं स्वतन्त्रता से स्वेच्छाचारी होकर दूर तक क्यों नहीं जा सकता ? इस सीमा में बांधनेवाली व्यष्टि अहंकार की जंजीर या परिधि है। इसी पिंड से ज्योति के परम सूक्ष्म स्फुलिंग निकलने रहते हैं। इन कणों के संकोच विकास रूप निःसरण काल में एक विचित्र सी अनुभूति होती है। इस संकोच निकासमयी क्रिया के दर्शन काल में इस ज्योति की द्युति चन्द्रिका से प्रतिबिम्बित दर्पण अथवा पारद (मर्करी) दण्ड की शुभ्र द्युति के समान उज्ज्वल और सौम्य होती है। इस अनुपमेय सौम्य ज्योति की संसार में कोई भी तुलना हो ही नहीं सकती। ज्योतिष्पिण्ड के केन्द्र में स्थित सुप्रदीप्त हीरककणिकासम दिव्य तत्त्व जो आकार में सूक्ष्माति सूक्ष्म होता हुआ भी दिव्य तनु स्थिर निष्क्रिय प्रतीत होता है, किन्तु जिस ज्योति मण्डल में यह स्थित है वहाँ इसके चतुर्दिक् ऐसी सूक्ष्म, सुन्दर, निस्तरङ्ग मन्द गति निरन्तर हो रही होती है जैसी कि दोपहर के समय मरु मरीचिका प्रदेश में दीखा करती है। इस गतिमय प्रदेश में इस दिव्य कण को लपेटे, मकड़ी के जाल से भी सूक्ष्म, सुहावना, छायावत् बना वृत्त भी मन्दगति से हिलोर लेता है। यह दिव्य बड़ा मनोहर, शान्ति और आनन्द प्रद होता है। इस नगण्य गति के दर्शन से यह भाव जागृत होता है कि यह ज्योतिष्मान् पिंड तो 'चित्त सत्त्व' है और इस 'चित्त' मण्डल में उत्पन्न गति या क्रिया का कारण ध्रुव, निष्क्रिय, अत्यन्त सूक्ष्म से भी सूक्ष्म चेतनात्मा के साथ चित्त सत्त्व का संयोग है; एवं गतिमय चित्त-मण्डल की आभा से आभासित हो रही पतली सी छायावत् अस्मिता जो 'अहमस्मि' या 'अस्मि' के रूप में अपने अस्तित्त्व की बोधक है, यही अस्मिता का एक दर्शन है।

कोशों में तथा देहों में आने-जाने के पथ का अन्वेषण – जब योगी ध्यानस्थ होकर मूलाधार में प्रवेश करता है अथवा भ्रूमध्य से मस्तिष्क में प्रवेश करता है तो एक दिव्य प्रकाश उत्पन्न होकर उसके द्वारा

'अन्नमयकोश' में या स्थूल शरीर में नस नाड़ी अथवा सप्त धातुओं का या कंठ हृदय नाभि इत्यादि सब प्रत्यङ्गों का साक्षात्कार करने लगता है। इस स्थूल शरीर का सब प्रकार से साक्षात्कार कर 'प्राणमयकोश' में प्रवेश किया जाता है। इस स्थिति में 'अन्नमयकोश' का भान जाता रहता है और अपने शरीर को मध्यम सा प्रकाशमय हल्का फुल्का समझने लगता है; जैसे, यह मेरा 'प्राणमयकोश' 'अन्नमयकोश' से पृथक् है और उसको अपने गर्भ में धारण करके संचालित कर रहा है, इस प्रकार की अनुभूति होने लगती है—'प्राण मयकोश' के अंगों को अपान, समाधि के भेद से भी अनुभव करने लगता है। यही पथ 'अन्नमयकोश' से 'प्राणमयकोश' में जाने का है।

इसके पश्चात् 'प्राणमयकोश' से निकलकर 'मनोमयकोश' और विज्ञानमयकोश' में प्रवेश करता है। इनका मुख्य केन्द्र ब्रह्मरंध्र है जो 'अन्नमय' तथा 'प्राणमय' कोशों को अपनी दिव्य रश्मियों से आच्छादित किये रखता है। यह सूक्ष्म शरीर प्रकाशमय आवरण के समान इस स्थूल देह को आच्छादित किये हल्का सा चंद्रकिरणों जैसी वाष्प के समान होता है। यह १७ पदार्थों से निर्मित मकड़ी के जाले से भी सूक्ष्म, ज्योतिर्मयी दिव्य रश्मियों से युक्त, 'आनन्दमय कोश' या कारण शरीर को आच्छादित किए रखता है, इसके सर्व व्यापार और कार्यों का साक्षात्कार करके फिर 'आनन्दमयकोश' या 'कारण शरीर' में योगी का प्रवेश होता है। इस 'आनन्दमयकोश' या 'कारण शरीर' का मुख्य केन्द्र है 'हृदय प्रदेश' इसमें दिव्य ज्योतियों का पुंज अण्डाकार के रूप में वर्तमान रहता है। इसी के द्वारा हृदय से ब्रह्मरन्ध्र तक संस्कारों का गमना गमन सदा होता रहता है। इन्हीं रश्मियों के द्वारा योगी ध्यान की तीव्र दृष्टि से देखता हुआ 'ब्रह्मरन्ध्र' से हृदय प्रदेश में पहुंच जाता है। यह एक पथ ऊपर से नीचे उतरने का है।







पंच कोश विज्ञान
(पंचामृताराधिका)

१. अन्नमय कोश

यह जो देह हम धारण किये हुऐ हैं अन्नमय कोश कहलाता है। यह अन्न से ही जीता है और उसके बिना नष्ट हो जाता है यह त्वचा, मांस, रूधिर, अस्थि एवं मल का समूह है। आत्मा इसे गृह की भांति उपयोग करता है। यह जन्म से पूर्व और मृत्यु के पश्चात भी नहीं रहता। आत्मा मनुष्य (जीव) का निज स्वरूप है जो शरीर के नष्ट होने पर भी जीवित रहता है। शरीर के अंग भंग होने पर भी तथा उसके नष्ट होने पर भी मनुष्य सूक्ष्म लोक में जीवित रहता है इसलिये शरीर मनुष्य का स्वरूप नहीं है। जिस प्रकार घर मनुष्य नहीं हैं, उसके भीतर रहने वाला मनुष्य है। शरीर को अपना स्वरूप मानना एवं इसी के रक्षण-पोषण में लगे रहना ही मोक्ष प्राप्ति में बाधा है। मनुष्य के जन्म मरण का एकमात्र कारण उसके शरीर बुद्धि ही है।

२. प्राणमय कोश

पांच कर्मेन्द्रियों से युक्त यह प्राण ही प्राणमय कोश कहलाता है। जिससे युक्त यह अन्नमय कोश अन्न से तृप्त होकर समस्त कर्मों में प्रवृत्त होता है। प्राणों के निकल जाने पर ये इन्द्रियां यथावत रहते हुये भी अपनी सक्रियता खो देती है। प्राणों का कार्य इन इन्द्रियों को एवं समस्त शरीर को सक्रिय बनाये रखना है। यह वायु का विकार है, वायु के समान ही बाहर भीतर आने जाने वाला है। यह विद्युत की भांति कार्य करता है जिस प्रकार विद्युत से यंत्र संचालित होते हैं उसी प्रकार की क्रिया इससे होती है। यह प्राण सर्वव्याप्त है।

३. मनोमय कोश

शरीर का तीसरा बड़ा व्यापक कोश मनोमय कोश है। यह कोश समस्त ज्ञानेन्द्रियों का कारण है तथा जिसे मनुष्य 'मैं' और 'मेरा' कहता है उसका कारण भी यही कोश है। यह सबसे बलवान कोश है तथा जीव की समस्त क्रियायें इसी के आदेशानुसार संचालित होती हैं। यह अन्न मय एवं प्राणमय

कोश का संचालन करता है।

मन ही मनुष्य के बन्धन और मुक्ति का कारण है। जब यह विषयासक्त हो जाता है तो बन्धन है और जब यह निर्विषय हो जाता है तो वही मोक्ष है। मन का निर्विषय होना ही उसकी मृत्यु है। विषय ही उसका भोजन है जिससे वह जीवित रहता है। यह मन अग्नि के समान है। जिसमें पांचों ज्ञानेन्द्रियां विषय रूपी घृत को आहुति देती है। जिससे इसकी वासना रूपी अग्नि प्रज्वलित होती है किन्तु जब इस अग्नि में विषयों का ही हवन कर दिया जाता है अर्थात् विषयों के प्रति वैराग्य कर लिया जाता है तब यह मन बन्धन मुक्त हो जाता है।

४. विज्ञानमय कोश

यह बुद्धि का कोश है जो आत्मा के सबसे निकट है। इसके कारण मनुष्य में अहँ भाव उत्पन्न होता है। जिससे वह अपने को आत्मा से भिन्न समझने लगता है, मनुष्य के जन्ममरण का यही कारण है। जिस प्रकार मिट्टी से घड़ा भिन्न नहीं है बल्कि उसी का रूप है उसी प्रकार यह विज्ञानमय कोश भी उस आत्मा से किसी प्रकार भिन्न नहीं हैं। उसी का रूप है तथा उसी के गुणों वाला है। किन्तु अहं भाव के कारण यह अपने को आत्मा से भिन्न मानने लग जाता है। इस अज्ञान का नाश होने पर यह स्वयं ही आत्मस्वरूप हो जाता है।

आत्मा का स्वरूप तो एक ही है। किन्तु उपाधि भेद से उसके गुणों से युक्त होकर प्रकाशित होता है जैसे एक ही पुरूष उपाधि भेद से कहीं पिता, कहीं नौकर, कहीं सैनिक, कहीं इंजीनियर, कहीं पुत्र, पति आदि कहा जाता हैं जिस प्रकार एक ही अग्नि लोहे, लकडी, विद्युत के साथ संयुक्त होकर भिन्न-भिन्न नामों से पुकारी जाती है उसी प्रकार वही आत्मा बुद्धि रूप में प्रकाशित होती है। यह आत्मा को भुलकर स्वयं को आत्म स्वरूप मानने लगता है इसी से यह जन्म मरण रूप चक्र से गुजरता है।

५. आनन्दमय कोश

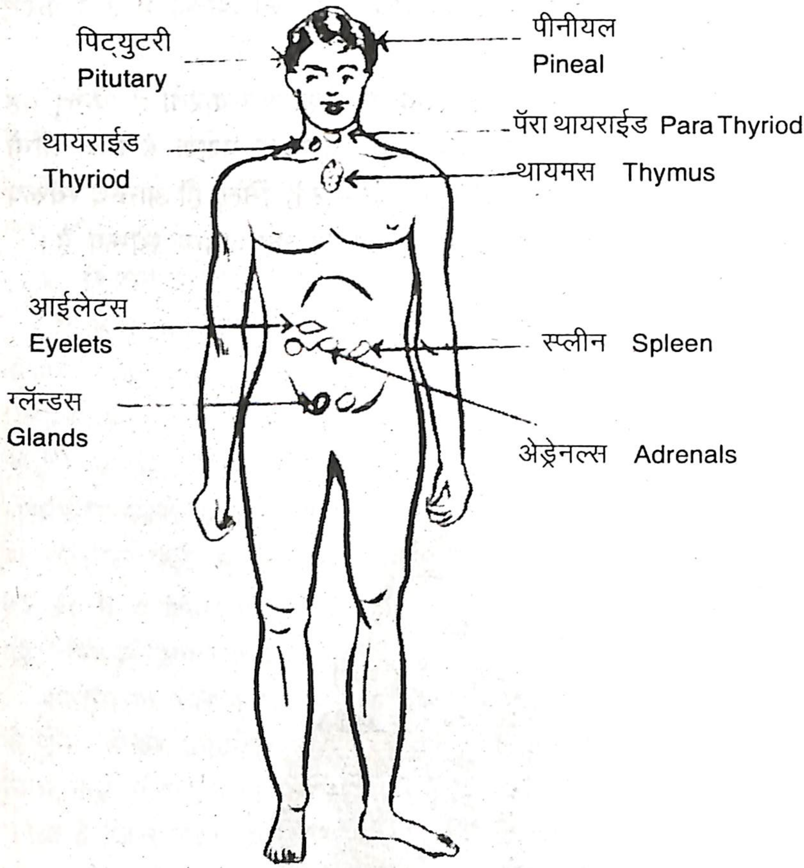
साधना द्वारा जब व्यक्ति पूर्व के चारो कोशो को पार कर इस आनन्दमय कोश में प्रवेश करता है तो उसे अनायास ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है। यह अनुभूति सुषुप्ति अवस्था में ही होती है किन्तु जाग्रत एवं स्वप्नावस्था में अपने इष्ट देव अथवा इष्ट वस्तु के दर्शन भी हो सकते

हैं। इसकी प्राप्ति का यही प्रमाण है। आत्म ज्ञान के इच्छुक व्यक्ति को इसके आनन्द में ही मग्न न रहकर इसका भी निषेध कर देना चाहिये तभी उसे आत्मज्ञान का फल प्राप्त होता है। शरीर को इन्द्रियों में, इन्द्रियों को प्राणों में, प्राणों को मन में, बुद्धि को तथा बुद्धि को आत्मा में लय करने से इसकी उपलब्धियां होती हैं।

यह आत्मा स्वयं प्रकाश है जो सभी को प्रकाशित करता है किन्तु यह किसी से प्रकाशित नहीं होता। वह पांच कोशों से पृथक है तथा तीनों अवस्थाओं का साक्षी है। यह निर्विकार है, निर्मल है, नित्य ही आनन्द स्वरूप है यही मनुष्य की वास्तविक आत्मा है जो उसका अपना स्वरूप है।

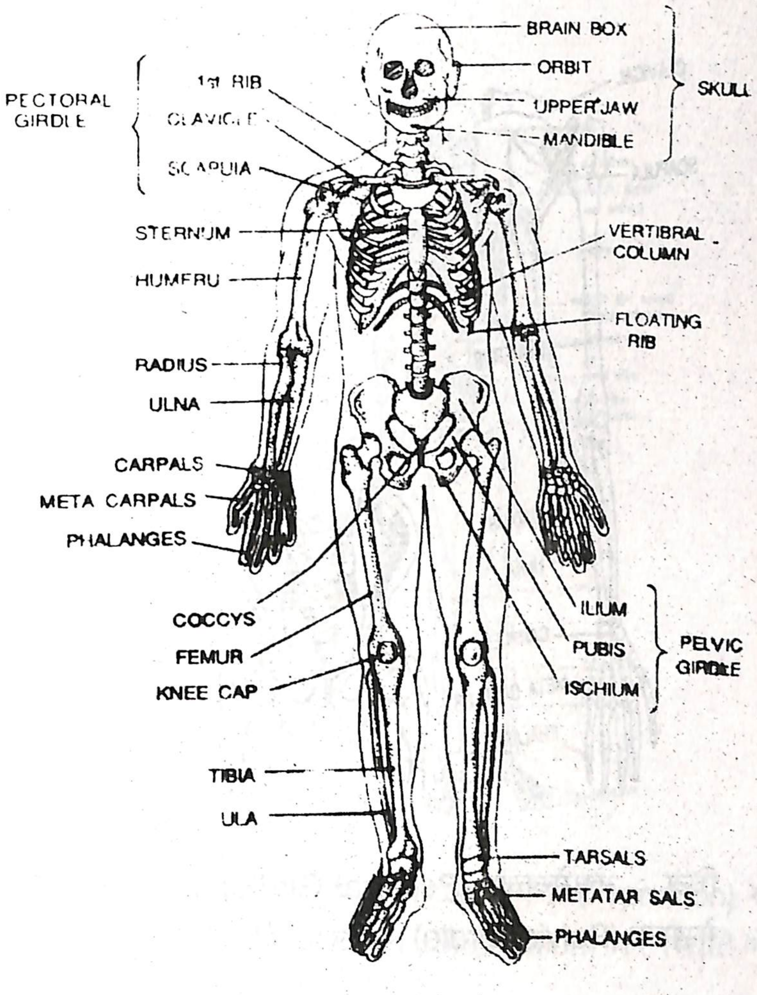


योगीश्वर भगवान् शंकर

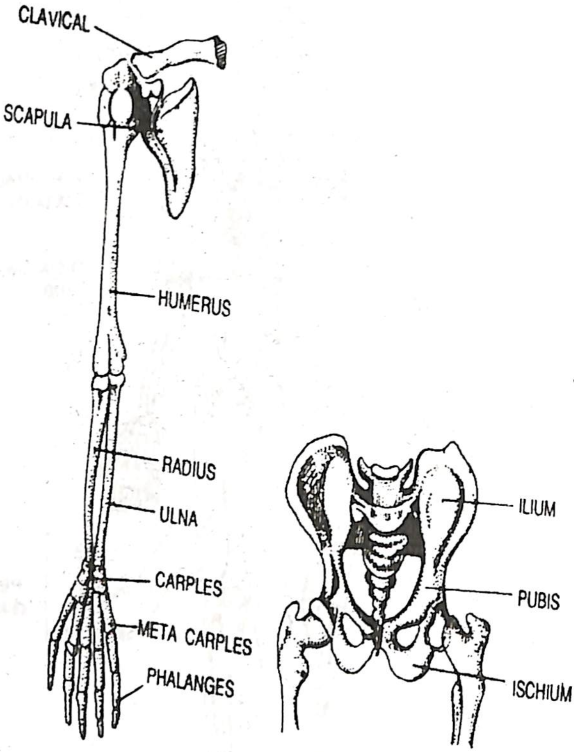


अंतस्रावी ग्रंथी
Internal Harmones

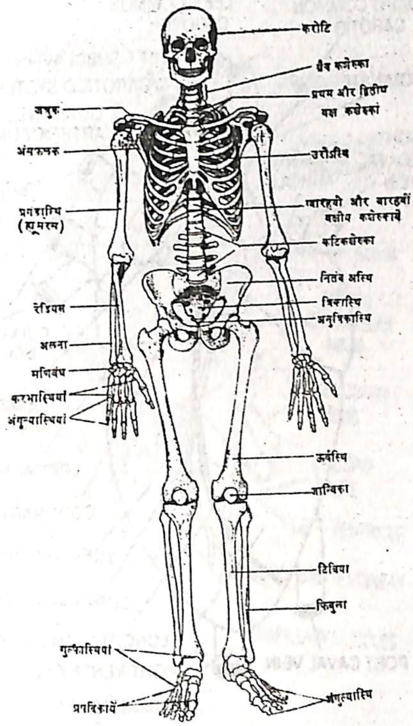
चित्र



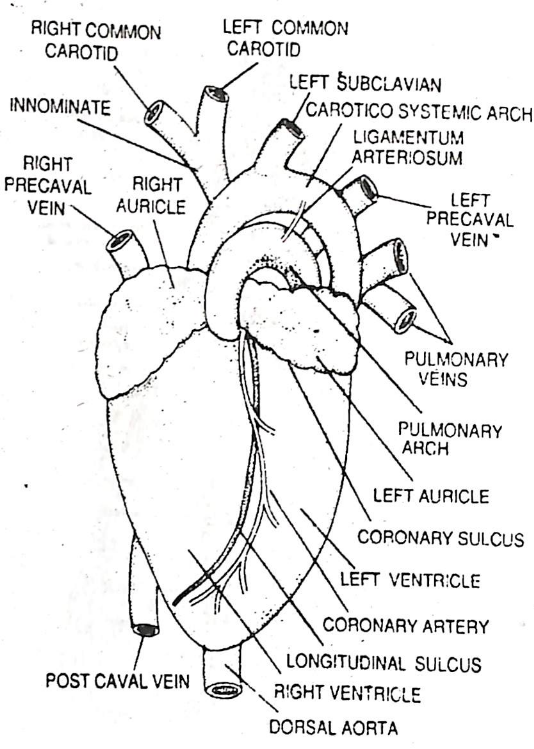
चित्र : मानव कंकाल तंत्र



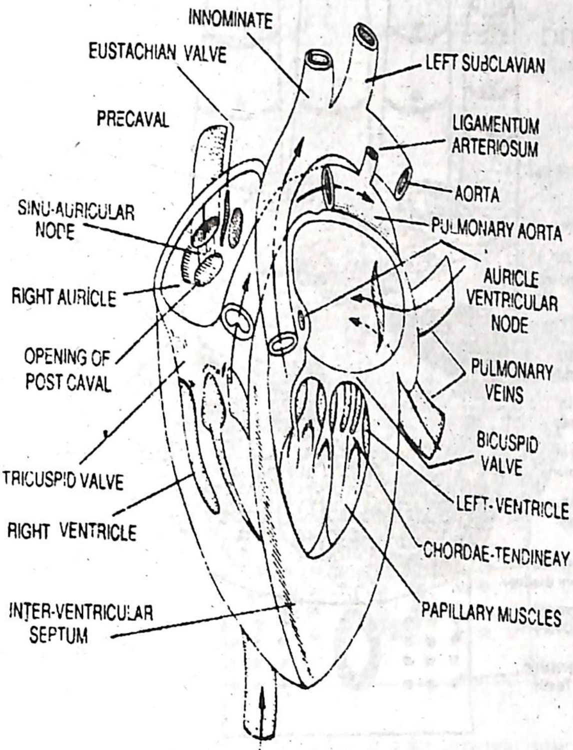
चित्र : अंसमेखला (Pectoral Girdle) , श्रोणि मेखला (Pelvic Girdle) व हाथ की अस्थियां



चित्र : दक्षिण हाथ अवतानन (Pronation) की और वाम हाथ उत्तानन (Supination) की स्थिति में।

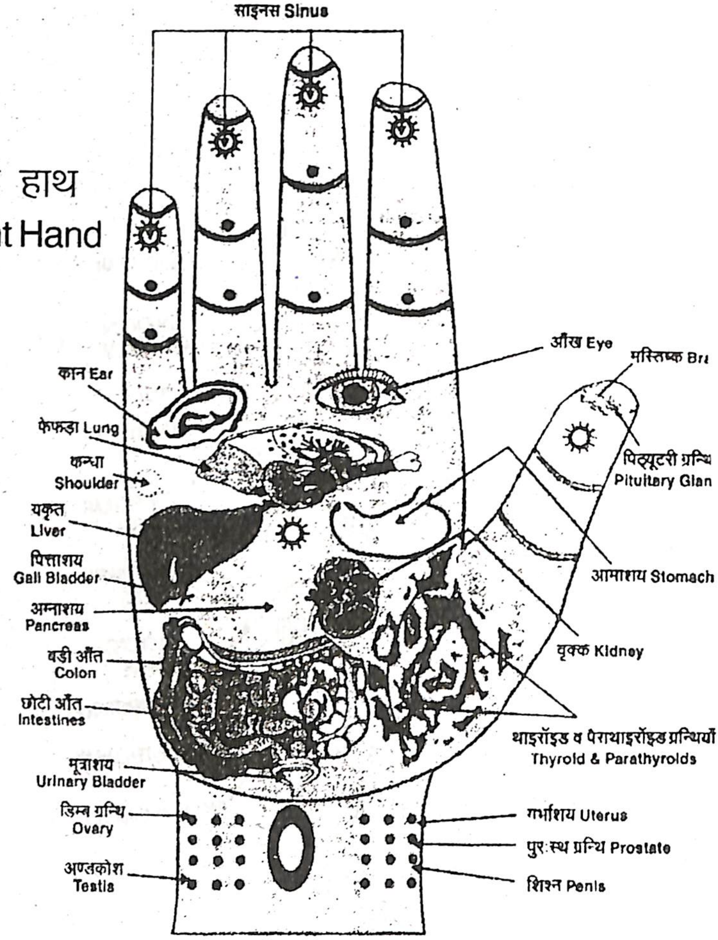


चित्र : हृदय का अधर दृश्य



चित्र : हृदय की आन्तरिक संरचना

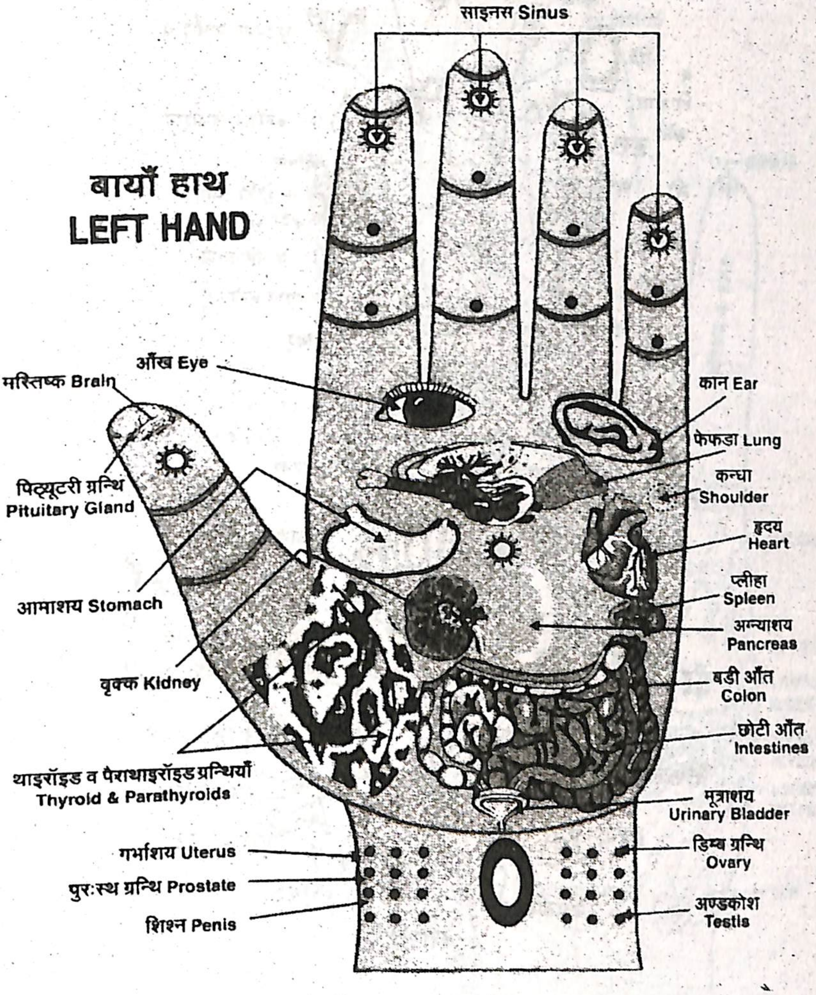
मानव शरीर के एक्युप्रेशर प्रतिबिम्ब



बिन्दु के दबाव के कारण संपूर्ण मानव शरीर में रक्त- संचारण बना रहता है। एक्युप्रेशर में विभिन्न दबाव-बिन्दुओं के प्रयोग से शरीर की अनेक व्याधियां दूर हो जाती है। इतना ही नहीं, यदि मनुष्य तनावग्रस्त हो, बेहद थका हुआ हो, गंभीर बीमारी एवं दर्द में हो तो इसका प्रयोग एक चमत्कार सिद्ध हुआ है।

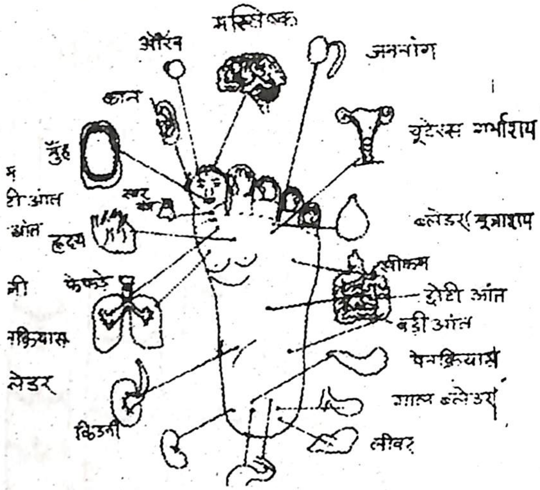
रोगों को बिना दवा के दूर रखने की यह सबसे आसान एवं सरल प्राकृतिक चिकित्सा- पद्धति है। यही वजह है कि आज विश्व के कई देशों ने इसे स्वीकार कर लिया है।

मानव शरीर एक्युप्रेशर प्रतिबिम्ब

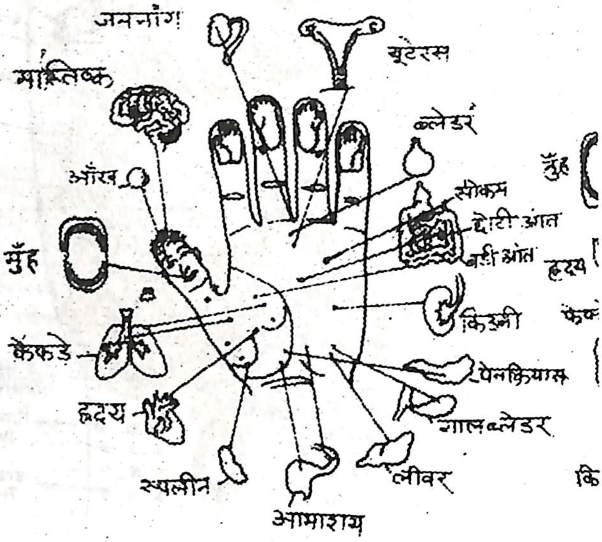


बिन्दु के दबाव के कारण संपूर्ण मानव शरीर में रक्त–संचारण बना रहता है। एक्युप्रेशर में विभिन्न दबाव–बिन्दुओं के प्रयोग से शरीर की अनेक व्याधियां दूर हो जाती है। इतना ही नहीं, यदि मनुष्य तनावग्रस्त हो, बेहद थका हुआ हो, गंभीर बीमारी एवं दर्द में हो तो इसका प्रयोग एक चमत्कार सिद्ध हुआ है।

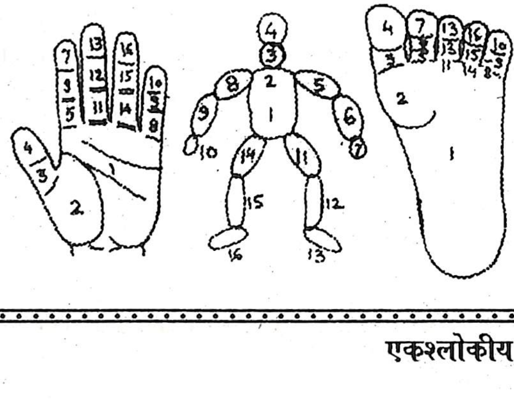
रोगों को बिना दवा के दूर रखने की यह सबसे आसान एवं सरल प्राकृतिक चिकित्सा–पद्धति है। यही वजह है कि आज विश्व के कई देशों ने इसे स्वीकार कर लिया है। चीन में इसे सरकारी मान्यता प्राप्त है, इसलिए इसे 'चायनीज पद्धति' के नाम से भी जानते हैं।

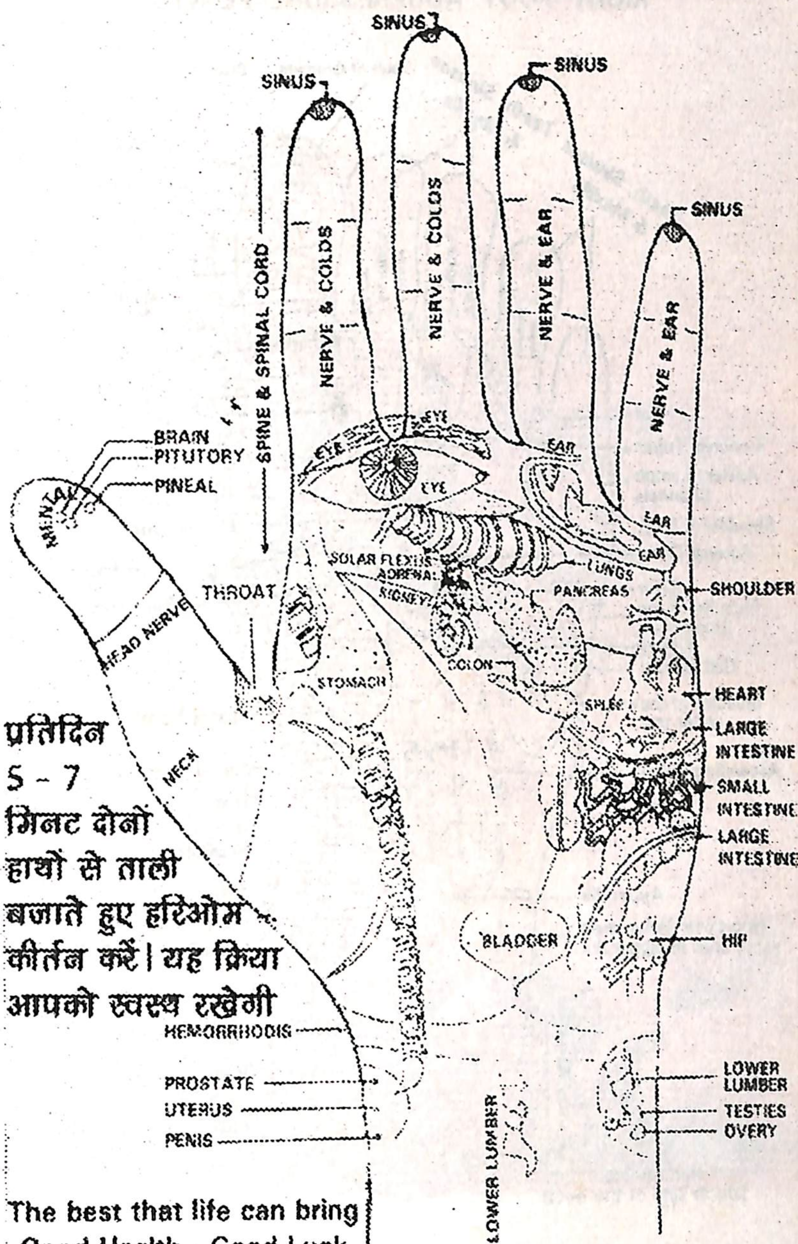


मस्तिष्क
आँख
जननांग
कान
यूटेरस गर्भाशय
मुँह
हृदय
ब्लेडर मूत्राशय
सीकम
फेफड़े
छोटी आंत
बड़ी आंत
पेनक्रियास
गाल ब्लेडर
किडनी
लीवर



जननांग
यूटेरस
मस्तिष्क
ब्लेडर
आँख
मुँह
सीकम
छोटी आंत
बड़ी आंत
हृदय
किडनी
फेफड़े
पेनक्रियास
गालब्लेडर
लीवर
स्पलीन
आमाशय



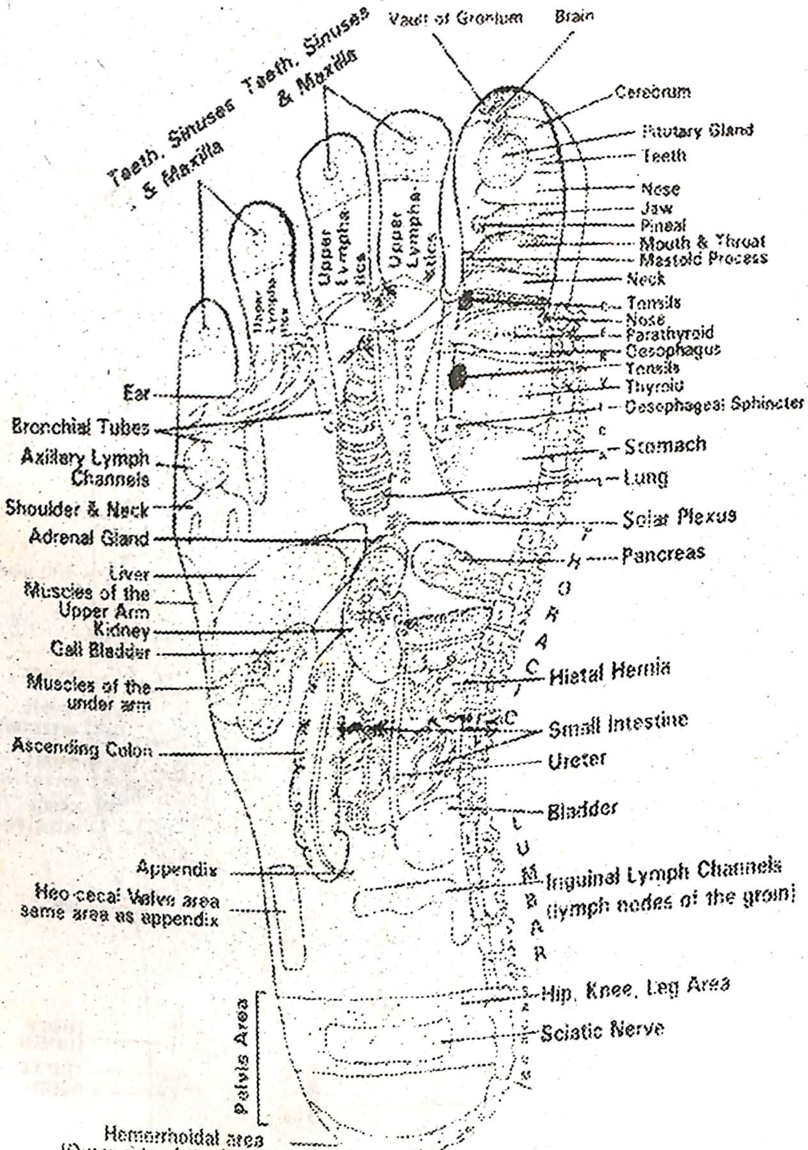


प्रतिदिन
5 - 7
मिनट दोनों
हाथों से ताली
बजाते हुए हरिओम
कीर्तन करें। यह क्रिया
आपको स्वस्थ रखेगी

The best that life can bring
Good Health - Good Luck

LEFT HAND ACCUPRESSURE POINTS

RIGHT FOOT ACUPRESSURE POINTS



प्रतिदिन पैरों को बाल्टी के ठण्डे पानी में एक मुट्ठी उपले की राख डाल कर प्लास्टिक ब्रुश से रगड़-रगड़ कर धोने से रोगों से मुक्ति मिलती है।



कुरुक्षेत्र के पार्थसारथी योगेश्वर भगवान् श्री कृष्ण

लेखक का परिचय



आचार्य प्रभाकर मिश्र जी संस्कृत, आयुर्वेद, ज्योतिष तथा भारतीय विद्याओं के प्रसिद्ध प्रकाण्ड विद्वान हैं। न केवल भारत में अपितु विश्व के ४० देशों में अपनी विद्वत्ता का परिचय देकर भारत की प्रतिष्ठा बढ़ाई है। इतिहास में आज तक किसी संस्कृतवेत्ता ने एक ही श्लोक की रचना करके इतना महान् ज्ञान का प्रदर्शन नहीं किया। मैं तो यही कह सकता हूं कि यह ग्रन्थ 'न भूतो न भविष्यति'। यह प्रथम पुष्प प्रकाशित हुआ है। इसी श्लोक से 'ज्योतिष तंत्र-मंत्र विज्ञान', 'वेद और व्याकरण', 'गीता तथा रामायण' प्रकाशनाधीन हैं। आचार्यश्री का सेवापरिचय इस प्रकार है:-

भूतपूर्व सेवाएं

भूतपूर्व सेवाएं

१. भारतीय विद्या भवन, मुम्बई में संस्कृत विभागांध्यक्ष
२. कामेश्वरसिंह दरभंगा विश्वविद्यालय, बिहार में उपकुलपति
३. बुन्देलखंड आयुर्वेद डिग्री कॉलेज, झाँसी तथा आयुर्वेद युनानी तिबिया कॉलेज, नई दिल्ली में वरिष्ठ प्राध्यापक
४. ए.यू.जे. हॉस्पिटल, झाँसी तथा यूनिवर्सल रिसर्च हॉस्पीटल, मुम्बई में चिकित्साध्यक्ष

वर्तमान सेवाएं

अध्यक्ष– आयुर्वेदविश्व परिषद्, विश्वधर्म संसद् (भारत), सार्वभौम सनातनधर्म महासभा ; **प्रधान सम्पादक**– सनातन वाणी

योग्यताएं

आचार्य– व्याकरण, साहित्य, आयुर्वेद, वेद ; बी.आई.एम.एस., बी.एड, एम.एस.सी.(ए), डी.एस.सी.(ए), डी.एस.सी.(एम)

सम्मान

विद्यावाचस्पति, ब्रह्मर्षि, युगाचार्य, राष्ट्रीय एकता पितामह, ज्योतिषमार्तण्ड, आयुर्वेदकौस्तुभ (आदि)

पता- सी-१२१, कीर्तिनगर, नई दिल्ली-११००१५

– आयुर्वेद विश्वपरिषद् द्वारा प्रसारित